भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला: अपभ्रंश ग्रन्थांक–४

मुनि-कनकामर-विरइयउ

करकंड चरिउ

आलोचनात्मक रीतिसे सम्पादित मूल, हिन्दी और अँगरेजी प्रस्तावना
व अनुवाद, परिशिष्ट, टिप्पण, शब्दकोश, आदि सहित

सम्पादक
डॉ० हीरालाल जैन, एम्० ए०, डी० लिट्०
प्राध्यापक व विभागाध्यक्ष
संस्कृत, पाली व प्राकृत, इन्स्टीट्यूट आफ लेंग्वेजेज एण्ड रिसर्च
जबलपुर विश्वविद्यालय [म० प्र०]
भूतपूर्व डायरेक्टर प्राकृत, जैनधर्म और अहिंसा शोधसंस्थान
वैशाली (बिहार)

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर निर्वाण सं० २४९०
वि० सं० २०२१, सन् १९६४

द्वितीय संस्करण
मूल्य दस रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी-द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें
उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक
जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव
अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी
सूचियाँ, शिलालेख संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-
ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन साहित्य ग्रन्थ भी
इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

●

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन एम० ए०, डी० लिट्०
डॉ० आ० ने० उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०

●

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
विक्रय केन्द्र ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

मुद्रक सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

०

स्थापना फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० ● विक्रम सं० २००० ● १८ फरवरी सन् १९४४

स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ JAIN GRANTHMĀLĀ APABHRAṂŚA Grantha No 4

KARAKAṆḌA-CARIU

of

MUNI KANAKĀMARA

An Apabhraṃśa Work on the Life of Karakandu Recognised as a Saint or Pratyekabuddha by the Jainas as well as Buddhists

Critically Edited

with

Hindi and English Introductions and Translations, Appendices, Notes, Glossary etc
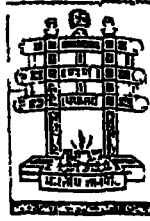
EDITOR

Dr HIRALAL JAIN, M A, D Litt

Professor and Head of Department of Sanskrit, Pali and Prakrit,
Institute of Languages and Research, University of Jabalpur [M P]
Formerly Director, Research Institute of Prakrit, Jainology and Ahimsa,
Muzaffarpur [Bihar]

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA PUBLICATION

VIRA SAMVAT 2490
V S 2021, 1964 A D

Second Edition
Rs 10/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ

JAINA GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAINA ĀGAMIC PHILOSOPHICAL,
PAURĀNIC LITERARY HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS
AVAILABLE IN PRĀKRIT SANSKRIT APABHRAMŚA, HINDI
KANNADA TAMIL ETC ARE BEING PUBLISHED
IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR
TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES
AND
CATALOGUES OF JAINA BHANDARAS INSCRIPTIONS,
STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR
JAINA LITERATURE ARE ALSO BEING PUBLISHED

●

General Editors

Dr Hiralal Jain M A D Litt
Dr A N Upadhye, M A , D Litt

●

Bharatiya Jnanapitha
Head office 9 Alipore Park Place, Calcutta-27
Publication office Duragakund Road Varanasi-5
Sales office 3620/21 Netaji Subhash Marg Delhi-6

●

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam 2470, Vikrama Sam 2000 18th Febr 1944

CONTENTS

GENERAL EDITORIAL

The Karakamdacariu of Kanakāmara was first edited by Dr Hiralal Jain and published as No 4 of the Ambādāsa Chaware Digambara Jaina Granthamālā, or Karanja Jaina Series, in the year 1934 This Apabhraṃśa work was received very well not only by Oriental scholars interested in the Middle Indo Aryan, but also in some of our Universities where it found a place as a text-book for graduate and post-graduate courses of study The first edition was exhausted some years back, and the book has been in consant demand I suggested a reprint of it to the authorities of the Bhāratīya Jñānapītha, Varanasi, which has come to be a premier Institution for the publication of works pertaining to the neglected branches of Indological study Thanks to Dr Hiralal Jain, in whom we have a doyen of Apabhraṃśa studies, that not only he readily agreed to the proposal of reprint, but also spared his valuable time to retouch the text and critical apparatus in their obscure contexts, to revise the Introductions and to add a full Hindi Translation Thus, the present edition of the Karakaṃdacariu has come to represent an exhaustive study of this Apabhraṃśa text from the historical and literary points of view I have no doubt that the present edition has become more comprehensive and scholarly in its contents and would satisfy more fully the needs of the University students It may be noted that for the speedy publication of this work the twelve plates pertaining to Terāpura cave, included in the first edition, could not be reproduced here

We are grateful to the authorities of the Bhāratīya Jñānapītha, especially to its enlightended President, Smt Ramadevi Jain, and to its benign Patron, Shriman Sahu Shanti Prasadaji, for patronising the publication of such works Our thanks are due to Shri Laxmi Chandaji Jain who is enthusiastically implementing the schemes of publication undertaken by the Jñānapītha

Kolhapur
9-6-64

A N UPADHYE

प्रधान सम्पादकीय

मुनि कनकामर कृत करकण्डचरिउका सर्वप्रथम सम्पादन डॉ० हीरालाल जैन द्वारा होकर सन् १९३४ में अम्बादास चवरे दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला (कारंजा जैन सीरीज) में उसका प्रकाशन हुआ था। इस अपभ्रंश रचनाका प्राकृत भाषाओंमें रुचि रखनेवाले प्राच्य विद्या-विशारदों द्वारा अच्छा स्वागत हुआ और अनेक विश्वविद्यालयोंने उपाधि व स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमोंमें उसे स्थान दिया। ग्रन्थका प्रथम संस्करण कुछ वर्ष पूर्व समाप्त हो गया था, किन्तु ग्रन्थकी निरन्तर माँग बनी हुई थी। अतएव मैंने भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, के अधिकारियोंको इसे पुनः प्रकाशित करानेका सुझाव दिया, क्योंकि यह ज्ञानपीठ भारतीय विद्याओंकी उपेक्षित शाखाओंके ग्रन्थोंको प्रकाशित करनेके लिए एक प्रधान संस्था बन गयी है।

डॉ० हीरालाल जैन अपभ्रंश भाषा और साहित्य सम्बन्धी अध्ययनके हमारे एक पथ-निर्माता हैं। उन्हें धन्यवाद है कि उन्होंने न केवल इस ग्रन्थके पुनः प्रकाशनके प्रस्तावको तुरन्त स्वीकार कर लिया, किन्तु उन्होंने अवकाश निकालकर ग्रन्थके मूल पाठमें अनेक स्थलोंपर उचित संशोधन किये, ह्रस्व और दीर्घ 'ए' तथा उसकी मात्रा एवं अनुनासिक और अनुस्वारके पृथक् संकेतोंका समावेश किया, हिन्दी प्रस्तावनाका उचित विस्तार व अँगरेजी भूमिकामें तदनुसार सुधार-उधार किये और सम्पूर्ण हिन्दी अनुवाद भी जोड़ दिया। इस प्रकार करकण्डचरिउके इस संस्करणमें इस अपभ्रंश रचनाका ऐतिहासिक व साहित्यिक दृष्टिसे सर्वांगपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस संस्करणमें अपने विषयका अधिक व्यापक और विद्वत्तापूर्ण विवेचन हुआ है जिससे विश्वविद्यालयीन विद्यार्थियोंकी आवश्यकताओंकी अधिक उत्तम रीतिसे पूर्ति हो सकेगी।

यहाँ यह भी प्रकट कर देना उचित है कि तेरापुरकी गुफाओं सम्बन्धी जो बारह चित्र प्रथम संस्करणमें प्रकाशित किये गये थे वे, प्रकाशनमें विलम्ब बचानेकी दृष्टिसे छोड़ दिये गये हैं।

हम भारतीय ज्ञानपीठके अधिकारियों, और विशेषतः इस संस्थाकी विदुषी अध्यक्षा श्रीमती रमादेवी जैन, एवं उसके सुयोग्य संरक्षक साहू शान्तिप्रसादजीके कृतज्ञ हैं कि वे ऐसे ग्रन्थोंके प्रकाशनको आश्रय देते हैं। ज्ञानपीठ-द्वारा स्वीकृत प्रकाशन-योजनाको उत्साहपूर्वक क्रियान्वित करनेके लिए संस्थाके मन्त्री श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

कोल्हापुर,
९-६-१९६४

आ० ने० उपाध्ये

प्रस्तावना

'करकण्डचरिउ'के दर्शन मुझे प्रथम वार सन् १९२४ मे कारंजाके जैनशास्त्र भण्डारमे हुए थे। तदनुसार ग्रंथका कुछ परिचय सन् १९२६ मे मध्यप्रदेश शासन-द्वारा प्रकाशित सस्कृत प्राकृत हस्तलिखित ग्रंथोकी सूचीमे दिया गया था। खोज करनेपर इसी ग्रंथकी पाँच और भी प्रतियाँ मुझे देखनेको मिली। इन सब प्रतियोका सूक्ष्म अवलोकन कर प्रस्तुत सस्करण तैयार किया है। (इन प्रतियोका परिचय अंग्रेजी भूमिकामे देखिये।)

स्वय ग्रंथमें उसके रचयिता व काल आदि सम्बधी ऐतिहासिक सकेत केवल निम्नप्रकार पाये जाते है। ग्रंथकी प्रत्येक सधिके अन्तमे ग्रथकारका नाम कनकामर अकित कर दिया गया है, व प्रारंभ और अन्तमें उनके गुरुका नाम पडित या बुध मगलदेव बतलाया है। अन्तिम प्रशस्तिमें कहा गया है कि ग्रन्थकार ब्राह्मण वशके चन्द्र ऋषि गोत्रमें उत्पन्न हुए थे, और वैराग्य लेकर वे दिगम्बर मुनि हो गये। तबसे उनका नाम कनकामर मुनि प्रसिद्ध हुआ। वे भ्रमण करते हुए 'आसाइय' नगरीमें पहुँचे और वहीं रहकर उन्होने प्रस्तुत ग्रन्थकी रचना की। इस रचनाको उन्होंने जिन सज्जनके अनुरागसे प्रकाशित किया वे एक बड़े योग्य व्यवहार-कुशल, धर्मात्मा पुरुष थे। वे विजयपालनरेशके स्नेहभाजन तथा उनके मुखदर्पणवत् थे, उन्होंने भूपाल नरेशका मन मोह लिया था, तथा वे कर्ण नरेन्द्रके चित्तका मनोरजन किया करते थे। उनके तीन पुत्र थे, आहुल, रल्हो और राहुल। ये तीनो मुनि कनकामरके चरणोमे अनुरक्त थे। अपने भक्त श्रावकका इतना परिचय देनेपर भी, खेद है, कर्ताने उनका नाम नही बतलाया और न अपने ग्रंथके निर्माणका समय ही अकित किया। अत ग्रथकारके सम्बन्धमें विशेष जानकारी उक्त सकेतोके आधारसे बाह्य प्रमाणो-द्वारा सकलित करनेकी आवश्यकता पडी।

ग्रथका रचना-स्थल

जिस 'आसाइय' नगरीमें रहकर कविने ग्रन्थ-रचना की उसका यह भी निश्चय नही होता कि वह कहाँ थी, तथा जिन राजाओका उन्होने उल्लेख किया है उनका भी कुछ निश्चित इतिहास ज्ञात नही है। कारजाकी प्रतिमें 'आसाइय' नगरीपर 'आसापुरी' ऐसा टिप्पण है। इससे जान पडता है कि उस नगरीको आसापुरी भी कहते थे। खोज करनेपर इस नामके अनेक स्थानोका पता लगा। एक तो 'आसाई' नामका इतिहासप्रसिद्ध वह स्थान है जहाँ सन् १८०३ में मराठो और अंग्रेजोका युद्ध हुआ था। यह आध्रप्रदेशके औरगाबाद जिलेके अन्तर्गत है। यह अब एक छोटा-सा ग्राम है। इसका पूर्व इतिहास कुछ विदित नही है। दूसरा खानदेशमें आसीरगढ नामका किला है जिसका यह नाम वहाँ स्थापित आसादेवीपर-से पडा। कहा जाता है कि इस किलेको मौखरी वश (लगभग सन् ६००) के एक नरेशने अपनी पुत्रप्राप्तिकी आशा पूर्ण होनेके उपलक्ष्यमें बनवाया था। किलेके पासका एक छोटा-सा ग्राम अब भी 'आसी' कहलाता है। एक तीसरा आसी नामका स्थान राजपुतानेके बून्दी राज्यमें है। यह भी एक किला है। पजाबके कागडा जिलेके अन्तर्गत कीरग्रामसे बारह मील दूरीपर एक पहाडी है जिसकी चोटीपर आसापुरी देवीकी स्थापना है और जिसके कारण वह स्थान आसापुरी कहलाता है। इस मन्दिरको एक राजा चन्द्रभानुके पुत्र विजयरामने बनवाया था। पाठक नामपर-से विजयरामको इस ग्रंथके विजयपाल ठहरानेका इरादा न करें, क्योकि ये विजयराम सत्रहवी शताब्दिमें हुए है और प्रस्तुत ग्रथ जैसा ऊपर बतला आये है, इससे पूर्व ही बन चुका था। इत्यादि। किन्तु इस नाम मात्रकी समानताओसे हमें ग्रथकी रचनाके स्थानका निर्णय करनेमें विशेष सहायता नही मिलती, जबतक किसी स्थानके साथ उपर्युक्त राजाओका भी कुछ इतिहास न पाया जावे। जिन दो स्थानोमें-से किसी एकके कनकामरके रचनास्थल होनेकी अधिक सम्भावना है वे निम्नप्रकार है

१ आसइगेडाके विषयमें जैन सिद्धांत भास्कर, भाग १३, २, पृष्ठ १३५पर लिखा है, "आमइखेडा नामक ग्राम इटावासे नौ मील दूर है। निस्सन्देह यह जैनियोंका प्राचीन स्थान है। इटावाके जैनी अब भी वहाँ जाकर अपने लडकोंका मुण्डन कराते हैं। आमइ गाव एक ऊँचे टीलेपर बना हुआ है, जिसकी पश्चिमी ओर विशाल खडहर पडे हुए है। जमुनाके किनारेसे सटा हुआ खडहर सभवत किसी प्राचीन जैन मदिर-का अवशेष है। उसपर बहुत-सी दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ बिखरी हुई मिलती है। इनमें-से १२वी शताब्दिकी दो मूर्तियोंको जसवतनगरके मन्दिरमे लाकर रखा गया था। एक चौबीसीपट था, जिसमे प्रत्येक तीर्थंकरका नाम भी अकित था। यह आमइ ग्राम अपने दुर्गके लिए प्रसिद्ध था। कहते है कि आसइके दुर्गको चन्द्रपालने बनवाया था। मुनि कनकामरने एक आसाइय नगरीमें आकर अपना करकडचरिउ रचा था जहाँके नरेश विजयपाल, भूपाल और कर्ण थे। हो सकता है कि यह आसाइय नगरी वर्तमान आसइखेडा ही हो।" किन्तु इससे आगे कहा गया है कि "तारीख-ई-यामिनीसे जाहिर है कि मुहम्मद तुगलकने हिज्री ८०९ (सन् १०१७ ई०)मे कन्नौजसे मथुरा तक आक्रमण किया था। इटावाके पास मुजके किलेमे हिंदुओंने उसका जबरदस्त विरोध किया था। प्राय सभी हिन्दू उस सघर्षमे खेत रहे थे। वहाँसे सुल्तानने आसईके दुर्गपर आक्रमण किया। उस समय आसईका शासक चडाल भोर था। मुसलमान लेखकोंने लिखा है कि सुल्तान-के आक्रमणकी खबर पाकर चडाल भोर घबरा गया और अपना दुर्ग छोड सुरक्षित स्थानको भाग गया। सुल्तानने उसके पाँचो किलोंको गिरवाकर मिट्टीमें मिला दिया।" इससे न तो इस आसईखेडाका सन् १०१७ ईस्वीके पश्चात् ऐसा अस्तित्व पाया जाता जिससे वह कनकामर-द्वारा 'नगरी' कहा जा सके, और न वहाँ किसी ऐसे राजाओंका अस्तित्व सिद्ध होता है जिनका करकडचरिउमें उल्लेख किया गया है।

२ भोपाल स्टेट गजेटियर (१९०८)मे लिखा है कि भोपालके समीप आशापुरी नामक ग्राम २३" ५२" उत्तर व ७७" ४०" पूर्व ध्रुवाशपर स्थित है। वहा आशापुरी देवीकी कुछ असाधारण प्रकारकी मूर्ति विद्यमान है। सम्भवत इसीपर-से ग्रामका उक्त नाम पडा। यहाँ एक जैन मदिरके भी भग्नावशेष मिलते है, उनमें एक सोलह फुट ऊँची शान्तिनाथ तीर्थंकरकी प्रतिमा भी है।

मेरा अनुमान है कि वर्तमान मध्यप्रदेशकी राजधानी भोपालके समीपकी यही वह प्राचीन नगरी है जिसका उल्लेख मुनि कनकामरने 'आसाइयणयरि'के रूपमें किया है तथा जिसपर 'आशापुरी' ऐसा प्राचीन टिप्पण पाया जाता है। यह बात उल्लिखित राजाओंके विवेचनसे भी पुष्ट होती है।

ग्रंथकारके समसामयिक नरेश व रचना-काल

'करकडचरिउ' की अन्तिम प्रशस्तिमें तीन राजाओंका उल्लेख पाया जाता है — विजयपाल, भूपाल और कर्ण। इस उल्लेखसे ऐसा भी ज्ञात होता है कि ग्रंथकारके उत्साहवर्धक सज्जनके जीवनकालमे ही वे तीनो राजा हो चुके थे और उनके साथ इनका सम्बन्ध भी खासा रह चुका था। अत उक्त नामोंके ऐसे तीन राजा ढूँढना चाहिए जिनका एक ही कालमे या एक ही जीवनमें एक पुरुषसे सम्बन्ध होना सभव हो सके। तीन ऐसे शिलालेखोंका पता चला है जिनमें उक्त राजाओंका उल्लेख है। ये तीनो लेख बुन्देलखड प्रान्तके भीतर या आसपास पाये गये है। इनमें-का एक लेख अपभ्रंश भाषामें है और नीचे उसका सस्कृत अनुवाद भी दिया गया है। उसमें प्रसगोपयोगी यह बात दी हुई है कि विश्वामित्र गोत्रके क्षत्रिय वशमें विजयपाल नामके एक राजा हुए जिनके पुत्र भुवनपाल थे। उन्होंने कलचुरी, गुर्जर और दक्षिणको जीत डाला था। यह लेख दमोह जिलेकी हटा तहसीलमें मिला था और अब नागपुरके 'अजायबघर' में सुरक्षित है। दूसरा लेख बाँदा जिलेके अन्तर्गत चन्देलोंकी पुरानी राजधानी कालिंजरमें मिला है। उसमे विजयपालके पुत्र भूमिपालका तथा दक्षिण दिशा और कर्ण राजाको जीतनेका उल्लेख है। तीसरा लेख जबलपुर जिलेके अन्तर्गत तीवरमें मिला है। उसमे भूमिपालके उत्पन्न होनेका उल्लेख स्पष्ट है तथा किसी सम्बन्धमे त्रिपुरी और सिंहपुरीका भी उल्लेख है। इन लेखोंमें-के दो अन्तिम लेख बहुत ही टूटे-फूटे है, इससे उनके पूर्वापर सम्बन्धका कुछ ज्ञान नही होता,

तथा प्रथम लेख पूरा मिलनेपर भी अभीतक स्पष्टत नही पढा जा सका है। जो कुछ पढा गया है उनमें अपभ्रंश और संस्कृतकी वार्तामें कुछ परस्पर विरोध-सा पाया जाता है। तथापि उक्त नामोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद नही है। लेखोंमे कोई सन्-सम्वत् भी नही पाया गया, किन्तु लिखावटपरसे वे ११वी या १२वी शताब्दिके अनुमान किये जाते है। सम्भवत उक्त लेखोंके विजयपाल और उनके पुत्र भुवनपाल या भूमिपाल, तथा हमारे ग्रन्थके विजयपाल (अपभ्रंश विजवाल) और भूपाल एक ही है। रही कर्ण (अपभ्रंश कण्ण) नरेंद्रकी बात, सो ये कर्ण वे ही हो सकते है जिनका उल्लेख ऊपरके दूसरे शिलालेखमें आया है। यदि ज्ञात इतिहासमे इन राजाओको समाविष्ट करनेका प्रयत्न किया जाय तो बुन्देलखडके चदेल वंशमे हो सकता है। चदेल (चन्द्रात्रेय) वंशका संक्षिप्त इतिहास यह है कि नवमी शतीके प्रारभमे बुन्देलखड प्रदेशमे उस वशके राजा नन्नूक प्रकाशमें आये। खर्जूरवाहक (आधुनिक खजुराहो, छतरपुर जिलेमे) उनकी राजधानी थी और वे सभवत उस समयके प्रतिहार सम्राट् नागभट (द्वि) के अधीन थे। नन्नूकके पुत्र वाक्पतिने विन्ध्याचलके अचलमें अपने राज्यका विस्तार किया। वाक्पतिका पुत्र जयशक्ति 'जेज्जाक' नामसे भी प्रसिद्ध हुआ, और उसीके नामसे यह प्रदेश 'जेज्जाकभुक्ति' भी कहलाने लगा। जयशक्तिके उत्तराधिकारी उनके लघु भ्राता विजयशक्ति (विज्जक) ने, खजुराहोके एक शिलालेखानुसार, दक्षिण भारतमे दूर तक अपना राज्यविस्तार किया। उसके उत्तराधिकारी पुत्र राहिलके नामसे महोवाके समीप राहिल्य-सागर बनवाया गया। राहलके उत्तराधिकारी पुत्र हर्षने, खजुराहोके लेखानुसार सन् ९१४ के लगभग क्षितिपालदेव (प्रतिहार नरेश महीपाल प्रथम) को कन्नौजका सिहासन (राष्ट्रकूट इन्द्र तृ से) पुन प्राप्त करनेमे सहायता पहुँचायी, तथा चौहान राजकुमारी कचुकासे विवाह किया। इस प्रकार चदेल वशकी प्रतिष्ठा बहुत बढ गयी। उसके पुत्र यशोवर्मन् (लक्षवर्मन्) ने प्रतिहार नरेश देवपालकी अधीनता अस्वीकार कर दी और कालजरको जीतकर अपना राज्य यमुनाके तट तक फैला दिया। उसने कलचुरि युवराजदेव (प्र) और परमार सीयक (द्वि) को पराजित कर चेदि और मालवा तक अपना प्रभुत्व जमा लिया। उसने पूर्वमे पाल नरेश गोपाल (द्वि) और काम्बोजोको जीतकर गौड और मिथिला तक अपना साम्राज्य फैलाया। प्रतिहार नरेश देवपालसे विष्णुकी वह मूर्ति प्राप्त की जो उसके पिता हेरम्बपालने कीर (कागडा) के शाही नरेशसे पायी थी, और उसे खजुराहोमें चतुर्भुज मन्दिर बनवाकर उसमें स्थापित की। यशोवर्मनके पुत्र धग और उनके उत्तराधिकारियोंने अपनेको कालजराधीश्वर कहा है। इस समय चदेल राज्यकी सीमा कालजरसे भास्वत (भिलसा) तक तथा कालिंदी (यमुना) व गोप (ग्वालियर) से चेदि मडल (जबलपुर) तक फैल गयी थी। धगने अग (भागलपुर) व राधा (पश्चिम बगाल) तथा आध्र और कुतल तक विजय यात्रा की। उसने सभवत अमीर सुबुक्तिगीनके विरुद्ध लघानके युद्धमें अन्य पन्द्रह हिंदू राजाओके साथ भाग लिया। उसने महाराजाधिराजकी उपाधि धारण की। उसने गौतम अक्षपादके वशज प्रभास नैयायिकको अपना प्रधान मंत्री नियुक्त किया। धगने सन् ९५४ से १००२ तक राज्य किया।

धङ्गका पुत्र हुआ गण्ड और गण्डका विद्याधर जिसके समयमें महमूद गजनवीने दो बार सन् १०१९ और १०२२ में कालजरपर आक्रमण किया, किंतु उसे वह लूट न सका। विद्याधरने उसे प्रचुर धन देकर प्रसन्न कर लौटा दिया। विद्याधरने कलचुरि नरेश कोकल्ल (द्वि) और परमार भोजके विरुद्ध विजय प्राप्त की। विद्याधरके पुत्र विजयपालने कलचुरि गागेयदेवपर विजय पायी। विजयपालका पुत्र देवेंद्रवर्मा सन् १०५० ई० में सिंहासनपर था, अत इससे पूर्व विजयपालका राज्य समाप्त हो चुका था। देवेंद्रवर्माके लघुभ्राता कीर्तिवर्माको पराजित कर सन् १०५१ के कुछ पश्चात् कलचुरि कर्ण (राज्यारोहण सन् १०३४ और १०४२ के बीच) ने बुन्देलखडको अपने अधीन कर लिया था। किंतु पश्चात् कीर्तिवर्माने कर्णदेवको परास्त किया। ऐसा उसी विजयकी स्मृतिमें लिखे गये प्रबोधचन्द्रोदय नामक संस्कृत नाटक तथा उस कालके कुछ शिलालेखोसे ज्ञात होता है। सभव है ये कीर्तिवर्मा तथा उपर्युल्लिखित भुवनपाल, भूमिपाल व भूपाल एक ही हो। उस अवस्थामें जिस कर्णकी पराजयका उल्लेख दूसरे शिलालेखमे पाया जाता है वह कलचुरि

कणदेव ही ठहरेगा, और चूंकि विजयपाल, कीर्तिवर्मा (भुवनपाल) और कर्ण, इन तीनों राजाओंका अस्तित्व सन् १०४० और १०५१के बीच व आसपास पाया जाता है, अतएव यही काल अर्थात् ग्यारहवीं शतीका मध्यभाग करकंडचरिउकी रचनाका अनुमान किया जा सकता है। ग्रंथकी उत्थानिकामें सिद्धसेन, समन्तभद्र, अकलंक, जयदेव, स्वयंभू और पुष्पदंतका उल्लेख किया गया है। पुष्पदंतने अपना अपभ्रंश महापुराण सन् ९६५ ईस्वी-में समाप्त किया था। अतएव यह करकंडचरिउकी रचनाकी पूर्वावधि सिद्ध है। उसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंमें प्राचीनतम कालनिर्देश सन् १५०२ का है। इन सीमाओंसे भी पूर्वोक्त रचनाकालका समर्थन होता है।

ग्रंथकारका चन्द्रर्षि गोत्र

मुनि कनकामरने अपनेको चन्द्र ऋषि गोत्रीय कहा है। पट्टावलियोंके अनुसार सुहस्तिके शिष्य सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध-द्वारा स्थापित कोटिक गणकी वैरिशाखाका एक कुल चन्द्र नामक हुआ। "श्रीवज्रशाखायुरिवज्रसेनान्नागेन्द्रचन्द्रादिकुलप्रसूति." (पट्टावली-समुच्चय, पृ० ३६)। चन्द्रकुलके भी अनेक अन्वय और गच्छ हुए। उदाहरणार्थ, उत्तराध्ययनकी शिष्यहिता नामक वृत्तिके कर्ता शान्तिसूरि चन्द्रकुलके काठकारान्वयसे उत्पन्न थारापद्र गच्छके थे। उत्तराध्ययनकी सुखबोधा टीकाके कर्ता देवेंद्र गणी भी चन्द्रकुलके थे। किंतु ये सब श्वेताम्बर परम्पराके भेदप्रभेद हैं जिनकी मान्यता दिगम्बर परम्परामें नहीं पायी जाती। और कनकामर उनके स्पष्ट कथनानुसार ही दिगम्बर मुनि थे। अनुमानतः कनकामरका चन्द्रर्षि गोत्र वही देशीगणकी 'चन्द्रकराचार्याम्नाय' है जिसका उल्लेख बहुरिबंद (तहसील सीहोरा, जिला जबलपुर, मध्यप्रदेश) के शान्तिनाथ तीर्थंकरके पादपीठपर उत्कीर्ण लेखमें आया है। उस मूर्तिके प्रतिष्ठा-चार्य श्रीमत् सुभद्र इसी आम्नायके कहे गये हैं। इस लेखमें गयाकर्णदेवका उल्लेख है जो निश्चयतः कलचुरि नरेश कर्णके पिताका ही नाम है। (कार्पस इंस्क्रि० इण्डी० भाग ४, १९५५, पृ० ३१० ११) इस सम्बन्धमें यह भी ध्यान देने योग्य है कि स्वयं चन्देलनरेशोंने अपनेको चन्द्रात्रेय ऋषिवंशीय कहा है। उदाहरणार्थ यशोवर्मन्के खजुराहो शिलालेखमें कहा गया है,

तस्माद् विश्वसृज पुराणपुरुषादाम्नायधाम्न कवे-
र्येऽभूवन्मुनय पवित्रचरिता पूर्वे मरीच्यादय ।
तत्रात्रि सुषुवे निरन्तरतपस्तोमप्रभाव सुत
चन्द्रात्रेयमकृत्रिमोज्ज्वलतरज्ञानप्रदीप मुनिम् ॥
अस्ति स्वस्तिविधायिन स जगता निश्शेषविद्याविद-
स्तस्यात्मोपनताखिलश्रुतिनिधेर्वंश प्रशसास्पदम् ।

यही बात यशोवर्मन्के पुत्र धङ्गके खजुराहो शिलालेखमें भी कही गयी है। उस लेखमें एक और बात ध्यान देने योग्य है। आदिके तृतीय श्लोकमें ही शिवके उस परिहासकी मंगल-कामना की गयी है जिसमें शिव-पार्वती संवाद-द्वारा शिव और दिगम्बर क्षपणकमें एकत्वका संकेत किया गया है। श्लोक है,

कस्त्व द्वारि दिगम्बर क्षपणक कस्मादकस्मादहो
बाले शूलधरो धिगायुधविधि वहीस्त्वदाही ननु ।
मा जानीहि महेश्वर स्फुटमिद वस्त्रेऽप्यभावादिति
प्रेयस्या परिहासितो विहसित शर्मो शुभायास्तु व ।

इस परिहासोक्तिके द्वारा समस्त चन्देलवंशी नरेशों और विशेषतः धङ्गके उस उदार धार्मिक दृष्टिकोणको स्पष्ट किया गया प्रतीत होता है जिसके कारण ही खजुराहोके जैन, शैव और वैष्णव मंदिरोंका प्रायः एक सा वैभवपूर्ण निर्माण कराया जा सका। इसी सम्बन्धमें खजुराहोके पार्श्वनाथ मंदिरके द्वारका वह लेख भी उल्लेखनीय है जिसमें धङ्गराज-द्वारा सम्मानित भव्य पाहिल द्वारा मंदिरको दानकी गयी सात वाटिकाओंका

निर्देश है—गाहिलवाटिका, चन्द्रवाटिका, लघुचन्द्रवाटिका, शक्रवाटिका, पचाइतनवाटिका, आम्रवाटिका, और धगवाटिका। (जैं० शि० ले० संग्रह, भाग २, लेख नं० १४७, पृ० १९०)। इन वाटिकाओंमें दाताने अपने नामके अतिरिक्त अपने धर्मरक्षक नरेश, उनके विशेष इष्टदेव शिव तथा उनके चन्द्रात्रेय वंश एवं चन्द्रकराचार्याम्नायकी स्मृति चिरस्थायी बनानेका प्रयत्न किया प्रतीत होता है। आश्चर्य नहीं, जो यह चन्द्रकराचार्याम्नाय चन्देलवंशी राजकुलमें-से ही हुए किसी जैन मुनिने स्थापित की हो। स्वयं कनकामर भी इस राजवंशके रहे हों, तो आश्चर्य नहीं। चंदेलोंके क्षत्रियमाने जाने एवं कनकामर-द्वारा अपनेको ब्राह्मण कहे जानेसे उक्त बातमें कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता। चन्देल अपनेको अत्रि व चन्द्रात्रेयकी सन्तान तो मानते ही हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, चन्देलवंशी नरेश जेज्जाकके नामसे ही बुन्देलखंड जेजकभुक्ति कहलाया और यहाँके जुझौतिया ब्राह्मण आज तक भी प्रसिद्ध हैं। केवल राजवंशी लोग ही चन्देल राजपूत जातियोंमें गिने जाने लगे हैं।

ग्रंथकारकी गुरु-परम्परा

ग्रंथके प्रारंभ (१, २, १) में कविने सरस्वतीके अतिरिक्त पंडित मंगलदेवके चरणोंका स्मरण किया है। तथा अन्तिम प्रशस्ति (१०, २८, ३) में अपनेको बुध मंगलदेवका शिष्य कहा है। इससे उनके गुरुका नाम मंगलदेव स्पष्ट है। इन मंगलदेवका तथा उनके गण-गच्छ आदिका अन्य कोई परिचय ग्रंथमें नहीं पाया जाता। किंतु रत्नाकर या धर्मरत्नाकर नामका एक संस्कृत ग्रंथ मिलता है जिसमें उसके कर्ताका नाम पंडित मंगल दिया गया है। इस ग्रंथकी एक प्रति बलात्कार जैन भण्डार, कारंजामें (केटेलाग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैनुस्क्रिप्टस इन सी पी एण्ड बरार, क्रमांक ७८२९) तथा दूसरी प्रति शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुरमें है (राजस्थानके जैन शास्त्र भण्डारोंकी ग्रंथ सूची क्र० ७७८)। इस जयपुरकी प्रतिमें ग्रंथका अंतिम पुष्पिका-वाक्य है, "सं० १६८० वर्षे काष्ठासंघे नन्दतटग्रामे भट्टारक श्रीभूषणशिष्य पंडित मंगलकृत शास्त्ररत्नाकर नाम शास्त्र सम्पूर्णं।" इसपर-से ऐसा प्रतीत होता है जैसे सं० १६८० ग्रंथकी रचनाका काल हो। किंतु यथार्थतः यह कालनिर्देश उक्त प्रतिके लेखनका ही हो सकता है, क्योंकि कारंजा शास्त्रभण्डारकी प्रतिमें उसका लेखनकाल १६६७ अंकित है। काष्ठासंघ और नन्दितट ग्रामका प्राचीनतम उल्लेख देवसेनकृत दर्शनसार (गा० ३८) में प्राप्त होता है, जहाँ विक्रमराजकी मृत्युसे अर्थात् विक्रम संवत्के ७५३ वर्षमें नन्दितट ग्राममें काष्ठासंघकी उत्पत्ति कही गयी है। यदि कनकामरके कालके समीप इस संघके श्रीभूषण और उनके शिष्य मंगलदेवका अस्तित्व सिद्ध हो तो वे ही प्रस्तुत ग्रंथकर्ताके गुरु माने जा सकते हैं। किन्तु वर्तमानमें उक्त धर्मरत्नाकरकी पुष्पिकाके अतिरिक्त अन्य कोई साधक-बाधक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। हाँ, कुछ संशय उत्पन्न करनेवाली यह बात अवश्य है कि कविने उक्त गण-गच्छका उल्लेख न करके अपनेको चन्द्रर्षि गोत्रीय कहा है।

ग्रंथका विषय

इस ग्रंथमें करकंडु (अपभ्रंश-करकंड) महाराजका चरित्र दश संधियोंमें वर्णन किया गया है। संक्षेपमें यह कथा इस प्रकार है

अंगदेशकी चम्पापुरीमें धाडीवाहन राजा राज्य करते थे। एकबार वे कुसुमपुरको गये और वहाँ पद्मावती नामकी एक युवतीको देखकर उसपर मोहित हो गये। युवतीका संरक्षक एक माली था जिससे बातचीत करने आदिसे पता लगा कि वह युवती यथार्थमें कौशाम्बीके राजा वसुपालकी पुत्री थी। जन्मसमयके अपशकुनके कारण पिताने उसे जमना नदीमें बहा दिया था। राजपुत्री जानकर धाडीवाहनने उसका पाणिग्रहण कर लिया और उसे चम्पापुरी ले आये। कुछ काल पश्चात् वह गर्भवती हुई और उसे यह दोहला उत्पन्न हुआ कि मन्द-मन्द बरसातमें, मैं नररूप धारण करके, अपने पतिके साथ, एक हाथीपर सवार होकर, नगर-

कणदेव ही ठहरेगा, और चूंकि विजयपाल, कीर्तिवर्मा (भुवनपाल) और कर्ण, इन तीनों राजाओंका अस्तित्व सन् १०४० और १०५१के बीच व आसपास पाया जाता है, अतएव यही काल अर्थात् ग्यारहवीं शतीका मध्यभाग करकंडचरिउकी रचनाका अनुमान किया जा सकता है। ग्रंथकी उत्थानिकामें सिद्धसेन, समंतभद्र, अकलंक, जयदेव, स्वयंभू और पुष्पदंतका उल्लेख किया गया है। पुष्पदंतने अपना अपभ्रंश महापुराण सन् ९६५ ईस्वी-में समाप्त किया था। अतएव यह करकंडचरिउकी रचनाकी पूर्वावधि सिद्ध है। उसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंमें प्राचीनतम कालनिर्देश सन् १५०२ का है। इन सीमाओंसे भी पूर्वोक्त रचनाकालका समर्थन होता है।

ग्रंथकारका चन्द्रर्षि गोत्र

मुनि कनकामरने अपनेको चन्द्र ऋषि गोत्रीय कहा है। पट्टावलियोंके अनुसार सुहस्तिके शिष्य सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध-द्वारा स्थापित कोटिक गणकी वैरिशाखाका एक कुल चन्द्र नामक हुआ। "श्रीवज्रशाखायुरिवज्रसेनान्नागेन्द्रचन्द्रादिकुलप्रसूति" (पट्टावली-समुच्चय, पृ० २६)। चन्द्रकुलके भी अनेक अन्वय और गच्छ हुए। उदाहरणार्थ, उत्तराध्ययनकी शिष्यहिता नामक वृत्तिके कर्ता शान्तिसूरि चन्द्रकुलके काठकरान्वयसे उत्पन्न थारापद्र गच्छके थे। उत्तराध्ययनकी सुखबोधा टीकाके कर्ता देवेन्द्र गणी भी चन्द्रकुलके थे। किंतु ये सब श्वेताम्बर परम्पराके भेदप्रभेद हैं जिनकी मान्यता दिगम्बर परम्परामें नहीं पायी जाती। और कनकामर उनके स्पष्ट कथनानुसार ही दिगम्बर मुनि थे। अनुमानतः कनकामरका चन्द्रर्षि गोत्र वही देशीगणकी 'चन्द्रकराचार्याम्नाय' है जिसका उल्लेख बहुरिबंद (तहसील सीहोरा, जिला जबलपुर, मध्यप्रदेश) के शान्तिनाथ तीर्थंकरके पादपीठपर उत्कीर्ण लेखमें आया है। उस मूर्तिके प्रतिष्ठा-चार्य श्रीमत् सुभद्र इसी आम्नायके कहे गये हैं। इस लेखमें गयाकर्णदेवका उल्लेख है जो निश्चयतः कलचुरि नरेश कर्णके पिताका ही नाम है। (कापस इंस्क्रि० इण्डी० भाग ४, १९५५, पृ० ३१० ११) इस सम्बन्धमें यह भी ध्यान देने योग्य है कि स्वयं चन्देलनरेशोंने अपनेको चन्द्रात्रेय ऋषिवंशीय कहा है। उदाहरणार्थ यशोवर्मन्‌के खजुराहो शिलालेखमें कहा गया है,

> तस्माद् विश्वसृज पुराणपुरषाद्दाम्नायधाम्न कवे-
> र्येऽभूवन्मुनय पवित्रचरिता पूर्वे मरीच्यादय ।
> तत्रात्रि सुषुवे निरन्तरतपस्तीव्रप्रभाव सुत
> चन्द्रात्रेयमकृत्रिमोज्ज्वलतरज्ञानप्रदीप मुनिम् ॥
> अस्ति स्वस्तिविधायिन स जगता निश्शेषविद्याविद-
> स्तस्यात्मोपनताखिलश्रुतिनिधेर्वंश प्रशसास्पदम् ।

यही बात यशोवर्मन्‌के पुत्र धङ्गके खजुराहो शिलालेखमें भी कही गयी है। उस लेखमें एक और बात ध्यान देने योग्य है। आदिके तृतीय श्लोकमें ही शिवके उस परिहासकी मगल-कामना की गयी है जिसमें शिव-पार्वती सवाद-द्वारा शिव और दिगम्बर क्षपणकमें एकत्वका सकेत किया गया है। श्लोक है,

> कस्त्व द्वारि दिगम्बर क्षपणक कस्मादकस्मादहो
> बाले शूलधरो धिगायुधविधि वर्हास्त्वदाही ननु ।
> मा जानीहि महेश्वर स्फुटमिद वस्त्रेऽप्यभावादिति
> प्रेयस्या परिहासतो विहसित शभो शुभायास्तु व ।

इस परिहासोक्तिके द्वारा समस्त चन्देलवशी नरेशो और विशेषत धङ्गके उस उदार धार्मिक दृष्टिकोणको स्पष्ट किया गया प्रतीत होता है जिसके कारण ही खजुराहोके जैन, शैव और वैष्णव मदिरोका प्राय एक सा वैभवपूर्ण निर्माण कराया जा सका। इसी सम्बन्धमें खजुराहोके पार्श्वनाथ मदिरके द्वारका वह लेख भी उल्लेखनीय है जिसमें धङ्गराज-द्वारा सम्मानित भव्य पाहिल द्वारा मदिरको दानकी गयी सात वाटिकाओका

निर्देश है—पाहिलवाटिका, चन्द्रवाटिका, लघुचन्द्रवाटिका, शंकरवाटिका, पञ्चाइतलवाटिका, आम्रवाटिका, और धंगवाटिका। (जैं० शि० ले० संग्रह, भाग २, लेख नं० १८७, पृ० १९०)। इन वाटिकाओंमें दाताने अपने नामके अतिरिक्त अपने धर्मरक्षक नरेश, उनके विशेष इष्टदेव शिव तथा उनके चन्द्रात्रेय वंश एवं चन्द्रकराचार्याम्नायकी स्मृति चिरस्थायी बनानेका प्रयत्न किया प्रतीत होता है। आश्चर्य नहीं, जो यह चन्द्रकराचार्याम्नाय चन्देलवंशी राजकुलमें-से ही हुए किसी जैन मुनिने स्थापित की हो। स्वयं कनकामर भी इस राजवंशके रहे हों, तो आश्चर्य नहीं। चंदेलोंके क्षत्रियमाने जाने एवं कनकामर-द्वारा अपनेको ब्राह्मण कहे जानेसे उक्त बातमें कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता। चन्देल अपनेको अत्रि व चन्द्रात्रेयकी सन्तान तो मानते ही हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, चन्देलवंशी नरेश जेज्जाकके नामसे ही बुन्देलखंड जेजकभुक्ति कहलाया और यहाँके जुझौतिया ब्राह्मण आज तक भी प्रसिद्ध हैं। केवल राजवंशी होनेसे चन्देल राजपूत जातियोंमें गिने जाने लगे हैं।

ग्रंथकारकी गुरु-परम्परा

ग्रंथके प्रारंभ (१, २, १) में कविने सरस्वतीके अतिरिक्त पंडित मंगलदेवके चरणोंका स्मरण किया है। तथा अन्तिम प्रशस्ति (१०, २८, ३) में अपनेको बुध मंगलदेवका शिष्य कहा है। इससे उनके गुरुका नाम मंगलदेव स्पष्ट है। इन मंगलदेवका तथा उनके गण-गच्छ आदिका अन्य कोई परिचय ग्रंथमें नहीं पाया जाता। किंतु रत्नाकर या धर्मरत्नाकर नामका एक संस्कृत ग्रंथ मिलता है जिसमें उसके कर्ताका नाम पंडित मंगल दिया गया है। इस ग्रंथकी एक प्रति बलात्कार जैन भण्डार, कारंजामें (केटेलाग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैनुस्क्रिप्टस इन सी पी एण्ड बरार, क्रमांक ७८२९) तथा दूसरी प्रति शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुरमें है (राजस्थानके जैन शास्त्र भण्डारोंकी ग्रंथ सूची क्र० ७७८)। इस जयपुरकी प्रतिमें ग्रंथका अंतिम पुष्पिका-वाक्य है, "सं० १६८० वर्षे काष्ठासंघे नन्दतटग्रामे भट्टारक श्रीभूषणशिष्य पंडित मंगलकृत शास्त्ररत्नाकर नाम शास्त्रं सम्पूर्णं।" इसपर-से ऐसा प्रतीत होता है जैसे सं० १६८० ग्रंथकी रचनाका काल हो। किंतु यथार्थतः यह कालनिर्देश उक्त प्रतिके लेखनका ही हो सकता है, क्योंकि कारंजा शास्त्रभण्डारकी प्रतिमें उसका लेखनकाल १६६७ अंकित है। काष्ठासंघ और नन्दितट ग्रामका प्राचीनतम उल्लेख देवसेनकृत दर्शनसार (गा० ३८) में प्राप्त होता है, जहाँ विक्रमराजकी मृत्युसे अर्थात् विक्रम संवत्के ७५३ वर्षमें नन्दितट ग्राममें काष्ठासंघकी उत्पत्ति कही गयी है। यदि कनकामरके कालके समीप इस संघके श्रीभूषण और उनके शिष्य मंगलदेवका अस्तित्व सिद्ध हो तो वे ही प्रस्तुत ग्रंथकर्ताके गुरु माने जा सकते हैं। किन्तु वर्तमानमें उक्त धर्मरत्नाकरकी पुष्पिकाके अतिरिक्त अन्य कोई साधक-बाधक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। हाँ, कुछ संशय उत्पन्न करनेवाली यह बात अवश्य है कि कविने उक्त गण-गच्छका उल्लेख न करके अपनेको चन्द्रर्षि गोत्रीय कहा है।

ग्रंथका विषय

इस ग्रंथमें करकंडु (अपभ्रंश-करकंड) महाराजका चरित्र दश संधियोंमें वर्णन किया गया है। संक्षेपमें यह कथा इस प्रकार है

अंगदेशकी चम्पापुरीमें धाडीवाहन राजा राज्य करते थे। एकबार वे कुसुमपुरको गये और वहाँ पद्मावती नामकी एक युवतीको देखकर उसपर मोहित हो गये। युवतीका संरक्षक एक माली था जिससे बातचीत करने आदिसे पता लगा कि वह युवती यथार्थमें कौशाम्बीके राजा वसुपालकी पुत्री थी। जन्म-समयके अपशकुनके कारण पिताने उसे जमना नदीमें बहा दिया था। राजपुत्री जानकर धाडीवाहनने उसका पाणिग्रहण कर लिया और उसे चम्पापुरी ले आये। कुछ काल पश्चात् वह गर्भवती हुई और उसे यह दोहला उत्पन्न हुआ कि मन्द-मन्द बरसातमें, मैं नररूप धारण करके, अपने पतिके साथ, एक हाथीपर सवार होकर, नगर-

का परिभ्रमण करूँ। ऐसा ही प्रबन्ध किया गया। किन्तु दुष्ट हाथी राजा-रानीको लेकर जगलकी ओर भाग निकला। रानीने समझा बुझाकर राजाको एक वृक्षकी डाली पकडकर अपने प्राण बचानेपर राजी कर लिया और आप उस हाथीपर सवार रहकर जगलमें पहुची। वह हाथी एक जलाशयमे घुसा। उसी समय रानीने कूदकर वनेमें प्रवेश किया। उनके प्रवेशमे वह सूखा हुआ वन हरा भरा हो गया। इस खबरको सुनकर वनमाली वहाँ आया और रानीको बहिन मानकर अपने घर लिवा ले गया। कुछ दिनोंके बाद ही मालिनको पद्मावतीके रूपपर ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी और किसी बहानेसे उसने उसे अपने घरसे निकाल दिया। निराश होकर रानी श्मशान भूमिमे आयी और वही उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ।(१)

रानीके उस पुत्रको एक मातग [चाण्डाल] उठाकर ले चला। रानीके विरोध करनेपर उसने कहा कि वह यथार्थमें एक विद्याधर था। एक मुनिकी शापसे मातग हो गया। उस शापका प्रतीकार मुनिने इस प्रकारसे किया था कि जब करकडुका दन्तिपुरके श्मशानमे जन्म हो तब उस बालकको ले जाकर उसका लालन-पालन करना चाहिए। बडा होनेपर जब उसे उस नगरका राज्य मिल जावेगा तब वह मातग पुन विद्याधर हो जावेगा। उसके इस प्रकार कहनेपर तथा बालकका यथोचित रूपसे लालन-पालन करनेकी प्रतिज्ञा करनेपर रानीने अपना पुत्र उसे सौप दिया। उस मातगने बालकको अच्छी तरह रक्खा और स्वय खूब पढाया-लिखाया। उसके हाथमे कण्डू (सूखी खुजली) होनेसे उसका नाम करकडु पड गया। जब वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ तब एक दिन दन्तीपुरके राजाका परलोकवास हो गया। उसके कोई पुत्र नही था इससे राजमन्त्रियोंने यह व्यवस्था की कि एक हाथीको एक भरा घडा दिया जावे, और उससे वह जिस व्यक्ति-का अभिषेक कर दे वही राजा बना लिया जाय। इस विधानसे करकडुका भाग्य चमक उठा। किन्तु उसे मातग पुत्र जानकर मत्री और नगर-निवासी अपना राजा स्वीकार करनेमे हिचकिचाये। इसी समय उस मातगको अपनी विद्याधर-ऋद्धि प्राप्त हो गयी और उसने सबका समाधान करके करकडुको राजा बनवा दिया। (२)

कुछ समय पश्चात् ही करकडुका विवाह गिरिनगरकी राजकुमारी मदनावलीसे हो गया। एक बार उसके दरबारमे चम्पाके राजाका दूत आया जिसने उससे चम्पा नरेशका आधिपत्य स्वीकार करने-की प्रेरणा की। इससे करकडुको भारी क्रोध उत्पन्न हुआ। उसने तत्काल ही चम्पापर चढाई कर दी। घोर युद्ध हुआ, अन्तमे पद्मावतीने रणभूमिमें उपस्थित होकर पिता-पुत्रका सम्मेलन करा दिया। धाडीवाहन पुत्ररत्नको पाकर बहुत हर्षित हुआ। उसने चम्पाका राजपाट भी करकण्डुको सौंप, वैराग्य धारण कर लिया। (३)

अपने विस्तीर्ण राज्यको पूरा जमाकर करकडुने एक बार मन्त्रीसे पूछा, 'हे मत्री ! क्या कोई ऐसा राजा है जो अभी भी मुझे मस्तक न नमाता हो' ? मन्त्रीने उत्तर दिया, महाराज ! और तो सब राजे आपकी अधीनता स्वीकार करते है, परतु द्रविड देशके चोल, चेर और पाण्डय नरेश आपको नही मानते। राजाने उनके पास दूत भेजा जिसको उन्होने यह कहकर विमुख कर दिया कि हम जिन भगवान्को छोड और किसीको भी सिर नही झुका सकते। यह उत्तर पाकर करकडुने यह प्रण किया कि यदि मै इन राजाओके मस्तकपर अपना पैर न रखूँ तो सब राजपाटका त्याग कर दूँ। उसने तुरत ही उनपर चढाई कर दी। मार्गमे वह तेरापुर नगरमे पहुँचा। वहाँके राजा 'शिव' ने आकर उससे भेंट की और बताया कि वहाँसे पास ही एक पहाडीके चढावपर एक गुफा है, तथा उसी पहाडीके ऊपर एक बडी भारी वामी है जिसकी पूजा प्रति-दिन एक हाथी किया करता है। यह सुनकर करकडु शिवराजाके साथ उस पहाडीपर गया। उसने गुफामें श्री पार्श्वनाथ भगवान्का दर्शन किया और ऊपर चढकर उस वामीको भी देखा। उनके समक्ष ही हाथीने आकर और पासके ही एक तालाबसे कमल तोडकर उस वामीकी पूजा की। करकडुने यह जानकर कि अवश्य वहाँ कोई देवमूर्ति होगी, उस वामीको खुदवाया। उनका अनुमान यथार्थ निकला। वहाँ पार्श्वनाथ भगवान्की मूर्ति निकली, जिसे वे बडी भक्तिसे उसी गुफामें ले आये। इस बार करकडुने पुरानी प्रतिमाका अच्छी

तरह अवलोकन किया। सिंहासनपर उन्हें एक गाँठ-सी दिखी जो शोभाको बिगाड़ रही थी। एक पुराने शिल्पकारसे पूछनेपर उसने कहा कि जब वह गुफा बनायी गयी थी तब वहाँ एक जलवाहिनी निकल पड़ी थी। उसे रोकनेके लिए ही वह गाँठ दी गयी है। यह सुनकर करकण्डुको उस जलवाहिनीके दर्शन करनेका कौतुक उत्पन्न हुआ और उस शिल्पकारके बहुत रोकनेपर भी उन्होंने उस गाँठको तुड़वा डाला। गाँठके टूटते ही वहा एक भयकर जलप्रवाह निकल पडा जिसे रोकना असम्भव हो गया। सारी गुफा जलमग्न हो गयी। यह देखकर करकडुको अपने कियेपर पश्चात्ताप होने लगा। निदान एक विद्याधरने आकर उनका सम्बोधन किया, उस प्रवाहको रोकनेका वचन दिया तथा उस गुफाके बननेका इतिहास भी कह सुनाया। (४)

विद्याधरने कहा कि एक समय दक्षिण विजयार्धके रथनूपुर नगरमें नील और महानील नामके दो विद्याधर भाई राज्य करते थे। किन्तु शत्रुसे परास्त होकर वे वहासे भाग निकले और तेरापुरमें आकर रहे। धीरे-धीरे उन्होने वहाँ राज्य स्थापित कर लिया। एक मुनिके उपदेशसे उन्होंने जैनधर्म ग्रहण कर लिया और वह गुफा-मदिर बनवाया। इसी समय दूसरे दो विद्याधर भ्राता लकाकी तरफ जा रहे थे। मलयदेशके पूदी पर्वतपर उन्होने एक रावणके वशज-द्वारा बनवाये हुए जिनमदिरमें एक सुन्दर जिनमूर्ति देखी। उन्होने विचार किया कि ऐसी मूर्ति हम अपने यहा बनवावेंगे, इस हेतु वे उस मूर्तिको उठा कर ले चले। तेरापुर पहुचनेपर वे उस मूर्तिको पहाडीपर रखकर जिनमदिरकी वन्दनाको गये। लौटकर आनेपर जब वे उस मूर्तिको उठाने लगे तब वह नही उठी। निदान एक मुनिके उपदेशसे उन्होंने उसे वहीं छोडा और वैराग्य धारण कर लिया। इनमें-से एक भाई तो शुद्ध तपस्या करके स्वर्गको गया और दूसरा मायाचारके कारण मरकर हाथी हुआ। स्वर्गवासी भाई अवधिज्ञानसे अपने भाईकी दुर्गतिको जान कर वहा आया और उसे जातिस्मरण कराया जिसके कारण वह उस वामीकी मूर्तिको पूजने लगा। ये समाचार सुनकर विद्याधर-ने करकडुको एक और गुफा बनवानेकी सलाह दी। करकडुने वहा दो गुफायें और बनवायी। इसके पश्चात् एक बडे दु खकी घटना हुई। एक विद्याधर, हाथीका रूप धरकर, आया और करकडुको भुलाकर मदनावली-को हर ले गया। करकडु शोकमें बहुत ही विह्वल हुए, किन्तु एक पूर्व जन्मके सयोगी विद्याधरके समझाने, तथा पुन सयोगका आश्वासन देने व नरवाहन दत्तका आख्यान सुनानेपर समाधान हुए और आगे बढे। (५-६)

करकडु सिंहल द्वीप पहुचे और वहाकी राजपुत्री रतिवेगाका पाणिग्रहण किया। उसके साथ जब वे जलमार्गसे लौट रहे थे तब एक भीम-काय मच्छने उनकी नौकापर धावा किया। उसे मारनेके लिए वह शस्त्र लेकर और मल्ल-गाठ बाधकर समुद्रमें कूद पडा। मच्छको तो उसने मार डाला, पर वह लौटकर नावपर न आ सका। उसे एक विद्याधरपुत्री हर ले गयी। रतिवेगाके शोकका पारावार न रहा। मत्री झटपट बेडेको किनारेपर लाया। रतिवेगाने पूजापाठ प्रारम्भ किया जिससे पद्मावती देवीने प्रकट होकर उसे आश्वासन दिया। (७)

देवीने अरिदमनका आख्यान सुनाया। रतिवेगाके दिन वहींपर धर्म-कर्ममें बीतने लगे। उधर करकडु-को वह विद्याधरी अपने घर ले गयी और अपने पिताकी आज्ञा लेकर उसने उन्हे अपना पति बना लिया। वहाकी ऋद्धिका उपभोग करके अपनी नवल वधूसहित करकडु पुन रतिवेगासे आ मिले। अब उन्होने चोल, चेर और पाण्डय नरेशोकी सम्मिलित सेनाका मुकाबला किया और उन्हें हराकर अपना प्रण पूरा किया। अपना पैर उनके मस्तकपर रखते समय राजाको उनके मुकुटोपर जिन प्रतिमाके दर्शन हुए। यह देखकर राजाको भारी पश्चात्ताप हुआ। उन्होने उन्हें पुन राज्य देना चाहा, पर वे स्वाभिमानी द्रविडाधिपति यह कहकर तपस्याको चले गये कि अब हमारे पुत्र-पौत्रादि ही आपकी सेवा करेंगे। वहासे लौटते हुए करकडु पुन तेरापुर आये। यहा उसी कुटिल विद्याधरने पश्चात्तापपूर्वक मदनावलीको लाकर सौप दी। वे फिर चम्पा-नगरीको लौट आये और वहा राज्य-सुख भोगने लगे। (८)

एक दिन वनमालीने आकर खबर दी कि नगरके उपवनमें शीलगुप्त मुनिराजका शुभागमन हुआ

का परिभ्रमण करूँ। ऐसा ही प्रवन्ध किया गया। किन्तु दुष्ट हाथी राजा-रानीको लेकर जगलकी ओर भाग निकला। रानीने समझा-बुझाकर राजाको एक वृक्षकी डाली पकडकर अपने प्राण बचानेपर राजी कर लिया और आप उस हाथीपर सवार रहकर जगलमें पहुँची। वह हाथी एक जलाशयमे घुमा। उसी समय रानीने कूदकर वनेमे प्रवेश किया। उनके प्रवेशसे वह सूखा हुआ वन हरा भरा हो गया। इस खबरको सुनकर वनमाली वहाँ आया और रानीको वहिन मानकर अपने घर लिवा ले गया। कुछ दिनोंके बाद ही मालिनको पद्मावतीके रूपपर ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी और किसी वहानेसे उसने उसे अपने घरसे निकाल दिया। निराश होकर रानी श्मशान भूमिमें आयी और वही उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। (१)

रानीके उस पुत्रको एक मातग [चाण्डाल] उठाकर ले चला। रानीके विरोध करनेपर उसने कहा कि वह यथार्थमे एक विद्याधर था। एक मुनिकी शापसे मातग हो गया। उस शापका प्रतीकार मुनिने इस प्रकारसे किया था कि जब करकडुका दन्तिपुरके श्मशानमे जन्म हो तब उसे वालकको ले जाकर उसका लालन-पालन करना चाहिए। बडा होनेपर जब उसे उस नगरका राज्य मिल जावेगा तब वह मातग पुन विद्याधर हो जावेगा। उसके इस प्रकार कहनेपर तथा वालकका यथोचित रूपमे लालन-पालन करनेकी प्रतिज्ञा करनेपर रानीने अपना पुत्र उसे सौंप दिया। उस मातगने वालकको अच्छी तरह रक्खा और स्वय खूब पढाया-लिखाया। उसके हाथमे कण्डू (सूखी खुजली) होनेसे उसका नाम करकडु पड गया। जब वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ तब एक दिन दन्तीपुरके राजाका परलोकवास हो गया। उसके कोई पुत्र नही था इससे राजमन्त्रियोंने यह व्यवस्था की कि एक हाथीको एक भरा घडा दिया जावे, और उससे वह जिस व्यक्तिका अभिषेक कर दे वही राजा वना लिया जाय। इस विधानमे करकडुका भाग्य चमक उठा। किन्तु उसे मातग पुत्र जानकर मन्त्री और नगर-निवासी अपना राजा स्वीकार करनेमे हिचकिचाये। इसी समय उस मातगको अपनी विद्याधर-ऋद्धि प्राप्त हो गयी और उसने सबका समाधान करके करकडुको राजा वनवा दिया। (२)

कुछ समय पश्चात् ही करकडुका विवाह गिरिनगरकी राजकुमारी मदनावलीसे हो गया। एक बार उसके दरवारमे चम्पाके राजाका दूत आया जिसने उससे चम्पा नरेशका आधिपत्य स्वीकार करनेकी प्रेरणा की। इससे करकडुको भारी क्रोध उत्पन्न हुआ। उसने तत्काल ही चम्पापर चढाई कर दी। घोर युद्ध हुआ, अन्तमे पद्मावतीने रणभूमिमे उपस्थित होकर पिता-पुत्रका सम्मेलन करा दिया। धाडीवाहन पुत्ररत्नको पाकर वहुत हर्पित हुआ। उसने चम्पाका राजपाट भी करकण्डुको सौंप, वैराग्य धारण कर लिया। (३)

अपने विस्तीर्ण राज्यको पूरा जमाकर करकडुने एक वार मन्त्रीसे पूछा, 'हे मन्त्री! क्या कोई ऐसा राजा है जो अभी भी मुझे मस्तक न नमाता हो'? मन्त्रीने उत्तर दिया, महाराज! और तो सब राजे आपकी अधीनता स्वीकार करते है, परतु द्रविड देशके चोल, चेर और पाण्डय नरेश आपको नही मानते। राजाने उनके पास दूत भेजा जिसको उन्होने यह कहकर विमुख कर दिया कि हम जिन भगवान्को छोड और किसीको भी सिर नही झुका सकते। यह उत्तर पाकर करकडुने यह प्रण किया कि यदि मै इन राजाओंके मस्तकपर अपना पैर न रखूँ तो सब राजपाटका त्याग कर दूँ। उसने तुरत ही उनपर चढाई कर दी। मार्गमे वह तेरापुर नगरमे पहुँचा। वहाँके राजा 'शिव' ने आकर उससे भेंट की और बताया कि वहाँसे पास ही एक पहाडीके चढावपर एक गुफा है, तथा उसी पहाडीके ऊपर एक बडी भारी वामी है जिसकी पूजा प्रतिदिन एक हाथी किया करता है। यह सुनकर करकडु शिवराजाके साथ उस पहाडीपर गया। उसने गुफामें श्री पार्श्वनाथ भगवान्का दर्शन किया और ऊपर चढकर उस वामीको भी देखा। उनके समक्ष ही हाथीने आकर और पासके ही एक तालावसे कमल तोडकर उस वामीकी पूजा की। करकडुने यह जानकर कि अवश्य वहाँ कोई देवमूर्ति होगी, उस वामीको खुदवाया। उनका अनुमान यथार्थ निकला। वहाँ पार्श्वनाथ भगवान्की मूर्ति निकली, जिसे वे वडी भक्तिसे उसी गुफामें ले आये। इस वार करकडुने पुरानी प्रतिमाका अच्छी

तरह अवलोकन किया। सिंहासनपर उन्हे एक गाँठ-सी दिखी जो शोभाको बिगाड़ रही थी। एक पुराने शिल्पकारसे पूछनेपर उसने कहा कि जब वह गुफा बनायी गयी थी तब वहाँ एक जलवाहिनी निकल पड़ी थी। उसे रोकनेके लिए ही वह गाँठ दी गयी है। यह सुनकर करकडुको उस जलवाहिनीके देखनेका कौतुक उत्पन्न हुआ और उस शिल्पकारके बहुत रोकनेपर भी उन्होंने उस गाँठको तुड़वा डाला। गाँठके टूटते ही वहा एक भयकर जलप्रवाह निकल पडा जिसे रोकना असम्भव हो गया। सारी गुफा जलसे भर गयी। यह देखकर करकडुको अपने कियेपर पश्चात्ताप होने लगा। निदान एक विद्याधरने आकर उनका सम्बोधन किया, उस प्रवाहको रोकनेका वचन दिया तथा उस गुफाके बननेका इतिहास भी कह सुनाया। (८)

विद्याधरने कहा कि एक समय दक्षिण विजयार्धके रथनूपुर नगरमें नील और महानील नामके दो विद्याधर भाई राज्य करते थे। किन्तु शत्रुसे परास्त होकर वे वहाँसे भाग निकले और तेरापुरमें आकर रहे। धीरे-धीरे उन्होंने वहाँ राज्य स्थापित कर लिया। एक मुनिके उपदेशसे उन्होंने जैनधर्म ग्रहण कर लिया और वह गुफा-मदिर बनवाया। इसी समय दूसरे दो विद्याधर भ्राता लकाकी तरफ जा रहे थे। मलयदेशके पूदी पर्वतपर उन्होंने एक रावणके वशज-द्वारा बनवाये हुए जिनमदिरमें एक सुन्दर जिनमूर्ति देखी। उन्होंने विचार किया कि ऐसी मूर्ति हम अपने यहा बनवावेंगे, इस हेतु वे उस मूर्तिको उठा कर ले चले। तेरापुर पहुचनेपर वे उस मूर्तिको पहाडीपर रखकर जिनमदिरकी वन्दनाको गये। लौटकर आनेपर जब वे उस मूर्तिको उठाने लगे तब वह नही उठी। निदान एक मुनिके उपदेशसे उन्होंने उसे वही छोड़ा और वैराग्य धारण कर लिया। इनमें-से एक भाई तो शुद्ध तपस्या करके स्वर्गको गया और दूसरा मायाचारीके कारण मरकर हाथी हुआ। स्वर्गवासी भाई अवधिज्ञानसे अपने भाईकी दुर्गतिको जान कर वहा आया और उसे जातिस्मरण कराया जिसके कारण वह उस वामीकी मूर्तिको पूजने लगा। ये समाचार सुनकर विद्याधर-ने करकडुको एक और गुफा बनवानेकी सलाह दी। करकडुने वहा दो गुफायें और बनवायी। इसके पश्चात् एक बडे दु खकी घटना हुई। एक विद्याधर, हाथीका रूप धरकर, आया और करकडुको भुलाकर मदनावली-को हर ले गया। करकडु शोकमें बहुत ही विह्वल हुए, किन्तु एक पूर्व जन्मके सयोगी विद्याधरके समझाने, तथा पुन सयोगका आश्वासन देने व नरवाहन दत्तका आख्यान सुनानेपर समाधान हुए और आगे बढे। (५-६)

करकडु सिंहल द्वीप पहुचे और वहाकी राजपुत्री रतिवेगाका पाणिग्रहण किया। उसके साथ जब वे जलमार्गसे लौट रहे थे तब एक भीम-काय मच्छने उनकी नौकापर धावा किया। उसे मारनेके लिए वह शस्त्र लेकर और मल्ल-गाठ बाधकर समुद्रमें कूद पडा। मच्छको तो उसने मार डाला, पर वह लौटकर नावपर न आ सका। उसे एक विद्याधरपुत्री हर ले गयी। रतिवेगाके शोकका पारावार न रहा। मत्री झटपट बेडेको क़िनारेपर लाया। रतिवेगाने पूजापाठ प्रारम्भ किया जिससे पद्मावती देवीने प्रकट होकर उसे आश्वासन दिया। (७)

देवीने अरिदमनका आख्यान सुनाया। रतिवेगाके दिन वहीपर धर्म कर्ममे बीतने लगे। उधर करकडु-को वह विद्याधरी अपने घर ले गयी और अपने पिताकी आज्ञा लेकर उसने उन्हे अपना पति बना लिया। वहाकी ऋद्धिका उपभोग करके अपनी नवल वधूसहित करकडु पुन रतिवेगासे आ मिले। अब उन्होंने चोल, चेर और पाण्डच नरेशोकी सम्मिलित सेनाका मुकाबला किया और उन्हे हराकर अपना प्रण पूरा किया। अपना पैर उनके मस्तकपर रखते समय राजाको उनके मुकुटोपर जिन प्रतिमाके दर्शन हुए। यह देखकर राजाको भारी पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने उन्हें पुन राज्य देना चाहा, पर वे स्वाभिमानी द्रविडाधिपति यह कहकर तपस्याको चले गये कि अब हमारे पुत्र-पौत्रादि ही आपकी सेवा करेंगे। वहासे लौटते हुए करकडु पुन तेरापुर आये। यहा उसी कुटिल विद्याधरने पश्चात्तापपूर्वक मदनावलीको लाकर सौंप दी। वे फिर चम्पा-नगरीको लौट आये और वहा राज्य-सुख भोगने लगे। (८)

एक दिन वनमालीने आकर खबर दी कि नगरके उपवनमे शीलगुप्त मुनिराजका शुभागमन हुआ

है। राजाने नगरमें भेरी पिटवायी और भक्तिभावसहित, पुरजनोके साथ, दर्शनको प्रस्थान किया। मार्गमे उन्होने एक पुत्रशोकसे व्याकुल, हाहाकारमे मग्न अबलाको देखा जिससे उनके चित्तमे ससारकी अनित्यता, जीवनकी असारता आदि भावनाएँ उठने लगी। मुनिके पास पहुँचकर उन्होने धर्मोपदेश श्रवण किया जिससे उनके चित्तमे वैराग्य उत्पन्न होने लगा। (९) करकडुने फिर मुनिराजसे तीन प्रश्न किये, उनके सुदर शरीर होनेपर भी उनके हाथमे कण्डू क्यो हुई, उनके माता पितामे अतिस्नेह होनेपर भी उनका वियोग क्यो हुआ, तथा उनकी प्रिया मदनावलीको उस खेचरने क्यो हरा ? मुनिराजने इन प्रश्नोके उत्तर इस प्रकार दिये पूर्वजन्ममें करकडु एक सेठके यहा धनदत्त नामक ग्वाल था। एक दिन यह ग्वाल भैसे चराने गया था। उसे एक सरोवरमे बडा सुदर कमल दिखा, जिसे उसने तोड लिया। तब एक देवने आकर उससे कहा कि तूने यह बडे साहसका काम कर डाला। अब तेरी खैर इसमें है कि तू इसे जो त्रिभुवनमें बडा हो उसे चढा देना, नही तो मै तुझे मार डालूगा। ग्वालने विचारा कि मेरा स्वामी ही सब ससारमें बडा है, उसकी अच्छे-अच्छे मनुष्य सेवा करते है। इसमे उसे ही यह पुष्प चढाना चाहिए। यह विचारकर वह सेठके सम्मुख उपस्थित हुआ और अपना मन्तव्य प्रकट किया। सेठने कहा निश्चयत मुझसे बडा राजा है, इसलिए तूं यह फूल राजाको चढा। जब राजाके समीप वह उपस्थित हुआ तब राजाने मुनिराजको अपनेसे बडा बताकर उसे उनके पास भेजा और मुनिराजने जिनेन्द्र भगवान्‌के। अन्तत उसने उस फूलसे भगवान्‌की पूजा की जिसके फलस्वरूप उसे करकडुका उत्तम स्वरूप और अतुल वैभव प्राप्त हुआ, और क्योकि उसने कीचडमे लिपटे हुए हाथमे वह कमल चढाया, इससे उसके हाथमे कण्डू हुई।

दूसरे प्रश्नके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि पूर्व जन्ममे पद्मावती श्रावस्ती नगरके एक सेठकी स्त्री थी। उसने एक ब्राह्मण युवकके साथ दुराचार किया जिससे उसके पतिने विरक्त होकर तपस्या की और वह मरकर चम्पाका धाडीवाहन राजा हुआ। वह ब्राह्मण मरकर हाथी हुआ। और सेठानी मरकर पुन स्त्री हुई, उसने पतिवियोगका दुख भोगा, किन्तु अपनी एक पुत्रीके प्रयत्नसे अन्तमे धर्मध्यानसे मरकर वह कौशाम्बीके वसुपाल राजाकी पुत्री हुई, अशुभ जन्मके कारण जमनामे बहायी गयी, पूर्वकर्मानुबधसे धाडीवाहन द्वारा ब्याही गयी, उस हाथी-द्वारा हरण की गयी और अन्तत करकडुकी जननी हुई।

तीसरे प्रश्नका उत्तर मुनिराजने इस प्रकार दिया कि पूर्व जन्ममें करकडुके पास एक सुआ था जिसे वे एक पिंजडेमे बडे प्यारसे रखते थे। एक दिन उस सुआपर एक सर्पने धावा किया जिससे करकडुने उसकी रक्षा की और उसे नवकार मन्त्र दिया। उस सर्पको भी मरते समय नवकार मन्त्रका सुयोग मिल गया जिसके प्रभावसे वह एक विद्याधर हुआ और पूर्व वैरानुबन्धके कारण उसने मदनावलीका हरण किया।

यह वृत्तान्त सुनकर करकडुका वैराग्य और भी बढ गया और वे अपने पुत्र वसुपालको राज्य देकर मुनि हो गये। उनकी माता पद्मावती भी अर्जिका हो गयी और उनकी रानियोने भी उन्हीका अनुकरण किया। करकडुने घोर तपस्या करके केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्त किया। (१०)

करकडु कथाकी प्राचीन परम्परा

बौद्धसाहित्यके कुम्भकार जातक (क्र० ४०८) मे करडु राजाकी कथा इस प्रकार है। जब बनारसमें ब्रह्मदत्तका राज्य था तब एक बार बोधिसत्त्वने वही कुम्भारके घरमें जन्म लिया। उसी समय कलिंग राष्ट्रके दन्तिपुर नगरके राजा करण्डु बडे परिवारसहित उद्यानको गये। वहा मधुर फलोसे भरे हुए आम्र वृक्षको देखकर उन्होने हाथीपर बैठे-बैठे ही एक आम्रगुच्छको तोडा और उद्यानकी एक शिलापर बैठकर कुछ फल अपने विशेष परिचारकोको दिये और कुछ स्वय खाये। इसके पश्चात् अमात्यो और गृहस्थोने उस वृक्षके समस्त कच्चे पक्के फल तोडकर खा लिये। सायकाल लौटते

समय राजाने उस आम्रवृक्षको सर्वथा शोभाहीन देखा, तथा दूसरे एक फलहीन वृक्षको जैसाका तैसा हरा-भरा देखा। राजाने विचार किया गृहस्थ धर्म उस फलित वृक्षके समान है, जिसकी दुर्गति होती है, किन्तु प्रव्रज्या उस फलहीन वृक्षके समान है, जिसे कहींसे किसी अनिष्टका भय नहीं। मैं भी इसीके सदृश बनूँ। ऐसा विचारकर उन्होंने अपना राज-पाट व गृहमार्ग त्याग दिया और श्रमण वेष धारण कर व प्रत्येकबुद्ध पद प्राप्त कर उत्तर हिमवन्तकी नन्दमूल गुफाको चले गये। जातकमें करण्डूके पाठान्तर करण्डको, करकण्ड व करकण्डको (करकडको) भी पाये जाते हैं। (देखिए परिशिष्ट १)

जातकमें कलिंगके करण्डूरायके अतिरिक्त गन्धारके नग्गजी, विदेहके निमिराज और पाञ्चालके दुम्मुखके भी कथानक हैं, और अन्तमें यह गाथा कही गयी है,

"करण्डु नाम कलिंगान गधारान च नग्गजी।
निमिराजा विदेहाना पंचालान च दुम्मुखो॥
एते पट्ठानि हित्वान पब्बजिंसु अकिंचना।"

उक्त जातकका प्रस्तुत ग्रन्थकी कथासे इतना ही साम्य है कि कलिंग देशके राजा करकण्डू व करण्डू नाम प्राय समान है और राज्यसे विरक्त होकर प्रव्रज्या धारण करना भी दोनोंमें मेल खाता है। किन्तु कथाकी अन्य बातोंमें व प्रव्रज्याके निमित्तमें कोई साम्य नहीं। जातककी कथा अति संक्षिप्त है।

जैनपरम्परामें बौद्ध जातककी पूर्वोक्त गाथाका प्राचीनतम रूपान्तर उत्तराध्ययन सूत्रके सजइज्ज नामक अठारहवें अध्ययनमें इस प्रकार पाया जाता है,

"करकडू कलिंगेसु पंचालेसु य दुम्मुहो।
नमी राया विदेहेसु गधारेसु य नग्गई॥
एए नरिंदवसभा निक्खंता जिणसासणे।
पुत्ते रज्जे ठवेऊण सामण्णे पज्जुवट्ठिया॥४६-४७॥"

अर्थात् कलिंग देशमें करकडु राजा हुआ, पंचाल देशमें दुर्मुख, विदेहमें नमि और गन्धारमें नग्गई। ये श्रेष्ठ नरेन्द्र अपने-अपने पुत्रोंको राजसिंहासनपर स्थापित करके जैनधर्मानुसार निष्क्रमण कर श्रमण हुए।

करकंडुकी कथा उत्तराध्ययनके टीकाकार देवेन्द्र गणीने अपनी सुखबोधा टीकामें इस प्रकार कही है। चम्पा नगरीमें दधिवाहन राजा हुए। चेटक राजाकी पुत्री पद्मावती उनकी रानी थी। उसे दोहला हुआ कि मैं राजाके वेषमें हाथीपर बैठकर बाग-बगीचोंमें विहार करूँ और स्वयं राजा मेरे ऊपर छत्र धारण करें। राजाने ऐसा ही किया। वर्षाकालका प्रारम्भ था। शीतल सौंधी मिट्टीकी गन्ध पाकर हाथीको वनका स्मरण हो आया और वह भाग निकला। परिचारक उसका पीछा न कर सके। अटवीमें प्रविष्ट होनेपर आगे एक वटवृक्षको देख राजाने रानीसे कहा कि जब हाथी वटके नीचेसे निकले तब वृक्षकी शाखा पकड़कर रह जाना। कुशल राजाने वैसा ही किया, किन्तु बेचारी रानीसे वह न बन सका। राजा उदासमन किंकर्तव्यविमूढ़ हुआ चम्पा नगरीमें लौट आया। उधर निर्जन वनमें आगे बढ़कर हाथी एक तालाबमें प्रविष्ट हो क्रीडा करने लगा। तब रानी धीरेसे उतरकर तालाबसे निकल आयी। चारों ओर वन, और उसे दिशाओंका भी ज्ञान नहीं। वह रोने लगी और फिर अपनेको सम्हालकर धर्मचिन्तन करने लगी। वह एक दिशामें चल पड़ी। दूर जाकर उसे एक तपस्वी दिखाई दिया। वह चेटक राजाका कोई निजी पुरुष था। उसने रानीको धैर्य बँधाया, वनफलोंका आहार कराया और दन्तपुरके समीप तक पहुँचा दिया। नगरमें जाकर उसने साध्वियोंके आश्रममें प्रव्रज्या ग्रहण कर ली, उसने उन्हें अपने गर्भकी बात न बतलायी। गुप्त रूपसे उसने प्रसव किया और शिशुको कम्बलमें लपेटकर नामकी मुद्रा लगाकर श्मशानमें डाल दिया। श्मशानके रक्षकने उसे पाकर अपनी भार्याको दे दिया और पुत्रका नाम अपकीर्ण (प्रक्षिप्त) रखा। उसकी माताने उस चाण्डालीसे मैत्री कर ली। जिन आर्यिकाओंको गर्भकी बात ज्ञात थी उनके पूछनेपर उसने कह दिया प्रसव मृतक हुआ

था। इससे फेंक दिया। उधर बालक बडा हुआ। वह खेलमें अन्य बालकोंसे कहता मैं तुम्हारा राजा हूँ, मुझे कर दो। उसे सूखी खुजली हो गयी। वह बालसखाओंसे कहता मुझे खुजलाओ। इससे उसका नाम करकडु पड गया। उसे अपनी उस आर्यिका मातासे स्नेह था। वह भी मोदक व अन्य जो भी पदार्थ भिक्षामें मिल जायें लाकर उसे खिलाती थी।

बालक और बढा। वह श्मशान रखाने लगा। एक बार वहाँ दो मुनि आये। वहाँ झाडीमें एक बाँसके दण्डको देखकर दण्डलक्षणके ज्ञायक मुनिने कहा कि जब यह बाँस चार अगुल और बढ जाये तब जो कोई इसे ले लेगा वह राजा होगा। यह बात उस मातग बालकने सुन ली और एक द्विजने भी। द्विजने चार अगुल भूमिके नीचे खोदकर उस बाँसको काट लिया। किन्तु उस बालकने उससे वह छीन लिया। द्विजने न्यायालयमें बात उठायी। बालकने वहाँ कहा—बाँस मेरे श्मशानका है इसलिए मेरा है। न्यायाधीशके पूछनेपर उसने यह भी कहा कि मैं इस बाँसके प्रभावसे राजा बनूँगा। न्यायाधीशने हँसकर निर्णय दिया कि अच्छा जब तुम राजा बन जाओ तब इस ब्राह्मणको एक गाँव दे देना। बालकने स्वीकार किया। द्विजने अन्य द्विजोंकी सहायतासे उसे मारकर बाँस छीननेका विचार किया। यह बात सुनकर मातग अपनी स्त्री और उस बालकको लेकर कचनपुर[1] भाग गया। वहाँका राजा बिना पुत्रके मर गया। अश्व छोडा गया जो नगरके बाहर सोते हुए करकडुके पास आकर उसकी प्रदक्षिणा करके वही खडा हो गया। नागरिकोंने हर्ष मनाया और आनन्दके वादित्र बजाये। करकडु जम्भाई लेता हुआ उठा, और विश्वस्त होकर अश्वपर आरूढ हो नगरमें प्रविष्ट हुआ। किन्तु उसे मातग कहकर द्विजोंने नगर प्रवेश नही करने दिया। तब करकडुने वह दण्डरत्न हाथमें लिया। वह जलने लगा जिससे वे भयभीत हो गये। तब करकडुने वाटधानक मातगोंको द्विज बना दिया। लोगोंने कहा—'दधिवाहनके पुत्र करकडुने वाटधानक निवासी चाण्डालोंको ब्राह्मण बना दिया। उन्होंने उसका गृहनाम अपकीर्णक छोडकर चेटकों-द्वारा दिया नाम करकडु प्रतिष्ठित किया।'

अब उसके पास वह ब्राह्मण आया और उसने माँग की मुझे एक ग्राम दो। करकडुने कहा जो तुझे अच्छा लगे ले ले। उसने कहा मेरा घर चम्पामें है, अत उसी प्रदेशमें दीजिए। तब करकडुने दधिवाहनके नाम एक लेख दिया कि इस ब्राह्मणको एक ग्राम दे दीजिए। उसके बदलेमें मैं आप जो ग्राम या नगर चाहें दूँगा। इसपर दधिवाहन रुष्ट हुआ—यह दुष्ट मातग अपनेको नही जानता। दूतने लौटकर यह बात कही। करकडुको रोष आया। उसने जाकर चम्पाको घेर लिया। युद्ध होने लगा। उसकी साध्वी माताने यह बात सुनी। गणिनीसे पूछकर वह चम्पा आयी और सब वृत्तान्त सुनाकर पिता-पुत्रका मेल कराया। दधिवाहन दोनो राज्य उसे देकर प्रव्रजित हो गये।

करकडु श्रेष्ठ शासक हुआ। वह बडा गोकुलप्रिय था और उसके अनेक गोकुल थे। एक गोवत्स उसे बडा प्रिय लगा। आदेश दिया इसकी माँको दुहा न जाये तथा दूसरी गायोंका भी दूध इसे पिलाया जाये। गोपोंने वैसा ही किया। वह बडा प्रचण्ड साँड हुआ। राजाने देखा फिर कुछ काल पश्चात् राजाने आकर देखा कि वह महाकाय वृषभ अतिजीर्ण हो गया है जिसे पडुए धक्के लगाते हैं। यह देख राजाको विषाद हुआ। वह चिन्तन करने लगा—ससारमें सब अनित्य और अस्थिर है। इष्टजनसगम भी चिरस्थायी नही। यह चिन्तन करता हुआ करकडु प्रत्येकबुद्ध हो गया। उसने पचमुष्टि केशलोच किया और देवता-द्वारा दिये गये वेषसे लोकमें विहार करने लगा। कहावत चल पडी—

श्रेष्ठ, सुजात, सुन्दर सींगोंवाले वृषभको गोकुलमें देख समृद्धि और हानिका विचार कर कलिंगके राजाने धर्मके मर्मको जान लिया।

---

१ यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि बौद्ध व जैन प्राचीन-साहित्यमें कलिंगकी राजधानी कही दन्तपुर और कही कचनपुर कही गयी है। (Dr A C. Mittal Early History of Orissa P 25 etc,)

यहाँ करकंडुकी कथाने बौद्ध जातककी अपेक्षा बहुत विस्तार किया है। जातकमें तो वर्णित है राजा करकंडुकी हाथीपर बैठकर उद्यान-यात्रा, फलित आम्रवृक्षके दर्शन और फलोंका उपभोग, अन्य पुरुषों-द्वारा वृक्षके समस्त फलोंका तोड़ डालना और उस निमित्तसे करकंडुको संसारसे विरक्ति मात्रका वर्णन है। किन्तु उत्तराध्ययन टीकामें करकंडुके माता-पिता, माताका दोहला, हाथी द्वारा उसका अपहरण, दन्तपुरकी साध्वियों-द्वारा आश्रय, श्मशानमें करकंडुका जन्म, वहाँके चाण्डाल द्वारा उसका पालन-पोषण, बाँसके दंड-सम्बन्धी मुनि-द्वारा भविष्यवाणी, द्विजसे तत्सम्बन्धी विवाद, भयसे कंचनपुर पलायन, वहाँके राजाका पुत्रहीन मरण व घोड़ेके दिव्य निमित्त-द्वारा उसका राज्यारोहण तथा वाटधानक चाण्डालोंको द्विज बनाना, ये सब बातें जातक कथासे नयी हैं। विशेष ध्यान देने योग्य वह निमित्त है जिसे पाकर करकंडु संसारसे विरक्त हुए। जातकमें आम्रवृक्षको इसका निमित्त बतलाया गया है, किन्तु यहाँ वृषभको। इस सम्बन्धमें पूर्वोक्त चारों प्रत्येकबुद्धोंके वैराग्य उत्पादक निमित्तोंकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। कुम्भकार जातकमें करकंडुका आम्रवृक्ष नग्गजिका कंकण, निमिका चील तथा दुर्मुखका वृषभ वैराग्य-निमित्त बतलाया गया है किन्तु उत्तराध्ययन टीकामें निमित्तोंका हेर-फेर पाया जाता है। यहाँ उक्त चारों राजाओंके वैराग्यनिमित्त क्रमशः वृषभ, आम्रवृक्ष, कंकण और इन्द्रध्वज बतलाये गये हैं। इनमें-से तीन निमित्त तो समान हैं किन्तु जातकका चील और उत्तराध्ययन टीकाका इन्द्रध्वज परस्पर सर्वथा भिन्न हैं। निमित्तोंके स्वरूप-वर्णनमें भी बहुत कुछ भिन्नता है। आम्रवृक्षका निमित्त तो प्रायः समान है, किन्तु जातकका कंकण जहाँ पीसनेवालीके हाथमें है, वहाँ उत्तराध्ययन टीकाका राजाका शृंगार करनेवाली रानियोंके हाथमें। जातकमें वृषभ कामुकताके कारण अन्य ईर्ष्यालु वृषभ-द्वारा मारा गया, किन्तु उ० टीकामें वह वृद्धत्वके कारण जीर्ण हुआ दिखलाया गया है। इन हेर-फेरोंसे जान पड़ता है कि उ० टीकाकी कथाएँ सीधी जातकपर आधारित नहीं हैं। ये कथाएँ सम्भवतः लोकप्रचलित थीं, और धार्मिक उपदेशोंमें उनका दृष्टान्त रूपसे उपयोग किया जाता था। अतएव देश-कालानुसार उनमें घटनाओंका व्यत्यय तथा कथाविस्तार होना स्वाभाविक था।

अब हम प्रस्तुत ग्रन्थके मूल कथानकको देखें।

प्रस्तुत कथानककी पूर्वकथाओंसे तुलना

इस कथानकमें करकंडुकी पूर्वोक्त दोनों कथाओंसे बहुत वैशिष्ट्य और विस्तार पाया जाता है। करकंडुके माता-पिताके नाम यद्यपि वे ही हैं जो उ० टीकामें, किन्तु माताके अन्य परिचयमें बड़ा भेद है। वहाँ पद्मावती चेटकराजाकी पुत्री है, जिससे दधिवाहनका सामान्य रीतिसे विवाह हुआ है, किन्तु यहाँ वह कौशाम्बी नरेशकी पुत्री है जो अपशकुनके कारण जमुनामें बहा दी गयी थी, उसे पाटलिपुत्रके मालीने पाकर पाला-पोसा था, और राजाने अकस्मात् उसके रूपपर मोहित होकर उसे विवाहा था। उसका दोहला यद्यपि दोनों स्थानोंमें समान है, तथापि राजाके वटवृक्षकी डाल पकड़कर उतर जानेकी बात नहीं रानीने ही सुझायी थी और उसमें स्वयं उतरनेकी कोई योजना नहीं थी। सरोवरमें उतरकर पहले उसके वनमें मालीसे भेंट होने और उसके घर जाकर रहने तथा मालिनके ईर्ष्यावश उसे घरसे निकाल देनेकी बात भी यहाँ नयी है। साध्वी आश्रममें जानेसे पूर्व ही श्मशानमें उसके पुत्रका जन्म हो जाता है, और मातंग उसे पालनेके लिए अपने घर रख लेता है, एवं यथासमय नाना विद्याएँ पढ़ाता है। मातंग सामान्य चाण्डाल नहीं है, वह एक विद्याधर है जो उसकी अविनयके कारण मुनिके शापसे मातंग हुआ है और करकंडुकी राज्यप्राप्तिपर उसके शापका अन्त होनेकी अवधि बाँध दी गयी है। मुनि-द्वारा लक्षण कहे गये बाँस-दण्ड यहाँ तीन हैं जिनके ध्वज, अंकुश और छत्रदण्ड बननेवाले हैं। जिस द्विजने उन्हें लेनेका प्रयत्न किया उसे यहाँ न्यायालयमें जाने व एक ग्राम पानेके निर्णयकी आवश्यकता नहीं पड़ी। उसने सीधे करकंडुसे ही राजा होनेपर उसे मन्त्री बनानेका वचन ले लिया था। इस कारण उस मातंग कुटुम्बको अपने प्राण बचाने कंचनपुर नहीं भागना पड़ा। वहाँ दन्तीपुरके पुत्रहीन राजाकी मृत्युके पश्चात् घोड़ा नहीं, किन्तु हाथीके दिव्य साधन-द्वारा उसे

था। इससे फेक दिया। उधर बालक बडा हुआ। वह खेलमे अन्य बालकोसे कहता मै तुम्हारा राजा हूँ, मुझे कर दो। उसे सूखी खुजली हो गयी। वह बालसखाओसे कहता मुझे खुजलाओ। इससे उसका नाम करकडु पड गया। उसे अपनी उस आर्यिका मातामे स्नेह था। वह भी मोदक व अन्य जो भी पदार्थ भिक्षामें मिल जाये लाकर उसे खिलाती थी।

बालक और बढा। वह श्मशान रखाने लगा। एक बार वहाँ दो मुनि आये। वहाँ झाडीमें एक बाँसके दण्डको देखकर दण्डलक्षणके ज्ञायक मुनिने कहा कि जब यह बाँस चार अगुल और बढ जाये तब जो कोई इसे ले लेगा वह राजा होगा। यह बात उस मातग बालकने सुन ली और एक द्विजने भी। द्विजने चार अगुल भूमिके नीचे खोदकर उस बाँसको काट लिया। किन्तु उस बालकने उससे वह छीन लिया। द्विजने न्यायालयमें बात उठायी। बालकने वहाँ कहा—बाँस मेरे श्मशानका है इसलिए मेरा है। न्यायाधीशके पूछनेपर उसने यह भी कहा कि मै इस बाँसके प्रभावसे राजा बनूँगा। न्यायाधीशने हँसकर निर्णय दिया कि अच्छा जब तुम राजा बन जाओ तब इस ब्राह्मणको एक गाँव दे देना। बालकने स्वीकार किया। द्विजने अन्य द्विजोकी सहायतासे उसे मारकर बाँस छीननेका विचार किया। यह बात सुनकर मातग अपनी स्त्री और उस बालकको लेकर कचनपुर[1] भाग गया। वहाँका राजा बिना पुत्रके मर गया। अश्व छोडा गया जो नगरके बाहर सोते हुए करकडुके पास आकर उसकी प्रदक्षिणा करके वही खडा हो गया। नागरिकोने हर्ष मनाया और आनन्दके वादित्र बजाये। करकडु जम्भाई लेता हुआ उठा, और विश्वस्त होकर अश्वपर आरुढ हो नगरमें प्रविष्ट हुआ। किन्तु उसे मातग कहकर द्विजोने नगर प्रवेश नही करने दिया। तब करकडुने वह दण्डरत्न हाथमें लिया। वह जलने लगा जिससे वे भयभीत हो गये। तब करकडुने वाटधानक मातगोको द्विज बना दिया। लोगोने कहा—'दधिवाहनके पुत्र करकडुने वाटधानक निवासी चाण्डालोको ब्राह्मण बना दिया। उन्होने उसका गृहनाम अवकीर्णक छोडकर चेटको द्वारा दिया नाम करकडु प्रतिष्ठित किया।'

अब उसके पास वह ब्राह्मण आया और उसने माँग की मुझे एक ग्राम दो। करकडुने कहा जो तुझे अच्छा लगे ले ले। उसने कहा मेरा घर चम्पामें है, अत उसी प्रदेशमें दीजिए। तब करकडुने दधिवाहनके नाम एक लेख दिया कि इस ब्राह्मणको एक ग्राम दे दीजिए। उसके बदलेमें मै आप जो ग्राम या नगर चाहें दूँगा। इसपर दधिवाहन रुष्ट हुआ—यह दुष्ट मातग अपनेको नहीं जानता। दूतने लौटकर यह बात कही। करकडुको रोष आया। उसने जाकर चम्पाको घेर लिया। युद्ध होने लगा। उसकी साध्वी माताने यह बात सुनी। गणिनीसे पूछकर वह चम्पा आयी और सब वृत्तान्त सुनाकर पिता-पुत्रका मेल कराया। दधिवाहन दोनो राज्य उसे देकर प्रव्रजित हो गये।

करकडु श्रेष्ठ शासक हुआ। वह बडा गोकुलप्रिय था और उसके अनेक गोकुल थे। एक गोवत्स उसे बडा प्रिय लगा। आदेश दिया इसकी माँको दुहा न जाये तथा दूसरी गायोका भी दूध इसे पिलाया जाये। गोपोने वैसा ही किया। वह बडा प्रचण्ड साँड हुआ। राजाने देखा फिर कुछ काल पश्चात् राजाने आकर देखा कि वह महाकाय वृषभ अतिजीर्ण हो गया है जिसे पड्डए धक्के लगाते है। यह देख राजाको विषाद हुआ। वह चिन्तन करने लगा—ससारमें सब अनित्य और अस्थिर है। इष्टजनसगम भी चिरस्थायी नही। यह चिन्तन करता हुआ करकडु प्रत्येकबुद्ध हो गया। उसने पचमुष्टि केशलोच किया और देवता-द्वारा दिये गये वेषसे लोकमें विहार करने लगा। कहावत चल पडी—

श्रेष्ठ, सुजात, सुन्दर सीगोवाले वृषभको गोकुलमें देख समृद्धि और हानिका विचार कर कलिंगके राजाने धर्मके मर्मको जान लिया।

---

१ यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि बौद्ध व जैन प्राचीन-साहित्यमें कलिंगकी राजधानी कही दन्तपुर और कही कचनपुर कही गयी है। (Dr A C Mittal Early History of Orissa P 25 etc,)

यहाँ करकडुकी कथाने बौद्ध जातककी अपेक्षा बहुत विस्तार लिया है। जातकमें तो कलिंगके राजा करकडुकी हाथीपर बैठकर उद्यान-यात्रा, फलित आम्रवृक्षके दर्शन और फलोंका उपभोग, अन्य पुरुषों-द्वारा वृक्षके समस्त फलोंका तोड डालना और उस निमित्तसे करकडुकी संसारसे विरक्ति मात्रका वर्णन है। किन्तु उत्तराध्ययन टीकामें करकडुके माता-पिता, माताका दोहला, हाथी द्वारा उसका अपहरण, दन्तपुरकी साध्वियो-द्वारा आश्रय, श्मशानमें करकडुका जन्म, वहाँके चाण्डाल द्वारा उसका पालन-पोषण, बाँसके दंड-सम्बन्धी मुनि-द्वारा भविष्यवाणी, द्विजसे तत्सम्बन्धी विवाद, भयसे कंचनपुर पलायन, वहाँके राजाका पुत्रहीन मरण व घोडेके दिव्य निमित्त-द्वारा उसका राज्यारोहण तथा वाटधानक चाण्डालोंको द्विज बनाना, ये सब बातें जातक कथासे नयी है। विशेष ध्यान देने योग्य वह निमित्त है जिसे पाकर करकडु संसारसे विरक्त हुए। जातकमें आम्रवृक्षको इसका निमित्त बतलाया गया है, किन्तु यहाँ वृषभको। इस सम्बन्धमें पूर्वोक्त चारों प्रत्येकबुद्धोंके वैराग्य उत्पादक निमित्तोंकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। कुम्भकार जातकमें करकडुका आम्रवृक्ष, नग्गजिका कंकण, निमिका चील तथा दुर्मुखका वृषभ वैराग्य-निमित्त बतलाया गया है किन्तु उत्तराध्ययन टीकामें निमित्तोंका हेर फेर पाया जाता है। यहाँ उक्त चारों राजाओंके वैराग्यनिमित्त क्रमशः वृषभ, आम्रवृक्ष, कंकण और इन्द्रध्वज बतलाये गये है। इनमें-से तीन निमित्त तो समान है किन्तु जातकका चील और उत्तराध्ययन टीकाका इन्द्रध्वज परस्पर सर्वथा भिन्न है। निमित्तोंके स्वरूप-वर्णनमें भी बहुत कुछ भिन्नता है। आम्रवृक्षका निमित्त तो प्रायः समान है, किन्तु जातकका कंकण जहाँ पीसनेवालीके हाथमें है, वहाँ उत्तराध्ययन टीकाका राजाका उपचार करनेवाली रानियोंके हाथमें। जातकमें वृषभ कामुकताके कारण अन्य ईर्ष्यालु वृषभ-द्वारा मारा गया, किन्तु उ० टीकामें वह वृद्धत्वके कारण जीर्ण हुआ दिखलाया गया है। इन हेर-फेरोंसे जान पडता है कि उ० टीकाकी कथाएँ सीधी जातकपर आधारित नहीं है। ये कथाएँ सम्भवतः लोकप्रचलित थी, और धार्मिक उपदेशोंमें उनका दृष्टान्त रूपसे उपयोग किया जाता था। अतएव देश-कालानुसार उनमें घटनाओंका व्यत्यय तथा कथाविस्तार होना स्वाभाविक था।

अब हम प्रस्तुत ग्रन्थके मूल कथानकको देखें।

प्रस्तुत कथानककी पूर्वकथाओंसे तुलना

इस कथानकमें करकडुकी पूर्वोक्त दोनों कथाओंसे बहुत वैशिष्ट्य और विस्तार पाया जाता है। करकडुके माता-पिताके नाम यद्यपि वे ही है जो उ० टीकामें, किन्तु माताके अन्य परिचयमें बडा भेद है। वहाँ पद्मावती चेटकराजाकी पुत्री है, जिससे दधिवाहनका सामान्य रीतिसे विवाह हुआ है, किन्तु यहाँ वह कौशाम्बी नरेशकी पुत्री है जो अपशकुनके कारण जमुनामें बहा दी गयी थी, उसे पाटलिपुत्रके मालीने पाकर पाला-पोसा था, और राजाने अकस्मात् उसके रूपपर मोहित होकर उसे विवाहा था। उसका दोहला यद्यपि दोनों स्थानोंमें समान है, तथापि राजाके वटवृक्षकी डाल पकडकर उतर जानेकी बात यहाँ रानीने ही सुझायी थी और उसमें स्वयं उतरनेकी कोई योजना नहीं थी। सरोवरमें उतरकर पहले उसके वनमें मालीसे भेंट होने और उसके घर जाकर रहने तथा मालिनके ईर्ष्यावश उसे घरसे निकाल देनेकी बात भी यहाँ नयी है। साध्वी आश्रममें जानेसे पूर्व ही श्मशानमें उसके पुत्रका जन्म हो जाता है, और मातंग उसे पालनेके लिए अपने घर रख लेता है, एवं यथासमय नाना विद्याएँ पढाता है। मातंग सामान्य चाण्डाल नहीं है, वह एक विद्याधर है जो उसकी अविनयके कारण मुनिके शापसे मातंग हुआ है और करकडुकी राज्यप्राप्तिपर उसके शापका अन्त होनेकी अवधि बाँध दी गयी है। मुनि-द्वारा लक्षण कहे गये बाँस-दण्ड यहाँ तीन है जिनके ध्वज, अंकुश और छत्रदण्ड बननेवाले है। जिस द्विजने उन्हें लेनेका प्रयत्न किया उसे यहाँ न्यायालयमें जाने व एक ग्राम पानेके निर्णयकी आवश्यकता नहीं पडी। उसने सीधे करकडुसे ही राजा होनेपर उसे मन्त्री बनानेका वचन ले लिया था। इस कारण उस मातंग कुटुम्बको अपने प्राण बचाने कंचनपुर नहीं भागना पडा। वहीं दन्तीपुरके पुत्रहीन राजाकी मृत्युके पश्चात् घोडा नहीं, किन्तु हाथीके दिव्य साधन-द्वारा उसे

राज्यकी प्राप्ति हुई। इसीसे द्विजको चम्पाके राज्यमें ग्राम दिलानेके लिए उसे चम्पानरेशको पत्र नहीं लिखना पडा। चम्पानरेशने ही दूत द्वारा उसे अधीनता स्वीकार करनेका सन्देश भेजा जिसमे कुपित होकर उसने चम्पापर चढाई की। पद्मावतीने आकर युद्ध रोका और पिता-पुत्रका मेल कराया तथा पिता पुत्रको राज्य देकर प्रव्रजित हुआ, यह दोनो कथाओंमें समान है। यह सब वर्णन पूर्व कथानकोंकी अपेक्षा विशेष विस्तार व काव्यकी रीतिसे प्रस्तुत ग्रन्थकी प्रथम तीन सन्धियोंमें ही समाप्त हो गया है। आगे करकंडुकी दक्षिण भारतकी विजय-यात्राका समस्त वृत्तान्त पूर्व कथाकारको सर्वथा अज्ञात है।

कथानकके विविध तत्त्वोकी खोज

प्रस्तुत रचनामे जो अनेक विशिष्ट वृत्तान्तोका समावेश किया गया है उनमें कुछ पूर्ववर्ती साहित्यपर आधारित प्रतीत होते है। उदाहरणार्थ, यहाँ जो पद्मावतीके यमुनामें प्रवाहित किये जाने और कुसुमपुरके माली-द्वारा पाये जानेका वृत्तान्त (१,६,७–१,७,१० तथा १०,१२,६–१०,१३,१२ में) पाया जाता है। वह घटना जिनसेनकृत हरिवंशपुराण (३३, १३-२४) से तुलनीय है जहाँ कहा गया है कि जब जरासन्धने कंससे उसकी जातिके सम्बन्धमें प्रश्न किया तब वह बोला कि मेरी माता मंजोदरी कौशाम्बीमें मदिरा बनानेका काम करती है। राजाने उसे बुलवाया। उसने बतलाया कि "हे प्रभो, मैंने यमुनाके प्रवाहमें इसे इस मंजूषाके साथ पाया था। शिशुको देखकर मुझे दया आ गयी, अत सहस्रो उपालम्भोका पात्र बनकर भी मैंने इसका पालन किया। इसकी माता तो यह कांस्य मंजूषिका है। राजाने उस मंजूषाको लेकर देखा तो उसमे नाम मुद्रिका थी जिसमें लिखा था कि यह उग्रसेन और पद्मावती-का पुत्र गर्भावस्थासे ही अति उग्र था, अत अब यह अपने ही कर्मो द्वारा रक्षित होकर जीवित रहे, यही अच्छा है (अर्थात् माता-पिताने त्याग कर उसे यमुनामें प्रवाहित कर दिया)। यह बाँचकर राजा जरा-सन्धने जान लिया कि वह उसका भानजा है, अत उसने अपनी पुत्री जीवद्यशासे उसका विवाह कर दिया।" यह घटना दोनों स्थलोंपर एक-सी है। भेद केवल यह है कि हरिवंशमें वह कंस-विषयक है, तो करकंडचरिउमे पद्मावती विषयक। एव वहाँ मंजूषिका मथुरामे बहकर कौशाम्बीमें मद्यकारिणी-द्वारा पकडी गयी, तो यहाँ वह कौशाम्बीसे प्रवाहित होकर कुसुमपुरमें माली-द्वारा प्राप्त की गयी। हरिवंशकी वह घटना वसुदेव हिंडी (पृ० ११९) मे भी वर्णित है। जन्मत अशुभ या निन्द्य शिशुका जलप्रवाह करा देनेकी परम्परा बडी प्राचीन है। महाभारत १,१०४,८ आदिमें वर्णित है कि यदुवंशी शूरकी पुत्री पृथाने कन्यावस्थामें ही सूर्यका आह्वान किया जिससे उसे गर्भ हो गया। प्रसव होनेपर उसने पुत्रको जलमें छोड दिया। उसे राधाके पति रथकारने ग्रहण कर पुत्र रूपसे पाला-पोषा। वही महाप्रतापी कर्ण हुआ।

करकंडचरिउ (१,९,११ आदि) में जो रानी पद्मावतीके दोहलेका वर्णन है उसका पूर्वरूप हमें णायाधम्मकहाओ (१,१३ आदि) में दिखाई देता है जहाँ महाराज श्रेणिककी देवी धारिणीके गर्भके तीसरे मासमें उसे वही दोहला हुआ जिससे वह क्षीण होने लगी। परिचारिकाओंने राजाको खबर दी। वे आये और दोहला पूरा करनेका उन्होंने आश्वासन दिया। राजाने वह कार्य अपने ज्येष्ठ पुत्र अभयकुमारको सौंपा और वह अपने पूर्व मित्र सौधर्मस्वर्गके एक देवकी सहायतासे अकालवृष्टि कराकर रानीकी इच्छापूर्ति करानेमें सफल हुआ। रानीने राजासहित सजधजसे हाथीपर बैठकर मन्द-मन्द जलवृष्टिके बीच राजगृह नगरका परिभ्रमण किया। यह वर्णन खूब विस्तारसे काव्यकी रीति अनुसार किया गया है।

करकंडचरिउ (२,२ १ से २,५,७ तक) में गुणनिकेत विद्याधरकी कथा है कि जब वह विजयार्द्धसे विमान-द्वारा दक्षिणकी ओर जा रहा था, तब अकस्मात् एक स्थानपर विमान रुक गया। नीचे सुव्रत मुनि ध्यानलीन थे। उन्हींको दोषी समझकर उसने उनका उपसर्ग किया। रुष्ट होकर मुनिने शाप दी कि तेरी विद्याएँ नष्ट हो जायें। तब मुनिके प्रभावको जानकर विद्याधरने उनके चरणोमें गिरकर क्षमा-याचना की। मुनिने शान्त होकर कहा कि श्मशानमें करकंडुका जन्म होनेपर तू ही उसका पालन करेगा और जब उसे

राज्यकी प्राप्ति होगी तभी तेरी विद्याएँ तुझे पुन प्राप्त हो जायेंगी। इस घटनाकी तुलना सोमदेवकृत यशस्तिलक चम्पू (५वाँ आश्वास) के उस कथानकसे की जा सकती है जहाँ कहा गया है कि जब मन्मथमथन नामक मुनि विजयार्द्ध पर्वतपर ध्यानमग्न थे, तब कन्दलविलास विद्याधर आकाश-मार्गसे निकला। मुनिके ऊपर आकर उसका विमान रुक गया। कुपित होकर विद्याधरने मुनिका उपसर्ग किया। उसी समय विद्याधरोंके राजा रत्नशिखण्डीने वहाँ आकर उसे शाप दिया कि तू इस पापसे उज्जैनीमें चण्डकर्मा नामक चाण्डाल होगा। विद्याधरकी क्षमा-याचना करनेपर रत्नशिखण्डीने शापको यह मर्यादा बाँध दी कि जब तुझे आचार्य सुदत्तके दर्शन होंगे तब तेरी इस शापसे मुक्ति हो जायेगी। इन दोनों आख्यानोंमें घटना समान है। केवल यशस्तिलक चम्पूमें मुनिको क्रोध और शापके अपराधसे बचाकर वे कार्य विद्याधर नरेश-द्वारा कराये गये हैं।

करकंडचरिउमें (५,१-२में) नील महानील विद्याधरोंका शत्रुओं-द्वारा विजयार्धपर्वतके रथनूपुर-चक्रवाल नगरसे निकाल भगाने और उनके तेरापुरमें आकर राज्य स्थापित करनेका उल्लेख है। यह हमें रविषेणकृत पद्मपुराण (५,८५ आदि) व पउमचरिउ (५,७५ आदि) का स्मरण कराता है जहाँ शत्रुओं-द्वारा अपनी राजधानी चक्रवालसे निर्वासित होकर मेघवाहन विद्याधर दक्षिणमें राक्षस द्वीपको आया और वहाँ लंकापुरीमें अपनी राजधानी बनायी।

करकंडचरिउ (३, १०से ३, २२) में दन्तीपुरके राजा करकंडु और चम्पाके राजा धाडीवाहनके बीच युद्धका वर्णन है। युद्धके बीच करकंडुकी माता पद्मावतीने आकर उनकी पहचान करायी कि वे दोनों पुत्र और पिता हैं। इससे युद्धका दृश्य वात्सल्य-स्नेहमें परिवर्तित हो गया और सजधजसे करकंडुका प्रवेश चम्पापुरीमें कराया गया। इसकी तुलना पद्मपुराण (पर्व १०२-१०३) तथा पउमचरिउ (पर्व ९९-१००) में वर्णित लवणांकुश-द्वारा अयोध्यापर आक्रमण और रामचन्द्रकी सेनासे भयकर युद्धसे की जा सकती है। जब उनकी पिता-पुत्र रूपसे पहचान करायी गयी तब युद्ध बन्द हुआ और कुमारोंका अयोध्यामें शोभायात्राके साथ प्रवेश कराया गया। राम और उनके पुत्रोंके बीच युद्धकी घटना वाल्मीकि रामायणमें नहीं पायी जाती। तथापि उसका कुछ रूपान्तर भवभूतिकृत उत्तररामचरित नाटक (अंक ४,५,६) में प्राप्त होता है। रामके दोनों पुत्र लव और कुश वाल्मीकि मुनिके आश्रममें विद्याभ्यास कर रहे थे। तभी रामके अश्वमेध यज्ञके घोडेकी रक्षा करते हुए लक्ष्मणके पुत्र चन्द्रकेतु ससैन्य आश्रमके समीप निकले। अश्व देखनेके कौतुकवश आश्रमके बटु उस यज्ञाश्वके पास आये और लवने अश्वको पकड आश्रममें ले जानेका प्रयत्न किया। सेना कुपित हुई। चन्द्रकेतु और लवके बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया। लवने रामचन्द्रके बल और प्रतापकी हँसी उडायी, जिससे चन्द्रकेतुका क्षोभ बढा। अन्तमें समाचार पाकर पुष्पक विमान-द्वारा स्वयं रामने वहाँ आकर युद्धको रुकवाया।

रामायणका प्रभाव यथार्थत गुणाढ्यकृत बृहत्कथा और उसके अनुवर्ती कथा साहित्यपर स्पष्ट दिखाई देता है। रामके चरित्रमें केन्द्रीय घटना यही है कि रामकी पत्नीका रावण अपहरण करता है और उसकी खोजमें लगकर प्रवासी राम और उनके सहायक लोमहर्षक साहस और पराक्रमके कार्य करते हैं और अपनी पत्नीको पुन प्राप्त कर रामका राज्याभिषेक होता है। यही मुख्य घटना नरवाहनदत्तके कथानककी है। हाँ, बहुविवाहके प्रसंग उसमें नवीन जोडे गये हैं। यही घटनाचक्र हमें जैन साहित्यके अन्तर्गत वसुदेवके चरित्रमें मिलता है।

वसुदेव हिंडी तथा जिनसेन कृत संस्कृत हरिवंशपुराण (सर्ग १८-३२) में वसुदेवका चरित्र निम्न प्रकार वर्णित है। यदुवंशी नरेश अन्धकवृष्णिके समुद्रविजय आदि दश पुत्रोंमें सबसे छोटे वसुदेव अतिरूपवान् और साहसी थे। उन्होंने घरसे निकलकर समस्त देश एव विजयार्ध पर्वतकी दोनों श्रेणियोंका परिभ्रमण किया एवं अपनी विद्वत्ता, कला व पुरुषार्थके बलसे अनेक विद्याधर व भूगोचरी कन्याओंसे विवाह किया। उन्होंने चम्पापुरीके चारुदत्त सेठकी पुत्री गन्धर्वसेनासे संगीत विद्या-द्वारा विवाह किया। एक विद्याधरीकी

सहायतासे उन्होंने विद्याधर नरेश सिंहदंष्ट्रकी नीलयशा नामक कन्यासे विवाह किया। एक बार नीलकण्ठ नामक विद्याधरने नीलयशाका अपहरण किया। वेगवती और मदनवेगा विद्याधरियोंसे उनका विवाह हुआ। शूर्पणखी विद्याधरीने मदनवेगाका रूप धारण कर उनसे छल किया। प्रभावती विद्याधरीने उनकी सहायता की और उन्होंने उसका भी परिणय किया। अरिष्टपुरमें आकर स्वयंवरमें रोहिणीसे विवाह किया और अपने ज्येष्ठ भ्राता समुद्रविजयसे मिले। फिर उन्होंने अपनी समस्त विवाहिताओंको पुनः अपने पास बुला लिया, इस प्रकार राम, नरवाहनदत्त व वसुदेवकी कथाओंमें मूलतः एक ही प्रकारका घटनाचक्र दृष्टिगोचर होता है। यही नहीं, किन्तु करकंडु व अन्य कथानक भी उसी मूलस्रोतसे प्रभावित दिखाई देते हैं।

अवान्तर कथाएँ

करकंडचरिउकी मूल कथा ऊपर कही जा चुकी है। इस कथाके अन्तर्गत नौ और छोटी-बड़ी कथाएँ हैं जो करकंडुको नीति सिखाने तथा मूल कथाकी किसी बातको समझानेके लिए कही गयी हैं। प्रथम चार दूसरी सन्धिमें आयी हैं और वे उस मातंग विद्याधर-द्वारा करकंडुकी शिक्षाके लिए कही गयी हैं। प्रथम कथा (२, १०-१२) में मन्त्र-शक्तिका प्रभाव बताया गया है। एक राजाकी पुत्रीको एक राक्षस हर ले गया था। बहुत समय तक उसे बचानेका कोई उपाय नहीं निकला। निदान कन्नौजके एक ब्राह्मण और एक वैश्य, दो पथिकोंने मन्त्र शक्तिसे उस राक्षसको वशमें किया, राजपुत्रीकी रक्षा की और राजासे भारी सम्मान पाया। दूसरी कथा (२, १३) में अज्ञानसे विपत्तिका उदाहरण है। दो मित्र धन कमाने घरसे बाहर गये थे। मार्गमें एक राक्षसने उन्हें धर पकड़ा। उनकी बहुत दुर्गति हुई होती, किन्तु उसी मार्गसे एक ज्ञानी पुरुष आ निकला जिसने दया करके उन्हें उस राक्षसके हाथसे बचाया। तीसरी कथा (२, १४-१५) में नीच संगतिका कुपरिणाम समझाया गया है। एक होशियार सेठ था। राजाने उससे कहा कि यदि तुम एक गाथा ऐसी पढ़ दो जिसमें ओठ न मिलें तो मैं तुम्हें एक जागीर दे डालूँ। सेठने एक ऐसी गाथा पढ़ दी। राजाको बड़े सन्तापके साथ अपना वचन पूरा करना पड़ा। उस सेठकी एक चेटीसे प्रीति हो गयी। चेटीने एक बार राजाके मोरका मांस खानेकी लालसा प्रकट की। सेठने राजाका मोर पकड़कर तो छिपा दिया और किसी दूसरे प्राणीका मांस लाकर उस चेटीको खिला दिया। फिर राजाके प्यारे मोरकी तलाश हुई। उसपर पारितोषिक बोला गया। तब उस चेटीने सेठका सब हाल राजाको कह सुनाया। राजाने तत्क्षण सेठको फाँसीका आदेश सुना दिया। किन्तु उस होशियार सेठने राजाका मोर ला उपस्थित किया और इस प्रकार उस नीच चेटी और क्षुद्र राजासे अपना पिण्ड छुड़ाया। चौथी कथा (२, १५-१८) में, इसके विपरीत, उच्च संगतिका सुफल बताया गया है। एक बार एक राजा आखेटके लिए वनमें गया था। भटकते-भटकते उसे खूब भूख-प्यास लग आयी, पर पासमें कुछ न था। निदान उसकी भेंट एक बनियेसे हो गयी, जिसने उसे तीन फल खिलाये और पानी पिलाया। राजधानीको लौटकर राजाने उस बनियेका बड़ा सम्मान किया, उसे अपना मन्त्री बना लिया। बनियेकी प्रीति एक वेश्यासे थी। एक बार उसने राजकुमारको कहीं छिपा दिया, और उसके आभूषण ले जाकर उस वेश्याको दे दिये, और कहा कि इन्हें मैं राजकुमारको मारकर लाया हूँ। वेश्याने अपने प्रेमीके हितकी अभिलाषासे कहा, यह बात मुझसे कही सो कही, और किसीसे नहीं कहना। निदान राजकुमारकी खोजबीन हुई और किसीने राजाको यह खबर दे दी कि मन्त्रीने उसके प्राण हरण किये हैं। इस-पर राजाने उस मन्त्रीको बुलाकर कहा - मैं प्रसन्न हुआ। आज तुम्हारे खिलाये हुए उन तीन फलोंमें-से एकका ऋण चुक गया। अब दो फलोंका ऋण और बाकी रहा। राजाके ये वचन सुनकर मन्त्रीने राजकुमारको ला उपस्थित किया और वे पुनः बड़े प्रेमसे रहने लगे।

इन कथाओंकी स्फूर्ति कविको कथासरित्सागरके दसवें लम्बकसे मिलना सम्भव है। ये कथाएँ वहाँ जैसीकी तैसी तो नहीं पायी जातीं, किन्तु वहाँ नरवाहनदत्तके मन्त्री गोमुखने जो विद्वानों व मूर्खों तथा स्त्रियों-के छल-कपट आदिकी कथाएँ सुनायी हैं उनमें इन कथाओंके बहुत-से तत्त्व विद्यमान हैं।

पाँचवी कथा कुछ बडी है। वह पूरी छठवी सन्धिमें समाप्त हुई है। इसे तेरापुरमें एक विद्याधरने मदनावलीके हरणसे विह्वल करकडुको यह समझानेके लिए सुनायी थी कि पति-पत्नीके निराशाजनक वियोगके पश्चात् भी उनका पुन संयोग हो जाता है। नरवाहनदत्त वत्सदेशमें कौशाम्बी नगरीके राजा वत्सराज और रानी सुवीणाका पुत्र था। वह अतिशय गुणवान और रूपमें कामदेवको भी जीतनेवाला था। उसे सुयोग्य जान पिताने उसे राजा बनाकर स्वयं ऋषिवृत्ति धारण की और सिद्धि प्राप्त की। एक बार नरवाहनदत्तकी रानी मदनमंजूषाको हंसरथ नामक विद्याधर हर ले गया। शोकसे विह्वल होकर राजाने आत्मघात करनेकी ठान ली और वह पास ही के वनमें गया। वहाँ उसकी भेंट एक विद्याधरीसे हुई जिसका प्रेमी विद्याधर एक ऋषिकन्याके शापसे सुआ बन गया था। उस ऋषिकन्याने दयालु होकर यह भी बतला दिया था कि जब नरवाहनदत्तका विवाह रतिविभ्रमा नामकी विद्याधरपुत्रीसे हो जायेगा तब वह पुन विद्याधर रूप पा जायेगा। यह सुनकर नरवाहन बडे विस्मयमें पड गये। इतनेमें ही वहाँ एक और लीलावती नामक विद्याधरी आयी जो रतिविभ्रमाका चित्रपट लिये थी। उसने कहा कि रतिविभ्रमाने अपने पिता द्वारा हरकर लायी हुई एक स्त्रीसे नरवाहनदत्तका नाम सुना है तभीसे वह उनके लिए छटपटा रही है। फिर वह विद्याधरी नरवाहनको विजयार्ध पर्वतपर ले गयी। वहाँ नरवाहनने अपनी हरी गयी पत्नीको भी पा लिया और रतिविभ्रमा तथा उसकी अनेक सखी-सहेलियोंके तथा अन्य पाँच सौ विद्याधर कुमारियोंके साथ विवाह कर लिया। फिर धीरे-धीरे वे समस्त विद्याधरोंके अधिपति बन गये।

नरवाहनदत्तकी कथा संस्कृत साहित्यमें प्रसिद्ध है। सोमदेवकृत कथासरित्सागर, क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामंजरी और बुद्धस्वामीकृत बृहत्कथा श्लोकसंग्रहमें वही कथा बडे विस्तारसे पायी जाती है। इसी कथाको सबसे पहले गुणाढ्य कविने पैशाची भाषामें अपनी बृहत्कथामें रचा था। यह पैशाची भाषाकी बृहत्कथा अब नही मिलती। सम्भव है हमारे कविके समय तक वह बृहत्कथा लुप्त न हुई हो और उसीके आधारपर उन्होंने अपनी कथा लिखी हो, क्योंकि उपर्युक्त प्राप्य ग्रन्थोंकी कथासे करकडचरिउमें लिखी गयी कथामें कुछ भेद पडता है। इस कथामें मदोन्मत्त मदनभ्रमर विद्याधरके, एक ऋषिकन्याके शापसे, सुआ बन जानेकी जो वार्ता कही गयी है उससे हमें बाण कविकृत कादम्बरीमें महाश्वेताकी कथाका स्मरण आये बिना नही रहता। बाणने भी अपनी कथा बृहत्कथाके आधारपर ही लिखी थी।

कथासरित्सागरके अनुसार नरवाहनदत्तकी कथा संक्षेपतः इस प्रकार है। कौशाम्बीमें क्रमश जनमेजयका पुत्र शतानीक, सहस्रानीक और उदयन राजा हुए। उदयनका विवाह उज्जयिनीके राजा चण्डमहासेनकी पुत्री वासवदत्तासे हुआ और उन्हींसे कामदेवके अवतार नरवाहनदत्तका जन्म हुआ। यथासमय उसे युवराजपद प्राप्त हुआ और उसका विवाह कलिंगसेनाकी पुत्री मदनमंचुकासे हो गया। एक बार मानसवेग विद्याधर मदनमंचुकाका अपहरण कर ले गया जिससे वह बहुत दुखी हुआ। मानसवेगकी बहन वेगवतीने मदनमंचुकाका रूप धारण करके छलसे नरवाहनदत्तसे विवाह कर लिया और वह उसे अपने पिताके घर आषाढपुर ले गयी। अनेक घटनाएँ घटी और उसका विवाह अनेक विद्याधर कुमारियोंसे हुआ। श्रावस्तीमें पहुँचनेपर उसका विवाह वहाँके राजा प्रसेनजित्की पुत्री भगीरथयशासे भी हुआ। प्रभावती विद्याधरीकी मायाके प्रभावसे उसकी भेंट अपनी पत्नी मदनमंचुकासे भी हो गयी जिसके साथ वह उसकी सहेलीके रूपमें रहने लगा। किन्तु वह उसे छुडा न सका और मानसवेगको इसका पता चलनेपर यद्यपि सभामें वह निर्दोष पाया गया, तथापि उसे अपने प्राण बचानेके लिए गुप्तरूपसे भागना पडा। क्रमश अनेक और विद्याधर नरेश उसके पक्षपाती हो गये जिनकी सहायतासे उसने मानसवेगका वध कर मदनमंचुकाको छुडाया एवं उत्तर-दक्षिण दोनों विद्याधर श्रेणियोंके राजाओंको पराजित किया। तत्पश्चात् सब विद्याधरोंने मिलकर ऋषभ पर्वतपर उसका मदनमंचुका रानीसहित महाभिषेक किया।

उक्त दोनों कथानकोंके मिलानसे स्पष्ट हो जाता है कि उनका मूल ढाँचा एक ही है। नरवाहनदत्त कौशाम्बीका राजा था। उसकी रानी मदनमंजूषा या मदनमंचुकाका एक विद्याधरने अपहरण किया।

वेगवती विद्याधरी आकर नरवाहनदत्तसे मिली और वह उसे विद्याधरलोकमें ले गयी जहाँ और अनेक विद्याधर कुमारियोसे उसका विवाह हुआ। उसकी अपहृत पत्नी भी उसे मिल गयी और सब विद्याधरोंने मिलकर उसका राज्याभिषेक किया। स्वभावत यह कथानक कथासरित्सागरका प्रधान विषय होनेसे वहाँ वह खूब विस्तारसे व अवान्तर कथाओंसे परिपूर्ण वर्णित पाया जाता है। किन्तु करकडचरिउमें अपहृत पत्नीकी पुन प्राप्तिके एक दृष्टान्त रूपसे आनेके कारण अतिसंक्षिप्त है। तथापि एक बात ध्यान देने योग्य है कि नायक नायिका तथा वेगवती कनकवती-जैसी दो चार विद्याधरियोके नाम छोडकर शेष सब नामोमें अन्तर है। स्वय नायकके माता-पिता जहाँ कथासरित्सागरमें उदयन और वासवदत्ता कहे गये है जो नरवाहनदत्तके महाभिषेक तक जीवित पाये जाते है, तब यहाँ उनके नाम है वत्सराज और सुशीणा जो आदिमें ही गृह-त्याग सिद्धिको प्राप्त हो जाते है। कथासरित्सागर में नरवाहनदत्तका विवाह श्रावस्तीके राजा प्रसेनजित्की पुत्रीसे भी हुआ कहा गया है, किन्तु यहाँ उसका कोई उल्लेख नही। इन नामभेदोके अनेक कारण हो सकते है। कथाओंकी परम्पराओमें भेद होना सम्भव है, या स्मृतिके सहारे लिखे जानेसे अप्रधान पात्रोके नाम विस्मृत हो सकते है जिनकी पूर्ति कल्पनासे कर दी गयी। यह सम्भावना इस कारण और भी प्रबल है कि करकडुके रचयिता जैन मुनि विहार करते हुए आशापुरीमें आये थे, जहाँ उन्हे बृहत्कथाकी परम्परावाली उक्त तीन रचनाओंमें-से कोई भी ग्रन्थ रूपमें सुलभ न हुई हो। किन्तु यह भी असम्भव नही है कि कविने जान-बूझकर ही नामोमें परिवर्तन किया हो, क्योकि कथासरित्सागर आदि ग्रन्थोमें नरवाहनदत्त-सम्बन्धी समस्त वातावरण भगवान् महावीरके व उनसे उत्तरवर्ती कालका है। उदाहरणार्थ, कथासरित्सागरमें जो नरवाहनदत्तके प्रपितामह शतानीक कहे गये है उनका विवाह महापुराण (७५वाँ पर्व) के अनुसार महावीरके नाना चेटककी एक पुत्री मृगावतीके साथ हुआ था। नरवाहनदत्तकी माता वासवदत्ताके पिता चण्डप्रद्योतकी मृत्युके पश्चात् जिस रात्रि उनके पुत्र पालकका राज्याभिषेक हुआ था उसी रात्रि भगवान् महावीरका पावामें निर्वाण हुआ था। कोसलके जिन प्रसेनजित् राजाकी पुत्री भगीरथयशासे नरवाहनदत्तका विवाह हुआ था, वे उन मगधराज श्रेणिकके समसामयिक व सम्बन्धी थे जिन्हें महाराज चेटककी चेल्लना नामक कन्या विवाही थी। यदि इनमें से किसी राजा व तत्सम्बन्धी स्त्री-पुरुषोका उल्लेख किया जाता तो करकडचरिउके कथानकमें काल-वैषम्य प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता, क्योकि करकडुको भगवान् महावीरके नहीं, किन्तु भगवान् पार्श्वनाथके तीर्थमें हुआ माना गया है।

नरवाहनदत्तकी कथाके अन्तर्गत उसे उपवनमें मिली विद्याधर कन्याने अपना परिचय इस प्रकार दिया – विद्याधर पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें सिन्धुश्रृंगपर जयन्ती नामक पुरीके अधिपति मेरे पिता धूमकेतु और माता सुनन्दा रहते है। एक बार मैं अपनी सखियोके साथ वनक्रीडा कर रही थी कि मदनामर नामक विद्याधर वहाँ पहुँचा जिसे देख मै उसपर मोहित हो गयी। मेरी सखीके पूछनेपर उसके मित्रने बतलाया कि वह उसी विजयार्धकी उत्पलखेडी पुरीके विद्याधर पद्मदेवका पुत्र मदनवेग है और वह अपने मित्र, उत्तर विजयार्धके विद्याधर मनोवेगके पुत्र पवनवेगसे मिलने जा रहा है। उसने मेरा कुल भी पूछ लिया, और फिर वे दोनो वहाँसे चले गये। किन्तु मदनामर पुन वापस आया। उसने अपने कण्ठसे मोतियोकी माला निकालकर मेरे गलेमें पहना दी। इतनेमें ही मेरी सहचरी केतुमती मुझे बुलाकर घर ले गयी। विह्वल होकर मैं पुन वहाँ आयी, किन्तु वहाँ मदनामर दिखाई नही दिया। फिर किसी एक विद्याधरीने मुझे यह समाचार दिया कि उसके विरहमें विह्वल होकर मदनामरने एक ऋषि-कन्याका स्पर्श कर लिया जिसकी शापसे वह सुआ हो गया। उसके मित्रकी प्रार्थनापर उस ऋषि-कन्याने शापकी यह मर्यादा बाँध दी कि जिस दिन नरवाहनदत्तका रतिविभ्रमासे परिणय हो जाये, उसी समय वह पुन सुन्दर मनुष्य हो जायेगा। यह जानकर हे सुन्दर, मैने वनवास ग्रहण किया है। (६, १०–११)

सुआकी एक और कथा क च ८, ३ आदिमें अरिदमनके कथानकमें आयी है। अवन्ती देशकी उज्जयिनी नगरीके समीप वनमें एक विद्याधरने शुकका रूप धारण किया था। उसने एक ग्वालसे कहा कि

तू मुझे राजाके पास ले चल और पाँच सौ सुवर्ण मुद्रा लेकर उसके हाथ सौंप दे। ग्वालने वैसा ही किया। मार्गमें तोतेने अपनी बुद्धिका चमत्कार भी दिखलाया। उनके राजद्वारपर पहुँचनेपर द्वारपालने राजा अरिदमनको खबर दी। उनकी अनुमतिसे सम्मुख पहुँचकर शुकने अपना पैर उठाकर राजाको आशीर्वाद दिया कि हे राजन् जबतक गगाका प्रवाह है तबतक चिरजीवी होओ। राजाने प्रसन्न होकर सुगसे उसका वृत्तान्त पूछा। तब उसने अपना यह 'कपट कथानक' रचकर सुनाया कि हम पाँच सौ सुए एक सेवलके वृक्षमें रहते थे। एक भीलने आकर सब घोसलोंपर अपना जाल बिछा दिया। मैंने सुओंको कहा कि मृतक समान हो जाओ। भीलने मरा समझकर सबको नीचे डाल दिया। हम सब दशो दिशाओंमें उड गये। मैं एक तपस्वियो-के आश्रममें जा पहुँचा जहाँ मैंने सब शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसने राजाको मत्रीके यहाँ उत्पन्न हुए एक तेजस्वी अश्वकी भी सूचना दी। राजाने उसे मगाकर तोतेसहित उसपर सवारी की। अश्व आकाशमें उड-कर उन्हें समुद्र पार छोहार द्वीपमें ले गया जहाँ राजाका विवाह कुमारी रत्नलेखासे हुआ। नौका बनाकर लौटते समय उनकी नौका छिन्न-भिन्न हो गयी और समुद्रकी लहरो द्वारा रत्नलेखा खभायत पट्टन और राजा कोकन पहुँचा। सुआ और घोडा भी बिछुड गये। किन्तु अन्तत उन सबका पुन मिलन हो गया।

सुएके उक्त दोनो कथानकोंकी तुलना बृहत्कथाकी परम्पराके बृहत्कथामजरी व कथासरित्सागरके शक्तियशा नामक लम्बककी सुमना राजाकी कथासे करने योग्य है। सुमना काचनपुरीका राजा था। एक समयउसकी सभामें निषादपतिकी कन्या मुक्तालता अपने भ्राता वीरप्रभके साथ पिंजडेमें एक तोतेको लेकर आयी। तोतेने राजाकी स्तुतिमें एक श्लोक कहा व शास्त्रचर्चा करनेकी अनुमति माँगी। राजा आश्चर्य-चकित हुआ। पूछनेपर तोतेने बतलाया कि हिमालयके समीप एक विशाल वृक्षके कोटरमें मेरा जन्म हुआ था। जन्म होते ही मेरी माताका देहान्त हो गया। पिताने बडे कष्टसे मेरा पालन किया। एक बार एक वृद्ध भीलने वृक्षपर चढकर तोतोको मार-मारकर नीचे गिरा दिया। मैं पिताके पखोंमें छिपा था इससे नही मर पाया। नीचे गिरनेपर मैं आसपासके सूखे पत्तोंमें छिप गया। भील सब पक्षियोंको एकत्र कर उन्हें ले गया। रात्रि-भर वही रहकर मैं प्रात तृषातुर होकर समीपके सरोवरको गया। वहाँ मरीचि मुनिने मुझे देख कृपापूर्वक जल पिलाया और अपने साथ आश्रमको ले गये। वहाँ मुझे देख महर्षि पुलस्त्य मुस्कुराये। पूछनेपर उन्होंने मेरा पूर्ववृत्तान्त इस प्रकार सुनाया — रत्नाकर नगरमें ज्योतिप्रभ राजा और हर्षवती रानीको महादेवजीकी कृपासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रानीके स्वप्नमें चन्द्र देखनेके कारण सोमप्रभ रखा गया। युवावस्थामें सर्व विद्याओं व कलाओंमें प्रवीण देखकर राजाने उसे युवराज बनाया और प्रभाकर मत्रीके पुत्र प्रियकरको उसका मत्री। उसी समय मातलि एक घोडा लेकर आकाशसे उतरा और सोमप्रभसे बोला कि आप पूर्व जन्ममें इन्द्रके मित्र विद्याधर थे, इसीलिए उन्होंने अपने उच्चैश्रवाके पुत्र अश्वश्रवा नामक इस घोडेको भेंटस्वरूप भेजा है। इसपर आरूढ होते हुए आपको कोई शत्रु जीत नही सकेगा। पितासे आज्ञा लेकर सोमप्रभ उस घोडेपर आरूढ हो दिग्विजयको निकल पडा और उसने चारो दिशाओंके राजाओंको जीत लिया। लौटते समय हिमालयके समीप एक मणिमय किन्नर दिखाई दिया जिसे पकडनेके लिए उसने घोडा दौडाया। किन्नर तो एक कन्दरामें छिप गया और सोमप्रभ वनमें बहुत दूर चला गया। वहाँ एक बडा सरोवर देख उसने कुछ विश्राम करना व रात्रि व्यतीत करना चाहा। अकस्मात् उसे मधुर गीतोंकी ध्वनि सुनाई पडी, जिसका पता लगानेपर महादेवके मन्दिरमें एक रूपवती कन्यासे भेंट हुई। उसने बतलाया कि वह हिमालयपर काचननाभ नगरके विद्याधर नरेश पद्मकूट और रानी हेमप्रभाकी मनोरथप्रभा नामक पुत्री है। एक बार जब वह उस सरोवरपर क्रीडा कर रही थी तब उसे एक मुनि-युवक दिखाई दिया जिसपर वह मोहित हो गयी। उसकी सखीने युवकके मित्रसे पता लगाया कि वह वहीके एक तपोवनमें रहनेवाले मुनि दीधितिका लक्ष्मीसे उत्पन्न मानस-पुत्र रश्मिवान है। उसने मेरी सखीसे मेरा भी परिचय ले लिया। उसी समय भोजनके लिए पिताने मुझे बुला लिया। मेरे भोजनोपरान्त ही उस मुनि-पुत्रके मित्रने आकर खबर दी कि रश्मिवान उसके वियोगमें बहुत विकल है। मैं तुरन्त अपनी सखीके साथ उससे मिलने गयी, किन्तु तब-

तक उसका प्राणान्त ही हो गया। मैं उसकी चितापर अपनेको भस्म करनेकी तैयारी करने लगी, किन्तु उसी समय एक तेजस्वी पुरुष आकाशमार्गसे आकर रश्मिवानके मृत शरीरको उठा ले गया। मुझे आकाशवाणी सुनाई दी कि तुम अपने शरीरकी रक्षा करो, पुन उस मुनि-कुमारसे तुम्हारी भेंट होगी। बस, तभीसे मैं यहाँ महादेवकी आराधनामें लगी रहती हूँ। विद्याधरोंके स्वामी राजा सिंहविक्रमकी रूपवती कन्या मकरंदिका मेरी प्राणप्रिय सखी है और उसने प्रतिज्ञा की है कि जबतक मेरा विवाह न होगा तबतक वह भी अपना विवाह नही करेगी। उसीकी खबर लेने मेरी वह साथकी सखी गयी है। उसने यह कहा ही था कि वह सखी भी लौट आयी। प्रात देवजय नामक विद्याधरके साथ वे सभी राजा सिंहविक्रमके यहाँ गये। वहाँ मकरन्दिका सोमप्रभको देखकर उसपर आसक्त हो गयी। किन्तु सोमप्रभने अपने शिविरको लौटनेकी इच्छा प्रकट की। वहाँ अपने पिताका सन्देश पाकर उसे राजधानी लौटना पडा। इधर मकरन्दिका उसके वियोगमे बहुत विह्वल हो उठी। बहुत समझानेपर भी न माननेके कारण उसके पिताने उसे यह शाप दे दिया कि तू कुछ काल तक निषादकन्या होकर रहेगी।, उसका पिता मरकर ऋषि हुआ और फिर किसी पापसे तोता हो गया और माता शूकरी। यही वह तोता था जो पहले पुलस्त्य मुनिके आश्रममें और फिर अपना पूर्वजन्मका स्मरणकर सुमना राजाकी सभामें पहुँचा था। अन्तत पापोंसे छूटकर राजा सुमना पुन रश्मिवान बन गया और मनोरथप्रभासे उसका विवाह हो गया। निषादकन्या पुन मकरन्दिका हो गयी और उसका विवाह सोमप्रभसे हुआ। तोता भी अपना शरीर त्यागकर पूर्वतपस्यानुसार उच्चपदको प्राप्त हुआ। गोमुख मन्त्रीने यह कथानक अपने स्वामी नरवाहनदत्तको उसकी शक्तियशा सम्बन्धी आकुलताको दूर करनेके लिए सुनाया था।

यही कथानक बाणकृत कादम्बरीमें महाश्वेताकी कथाके रूपमे पाया जाता है। दोनोंमें भेद यह है कि बाणका वर्णन काव्यगुणोंसे परिपुष्ट है और वहाँ नामोंमे बहुत हेर-फेर पाया जाता है। यहाँकी मनोरथ-प्रभा और मकरन्दिका वहाँ महाश्वेता और कादम्बरीके रूपमे दिखाई देती है और उनके पति रश्मिवान् और सोमप्रभ, पुण्डरीक और चन्द्रापीडके रूपमें। राजाओ व सखी-सखाओ व नगरोंके नाम भी सब भिन्न है। विशेष भेद यह है कि जहाँ कथासरित्सागरमें मुनिकुमार रश्मिवान राजा सुमनाके रूपमे एव मकरन्दिकाके पिता सिंहविक्रम तोतेके रूपमे उत्पन्न हुए है, वहाँ कादम्बरीमे मुनिकुमार पुण्डरीक तोताके रूपमें एव स्वय चन्द्रापीड (सोमप्रभ) राजा शूद्रकके रूपमें। कथासरित्सागरका घटनास्थल है हिमालय, किन्तु कादम्बरीका विन्ध्याचल।

करकंडचरिउका कथानक भी नामो व घटनाओंकी दृष्टिसे उक्त दोनो कथाओंसे बहुत कुछ स्वतन्त्र है, फिर भी सुआके दोनो कथानकोंका मूलाधार कादम्बरीका कथानक ही प्रतीत होता है, क्योंकि नायक-द्वारा नायिकासे प्रथम मिलनके समय माला पहनाना तथा उस नायकका ही नायिकाके ही शापसे तोता बन जाना कादम्बरी और करकंडचरिउमें समान है, जब कि कथासरित्सागरमें उनका अभाव है। घोडेका प्रसग तीनो ग्रन्थोंमें भिन्न-भिन्न रीतिसे आया है। कथासरित्सागरका घोडा उच्चैश्रवाका पुत्र है और स्वय इन्द्रने उसे राजाको भेंटस्वरूप भेजा था। कादम्बरीका घोडा इन्द्रायुध उच्चैश्रवाके लक्षणोंसे युक्त था, किन्तु उसे राजाको भेटस्वरूप भेजा था फारसके नरेशने। किन्तु करकंडचरिउका घोडा मन्त्रीकी घोडी और पहाडी घोडेसे उत्पन्न हुआ था, उसे तोतेने देखा था और तोतेने ही उसकी सूचना राजा अरिदमनको दी थी।

नरवाहनदत्तकी कथाके अन्तर्गत ही हमारी छठवी अवान्तर कथा है (६, ४-७) जिसके द्वारा अपने पिताकी मृत्युके शोकसे व्याकुल नरवाहनदत्तका एक मुनिराजने सम्बोधन किया है। माधव और मधुसूदन भाई-भाई थे, पर उनमे बडा वैर था। दिनोंके फेरसे माधव यहाँतक दरिद्री हो गया कि उसे भोजन-वस्त्रका भी कष्ट होने लगा। माधवकी स्त्रीने उसे मधुसूदनका आश्रय लेनेकी सम्मति दी। पहले तो माधवने अपने स्वाभिमानका विचार करके अमान्य कर दिया, किन्तु पीछे स्त्रीके समझानेपर और अपनी दुर्दशासे विह्वल होकर वह मान गया। मधुसूदनने उनका बडा आदर-सत्कार किया और उन्हें प्रेमसे रक्खा, किन्तु

माधवके हृदयकी ईर्ष्याग्नि शान्त न हुई। एक दिन वह घरसे निकल भागा और प्रयागमें जाकर उसने यह निदान बाँधकर, अनशन द्वारा, अपना प्राणान्त कर डाला कि मरकर मैं मधुसूदनके यहाँ पुत्र होऊँ और फिर उसका प्रेम बढाकर मर जाऊँ जिससे उसे घोर क्लेश हो। हुआ भी ऐसा ही। मधुसूदन पुत्रशोकमें मरनेको तत्पर हो गया, तब उसे एक विद्याधरने माधवके पूर्वभवका हाल सुनाकर उसके चित्तको शान्त किया। इस प्रकार ये पिता-पुत्रादि सम्बन्ध सब निदानके कारण हैं इनमें हर्ष या शोक नहीं मानना चाहिए।

सातवीं अवान्तर कथा (७, १-४) शुभ-शकुनकी है जिसे विद्याधरने करकडुको सुनायी थी। एक दरिद्री ब्राह्मणको मार्गमें एक मुनिके दर्शन हुए जिससे वह खुशीके मारे नाचने लगा। एक क्षत्रिय कुमार घोडेपर सवार वहाँसे निकला और उस ब्राह्मणको नाचते देख उसने हाल पूछा। ब्राह्मणने कहा मुझे वनमें मुनि-दर्शनका शुभ शकुन हुआ है जिसके फलस्वरूप मुझे राज्य मिलेगा। क्षत्रिय कुमारने ब्राह्मणसे कह सुनकर उस शकुनका फल आप ले लिया और बदलेमें अपना घोडा और आभूषण दे डाले। ब्राह्मण चला गया और क्षत्रिय कुमारने वनमें प्रवेश किया। वहाँ सुदर्शना देवी, स्त्रीका रूप धरके, साथ हो गयी। उन्होंने एक अन्धकूप देखा जिसमें एक साँप और मेढक लड रहे थे। युवकने अपनी देहसे एक मासका टुकडा काटकर उनके बीच डाल दिया। उसके साहससे प्रसन्न होकर वे दोनों भी मनुष्यका रूप धारण कर उसके साथ हो गये। एक राजाने उन्हें देखा और वह उस स्त्रीके रूपपर मोहित हो गया। उसने युवकको एक कुएँमें ढकेल दिया, और उस स्त्रीसे प्रेम करना चाहा। इतनेमें ही उसे एक सर्पने डस लिया और वह मर गया। स्त्रीने उस युवकको कुएँसे निकाला और पश्चात् उसका मृत राजाके स्थानपर राज्याभिषेक हो गया। सुदर्शना देवी शकुनका यह फल देकर चली गयी।

आठवीं अवान्तर कथा अरिदमनकी है, जिसे पद्मावती देवीने करकडुके समुद्रमें विद्याधरी द्वारा हरण किये जानेके शोकसे व्याकुल रतिवेगाको सुनाया था (८,१-१६)। अरिदमन उज्जैनका राजा था। एक विद्याधरने सुआका रूप धरकर अपनेको एक ग्वाल द्वारा उस राजाके हाथ बिकवा दिया। सुआने राजाको बताया कि उसके मन्त्रीके पास एक बडा सुंदर और प्रतापी घोडा है। राजाने मन्त्रीसे इसे प्राप्त किया और सुआसहित उसपर सवार हुआ। एक चाबुक मारी कि घोडा उडकर समुद्रपार एक द्वीपपर जा पहुँचा। वहाँ राजाने बहुत-सी कन्याओंको जलक्रीडा करते हुए देखा और उनमें प्रधान रत्नलेखासे उसने विवाह कर लिया। एक दिन रत्नलेखाने कहा कि मैं आपका पितृगृह देखना चाहती हूँ। तब राजाने एक नौका निर्माण करायी और राजा-रानी, सुआ और घोडासहित, उसपर बैठकर चल दिये। विपरीत वायुके कारण नाव एक उजाड द्वीपपर जा पहुँची। वहाँ उन्हें रात-बसेरा करना पडा। रात्रिको ही नावको कोई चुरा ले गया। तब सुआकी सलाहसे राजाने लकडी काट और उन्हें बाधकर एक डोंगी बनायी और वे चारों उसपर बैठकर चले। समुद्रकी लहरोंसे डोंगीके बन्धन टूट गये और वे चारों बिछुड गये। सुआ उड गया, घोडा कहीं गया, राजा कोकन पहुँचे और रानी खवायत बन्दरपर पहुँची। वहाँ उसे एक कुट्टिनीके यहाँ आश्रय मिला। उसने यह प्रण किया कि जो कोई मुझे सार-पासे खेलनेमें हरा देगा उससे ही मैं प्रेम करूँगी। किन्तु उससे कोई भी पुरुष नहीं जीत पाया। एक दिन वह सुआ उडकर उसके घर आ गया और उनकी पहिचान हो गयी। उसकी द्यूतक्रीडाकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी। कोकनमें अरिदमनने भी समाचार सुने। वे आये। खेल हुआ और उन्होंने रत्नलेखाको हरा दिया। रत्नलेखा बहुत व्याकुल हुई, किन्तु इसी क्षण उनकी परस्पर पहचान हो गयी और वे मिलकर बहुत सुखी हुए। एक दिन एक ठक्क वहाँ घोडे बेचने लाया। उनमें अरिदमनने अपना घोडा पहचान कर खरीद लिया। इस प्रकार वे सब बिछुडे प्रेमी एक बार फिर मिलकर अपने घर आनन्दसे आ गये।

पूर्वोक्त सुआकी कथामें प्रसंगवश वर्णित एक घटना उल्लेखनीय है। जब ग्वाल उसे लेकर उज्जैनीमें आया तब नगरके मार्गमें एक वेश्या एक सेठको पकडे-पकडे फिरती थी और कहती थी कि मैंने तुम्हारे जेठे

लडकेको स्वप्नमें अपनी लडकीके साथ देखा है, इसलिए तुम मुझे धन दो। सेठ बेचारा बडी विपत्तिमें पडा था। सब लोग तमाशा देख रहे थे, पर किसीको कुछ बुद्धि काम नहीं करती थी कि क्या किया जावे। निदान सुआने इस झगडेका निपटारा किया। उसने सेठसे धन मगाया। और एक दर्पणमें उसको छाया डालकर कुट्टिनीसे कहा, ले बहिन, तेरा धन लेले। कुट्टिनीने कहा, रे नगोडे सुए! कहीं दर्पणका प्रतिबिम्ब भी लिया जा सकता है? सुएने तुरन्त उत्तर दिया, कहीं स्वप्नको बात प्रत्यक्ष हुई है? इस प्रकार सेठको उस झझटसे छुडाकर यह सुआ राजसभामें पहुचा। इससे आगेका वृत्तान्त ऊपर कहा जा चुका है।

अन्तिम अवान्तर कथा मुनिराजने करकडुकी माता पद्मावतीको यह बतलानेके लिए सुनायी है कि भवान्तरमें स्त्रीलिंगका परिवर्तन भी हो सकता है (१०,१८-२२)। उज्जैनके राजाकी सुमित्रा नामकी पुत्री थी। उसने उपवासके फलसे मरकर एक ब्राह्मणके घरमे लडकेका जन्म पाया, किन्तु पिताकी मृत्यु उसके गर्भकालमें ही हो गयी। विधवा स्त्रियोंके छोटे लडके बहुधा बडे नटखटी हो जाते हैं। ऐसा यह भी हुआ। एक बार अपनी मातासे लडकर वह घरसे भाग गया और वनमे एक पुरानी मटियामे रात-बसेरा किया। वहाँ रात्रिको विद्याधरियाँ आयी, जिनमें-से एकका चीर उसने उडा दिया। उसे लेकर वह घर आया। माताने उसे एक सेठको बेच दिया और सेठने उसे राजाको भेंट किया। राजाको उसके जोड मिलानेकी अभिलाषा हुई और अन्तमे उसी ब्राह्मण पुत्रको यह काम सौंपा गया। इस बार वह एक डडा लेकर वनमे गया और एक राक्षसीको वशमें कर लाया। उससे उसके जोडका कपडा लेकर उसने राजाको दिया। राजाकी उसपर प्रसन्नता बढ गयी। यह बात मन्त्रीको सहन न हुई। उसने रानीको उभाडा और उस ब्राह्मणके प्राण लेनेकी दृष्टिसे कही शेरनीका दूध, और कही बोलता हुआ पानी लानेके लिए उसे भिजवाया। पर राक्षसीकी सहायतासे ब्राह्मणने सब कुछ ला दिखाया। निदान राजाको मन्त्रीका कपटजाल ज्ञात हो गया। उसने उसे मन्त्री-पदसे निकाल दिया और उस ब्राह्मणको मन्त्री बनाया। अन्तमें उस ब्राह्मणने वैराग्य धारण कर लिया, और अगले भवमें वह अर्जुन हुआ। इस प्रकार उपवासके प्रभावसे सुमित्रा अर्जुन हो गयी।

इस कथाको कविने कोई परियोंकी कहानियोंमें-से लिया है। यही कथा और परिवर्धित रूपमें भावचन्द्र सूरिके शान्तिनाथ चरितमें भी पायी जाती है।

ये नौ अवान्तर कथाएँ करकडचरिउके लगभग चौथाई भागमे आयी हैं।

कथाके नायक

इस ग्रथमें यह बतलाया गया है कि पच-कल्याण-विधानके प्रभावसे किस प्रकार एक ग्वाला अगले भवमें राज्य-सुखको पाकर मोक्षगामी हुआ। इस ग्रथके कथानायकका स्थान अद्वितीय है। वे दिगम्बर सम्प्रदायमें ही नही, श्वेताम्बर सम्प्रदायमे भी माने गये है। यही नही, किन्तु बौद्धोने भी उन्हे अपना एक महात्मा माना है। बौद्धोके जातक साहित्यमे वे करण्डू या करकडूके नामसे प्रसिद्ध है। उन्हे वे प्रत्येकबुद्ध मानते है। प्रत्येकबुद्ध उन्हे कहते है जो स्वय केवलज्ञान प्राप्त कर लें, किन्तु बिना धर्मोपदेश किये ही शरीरान्त कर, मोक्ष चले जावें। इस प्रकारके चार प्रत्येकबुद्ध बौद्धोने माने है, करकडू, नग्गई, नमि और दुर्मुख, और इन चारोकी कथाएँ पाली साहित्यमें पायी जाती है। किन्तु बौद्धोकी करकडू-कथा और वर्तमान कथामें उनके जन्मस्थान व माता-पिताके नाम तथा स्वयबुद्धत्वके अतिरिक्त और कोई साम्य नही है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमे भी वे चारो प्रत्येकबुद्ध माने गये है और उनकी कथाओंपर बहुत-सा साहित्य निर्माण हुआ है। उनका सबसे पुराना उल्लेख उत्तराध्ययन सूत्रमे है, और, कथाएँ उसकी टीकाओंमें पायी जाती है। इन कथाओंसे वर्तमान ग्रथकी मूल कथाका बहुत कुछ साम्य है, केवल उन कथाओंमें करकडूकी दक्षिण विजययात्रा-का हाल नही पाया जाता। छोटी मोटी बातोंमे कई जगह भेद भी है, जो पूर्वोक्त कथाओंके वर्णन व तुलनासे स्पष्ट है।

दिगम्बर साहित्यमे उपर्युक्त चारो प्रत्येकबुद्धोका उल्लेख तो मुझे अभीतक देखनेको नही मिला और न ऐसा ही कही पढा जहाँ करकडुको ही स्पष्टत प्रत्येकबुद्ध कहा हो। पर प्रत्येकबुद्धोकी महिमाके कुछ उल्लेख अवश्य देखनेमे आये है। उदाहरणार्थ, जयसेनकृत प्रतिष्ठापाठमे उन महात्माओको अर्घ चढाया गया है जो अन्योपदेशके बिना ही सयमकी उच्चकोटिको पहुँच जाते है, और प्रत्येकबुद्ध-ऋद्धिको प्राप्त कर लेते है। उनका थोडा-सा स्मरण करनेसे भी पापोका नाश होता है' (प्र० पा० ६७२)। एक सस्कृत सुकुमाल चरितमे कहा गया है कि अगपूर्वप्रकीर्णकोकी रचना गणधर, श्रुतकेवली व प्रत्येकबुद्ध योगीन्द्रोने की थी। कनकामरने भी करकडुको कही प्रत्येकबुद्धकी सज्ञा नही दी। यह कथा दिगम्बर साहित्यमें मुझे श्रीचद्रकृत कथाकोष, रामचन्द्रमुमुक्षुकृत पुण्याश्रवकथाकोप और नेमिदत्तकृत आराधना-कथाकोपमे भी देखनेको मिली है। वहाँ भी मेरी दृष्टिमे प्रत्येकबुद्धका उल्लेख नही आया। इस विषयका सस्कृतमें एक पूरा ग्रथ मेरे देखनेमे आया है। वह है करकडू चरित्र जिसे शुभचन्द्रने सकलकीर्तिकी सहायतासे सवत् १६११ मे रचा था। यह ग्रथ सस्कृत पद्यमे है और पन्द्रह सर्गोंमें समाप्त हुआ है। कर्ताने उसे ऐसे वचनोसे प्रारम्भ और समाप्त किया है जिनसे जान पडता है कि वे एक स्वतत्र ग्रथ रचनेका दावा करते है। पर मैने इस ग्रथका कनकामरके ग्रथसे मिलान किया तो विदित हुआ कि वह इसका अनुवाद मात्र है। मूल कथा तो पूरी वैसीकी वैसी है ही, अवान्तर कथाएँ भी वहाँ ज्योकी त्यो विद्यमान है। कर्ताने सिद्धसेन समन्तभद्रादिका स्मरण तो अवश्य किया, पर जिसके काव्यको सामने रखकर वे कीर्तिके ग्राहक बने उसका कही कुछ उल्लेख करनेमे न जाने क्यो लजा गये ? इस ग्रथमें भी प्रत्येकबुद्धका उल्लेख देखनेमें नही आया। रैधू, जिनेन्द्रभूषण भट्टारक और श्रीदत्त पडितकृत करकडूचरितोका भी उल्लेख भडारोकी सूचियोमे पाया जाता है।

इस बातकी खोज करनेकी आवश्यकता है कि दिगम्बर जैनियोने उपर्युक्त चार प्रत्येकबुद्ध माने है या नही, तथा बौद्धो और श्वेताम्बरो, दोनोने उन्हें ठीक उसी प्रकार कब और क्यो मान लिये।

करकडुकी इस अपूर्व मानतापर-से मुझे उनके समयके सम्बन्धमें कुछ अनुमान होता है। बौद्ध उन्हे महात्मा बुद्धसे पूर्व हुए स्वीकार करते है, और जैन उन्हे भगवान् पार्श्वनाथके तीर्थमें अर्थात् महावीर स्वामीसे पूर्व हुए मानते है। जिस महात्माके सम्बन्धमें दो तीन भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायोमें समान आस्था हो उसे यह समझना आवश्यक है कि वह उन साम्प्रदायिक भेदोके उत्पन्न होनेसे पूर्व ही हुए होगे। अत करकडु महाराजको हम यदि पार्श्वनाथके तीर्थमे अर्थात् लगभग ईस्वी पूर्व ८०० से ५०० के बीच हुए मान लें तो अयुक्तिसगत न होगा।

करकडचरिउका उत्तरकालीन साहित्यपर प्रभाव

करकडचरिउमे जो उसके नायक करकडकी सिहलद्वीपकी यात्रा, राजकुमारी रतिवेगासे विवाह, समुद्रमें करकडुका वियोग, रतिवेगाको पद्मावती देवी द्वारा अरिदमनका दृष्टान्त सुनाकर पुन मिलनका आश्वासन आदि घटना-चक्र पाया जाता है उसका पश्चात्कालीन साहित्यपर गम्भीर प्रभाव पडा प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ, यहाँ जो करकडुके सिहलद्वीप जाकर वहाँकी राजकुमारी रतिवेगाका परिणय कर लौटनेकी घटना वर्णित है उसकी छाया जिनहर्षगणिकृत रयणसेहरी कहा (रत्नशेखरीय कथा—लगभग वि स १४४५में रचित) मे पायी जाती है जहाँ रत्नपुरके राजा रत्नशेखरके सिघलकी राजकुमारी रत्नावतीपर मोहित होकर उसके विवाह करनेकी कथा वर्णित है। तत्पश्चात् हिजरी सन् ९४७ (ई १५४०) के लगभग मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित हिन्दी काव्य पद्मावतपर करकडचरिउ एव रयणसेहरी इन दोनो कथाओका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। सिहलद्वीपकी राजकुमारी पद्मावतीके सौन्दर्यका वर्णन हीरामन तोतेके मुखसे सुनकर चित्तौडका राजा रतनसैन उसपर मोहित हो गया और वह योगीका वेप बनाकर सिहल पहुँचा, वहाँ महादेवके मन्दिरमे उसकी पद्मावतीसे भेंट हुई, दोनोका विवाह हुआ, समुद्रमार्गसे लौटते हुए नौका विच्छिन्न हो गयी, दोनोका वियोग हुआ और फिर उनका

मधुर मिलन हो गया। पद्मावतका यह कथानक करकंडचरिउमें वर्णित अरिदमन नरेशके आख्यानसे बहुत समता रखता है, एवं सिंहलद्वीपमें योगीके वेष व राजकुमारीसे मिलनका वृत्तान्त रत्नशेखरी कथासे मेल खाता है। करकंडचरिउमें जो अपभ्रंश काव्यकी घत्ता कडवक छंदात्मक टकसाली रचना पायी जाती है उसी शैलीसे पद्मावतकी दोहा-चौपाई रूप हिन्दी रचनाका आविष्कार हुआ स्पष्ट दिखाई देता है। यह शैली हिन्दी काव्यमें बहुत लोकप्रिय हुई और तुलसीदास कृत रामायण द्वारा उसे बड़ा गौरव प्राप्त हुआ।

(देखिये – ही ला जैन दी सोर्सेज आफ पद्मावत – मध्यभारती – १ जबलपुर वि वि १९६३)

तेरापुर और वहाँके लयन [गुफाएँ]

ग्रंथकी चौथी और पाचवी सन्धियोंमें करकंडु महाराजके तेरापुर पहुँचने, वहाँकी पहाड़ीमें एक गुफा और उसमें विराजमान पार्श्वनाथ भगवान्का दर्शन करने, गुफामें एक जलवाहिनी प्रकट कराने, तथा वहाँ तीन और गुफाओंके बनवानेका विशद वर्णन है। यदि कनकामरका वर्णन सच है तो ये गुफाएँ आज भी किसी न किसी रूपमें वर्तमान होना चाहिये? पर उनका पता लगानेसे पूर्व तेरापुर कहाँ था इसका निश्चय होना चाहिए। करकंडु अंगदेशकी चम्पापुरीसे चोल, चेर आदि दक्षिणके राज्योंकी तरफ जा रहे थे तभी उन्हें तेरापुर मिला था। अत दक्षिणापथमें ही उसे होना चाहिये। खोज करनेमें हैदराबाद राज्यके उस्मानाबाद जिलेमें एक 'तेर' नामक स्थान मिला है। यह उस्मानाबाद शहर जिसका अभी कुछ ही पूर्व धाराशिव नाम था, से बारह मील उत्तर पूर्वकी ओर है। वहाँ अब चौदह वाड़ियाँ (छोटे छोटे ग्राम) बसे हुए हैं। इसी 'तेर'को डॉक्टर फ्लीटने इतिहासप्रसिद्ध, प्राचीन तगरपुर ठहराया है। मेरा अनुमान है कि यही कनकामर कविका तेरापुर है। कविके दिये हुए वर्णन और इस स्थानकी परिस्थितिके सूक्ष्म मिलानसे इस अनुमानमें कोई सन्देह नही रहता। कनकामरके अनुसार करकंडु तेरापुरसे दक्षिणकी ओर जाकर ठहरे थे। वहाँसे कुछ दूर पश्चिमकी ओर एक पहाड़ीके चढ़ावपर उन्हें वह गुफा मिली। वही एक तालाबके होनेका भी उल्लेख है। आज भी ये सब बातें उसी प्रकार विद्यमान हैं। तेरके पास पहाड़ी भी है। उसकी बाजूमें गुफाएँ भी हैं। एक तालाब भी मौजूद है। इस तालाबमें कमल भी होते थे जो कुछ वर्षोंसे नष्ट हो गये हैं। अब वहाँकी गुफाओंका वर्णन देखिए। करकंडूने जिस गुफाके दर्शन किये उसे कविने 'सहसखंभलयन' कहा है। कवितामें सहस्रका अर्थ साधारणत अनेक, बहुत-से जिनकी संख्या बिना सावधानीसे गिने न जानी जा सके, लेना चाहिए। वर्तमान प्रधान गुफा बड़ी विशाल है। इसका बरामदा अठहत्तर फुट लम्बा और साढे दस फुट चौड़ा है जिसमें पुराने सात आठ खंभे रहे होंगे। एक बाजूमें कुंडवाला कमरा है जिसमें दो खंभे हैं। पाँच दरवाजे भीतर शालामें जानेके लिए हैं। यह शाला पचीस फुट लम्बी और लगभग उतनी ही चौड़ी चौकोर आकारकी है। यहाँ बत्तीस खंभे दोहरे चौकोर आकारमें हैं, बारह भीतरी चौकोरमें और बीस बाहरी। इस बृहत् शालाकी प्रत्येक बाजूमें आठ-आठ कमरे हैं जो प्रत्येक नव फुट चौकोर हैं। फिर गर्भ-गृह कोई बीस फुट लम्बा और पन्द्रह फुट चौड़ा है। यहाँ पाँच फुटकी पार्श्वनाथ भगवान्की काले पाषाणकी पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इस गुफाको यदि कवि सहसखंभ कहे तो कोई बड़े आश्चर्यकी बात नही है।

कविने गुफाके भीतर एक जलवाहिनी प्रकट होनेका वर्णन किया है। जब करकंडुने गुफाकी मूर्तिके दर्शन किये तो सिंहासनपर उन्हें एक गांठ दिखी। उस गांठको उन्होंने तुड़वायी और वहाँसे एक भारी जलका प्रवाह निकल पड़ा। गुफाके भीतर अब भी जलकुंड है। जिस कमरेमें जलकुंड है वह सत्रह फुट लम्बा और बारह फुट चौड़ा है। इसी कमरेमें एक सप्तफणी नागसहित पार्श्वनाथ भगवान्की प्रतिमा है। दो पाषाण और भी हैं जिनपर भी जिनप्रतिमाएँ खुदी हैं। कमरेके भूतलमें दो छिद्र भी हैं जिनका सम्बन्ध कुंडसे है। जान पड़ता है, करकंडूके समयमें यही गर्भगृह था। वर्तमान गर्भगृहमें जो मूर्ति है सम्भवत वही करकंडुको पहाड़ीके ऊपर बामीमें गड़ी हुई मिली थी। बड़ी शालाकी बाजूके कमरेमें भी जमीनमें एक छिद्र है जो सदैव पानीसे भरा रहता है। इससे कनकामर द्वारा वर्णित जलवाहिनीके प्रकट होनेकी बात भी सत्य प्रतीत होती है।

कविने कहा है कि जलवाहिनी प्रकट करानेसे पूर्व करकंडुने एक लयन चिनवायी और फिर विद्याधरके कहनेसे दो और लयन बनवायी। मैंने लयन चिनवानेका तात्पर्य मूलके प्रसंगानुसार 'पुरानी लयनको मरम्मत करवाई' ऐसा लिया है। किन्तु यह भी सभव है कि जलवाहिनीमे समस्त गुफाके नष्ट हो जानेके भयमे करकंडुने पहले भी एक नयी ही गुफा निर्माण करायी हो और दो फिर पश्चात्। इस प्रकार पुरानी गुफा सहित चार गुफाएँ हुई। ये ही चार गुफाएँ पहाडीके इस भागमे आजतक विद्यमान है। यदि करकंडु द्वारा बनवाई दो ही नयी गुफाएँ मानी जावें तो तीसरी गुफा किसीने और पीछे बनवायी होगी। इन सब गुफाओंमें जहाँ प्रतिमाएँ है वहाँ अधिकत पार्श्वनाथ भगवान्‌की ही है, महावीर भगवान्‌की तो एक भी प्रतिमा नही है। इससे भी इस सस्थानके पार्श्वनाथ भगवान्‌के तीर्थमें निर्माण किये जानेकी बात पुष्ट होती है।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि कनकामर द्वारा उल्लिखित तेरापुर यही 'तेर' है तथा करकंडुकी निर्माण करायी हुई गुफाएँ वर्तमान गुफाएँ ही है। इनके समीप जो धाराशिव नामका नगर बसा है, सभवत उसका नाम इसी जलधाराके कारण पडा। करकंडुने तेरापुरके राजाका नाम शिव सुना था। शुभचन्द्रने तेरापुरके दो भिल्लो 'धारा' और 'शिव' नामधारियोका उल्लेख किया है। यह भी सम्भव है कि वहाँ कोई शिवका मदिर बननेसे वह नाम पडा। मूल गुफाके सामने जो आजकल शिवका मदिर है वह बहुत प्राचीन नही है।

पहली गुफा किसने बनवायी ?

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जिस प्राचीन गुफाको करकंडुने तेरापुरमे बनी पायी वह किसने बनवायी होगी। यह प्रश्न करकंडुको भी उपस्थित हुआ था और उन्हे एक विद्याधरने इसका उत्तर दिया था। सौभाग्यसे कनकामरने उसका वर्णन अपने ग्रथमे किया है। विद्याधरने करकंडुसे कहा था कि दक्षिण विजयार्ध-में नील और महानील नामके दो विद्याधर भ्राता राज्य करते थे। शत्रुओसे पराजित होकर वे वहाँसे भागे और तेरापुर आये। यहा उन्होने धीरे धीरे एक राज्य स्थापित कर लिया। एक मुनिने उन्हे जैन धर्मका उपदेश दिया और उन्होने फिर वह गुफा-मदिर बनवाया। है तो यह पौराणिक कथा, किन्तु खोज करनेसे इसमें कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्रतीत होता है। आठवी शताब्दि और उसके पश्चात्‌के कई शिलालेखोमें एक शिलाहार नामके राजवंशका उल्लेख मिलता है। इनकी तीन शाखाओने क्रमश उत्तर कोकण, दक्षिण कोकण तथा कोल्हापुरके आसपास राज्य किया। तीनो शाखाओके राजाओने अपने शिलालेखोमें अपनेको 'जीमूत वाहन विद्याधरके वशज' तथा 'तगरपुरके अधीश्वर' कहा है। इससे विदित होता है कि उनके पूर्वजोने कभी तगरपुरमें राज्य किया होगा। तगरपुर वही 'तेर' व कनकामरका तेरापुर सिद्ध हो चुका है। अतएव शिलाहार वशके सम्बन्धकी उक्त दो बातोपर-से ऐसा प्रतीत होता है कि यह वश सम्भवत कनकामर द्वारा कथित नील महानीलसे ही चला। कथासरित्सागरमें वर्णन है कि जीमूतवाहन विद्याधरोका राजा था। उसने एक बार अपने दान और त्यागकी बडी प्रशसा की इसीसे वह पदभ्रष्ट हो गया। वहींपर दक्षिण विजयार्ध या वेदार्धका भी वर्णन है, और बताया गया है कि हिमाचल पर्वतकी दो श्रेणिया है, कैलाससे उत्तरकी श्रेणी उत्तर वेदार्ध और दक्षिणकी दक्षिण वेदार्ध कहलाती है। कथासरित्सागरसे यह भी पता चलता है कि एक बार वत्सदेशके नरवाहनदत्त और विजयार्धके विद्याधरोके बीच बडा घोर युद्ध हुआ था जिसके अन्तमें विद्याधर हार गये और नरवाहनदत्तके अधीन हो गये। सम्भवत यही शत्रुबल था जिससे पराजित होकर नील और महानील विद्याधर दक्षिणको गये। पद्मगुप्तकृत नवसाहसाकचरित नामक सस्कृतकाव्यमे नर्मदाके दक्षिणमे एक विद्याधर राजकुलका उल्लेख है। इन विद्याधरोने मालवाके सिन्धुराजकी सहायता की थी। इस प्रकार कनकामरकी कही हुई बातोकी अन्य ग्रथो तथा शिलालेखोसे भी पुष्टि होती है। इससे अनुमान होता है कि सभवत नील महानीलके वशज ही शिलाहार वशके नामसे प्रसिद्ध हुए, और या तो स्वय नील महानीलने ही या उनके किसी वशजने तेरापुरकी प्रचीन गुफा बनवायी। इतिहाससे पता नही चलता कि इस वशका राज्य तेरापुरमें कब रहा। वह बहुत प्राचीन कालमें रहा होगा। इससे भी उन गुफाओके पार्श्वनाथके तीर्थमें

वननेकी बात अयुक्ति-सगत सिद्ध नही होती ।

जिस पार्श्वनाथकी मूर्तिको करकडुने पहाडीके ऊपर बामीमे-से निकालकर गुफामें स्थापित की उसके सबध-मे कहा गया है कि दो अग्ग विद्याधर उसे मलयदेशमे पूदी पर्वतपर रावणके एक वशजद्वारा बनवाये हुए जिन मदिरसे लाये थे । यह पूदी पर्वत सभवत वर्तमान मालाबारके अन्तर्गत पोदियल नामकी पहाडी ही होगी ।

करकंडचरिउकी भाषा

करकडचरिउकी भाषा वही अपभ्रश है जिसका इतिहास व स्वरूप अन्यत्र विस्तारसे प्रगट किया जा चुका है[1] । सक्षेपत भाषाके सम्बन्धमे अपभ्र श शब्दका सर्वप्राचीन उल्लेख महर्षि पतञ्जलि कृत महाभाष्य (ई० पू० द्वितीय शती) मे पाया जाता है जहाँ उन्होंने कहा है कि एक-एक सस्कृत शब्दके बहुत-से अपभ्रश होते है, जैसे एक सस्कृत शब्द गौके गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि अपभ्रश । यहाँ स्पष्टत अपभ्रशसे किसी भाषा-विशेषका तात्पय नही है, किन्तु सस्कृतके सभी विकृत या देश-प्रचलित रूपान्तरोंको अपभ्रश कहा गया है । भरतने अपने नाटयशास्त्र (ई० ३०० के लगभग) सस्कृत और देशीके अतिरिक्त 'विभ्रष्ट' भाषा-का उल्लेख किया है जो आभीरोंकी बोली थी और जिसमे उकारकी बहुलता पायी जाती थी । भामह (६ ठी शती) ने गद्य व पद्य काव्यको भाषाकी दृष्टिसे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश इन तीन भेदोंमें विभक्त किया है । दण्डीने अपने काव्यादर्श (ई० ६०० के लगभग) मे तथा भामहके तीन भेदोंमें मिश्र और मिलाकर चार भेद कहे है । तथा पतञ्जलि और भरतके मतोका समन्वय करते हुए कहा है कि आभीर आदि जनोंकी बोलीमे जो काव्यरचना की जाती है उसे अपभ्रश कहते है, किन्तु शास्त्र (व्याकरण शास्त्र) मे तो सस्कृतके अतिरिक्त जो शब्द रूपान्तर पाये जाते वे सब अपभ्रश माने गये है । स्पष्ट है कि दण्डीके कालमे अपभ्रश काव्य-रचना प्रचलित हो चुकी थी । इस काव्यरचनाने इतनी प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर ली थी कि वल्लभीके नरेश धरसेन द्वि० (ई० ६००के लगभग) के सम्बन्धमे उनके एक ताम्रपत्रमे गर्वके साथ कहा गया है कि वे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश इन तीनो भाषाओंकी प्रबन्ध-रचनामे निपुण थे ।

छठी शतीमें अपभ्रशकी इस प्रतिष्ठाके प्रकाशमे कोई आश्चर्यकी बात नही जो गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (ई० ४०० के लगभग) के समकालीन महाकवि कालिदासने अपने विक्रमोर्वशीय नाटकके चतुर्थ अकमें अपभ्रशका भी प्रयोग किया हो । जैसा प्रो० वेलणकरने उक्त नाटककी प्रस्तावनामें सिद्ध किया है, नाटकके वे अश प्रक्षिप्त माननेका कोई कारण नही है । शक ७०० (ई० ७७८) मे रचित अपनी कुवलयमालामें अपभ्रशका उल्लेख व यत्र-तत्र प्रयोग तो किया ही है, साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट उल्लेख किया है कि उनसे पूर्व रचित कथामे कौतूहल नामक कविने भी किंचित् अपभ्रशका प्रयोग किया था । यह कथा निस्सन्देह कोऊहल कृत लीलावती ही है जो अब प्रकाशित हो चुकी है (भा० वि० भवन, बम्बई १९४९) और जिसकी भाषाके सम्बन्धमें उसके विद्वान् सम्पादक डॉ० आ० ने० उपाध्येने कहा है, "Scrutinised from this point of view, we find in the dialect of Lilavati good many traits which are not usual in Prakrit or Maharashtri, but are quite normal in Apabhramśa as described by Hemacandra and as current in literature. (Intro P 84) अर्थात् इस दृष्टिसे छानबीन करनेपर हमें लीलावतीकी भाषामे ऐसे बहुत-से लक्षण मिलते है जो प्राकृत या महाराष्ट्रीमें साधारणत नही पाये जाते, किन्तु उस अपभ्रशमें वे सुप्रचलित है जिसका वर्णन हेमचन्द्रने किया है व जो साहित्यमें पायी जाती है । आठवी शतीसे तो अपभ्रश काव्यकी प्रौढ और सुविशाल

---

१ देखिए मेरी प्रस्तावना णायकुमारचरिउ, सावयधम्मदोहा व पाहुडदोहाकी, तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भा० ५० अक १–४, परमात्मप्रकाशको प्रस्तावना डॉ० ए० एन० उपाध्ये कृत एव जी० व्ही तगारे कृत हिस्टोरिकल ग्रामर आफ अपभ्रश ।

अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं जिनके प्रधान महाकवि हैं स्वयभू और उनके पुत्र त्रिभुवन, पुष्पदन्त, कनकामर, धनपाल आदि जिनकी रचनायें सुसम्पादित होकर प्रकाशित भी हो चुकी हैं।[1]

उक्त प्रकाशित सामग्रीके सद्भावमे यहाँ न तो अपभ्रंश साहित्यके इतिहासका और न उस भाषाके स्वरूपका विस्तारसे वर्णन करना आवश्यक है। केवल करकडचरिउके एक कडवक मात्रके भाषात्मक विश्लेषण द्वारा यहाँ प्रयुक्त अपभ्रंशका सस्कृत प्राकृतके साथ साम्य और वैशिष्ट्यका स्पष्टीकरण पर्याप्त होगा। इस कार्यके लिए ग्रथका प्रथम कडवक ही ले लीजिए। पूरे कडवकमे हमें लगभग एक सौ भिन्न शब्द दिखाई देते हैं। इनमें मार, पुरि, वास, तिमिरहर, परम, विलय, चरण, करण, देव, सेव, पार, मार, बीज, रण, हरण, हस, वारि, केवल, वाम, वासव, सरोरुह, कमल, वधु, वधुर, गुण, रस, बहुल, सिन्धु, भव, भय, महा और फल, ये बत्तीस शब्द शुद्ध तत्सम हैं। जिन शब्दोमे केवल 'न' के स्थानमे रूढि अनुसार 'ण' उच्चारणसे भेद पड गया है वे हैं – विणास, लीण, विहीण, जिणवर, दमण, जण, णिवह, णिवास, णिरजण, भजण, मडण, भुवण और णर ये तेरह शब्द। जहाँ केवल, या णत्वके अतिरिक्त, श या ष के स्थानपर दत्य स हो जानेसे भेद पड गया है वे शब्द हैं – विणास, सिव, सरण और णिवास ये चार। जहाँ णत्व व सत्व रहित या सहित मध्य व्यजनका लोप होकर य अथवा व श्रुति हुई है, या नही हुई वे शब्द हैं – पाव (पाय), दिणयर (दिनकर), पय (पद), अणुवम (अनुपम), कलिय (कलित), आविय (आपित), भुवगम (भुजगम), गइ (गति), रहिय (रहित), सुयण (सुजन), राय (राज), हसोवम (हसोपम), -यण (-जन), हुआसण (हुताशन), वारिय (वारित), सपय (सम्पदा), सय (शत), सेविय (सेवित), णिय (निज), समिच्छिअ (समिच्छित-इष्ट), ये बीस। जहाँ केवल, अथवा उपर्युक्त एक व अधिक विकारोके अतिरिक्त सयुक्त व्यजनका समीकरण व किसी एकका लोप हुआ है, एव कही स्वरका ह्रस्व-दीर्घत्व आदि भेद पड गया है वे शब्द हैं – सरमि (स्मरामि), देविंद (देवेन्द्र), फणिंद (फणीन्द्र), णरिंद (नरेन्द्र), कम्म (कर्म), मत (मन्त्र), गह (ग्रह), कयत (कृतान्त), कय (कृत), पसस (प्रशम), सासय (शाश्वत) और हियय (हृदय), ये बारह। जहाँ ख, ध आदि महाप्राणोके स्थानमें ह का आदेश हुआ है वे शब्द हैं – सुह (सुख), महोवहि (महोदधि), पह (पथ), दुह (दुख), बुह (बुध), कोह (क्रोध) और होइ (भवति) ये सात। जहा स्वरभक्तिके द्वारा सयुक्त वर्णका सरलीकरण किया गया है वे शब्द हैं – सिरि (श्री), भविय (भव्य), और सुमरत (स्मरन्) ये तीन। वर्ण–परिवर्तन णाण (ज्ञान) सजम (सयम) तथा घर (गृह) इन तीन शब्दोमें दिखाई देता है। इस प्रकार ये ६२ शब्द तद्भव हैं। देशी केवल एक डरिय (पतित) कहा जा सकता है, क्योकि वह किसी सस्कृत शब्दसे उत्पन्न नही प्रतीत होता। सामान्यत इस कडवकको प्रमाण मानकर कहा जा सकता है कि करकडचरिउमें लगभग तेतीस प्रतिशत शब्द तत्सम व उससे द्विगुणित तद्भव शब्द हैं, एव देशी शब्द प्राय एक प्रतिशत। इस प्रकरणमें यदि प्राकृतसे अपभ्रंशका कोई वैशिष्ट्य है तो यह कि यहा मध्य व्यजन लोप एव य और व श्रुतिका बहुलतासे प्रयोग पाया जाता है, जब कि शौरसेनीमें त के स्थानपर द एव थ के स्थानपर कही-कही ध भी पाया जाता है, तथा सेतुबध व गाथासप्तशतीमें प्रयुक्त महाराष्ट्रीमें मध्यव्यजन लोप तो बहुलतासे अपभ्रंशके समान ही पाया जाता है किन्तु वहा य व श्रुतिका प्रयोग नही किया गया।

व्याकरणकी दृष्टिसे अपभ्रंशकी अपनी बहुत विशेषतायें हैं जो उसे सस्कृत और प्राकृत दोनोसे पृथक् निर्दिष्ट करती हैं। उदाहरणार्थ, उपर्युक्त कडवकमे प्रयुक्त दो वाक्योको ले लीजिए। प्रथम वाक्य है – 'सरमि चरणु सिरिजिणवरहो' दूसरा वाक्य है – 'तव चरण णमतहो मणे सुमरतहो होइ समिच्छिउ फलु णरहो'।

---

१ प्रकाशित व अप्रकाशित अपभ्रंश साहित्यके लिए देखिए हरिवशकोछडकृत अपभ्रंश साहित्य (दिल्ली, वि० स० २०१३)

इनका सस्कृत रूपान्तर होगा 'स्मरामि चरण श्रीजिनवरस्य' और 'तव चरणे नमत मनसि स्मरत भवति ममिष्ट फल नरस्य।'

इन वाक्योपर-से ही हमे अपभ्रशकी कारक-रचना तथा क्रियारूपोकी कुछ झलक मिल जाती है। 'ममिच्छिउ फलु' कर्ता कारक एक वचन है, और चरणु तथा चरण कर्मकारक एक वचन और बहुवचन। अत कर्ता और कर्मकारक एकवचनकी विभक्ति 'उ' अपभ्रशकी विशेषता है, जिसके कारण ही भरतमुनिने उसे उकारबहुल भाषा कहा है। इस विभक्तिका विकास सस्कृत स् = विसर्गसे हुआ है जो सघोष वर्णोसे पूर्व सधिके नियमानुसार 'ओ' हो जाता है। प्राकृतमे यही 'ओ' कर्ता एकवचनकी विभक्ति बन गया। यही 'ओ' लघुप्रयत्नके द्वारा अपभ्रशमे 'उ' हुआ है। दूसरी कारक विभक्ति ध्यान देने योग्य है षष्ठीका 'हो' जो उक्त वाक्योंके जिणवरहो, णमतहो, सुमरतहो व णरहो मे दिखाई दे रही है। इसका विकास सस्कृतकी 'स्य' और उसके प्राकृत रूप 'स्स' विभक्तिसे हुआ है। 'मणे' मे सप्तमीकी 'ए' विभक्ति है जो सस्कृत-प्राकृतके समान है। इसके स्थानपर 'म्मि' भी आती है जो प्राकृतमे भी पायी जाती है और सस्कृतकी 'स्मिन्' से विकसित हुई है। अन्य कारक विभक्तियाँ गौण है।

क्रिया रूप उक्त दो वाक्योमे 'सरमि' और 'होइ' ये दो ही आये है। उत्तम पुरुष एकवचन वर्तमान कालिक 'मि' प्रत्यय सस्कृत व प्राकृतके समान है, और अन्य पुरुषका 'इ' सस्कृतके 'ति' मे त् का लोप होकर बचा हुआ स्वर है।

इस प्रकार ग्रथके अन्य खण्डोका भी विश्लेषण करके देखनेपर हमे अपभ्रशका वही स्वरूप प्राप्त होता है जो मै णायकुमार चरिउकी भूमिकामें विस्तारसे दिखला चुका हूँ।

इस ग्रथमे एव अपभ्रश रचनाओमें अन्यत्र सर्वत्र एक यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहाँ सस्कृतमे ए और ओ स्वर दीर्घ अर्थात् द्विमात्रिक ही है, वहाँ अपभ्रशमे, विशेषत प्रत्ययोमे, वे ह्रस्व अर्थात् एक मात्रिक भी पाये जाते है जिन्हे प्रकट करनेके लिए उनकी मात्राओ एव ए को इस सस्करणमें उलटे टाइपमें मुद्रित कराया गया है। यही एक मात्रिक ए और ओ कही-कही इ और उ का रूप धारण किये हुए है।

करकडचरिउके छन्द

णायकुमारचरिउकी प्रस्तावनामे मैंने उसके छन्दोका विस्तारसे परिचय करा दिया है, तथा मयणपराजयचरिउकी भूमिकामे उसके छन्दोके अतिरिक्त वदिक व सस्कृत छदोके विकासका भी कुछ निर्देश किया है। इनमे अपभ्रश काव्योमे बहुलतासे प्रयुक्त प्राय सभी छन्दोका विवरण आ गया है। करकड-चरिउमे प्रयुक्त अधिकाश छन्द भी उन्हीमें-से है अत उनका यहाँ सक्षिप्त उल्लेख ही पर्याप्त होगा।

करकडचरिउकी दश सधियोमें क्रमश १७ २१, २२, १७, १९, १६, १६, २०, २४ और २९ कुल २०१ कडवक है। इनमें निम्नलिखितको छोडकर सबमे पज्झटिका छद प्रयुक्त हुआ है जिसके प्रत्येक चरणमें सोलह मात्राएँ होती है, अन्तमें जगण अर्थात् लघु, गुरु और लघु मात्रायें आती है, एव प्रत्येक दो चरणोमें परस्पर यमक (तुक मिलान) होता है। अन्य जो छन्द प्रयुक्त हुए है वे निम्नप्रकार है—

२ अलिल्लह—यह छन्द पज्झटिकाका ही एक रूप है जिसमे मात्राओकी सख्या व तुक उसी प्रकार रहती है। विशेषता केवल यह है कि अन्तमें गुरु लघु मात्रायें न होकर दोनो ही लघु होती है। ऐसे एक-एक दो-दो यमक अनेक कडवकोके बीच पाये जाते है जैसे–१, १, ६, १, २, २-३, २, १०, १-२, २, १०, ६, २, १४, ४, २, १५, ४, २, १९, ७, ३, ३, ६ ३, १९,४,६, १५, १, १०, २९

३ पादाकुलक—यह भी पज्झटिकाका एक प्रकार है जिसमे १६ मात्रायें और यमक तो उसी प्रकार होता है, किन्तु उसकी अन्तिम मात्राओके लघु-गुरु होनेका कोई नियम नही अतएव जिनमे पज्झटिका व अलिल्लहके पूर्वोक्त नियम घटित नही होते। इसका प्रयोग निम्न पद्योमें

पाया जाता है – १, ५, २, ७, १-३, २, १६, ५, ३, ४, २-३, ३, २०, ३, २१, १, ३, २१, ३-८, ३, २२, १-३, ४, १४, १, ४, १५, ८, ५, ९, १-७, ५, १०, ५ १३, ६, ५, ६, ७, ५, १, ७, १४, ८, १९, १, ९, ५, १०, १, १०, ६ १०, ९ १०, १५, १-३

इसमे बहुधा चरणकी अन्तिम मात्रा यद्यपि लघु दिखाई देती है, तथापि छन्दकी दृष्टिमे उसे गुरु ही मानना पडता है। अलिल्लह और पादाकुलकका यह भेद इतना सूक्ष्म है कि कहीं कहीं एक ही यमकका प्रथम चरण अलिल्लह और द्वितीय पादाकुलक पाया जाता है, जैसे–९, ५, ८।

४ समानिका – यह वर्णात्मक चरणोंवाला यमक सहित वर्णवृत्त है जिसकी गण-व्यवस्था है – र ज ग ल है। इसका प्रयोग १-७, १-८, १-१२, १-१३, १-१७ (आधा) ३-१७, ५-१, ७-१०, ८ ५, और १०-१७ कुल १० कडवकोंमे पाया जाता है।

५ तूणक – इस छन्दका प्रत्येक चरण समानिकाका द्विगुणित होता है, किन्तु अन्तमे गुरु-लघु न होकर मात्र एक गुरु वर्ण ही होता है जिससे प्रत्येक चरणमें वर्णोंकी संख्या सोलह न होकर पन्द्रह ही रह जाती है। इसका प्रयोग १-१७के अन्तिम पाँच यमकोंमे किया गया है।

६ स्रग्विणी – यह भी वर्णवृत्त है जिसके प्रत्येक चरणमे बारह वर्ण चार रगणके रूपमे रखे जाते है। इसका प्रयोग ३-१४ और ८-२ इन दो कडवकोंमें हुआ है।

७ दीपक – इसके प्रत्येक चरणमें दश मात्रायें होती है और अन्तमे लघु मात्रा आती है। प्रयोग ३-१५, ३-१८, ५-११, ९-७ और ९-२० इन पाँच कडवकोंमे देखिये।

८ सोमराजी – इस वर्णवृत्तके प्रत्येक चरणमे छह वर्ण य य गणानुसार पाये जाते है। इसका प्रयोग ४-१६ व ८-४ इन दो कडवकोंमें पाया जाता है। इस छन्दका दूसरा नाम सखनारी भी है।

९ भ्रमरपदा या भ्रमरपद्दा – यह एक षट्पदी गेय छन्द है जिसके प्रत्येक चरणमें चौबीस मात्राएँ होती है तथा १० और १८ मात्राओंपर यति। इसका प्रयोग ७-११ में करुण रसात्मक विलापके लिए बहुत उपयुक्त रूपसे किया गया है। इस छन्दका नाम मुझे नयनन्दि कृत सुदसणचरिउमे मिला जहाँ उसका प्रयोग ८, २६ तथा ११, ६ में पाया जाता है।

१० चित्रपदा – इस वर्णवृत्तके प्रत्येक चरणमें आठ वर्ण दो भगण और दो गुरुके रूपमे पाये जाते है। इसका प्रयोग ८-३में देखिये।

११ प्रमाणिका – इस वर्णवृत्तके प्रत्येक चरणमें आठ वर्ण ज र गण और दो गुरुके क्रमसे आते हैं। प्रयोग ९-३में देखिये।

१२ चन्द्रलेखा – यह विषमपदात्मक छन्द है जिसका प्रथम चरण सोलह मात्रिक पद्धडिया होता है और उसका यमक पद्धडियाके आधे अर्थात् आठ मात्राओंके द्वितीय चरणके साथ बैठाया जाता है। इसका प्रयोग १०-२६ कडवकमें देखिये। इसका नाम भी मुझे नयनन्दिकृत सुदसण चरिउमें मिला जहाँ इसका प्रयोग २-९ और १०-७में आया है।

१३ घत्ता – यह छंद विविध प्रकारका होता है, और उसका प्रयोग प्रत्येक कडवकके अन्तमे किया जाता है। एक सन्धिमें वह प्राय एक रूप ही रहता है और इसीलिये वह ध्रुवक कहलाता है। प्रस्तुत ग्रंथकी प्रत्येक संधिके प्रारम्भमे एक-एक ध्रुवक पाया जाता है। प्रथम संधिका ध्रुवक व घत्ता षट्पदी है जिसके प्रत्येक चरणमें ३१ मात्रायें है तथा १० और १८पर यति है।

शेष समस्त संधियोंका ध्रुवक चतुष्पदी है और चरणके बीच पन्द्रह मात्राओंके पश्चात् यति पायी जाती है। परन्तु कहीं-कहीं घत्ता ऐसे भी आये है जिनमे प्रथम यति तो १५ मात्राओंपर ही है, किन्तु दूसरे चरण-भागमें १२,१३ या १४ मात्रायें ही है, १५ या १६ नहीं। उदाहरणार्थ, देखिये, ९-४, ९-६, ९-७, ९-१०, १०-७ आदि कडवकोंके घत्ते।

INTRODUCTIO

CRITICAL APPARATUS

In preparing the present edition of Karakandacariu the editor has fully collated four MSS (DJNS) and has consulted one recent MS (J2) They are as follows

MS D This ms is deposited in Bābā Dulichand's Bhandār in the Terāpanthi Digambara Jaina temple of Jaipur It was collated on the spot Leaves 61, size 10½" × 4¾", lines per page 12, letters per line about 37, margin right and left 1¼", top and bottom ¾" Leaves No 12 and 60 as well as 62 on which the colophon was obviously continued are missing The incomplete colophon is as follow

॥ छ ॥ समाप्तमिद करकण्डचरित्र ॥ छ ॥ छ ॥

संवत् १५९७ वर्षे शाके १४६१ प्रवर्तमाने दक्षिणायने श्रीसूर्ये फाल्गुणमासे कृष्णपक्षे द्वादश्या तिथौ रविवारे मूलनक्षत्रे श्रीमूलसघे नद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनन्दि-देवास्तत्पट्टे भ० श्री शुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री प्रभाचन्द्रदेवास्तत्शिष्यमडलाचार्य श्री धर्मचन्द्रदेवास्तदाम्नाये खडेलवालान्वये गोधागोत्रे साहानादा तद्भार्या नयणश्री तत्पुत्र साह मेहा तद्भार्ये द्वे प्रथमा मेहादे द्वितीया सुहागदे तत्पुत्रौ द्वौ प्रथम साहकरमा .(Incomplete)

From this we learn that the ms was completely copied on Sunday the 12th of the dark fortnignt of the month Phālguna in samvat 1597 equivalent to A D 1540, for a layman of the Khandelwal caste and Godhā gotra whose spiritual genealogy was as follows

Kundakundācārya

Padmanandi
|
Śubhacandra
|
Jinacandra
|
Prabhācandra
|
Dharmacandra (A D 1540)

MS J This ms belongs to the Pātodi Digambara Jaina temple of Jaipur Leaves 68, size 10" × 4½", lines per page 11, letters per line about 36, margin right and left 1", top and the bottom ⅓" Leaf No 19 which contained Kadavakas 18, 19, 20 and a part of 21 of Sandhi 3 is missing It bears the following colophon

॥ छ ॥ सवत् १५५८ वर्षे कार्तिक वदि तीज ३ बुधवासरे आर्द्रनक्षत्रे श्री मूलसघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुदकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवा तत्पट्टे भट्टारकश्रीजिनचन्द्रदेवा तत्पट्टे भट्टारक-

श्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवा तत्पट्टे भट्टारकश्रीविद्यानन्दिदेवा तत्पट्टे भट्टारकश्रीसिंघकीर्तिदेवा. तत् शिष्य ब्रह्मचारि . स्वहस्तेन लिखित कर्मक्षयार्थम् । शुभ भवतु ॥ छ ॥ श्री ॥ ज्ञानवान् ज्ञानदानेन etc.

From this colophon we learn that the ms was copied on Wednesday the 3rd of the dark fortnight of the month of Kārttika in Samvat 1558 equivalent to 1502 A D, by a pupil of Bhattāraka Simhakirti for whom the following genealogy is given

Kundakundācārya
|
Padmanandi
|
Jinacandra
|
Devendrakirti
|
Vidyānandi
|
Simhakirti (A D 1551)

MS N This is a ms acquired by the editor during one of his tours in search of mss Leaves 87, size 10" × 4¼", lines per page 9, letters per line about 32, margin right and left 1¼", top and bottom ¾" The first and the last leaves are missing as also leaves Nos 15, 73 and 75 Leaves Nos 25, 26 and 60 are written in a different hand on different paper These seem to have been substituted later in place of the leaves worn out or lost It is an important ms. as it has supplied many variant readings and a few additional lines which have been given in the present edition in foot-notes No colophon is available as the ms goes only upto almost the end of Kadavaka 28 of the 10th Sandhi But in appearance it seems to be of the same age as mss D and J

MS S This ms belongs to the Senagana Bhandār of Kāranjā It was the earliest to be discovered by the editor and forms the basis of the present edition Leaves 103, size 11" × 5", lines per page 8, letters per line about 35, margin right and left 1½", top and bottom 1" It is written in a bold and beautiful hand and is well preserved It bears Sanskrit and Vernacular glosses on the margin Unfortunately, it gives no information about its date or place of copying But it appears to me to be some what later in age than the mss D and J It ends as follow

समाप्तमिदं करकंडचरित्र ॥ छ ॥ छ ॥ श्री ॥ श्री ॥

MS J2 This ms belongs to Ailak Pannālal Saraswati Bhavana of Bombay Leaves 51, size 12½" × 7¾", lines per page 13, letters per line about 40, margin right and left 2" top and bottom 1" It bears the following colophon

समाप्तमिदं करकण्डुचरित्र । श्लोक सङ्ख्या १७०० ॥ हस्ताक्षराणि अजमेरागोत्रोत्पन्न फूलचन्द्रेण जयनगरमध्ये लिखितमिदमस्ति । संवत् १७७८ मिति कार्तिक कृष्णाऽष्टमी चन्द्रवासरे लिखितम् ॥ शुभं भूयात् । कल्याणमस्तु ।

From this we learn that the copy was completed by Phoolchand Ajmera on Monday the 8th of the dark fortnight of Kartika in Samvat 1978 equivalent to 1921 A D at Jaipur Thus, it is only thirteen years old On examination I found out that it was copied from ms J with which it agrees throughout and omits the portion contained in the missing leaf of the former The copy is a very poor performance being full of mistakes and omissions It is a telling example of how old literature can not now be well preserved by means of copies made by persons who have absolutely no knowledge of the language I did not think it worth while to take down variants from such a second hand, recent and ill-executed ms though I went through it and tried to check the readings of ms J from it

SUMMARY OF KARAKANDACARIU

I The poet begins the work by proclaiming victory to Jina and expressing his own humility and memory of the writers of yore like Siddhasena, Samantabhadra, Akalanka, Jayadeva, Svayambhu and Pushpadanta Then the story begins In the Jambudvīpa and Bharata-kshetra there was the beautiful country of Anga in which was situated the prosperous city of Campā Its powerful and righteous king Dhādivāhana once went to Kusumapura and saw there a beautiful girl brought up by a gardner who told him that he recovered her from a box found floating in the Ganges by his wife The king examined the box closely and learnt from the inscription on the seal that she was the daughter of Vasupāla king of Kausāmbi and that her name was Padmāvati He then married her and returned with her to his capital In due course she became pregnant and entertained a desire to dress herself like a man, and ride about the town on an elephant in drizzling rain in the company of her husband It was summer but arrangements to satisfy her longing were made by the aid of the rain-deity (Meghakumāra) Unluckily, the elephant on which the royal couple was riding suddenly became restive and ran away towards the forest The queen prevailed upon the king to save himself by catching hold of the branch of a tree and leave her to her own fate The elephant, with the queen on its back, reached a deep lake where the queen jumped off and entered the forest which was dry and deserted Suddenly, however, the forest became green and full of blossom This extraordinary event was reported to the forest-guard in Dantipura, who instantly came there and met the queen resting under a tree He addressed her as his sister and induced her to accompany him home But there the gardener's wife Kusumadattā became jealous and apprehensive of her beauty and soon found out an excuse to drive her away The queen bent her way to the cemetery where she gave birth to a son

II No sooner was the child born than a certain Mātanga appeared there and attempted to take the child away Being challenged by the mother he told her that he was in reality a Vidyādhara of the Vijayārdha mountain Once he was

out for a joy-ride in his aerial car with his wife, when his car suddenly stopped While investigating the cause of the interruption, he saw below him a sage absorbed in meditation Taking him to be the cause, he got very angry and drew out his sword to kill him But the sage cursed him as a result of which he lost his Vidyā Being softened by his importunities, however, the sage modified his curse by the rider that he would regain his Vidyā when Padmāvatī's son, born in the cemetery and brought up by himself, will acquire the throne of Dantipura This, he said, was the reason why he was taking the child away with him The queen consented and the Mātanga brought the child home and handed it over to his wife saying that it was her child Padmāvatī, in her double bereavement, joined a nunnery and took vows from sage Samādhigupta The child grew in the home of the Mātanga who, having observed dry scab on his hand, gave him the name of Karakanda He instructed him in all arts and sciences and illustrated to him the benefits and evils of good and bad company by means of stories One day the king of Dantipura died leaving no natural heir to the throne behind The ministers of the state applied a divine method for selecting the king They released an elephant with a jar full of water in its trunk and charged it to empty the jar over him who may be destined to be the king The elephant passed through the town, came to the cemetery and emptied it over the head of Karakanda When the citizens were bewailing their lot and the ministers were hesitating to acknowledge a Mātanga as their prince, the guardian of Karakaṇḍa, having regained his Vidyā, appeared on the scene in all his glory and assured them all about the high parentage of the lucky boy who was then hailed with joy by all

III Karakanda was then led into the capital on an elephant with all the paraphernalia of royalty and was installed king One day, while passing through the town, he saw a man carrying female portrait in his hand At its sight Karakanda became enamoured He learnt from the man that the portrait was of the daughter of Ajavarmā, king of Girinagara, in the Soratha country, and that her name was Madanāvalī She had heard the glories of king Karakaṇḍa sung by the Khecaras and had become love-sick Her father had sent him in search of the object of her love On hearing this the king revealed his identity and despatched reliable persons to bring Madanāvalī whom he subsequently married During the marriage-celebrations his mother paid a visit to him

Soon after the marriage, there arrived a messenger from the king of Campā who claimed homage from Karakanda In wrath, the latter dismissed the ambassador and led an invasion against Campā He crossed the Ganges and besieged the capital of his enemy A fierce battle ensued during which victory swung now to one side and now to another, till the forces of Karakanda were completely routed Karakanda then recalled the Vidyā which was imparted to him by his god-father, the Mātanga-Vidyādhara, and began to deal personally with his

powerful opponent At a critical stage of the combat his mother Padmāvati suddenly appeared and turned the battle-field in to a scene of family affections The father embraced the son and led him into his capital with rejoicings He subsequently renounced the kingdom in favour of his son in order to lead an ascetic life and attain salvation

IV Having consolidated all his dominions Karakanda once asked his minister whether there was any person who did not acknowledge his suzerainty, and on being told that the Coda, Cera and Pandya kings of the South did not pay homage to him, he sent an ambassador to those kings He was, however, dismissed with scant courtesy by them In wrath, Karakanda took a vow that either he would place his foot on their heads or renounce the world He then marched out with a vast army and reached Terāpura He halted in the vicinity of the town The king of the place called Siva came to pay him a friendly visit From him Karakanda learnt that on a hill to the west of that place there was a cave-temple of a thousand pillars and on the top of the hill there was a huge anthill which was regularly worshipped by an elephant Being struck with curiosity, Karakanda accompanied by Siva, mounted the hill on the slopes of which he found the cave containing a Jina image Climbing further to the top he saw the anthill and in his very presence an elephant came which fetched water and lotuses from the neighbouring lake and worshipped the anthill Karakanda amused himself by the scenery of the beautiful lake and then caused the anthill to be excavated Exactly as he had anticipated, an image of Pārśvanātha flashed forth from the deep The king conveyed it to the cave where, on the lion seat, he noticed a patch On inquiry from an old artisan of the town he learnt that it was the mouth of a fountain of water His curiousity was aroused He caused the patch to be scraped off and, lo ! water gushed forth with great force, and filled the whole cave The king became repentant fearing the destruction of the cave-temple The guardian Vidyādhara of the cave, however, appeared and consoled the king,

V On inquiry by the king as to who built the cave-temple, the Vidyādhara informed him as follows In the city of Rathanepura situated in the Southern Vijayārdha there ruled two brothers Nila and Mahānila Being pressed by enemies they fled and came to Terāpura where they gradually built a kingdom They were converted to Jainism by a Muni and excavated the cave-temple dedicated to Pārśvanātha At this time, another two Vidyādhara brothers from the Northern Vijayārdha made a religious trip to Lankā On their way, they saw a beautiful Jina temple on the Pudi hill in the Malaya country and from there they picked up a fine Jina image While returning home they temporarily deposited the image on the Terāpura hill and went for worship into the Jina temple On their return they tried to lift up the image but it would not move Seeing no other way, they buried the image in a box at the very spot Later, they learnt from a sage that the place where they had left the image was destined to become a holy spot and that one of the brothers in his next birth will gain enlightenment there. At this

information the brothers renounced the world and became ascetics Amitavega, the elder, by his holy practices, died and attained heaven, while the younger, Suvega, spoiled his religious austerites by hypocracy as a result of which he was born an elephant in the next birth Amitavega came to know of the misfortune of his younger brother, reminded him of his fate and preached religion to him Thus the elephant became a worshipper of the holy spot where they had buried the image Later, when he found that the image was removed from there he took sanyāsa and went to heaven after death The Vidyādhara then advised Karakanda to construct one more cave on the upper side of the previous cave Karakanda more than fulfilled this pious wish of the Vidyādhara by excavating two more caves

While Karakanda was yet encamping there, a wild elephant came to drink water from the lake Catching the smell of the army-elephants, it advanced towards the camp which was atonce thrown into a tumult The king came out with his arms but the elephant suddenly vanished out of sight Returning to his camp he found, to his utter amazement, Madanāvali missing The search that followed proved futile In his overwhelming sorrow, he was consoled by a Sura who told him the story of his former birth He had a pet parrot which was once attacked in its cage by a snake That snake was reborn as a Vidyādhara who had now assumed the form of an elephant and stolen his wife from him He, however, assured the king that he would regain her when he returned from his victorious campaign The Sura revealed his own identity as no other than the king's parrot in his former birth The king doubted the possibility of his ever regaining Madanāvali and to remove his doubts the Vidyādhara cited the example of Naravāhanadatta whose story is told in the next chapter

VI This chapter is entirely taken up by the story of Naravāhanadatta told by the Vidyādhara to Karakanda

VII The Vidyādhara then advised Karakanda to march away immediately as he had observed a good omen Accordingly, the king marched away and reached the Simhala island He encamped in the vicinity of the capital and went into the neighbouring woods for sport He saw a big bunyan tree of which he pierced all the leaves by means of his shots This fact was reported to the king of the place who thereupon desired to see him But Karakanda would not care to visit his palace unless the king came personally to invite him So the king himself came out and conducted Karakanda to his palace where he met princess Ratīvegā who instantly fell in love with him They were then married Taking leave of his father-in law Karakanda, with his new wife and large dowries, sailed off During the voyage, they encountered a sea-monster which threatened their boat The king drew forth his sword and jumped into the sea He succeeded in killing the monster but was himself carried away by a Vidyādhari His disappearance caused a great commotion in the boats To the young bride it was a great

shock and she burst forth into heart-rending lamentations The minister who was on board consoled all and brought them to the shore where they all encamped Ratıvegā devoted herself to the worship of goddess Padmāvati who appeared in person and informed her of the fate of her lord who had been taken by the Vidyādhari to Tilakadvīpa and had been married by her He had also shown great valour in killing the enemy of the Vidyādhari's father and in recognition of this achievement all the Vidyādharas had accepted him as their master The goddess then assured Ratıvegā that her lord will return to her with a large fortune. On Ratıvega's expressing her doubts about the truth of the forecast, the goddess set forth to illustrate her prophecy

VIII Ratıvegā asked the goddess to tell her whether any person who had gone away like her husband had ever come back On this the goddess narrated to her the story of king Aridamana, and saying that, like him, her husband will also soon return, she went away Ratıvegā, thence forward, passed her time in the practice of religious vows and alms-giving, till, one day, Karakanda arrived there with his new wife After passing a few days there in merry-making he resumed his course of conquest of the Dravida country He defeated the Coda, Cera and Pandya kings in an open fight, took them prisoners, and, as promised, touched their crowns with his foot But when he saw Jina-images on the tops of the crowns, he felt remorseful, released the prisoners and offered to reinstate them in their kingdoms But the latter replied that their sons would, thence forward, serve him, and retired to forest for penance Karakanda, then turned his way back and came to Terāpura where Madanāvali had been abducted There, the Vidyādhara brought her back to him and recounted to him the events of his past lift-how he, as a serpent, had attacked his pet parrot, but was warded of by him, and how he, being subsequently crushed under the hoof of a horse, was imparted the Navakāramantra by a sage as a result of which he became a Vidyādhara and avenged himself by abducting his past enemy's wife He then bowed down to the king and asked for pardon. The Vidyādhara then went his way and the king retnrned to Campā where he ruled happily for many days

IX One day, when the king was sitting in the assembly, the forest-guard came and reported the arrival of sage Sīlagupta Hearing this, the king rose from his seat to honour the auspicious report, and then caused the happy news to be proclaimed in the capital by beat of drum He then marched out in a procession for paying homage to the holy guest On his way, he saw a woman piteously weeping and woefully beating her breasts On inquiry, he learnt that the sorrow for her child which was snatched away by the hand of Death had brought about the wretched condition in the woman who was once so happy This account aroused feelings of renunciation in the mind of the king who then began to brood over the frailty of the mortal world, the miseries of existence, the helplessness of man and such other problems of life. In this contemplative

and pious mood, he reached the sage whom he honoured and from whom he received a religious sermon

X At the end of the sermon, the king asked the sage the reason why his hand had dry scab when the rest of his body was so comely, why his mother was carried away by the elephant and thus separated from his father who loved her so deeply, and why his own wife Madanāvali was abducted by the Vidyādhara In answer to the first question the sage said that in Terāpattana there once lived a pious merchant Dhanamitra His cow-boy, while looking out for the buffaloes one night, saw an extraordinarily big and beautiful lotus in a lake He plucked it, but while walking away with it, he was interrupted by a Sura who told him that since he had plucked a flower which was inaccessible even to gods, he should offer it at the feet of one who may be the highest and most worshipable being on earth, failing which he would be killed Dhanadatta agreed to this and thought his master who was respected by all people to be worthy of the flower But when he approached his master and told him about his intentions, the latter took him to the king thinking him to be more worthy But when the king was approached, he thought sage Yaśodhara to be worthier The latter himself, when approached, directed them to Lord Jina as the worthiest of all Dhanadatta then worshipped the Jina with that flower as a result of which he was born the son of the king of Campā in Karakanda's person, and since he performed the worship without washing off the slime from his hands, he had inherited the dry scab

As to his second question, the sage said that in the city of Srāvasti there once lived a merchant named Nāgadatta whose wife Nāgadattā became faithless to him and seduced a Brāhmana boy, who was brought up in the family, to make love with her The merchant came to know of her faithlessness and retired to forest in sheer disgust He practised penance, attained heaven and was reborn as the son of king Vasupāla of Campā and was named Dhādīvāhana In the mean-while, the Brāhman boy, having lead the life of a debauch, died and was reborn as an elephant in the country of Kalinga Nāgadattā, through her faithlessness, was reborn in Tāmralipti and in due course, became the wife of a merchant named Vasumitra She got two daughters Dhanavati and Dhanaśri who were married to two merchants in Nālandā and Kauśāmbi respectively Vasumitrā died and the widowed Nāgadattā went to live with her younger daughter who induced her to take the vow of not dining at night Subsequently she went to her elder daughter who caused her to break the vow In this way she took the vow thrice and thrice was it broken However, she visited her younger daughter the fourth time, died there and was reborn as the daughter of king Vāsupāla of Kauśāmbi, who, considering her birth to be inauspicious, put her in a box and threw her into the Jumna, whence it was carried into the Ganges and recovered by the gardener of Kusumapura She grew up and became Padmāvati the mother of Karakanda

In reply to the third question of the king, the sage repeated the story of the parrot and the snake which had already occurred twice before (V, 18, VIII, 20)

On hearing all this, Karakanda became disgusted with the world At this stage, his mother Padmāvatī also arrived there and the sage gave her a discourse on the religious efficacy of fasting during the course of which he narrated the story of Sumitrā who subsequently became Arjuna. Padmāvatī took the vow and, in due course, attained heaven Karakanda also relinquished the throne for his son Vasupāla and became an ascetic His many wives followed suit and attained heaven Karakanda toured through many countries, practised severe penances, acquired omniscience and shaking off the mortal coils attained ever-lasting bliss

THE INTERVENING STORIES AND THEIR SOURCES

The bulk of the present work is considerably increased by no less than nine independent stories, short and long, introduced to illustrate some point in the main story Four of these are recited by the god-father of Karakanda in order to explain to him the fruits of magic skill,[1] the penalty of ignorance,[2] the evil consequences of low company[3] and the advantage of noble company[4] These stories are brief and occupy no more than four kadavakas each. They seem to have been taken from folk-lore The story of the appearance of the elephant in Sandhi V, 14, and its onslaught on Karakanda's forces reminds us of the story of Priyaṃvada who, in the form of an elephant, rushed upon the army of Aja on the bank of the *Narmadā* in the Raghuvaṃśa of Kālidāsa, canto V The story of Naravāhandatta, recited by a Vidyādhara in order to assure Karakanda how he might still hope to get back his lost wife, occupies the whole of the sixth Sandhi Naravāhanadatta, as we know, is the hero of the Kathā-sarit-sāgara of Somadeva, the Bṛhat-kathā-mañjarī of Kshemendra and the Bṛhat-kathā-śloka-saṃgraha of Buddhaswāmi Our story is in substantial agreement with the account found in those works, though it varies in detail from them about as much as they differ among themselves It appears, our author had used some version of the Bṛhat-kathā of Guṇādhya The episode of Madanāmara of this story being turned into a parrot by the curse of a sage's daughter[6] reminds us of a similar incident occurring in the Kādambarī of Bāṇa, which is itself based on the Bṛhat-kathā, where Mahāśvetā turned Vaiśampāyana into a parrot for a similar *indiscretion* due to the madness of love Within the framework of the story of Naravāhanadatta, we have the interesting story of Mādhava and Madhusūdana[5] recited by a sage to the hero in *order* to illustrate the evil results of revengeful feelings Current fiction seems to be the source of this story, as well as of the story of a good omen[7] which follows the story of Naravāhanadatta from the mouth of the same Vidyādhara Another long story is that of Aridamana[8] which is told by goddess Padmāvatī to Rativegā in her

1 II, 10 11 3 II, 14 15 5 VI, 12 7 VII, 1-4
2 II, 13 4 II, 15 18 6 VI, 4-7 8 VIII, 1-16.

separation from her husband It occupies almost the whole of the eighth Sandhi. It is an interesting legend of a sea-voyage, fondering, separation, and ultimate reunion The account of the parrot at the beginning of this story atonce reminds us of the parrot which was introduced to king Śūdraka in Bāna's Kādambari. The big Śālmali tree full of nests, the party of hunters and the parrot's reaching the residence of ascetics and acquiring knowledge of the Śāstras, strike one as similarly described in both The story also occurs in the Kathā sarit-Sāgara X, 3 and must have been present in Gunādhya's Brihat-Kathā from where Bāna borrowed his theme The method of escape of the parrot, however, is different in the present work While the parrot in Kādambari was yet very young and escaped by the oversight of the fowlers, our parrot was more grown up and wise and showed a great skill in planning not only its own escape but of the whole pack For this part of his story the author probably drew his inspiration from the story of the deer and the crow in the Hitopadeśa where the latter saved the former by a similar plan The author also seems to have had in his mind the story of the pigeon-king Citragriva in the Pancatantra The story of Sumitrā[1] told by the sage to the mother of Karakanda is a fanciful fairy tale very much similar to the story of Vatsarāja occurring in Bhāvacandra Suri's Śāntinātha-carita which belongs to a much later date[2] These nine stories together constitute about one-fourth of the whole book

Karakandacariu, and particularly the part of the story dealing with Karakanda's visit to Simhala island, marriage of the Simhala princess, his return by the sea, sepration from his new wife and the story of Aridamana with the wise parrot, sea-voyage, fondering of the boat, the separation and reunion seem to have inspired works like the Rayanasehariīkahā in Prākrit by Jinaharsagani in the 14th century, and Padmāvata in Hindī by Malikmuhammad Jāyasī in the 16th century

POPULARITY OF THE HERO

The hero of this work has the unique distinction of being reconized as a saint in the hierarchy of Buddhism as well as Jainism[3] He is the first of the four Pratyekabuddhas, the other three being Durmukha, Nami and Naggai To the Bauddhas, a Pratyekabuddha (Pali-Paccekabuddha) meant one enlightened by himself, who attains supreme insight, but dies without proclaiming the truth to the world He has his hair and beard shaved, is dressed in yellow robes, is detached from all family and tribal connections and dwells in the Nandamūla cave on the

1 X, 18 22 2 Hindi translation, Calcutta, 1924 p 227

3 Dr Jarl Charpentier, in his book Paccekabuddhageschichten, Upsala, 1908, has collected many references to Karakanda and other names associated with him Besides the Karandu Jātaka (see Appendix A), he mentions the Dadhivāhana Jātaka (No 186) which is only vaguely connected with Karakanda through the name of his father In his attempt to find some Brahmanic parallel also, the author, following up the clue furnished by Devendra's story (see Appendix B), collects many epic and Pauranic mentions of the Candālas of Vātadhāna who became Brahmanas But he has failed to find out any real recognition of Karakaṇda in the Brahmanic literature,

Himālayas[1] The same four Pratyekabuddhas are recognized by the Śvetāmbara Jainas in their canonical books[2] The Digambaras have also recognized them as worshipful beings who attained perfection in conduct without being instructed by anybody else[3] But neither their number is specified nor their names given and we do not find much literature on them At one place, however, they are attributed with the compilation of a part of the Jaina canon[4]

Comparing our story with the Buddhist Jātaka, we find the hero in the latter work named Karandu and his parents and his capital are given the same names as in our work The father is named Dahivāhana and the Sanskrit translators of our story have translated Dhādivāhana of our work by Dadhivāhana The hero is said to have ultimately resigned the kingdom and become a saint The comparison ends here, and there is nothing that is common in the details of the narrative of the two stories The story given by Devendra in Prakrit agrees better with our story, and the first part of it up to the coronation of the hero on his paternal throne of Campā is more or less similarly described in both The southern campaign of Karakanda is, however, entirely wanting in Devendra's account Besides a few deferences in detail in the two narratives,[5] there is one remarkable improvement in Devendra's version The manner of Dhādivāhana's escape from the runaway elephant, leaving his wife to her fate, strikes one as very unchivalrous in the present work, but Devendra's account is free from the fault Had this version been known to our author he would certainly have adopted it

If Karakanda is to be regarded as a historical person, and as we shall see, he ought to be so recognized, the only period to which he can be assigned is prior to the 5th century B C The Jainas say that he flourished between the period of lord Pārśvanātha and of Mahāvīra, and the Bauddhas put him prior to the advent of Buddha In as much as he is recognized as a saint by the Bauddhas as well as the Śvetāmbara and Digambara Jainas, he has to be assigned to a period sufficiently removed from the origin of Buddhism as well as the sectarian split amongst the Jainas

1 Majjhima Nikāya III, 86, Samyutta Nikāya I, 92, Jātaka 408, for which see Appendix A

2 Uttarādhyayana Sūtra XVIII, 46-47

करकण्डू कलिंगेसु पंचालेसु य दुम्मुहो । नमी राया विदेहेसु गन्धारेसु य नग्गई ॥
एए नरिन्दवसभा निक्खन्ता जिणसासणे । पुत्ते रज्जे ठवेऊण सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥

3 In the Pratishthāpātha of Jayasena, for example, the Pratyekabuddhas are thus invoked .

अन्योपदेशविरहेऽपि सुसंयमस्य चारित्रकोटिविषय.स्वयमुद्भवन्ति ।
प्रत्येकबुद्धमतय खलु ते प्रशस्यास्तेषां मनाक् स्मरणतो मम पापनाश. ॥६७२॥
ओं ह्रीं प्रत्येकबुद्धत्व-ऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

4 In one manuscript of Sukumālacarita in Sanskrit, deposited in a Bhandār at Jaipur, I found the following verse

अंगपूर्वप्रकीर्णानि रचितानि गणाधिपै प्रत्येकबुद्धयोगीन्द्रै श्रुतकेवलिभिर्मुदा ॥२५॥

5 See introduction in Hindi, page 17 and 19.

The old literature which I have been able to find out on Karakanda is as follows

BUDDHIST

1 The story of Karandu forming part of the Kumbhakāra Jātaka (Jātaka No 408)[1]

ŚVETĀMBARA

2 Uttarādhyayana Sūtra XVIII, 45, mentions Karakandu as the king of Kalinga who, like Durmukha of Pancāla, Nami of Videha and Naggai of Gandhāra, renounced his kingdom in favour of his son and became a sage[2]

3 Sāntisūri, in his commentary called Sishyahitā on the Uttarādhyayana Sūtra, gives the story of Karakandu, like Devendra He is said to have died in Samvat 1096=1040 A D[3]

4 Devendra, in his commentary called Sukhabodhā on the Uttarādhyayana Sūtra, gives the story of Karakandu This work, according to the praśasti, was completed at Anhila-pātana in Samvat 1129=1073 A D[4]

5 A pupil of Cāritravijaya wrote Pratyeka-buddha caritra in Sanskrit verse This work does not seem to be very old[5]

6 Śubhaśīlagani, in his Kathākosha, gives the story of Karakanda[6]

7 Samayasundara Upādhyāya wrote Karakandu-chaupai in Hindi verse about the beginning of the 17th century[7]

DIGAMBARA

8 Śrīcandra, in his Kathākosha written in Apabhramśa, has included the story of Karakanda He wrote about two generation after the time of Mūlarāja of Anhilavād of the 10th century and during the reign of Karna (Chalukya)[8] The story is in substantial agreement with our version

9 Śubhacandra, helped by Sakalabhūshana, wrote Karakanducaritra in Sanskrit verse in Samvat 1611=1555 A D This work is a translation of Kanakāmara's work which it follows quite closely, not omitting even the intervening stories The author has, however, no where recognized the debt I have used a manuscript of this work in writing the notes[9]

10 Raidhu is said to have written Karakanducarita in Prakrit[10]

1 Appendix A
2 Dr Charpentier's edition, Upsala, 1922
3 Pattāvali samuccaya, Viramgaon, Gujrat, 1933, p 54, 153
4 Charpentier's Introduction to Uttarādhyayana, p 56, Appendix B
5 Printed, Jamnagar, 1920
6 Translated by Tawney
7 Misra bandhu vinoda part I, p 378
8 Allahabad University Journal Vol I p 170
9 The MS belongs to the Balātkāra gana Bhandar, Kāranja
10 दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ by Nathuram Premi

Probably this work was also written in Apabhramśa as most of the known works of Raidhu are in Apabhramśa He flourished in the 15th century[1]

11 Jinendrabhūshana Bhattāraka is said to have written Karakandu-carita in Prakrit about 1676 A. D[2]

12. Śridatta Pandit is attributed with the authorship of a Karkandu-carita[3]

13 Rāmacandra Mumukshu wrote a collection of stories in Sanskrit called Punyāśrava-kathā-kosha in which he has included the story of Karakandu One of the Mss of this work is dated in Samvat 1558=1501 A D[3]

14 Nemidatta wrote Arādhanā-kathā-kosha in Sanskrit verse in which he has included the Karakanda story[4]

15 Karakandu-svāmi-ki-kathā in Hindi verse based on the Ārādhanā-kathā-kosha of Nemidatta[5]

16 The present work of Kanakāmara

AUTHORISHIP, TIME AND PLACE OF COMPOSITION OF THE WORK

In the colophon at the end of each of the nine sandhis of the work we are told that the Karakanda-Mahārāja-carita was the composition of Muni Kanayāmara (Sk Kanakāmara) The name also occurs in the ending verse of each Sandhi where, however, it also gives a sense suitable to the context From these mentions we know that the author's name was Kanakāmara and that he was a Muni i e an ascetic A few more particulars about the author are obtained from the second introductory stanza of the work and the last two stanzas which form the author's praśasti Here we are told that the author Kanakāmara was born in a Brahmana family of the Candā-rishi-gotra This gotra cannot, however, be identical with the *Candrakula* which is said to have been a division of the Vajra Śākhā sprung from the *Kotika gana*, and to whose different branches Śāntisūri the author of a commentary on Uttarādhyayana (11th century), and Devendra's teacher Amaradeva (12th century) belonged,[6] because these authors were Śvetāmbara, while Kanakāmara was avowedly a Digambara monk It is in all probability identical with the Chandrakarāchāryāmnāya mentioned in the Bahuriband Jaina Temple inscription of the time of the Kalachuri king Gayā Karnadeva[7], and no wonder if it is also associated with the Chandrātreya Rishi Vamśa of the Chandela princes themselves In the introductory stanza as well as the

1 दशलाक्षणिक जयमाल, Intro, Bombay 1923

2. दिगम्बर जै ग्रं क और उनके ग्रंथ।

3 Hindi translation by Nathuram Premi, Bombay 1907

4 Text and Hindi translation, Bombay 1915

5 Devaband 1910

6 Charpentier Uttarādhyayana sūtra introduction p 54 & 57

7 Corpus Inscriptionum Indicarum Vol IV, 1955, p. 310.

Praśasti, the author mentions the name of his teacher as the learned Mangaladeva (Budha Mangaladeva or Pandit Mangaladeva) who may be identical with the author of Dharma-ratnākara a compilatory work on Jaina religion and philosophy[1]

Our work does not mention the time of its composition, nor have I been able to discover any mention of the author in other works Thus, we are thrown upon the internal evidence of the work to determine its date Of the four old manuscripts used for preparing the text of the edition, the two from Jaipur are dated in Vikrama samvat 1558 and 1597 respectively Therefore V S 1558 i e. A D 1502 is the *terminus ad quem* for the date of the work For fixing the upper limit we have the mention of Siddhasena, Samantabhadra, Akalamkadeva, Jayadeva, Svayambhu and Puspadanta at the beginning of the work[2] The first of these is the celebrated author of the Nyāyāvatāra and other works There has been a large amount of controversy about his date which fluctuates between the first century B C and the 7th century A D[3] Five works of Samantabhadra have so far come to light His date has also been a subject of controversy and he has been assigned to various dates between the 2nd and the 7th cent A D. What we are absolutely certain of, is that he lived prior to 705 A D when the Harivamśa purāna of Jinasena which mentions him, was completed[4] Akalankadeva is the author of many works His date is also uncertain though some inscriptional and literary records connect him with the court of Sāhasatunga who is generally identified with the Rāshtrakuta king Krishna I, and therefore he is assigned to the middle of the 7th century A D[4] No work of Jayadeva has so far come to my knowledge but he is mentioned by a later day author Mallibhūshana in his Nāgakumāracarita, as the first of those who wrote a life of Nāgakumāra[5] Svayambhu is known to be the author of two large Apabhramśa works He flourished between the 7th and the 10th century A D.[6] Pushpadanta has now become well known by his three Apabhramśa works, namely, Mahāpurāna, Jasaharacariu and Nāyakumāracariu which have already been published His Mahāpurāna is proved to have been completed in A D 965

Thus, of the six authors mentioned by Kanakāmara the latest to have lived is Pushpadanta In fact, the author seems to hava mentioned them in their

1. I saw a ms of this work in the Balātkāra gana temple at Kāranja It consists of 151 leaves and was copied in samvat 1667 At the end of the work the author says—

   क्षतं मयेदं सकलादिशास्त्र रत्नाकराख्यं बुधमगलेन ।
   नीत्वा रहस्य च समस्तशास्त्रात् नदत्वहो वै चिरकालमूर्ज्यां ॥?

   The time of the composition of the work is unknown (See Catalogue of C P & Berar Mss and दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ by Pt Nathuram)
2. I, 2, 8-9
3. Dr P L Vaidya Nyāyāvatāra, Bombay, 1928, Introduction
4. Catalogue of C P & Berar Mss, introduction
5. H L Jain Nāyakumāracariu, introduction p. XXI.
6. H L Jain; Apabhramśa literature, Allahabad University Journal, I, p 169, and Nagpur University Journal Vol. I, 1935.

chronological order. Therefore A D 965 proves to be the *terminus-a-quo* for the date of our author

In the author's praśasti mentioned above, there is some information of historical value which may ultimately help to determine precisely the date of our author Here the author says that he produced the work at Asaiya town, out of regard for the minister to whom king Vijavāla was attached, who was a veritable mirror to the face of king Vijavāla, who attracted the mind of king Bhūvāla and who amused the heart of king Kanna Thus, the kings mentioned seem to be named Vijayapāla, Bhūpāla and Karna who lived within the life time of a single minister and who actually ruled at Asaiya or had it included in their kingdom.

After a long search, I feel inclined to identify these kings with those mentioned in a few obscure inscriptions which have not yet been assigned their proper place in the royal dynastic lists The first of these inscriptions is the Damoh Stone Inscription which was discovered in the Hatta Tahsil of Damoh in C P, and is now deposited in the Nagpur Museum[1] It is written in Apabhramśa with a free translation in Sanskrit It recites that one Vijayapāla Kshatriya was born in the Viśvāmitra Gotra He conquered a hero named Kai His son was Bhuvanapāla who defeated the Kalacuris, the Gujaras and the Deccan kings[2] Rai Bahadur Hiralal thinks that this inscription probably belongs to the 12th century and that the persons named in the record were, perhaps, commanders of armies and possibly, related to the Guhila princes of Mevād in which dynasty there was one Vijayasimha who married Syāmaladevi daughter of Udayāditya of Mālwā by whom he had a daughter Alhanadevi who married Gayākarna of Dāhala[3] The second record is a fragmentary inscription found at Kalinjar which speaks of a king named Bhūmipāla the son of Vijayapāla, and goes on to say, after a lacuna, that the son had made himself the ornament of the southern direction and had vanquished the ocean-like Karna[4] Bhūmipāla is found mentioned in a

1 Rai Bahadur Hiralal Inscriptions in C P & Berar Nagpur 1932 p 55

2 The following lines of the inscription are taken from the Nāgarī Pracārinī-Patrikā Vol VI, p 5, compared with a hand rubbing copy of the inscription kindly furnished by R B Hiralal

विसामित्त गोत्त उत्तमचरित विमल पवित्तो गाण ।
अरघड घडणो संसजिय डूवह्णो भूवाण ॥
डूवह्णो पटि परिठिअउ खत्तिय विजयपालु ।
जेणे काइउ रणि विजिणिउ तहु सुअ भुवणपालु ॥
कलचुरि गुजर ससहरहु दक्खिण चड्ड सुड भड ।
चहुरा अहरण विजिणण हरिसराअ भुजदड ॥

3 Inscriptions in C P & Berar, p 55

4 Nilakantha Inscription No II, JASB Vol XVII I am obliged to Prof V V Mirashi for kindly drawing my attention to this inscription as well as the one next mentioned It contains the following lines

अजनि विजयपालस्तत्सुतो भूमिपाल शितरकरवालध्वस्तराजन्यमाल. ।
सूनु. कुम्भोद्भवाभो नमितावनीभृत्
यो दक्षिणाशाभरणीकृतात्मा कर्णार्णवं तूर्णमपाचकार ॥

third fragmentary inscription found at Tewar[1] All the three inscriptions, on palaeographic grounds, are assigned to the 12th century A D. My idea is that the Vijayapāla of the Damoh inscription is identical with the Vijayapāla of the Nilakantha inscription of Kalinjar and that the Bhuvanapāla of the first inscription is identical with the Bhūmipāla of the other two inscriptions, and further that the Vijayapāla and Bhuvanpāla or Bhūmipāla of these inscriptions are identical with kings Vijavāla and Bhūvāla mentioned by Kanakāmara

It is not quite easy to fit in these kings in any of the known dynastic lists, but the locality of the inscriptions as well as their contents tempt one to look for their identification amongst the rulers of Bundelkhanda of the 11th or 12th century In the Candela dynasty of Kalinjar we find mention of a king named Vijayapāla who succeeded Vidyādhara, a contemporary of king Bhojadeva of Malwa One of the sons of this Vijayapāla proved very illustrious He scored a victory over the mighty Karnadeva Kalacuri and annexed his southern dominions[2] This event was commemorated by the production of a drama Prabodhacandrodaya in Sanskrit Can we not take this son of Vijayapāla as identical with our Bhuvanapāla, Bhūmipāla or Bhūvāla who in one inscription is said to have defeated the Kalacuris and in another king Karna? The only difficulty is that in the Prabodhacandrodaya as well as in a few inscriptions, this king's name has been mentioned as Kirtivarma But this may have been his other name, probably assumed after his victory over Karna Prior to this victory, Karna had raided the Candela kingdom It was, probably, during this period of Karna's ascendancy that Kanakāmara wrote his Karakandacariu and mentioned his patron minister as the delighter of the heart of Kanna narinda

If these identifications are accepted, there is no difficulty in fixing the time of the composition of the work From several inscriptions it is known that Karna, Vijayapāla and Kīrtivarma alias Bhuvanapāla, Bhūmipāla or Bhūvāla ruled at least between 1040-1051 A D Our work, therefore, may have been composed about this time i e middle of the 11th century

Āsāiya where the work was produced must have therefore existed some where in Bundelkhand It could now easily be identified with village Āsāpurī in the vicinity of Bhopal in M P where an image of Āsāpurī Devī and a Jaina temple in ruins with a 16ft image of Shantinātha still exist[3]

A brief account of some of my inconclusive attempts at the identification of the kings mentioned by Kanakāmara and the place where he wrote, may, now,

1 Indian Antiquary Vol XX, p 85 The following broken lines have been read—

4 महासमुद्रात्साधं श्रिया समभवद् भुवि भूमिपाल

7 ... ...त्रिपुरीयचतु पथे ।

8 . निवास श्री सिंहपुर्यम् ॥

2 नागरी प्रचारिणी पत्रिका Vol XII p 357 and 367

3 Bhopal State Gazetteer (1908) p 90

be given here for the benefit of those who might make a further attempt in the field At the very outset of my inquiry I came across the following note in the Archaeological Survey Report for 1872-73 by Alexander Cunningham, p. 183, on Āsāpurī :-

"Twelve miles to the south-west of Baijanāth (in the Punjab) there is a lofty hill crowned with a temple dedicated to Āsāpurī Devi It was built, according to an inscription, by Vijayarāma the eldest son of Rājā Candrabhāna" So far it was very encouraging, for, Āsāpurī might be our Āsāiya and Vijayarāma may be the same as Vijayapāla But the note went on to mention yet another two inscriptions of the same king dated in Samvat 1744 and 1721 which showed that this Vijayarāma could never be the same as our Vijayapāla, who, as we have seen, must have lived prior to Samvat 1558 In the same work, however, I found another reference which definitely connected the locality with Jainism We are told that in the temple of Baijanāth there is placed, in one corner, a stone with a Jaina inscription This I found published in Epigraphia Indica Vol I page 118 The first part of it runs thus

ओ० संवत् १२९६ वर्षे फाल्गुण बदि ५ रवौ कीरग्रामे ब्रह्मक्षत्रगोत्रोत्पन्न व्यय० मानूपुत्राभ्या व्य० दोल्हण-आल्हणाभ्या स्वकारित श्री महावीरदेवचैत्ये श्री महावीरजिनमूलबिंबं आत्मश्रेयोर्थं कारित

This means that in Samvat 1296=1240 A D two merchants Dolhana and Alhana, sons of merchant Mānu of Brahma-kshatra Gotra built a temple at Kīragrāma and installed therein the image of Mahāvīra Kīragrāma is in the Kangra district of the Punjab where the Baijanāth temple exists The names of the two merchants mentioned here are similar to those of the three sons of the minister who patronised our poet But such names are freequent amongst the Rājpūts This was all, and nothing further could be discovered about the locality.

The names of the kings, and more particularly, those of the minister's sons, suggested to me Rājpūtānā as a possibly hopeful field Looking into the 'Annals and Antiquities of Rājpūtānā' by James Tod[1] I found mention of Āsi a fortress which was assigned to Anurāj by his father Bisāldeo who reigned about A. D. 1064 as the ruler of Bundi State It was, most probably, this very Āsi which was mentioned by Alberuni when he says "Marching from Kanoj towards the South-west, you come to Āsi eighteen parsakhas from Kanoj"[2] Āsi, I thought, may do for Āsāiya The son of Anurāj was Ishatpāl which showed that the kings of this dynasty did bear names ending in Pāla, and in the Cauhāna genealogy we find two names Kan Rāe and Vijayarāj which resemble our Kanna and Vijavāla The latter i e Vijayarāj is said to have been the adopted successor to Prithurāj[3] and they appear to have lived about 1100 or 1200 A D But,

1 Oxford 1920, p 1461

2 Each parsakha being equal to four miles or one kuroh (krosha) Alberuni's india vol I Trubner's Cr S p 202

3 It is also said by James Tod that his name was on the pillar at Delhi (?)

firstly, there is no direct connection between Kan Rāc and Vijayrāj as would be necessary, if they were to be accepted as those mentioned by our author. Secondly, they are separated from each other by nearly two generations Thirdly, they were junior members of the family and are not shown to have reigned any where, and, lastly, the list is compiled from the accounts of bards without much corroborative evidence Therefore, they are mere names to us and no emphasis could be laid upon their identity

Passing on to other Rājpūt dynasties I found the mention of Vijayachandra in the Gahaiwāl dynasty of Kannoj Two copper plates of his dated A D 1168 and 1169 respectively, and two stone inscriptions both of A D 1169 have come to light [1] Probably this same king is mentioned as Vijayapāla in Prithvirāja-raso [2]

In the Solanki dynasty of Gujrāt there was one Karṇa who ruled from A D 1064 to 1094 He was the son of Bhīma He had three ministers Munjal, Sautu, and Udaya, the last two of whom built Jaina temples. Udaya had five sons Āhada, Chāhada, Bāhada, Ambada and Solla Karna's son was Siddharaj Jayasimha [3]

Amongst the Rāṇās of Chittor is mentioned one Karansimha who was the son of Samarsi, whom he succeeded in A D 1193 His son was Mahup [4]

In the same dynasty, a little earlier, we find mention of Vijayasiṃha the son and successor of Vairisimha One of his inscriptions is dated in A D 1116 [5] His daughter Alhanadevi was married to Gayākarna of the Kalacuri dynasty of Cedi for whom we have epigraphical records of A D 1122 and 1151 Kings that succeeded Vijayasimha in order, were Arisimha, Chodasimha and Vikramasimha, but nothing, in particular, is known about them The last was succeeded by Ranasiṃha who is also called Karnasimha, Karanasimha or Karna [6]

These mentions, by themselves, do not justify any identification with any of the kings mentioned by Kanakāmara, because any identification must not only suit the time of our author, but must also explain the mention of the town and of the other two princes A variant reading in place of 'णिवमूवालहो' is found in Ms J which reads it as 'णिय भुवालहो' If we accept this reading then भुवाल no longer remains a proper name and there remain only two names Vijavāla and Kanna to be identified and the town Āsāiya It was on this basis that I once felt inclined to identify our Vijavāla with Vijayasimha of Udaipur and Kanna with his son-in-law Gayākarna who might have been staying with his father-in-law and felt friendly with the former's minister at the time when Kanakāmara wrote

1 Ep Ind IV P 118, Ind Ant XV p 7, Arch Sur XI P 125, and J A O S VI P 548

2 भारतके प्राचीन राजवंश Vol III, P 107

3 Bom Gaz Vol I History of Gujrat

4 Tod Annals of Rājpūtānā p 303 4

5 Raj Mus Re 1915-16 p 3

6 Hist of Rājpūtānā by G H Ojha, Ajmer, 1927, P 444 445,

his work at Āsi which, though far away from Udaipur and even Chittor, is on the borders of the state

This, however, did not seem very satisfactory as it had obvious weak points. So, in order to strengthen the identification further, or to discover a more satisfactory solution, I turned to the history of the Kalacuris of whom Gayākarnadeva was already thought as probably identical with our Kanna Their genealogy showed two other kings who could be thought of as equivalent to our Kanna These were Karnadeva son of Gāngeyadeva, who conquered many neighbouring kings and for whom we have an epigraphical record of 1042 A D[1] and his son Yaśahkarnadeva of whom one copper plate is dated A D 1122 His son was Gayākarnadeva of whom we have already spoken We also find in this genealogy one Vijayasimhadeva of whom two copper plates are dated A D 1180 and 1196[2]

Besides these, we have an account of a Kalacuri prince called Vijjala or Vijjana who was at first the minister of war† under Tailap II of the Cālukya dynasty from whom he usurped the thrown of Kalyana and extended his dominions further The earliest epigraphical record for him is of A D 1157 and the latest of A D 1165 One of the titles used by him was 'Kalinjarapuravarādhiśvara' or lord of the best city of Kalinjar From the account given of him in Bāsava purāna, a Lingāyat work, and Vijjalarājacarita, a Jain work, he appears to have been a great patron of Jainism and to have been assassinated in A D 1167, as a result of a Lingāyat confederacy led by Bāsava[3] Thus, in the Kalacuri dynasty there have been kings who could be thought of as identical with Vijavāla and Kanna of Kanakāmara

The place where the work was composed at once reminds a student of modern history of the battlefield where Sir Arthur Wellesley defeated the Marāthās in 1803 It is Assaye now a small village in the Bhokardan Taluka of the Aurangabad district of the Hyderabad State No previous history of the place is known, but it was certainly included in the kingdom of the Rastrakūtas. Could it, then, be that the Kanna narinda of Kanakāmara was the Rastrakūta king Krishna III who has been mentioned by Pushpadanta as Kanha[4]? If it be so, then Vijayapāla and Bhuvanapāla may have been his deputies ruling at Assaye Krishna III is known to have conquered the Cera, Cola, Pandya and Simhala,[5] and Kanakāmāra may have been led to attribute these conquests to his hero by this example of his time In that case he would be a contemporary of Pushpadanta whom he has mentioned This Assaye is not very far away

1 Ep Ind Vol 11 p 305

2. J B A S VIII p 481 J A XVII p 338, † दण्डनायक

3 Early History of the Deccan, Sec XII and XIII

4 Nāyakumāracariu, Introduction

5 The colophon of Yaśastilaka of Somadeva runs as follow

form the Terapura caves which the author must have visited and which probably inspired him to write this work while returning from there and staying at Assaye.

Another possible conjecture identifies the Āsaya with Āsiagarh in Khandesh which was named after Āsādevī enshrined there A small village near the fortress is still called Āsi In our text there is a marginal note Āsāpurī on the word Āsaya Before the building of the existing fortress, the place may have been called Āśāpuri It is wellknown to have been a seat of government during the pre-Muhammadan period There is also an Assaikheda village near Etawah in U P where old Jaina ruins are found and which has also been conjectured as the place where Kanakāmara wrote [1]

The evidence about all these places and princes is, however, inconclusive for our purpose, and unless stronger evidence is brought to light the Āsāpuri near Bhopal in Madhya Pradesh and the Chandela and Kalachuri rulers of that locality as shown above should be treated as identical with the mentions of Kanakāmara

TERĀPURA AND ITS CAVE-TEMPLES

Chapters IV and V of Karakaṇḍacariu are taken up by the description and previous history of Terāpura and a cave-temple in its vicinity The Terāpura mentioned in the work is identifiable with Tera a village in the Osmanabad district of Mahārāshtra, situated in 18-19 N and 76 9 E on the Tirna river, twelve miles north-east of Osmanabad It was known to the ancients as Tagara which name had baffled the attempt of scholars at identification for more than a century Sir R G Bhandarkar, writing about it in his Early History of the Deccan, said "Tagara is placed by the author of the Periplus at a distance of ten days journey to the east of Paithan It is mentioned in a copper-plate grant of the first half of the seventh century and the princes of the Silāhāra dynasty call themselves sovereigns of Tagara, the best of towns, in all their grants Some have identified it with Devagiri and others with Junnar, but in both cases its bearing from Paithan as given by the Greek geographers has not been taken into account I have elsewhere discussed the question and have proposed Dharur in the Nizam's territory as the site of the ancient city "[2] It was only in 1901 that Dr Fleet was finally able to show that the ancient and famous Tagara exists to this day known by the natural modern form of its former name as Tera in the Nizam's dominions [3] The town is so ancient that it was possibly known in the Buddha's time A teacher

---

'शकनृपकालातीतसवत्सरशतेष्वष्टस्वेकाशीत्यधिकेषु गतेषु श्रंकत. ८८१ सिद्धार्थसवत्सरान्तर्गतचैत्रमास-मदनत्रयोदश्या पाण्ड्य-सिहल-चोल-चेरमप्रभृतीन्महीपतीन्प्रसाध्य मेलपाटीप्रवर्धमानराज्यप्रभावे श्री कृष्णराजदेवे सति...

1 जैन सिद्धान्त भास्कर, १३, २ पृ० १३५ ।

2 Early History of the Deccan, 1927, page 59

3 The misspelt Thair, Ther, Tair, etc of maps Imp Gazir Vol II, 1908, page 82, J R A S 1901, page 537 ff

of olden times named Tagara-sikhin is several times mentioned Sikhin is otherwise known as a name and the distinctive epithet Tagara may possibly be local and mean 'of Tagara' the modern Tera[1]

According to Kanakāmara, Karakanda was encamping to the south of Terāpura The king of the place known as Siva visited him and told him about the existence of a large cave containing a Jina image at the foot of a hill in deep forest Karakanda visited the cave and worshipped the Jina He renewed the temple (or built a fresh cave), installed in it another image of Pārśvanātha which he discovered on the top of the mountain, buried in an ant-hill, and built two more caves on the upper side of the existing cave He also discovered a fountain of water in the old cave Now, I give below a summary of the description of the existing caves of Dhārāśiva as noticed by Burgess—[2]

Dhārāśiva is about twelve miles north of Tuljāpura and twenty-four west by south from Bārsi standing just above the brow of the Bālāghāt which forms the watershed between the Sīna on the west and the Ternā, a large feeder of the Manjirā, on the east It is the chief town of a Tālukā or district of the same name, and, like Tuljāpura, is fully 2000 feet above the sea-level

About two miles north east from the town, in a ravine facing the west, is a group of caves known as the Dābar Lenā or Torlā Lenā Four of them are in the north side of the ravine and three on the opposite side facing the north-east The former are Jaina excavations, but some of the latter are probably Vaishnava They are cut in a soft conglomerate rock, of very unequal texture, containing much haematite, and which is easily abraded By the decay of the rock they are much dilapidated

In front of the principal cave on the north side has been erected a Śaiva temple surrounded by a small court enclosed by a high wall with a Dharmaśālā on one side and a platform on the other A few yards to its west, on a lower level, is the cave No 1 which is only subsidiary to the principal cave No 2 Its front verandah measures 26 feet by 7 feet with two pillars, each about 2 feet 10 inches square It has three doors leading into as many separate apartments which were never finished and hence present an irregular size The central room was intended for a shrine but the dividing walls have given way

To the east of the principal cave is cave No 3 It is better preserved, but has been long occupied and divided by stone and mud walls The hall of it is about 59 ft square and 11 ft 3 inches high, the room being supported by twenty columns, leaving an open area of 35 ft square in the centre Two of the columns in each side are round, standing on thin square plinths, the other columns being square, and all have capitals and a neat collar of carving, a foot deep, round the

1 Rhys Davids Buddhist India, page 31
2 Arch Survey of Western India, Vol III.

head of the shaft The shafts taper from about 2 ft 10 inches to 2 ft 7½ inches square The six octagonal columns in the verandah have a beautiful frieze over them which has mostly fallen At the east end is an apartment 19 ft by 8½ ft and another inside the verandah about 13 ft square, with a large rough mass left in the middle about 5 ft by 5½ ft as if intended to be fastened into an image The verandah measures 60 ft by 8 ft 8 inches and five doors enter from it into the hall In each of the sidewalls are five cells and four in the back, besides the shrine 19 ft by 8 ft containing an image somewhat similar to the one in the principal cave In the cell to the west of the shrine also there is a figure of a Jina seated on a high seat with figures behind, similar to those in the principal cave, only, instead of the snake hoods there is a plain *nimbus*

Cave No 4 is close to the east side of this and consists of a hall 28 ft by 26 to 27 ft with four round columns supporting the roof, surmounted by a sort of architrave 13¾ inches deep But the shafts of the columns have all disappeared It seems never to have had a verandah, properly so called, but only a projecting drip over the front wall which is pierced for one large central and two smaller side doors There is one cell at each side of the hall, near the front, one of them unfinished, and there were two more in the back wall, but the partition between the east one and the shrine has been broken through The shrine is about 9 ft 6 inches by 12 ft and contained a Jina similar to those in other caves, but very much disfigured by the crumbling away of the rock and the soot of ages, as it has long been used as a dwelling The central door is surrounded by the plain fascias, a roll moulding and a border of leaves Over the main door is a shallow arched recess

The principal cave, i e cave No 2, is the largest of the group Unfortunately, the rock has split down from above and the whole front, with the exception of a small fragment, had fallen down It has, however, been recently repaired The verandah, 78 ft by 10 ft 4 inches, in all probability, had six or eight pillars with massive bracket capitals supporting its front. Five doors through the back wall lead into the great hall of the cave The court in front of the verandah is now quite filled up, but its entrance is still visible, its pediment being carved with a sitting figure of a Jina with a nimbus behind the head and Nāga figures on either side and other indistinct figures

In the west end of the verandah has been a door into a small adjoining excavation containing a cistern, and in front of it a boiler-shaped cistern has been built which can be filled by pouring the water into a channel that passes through the wall from the apartment where the cistern is In the room of the cistern there are three loose blocks of very hard stone, sculptured with figures of nude Jinas One of them is on a slab and represents Pārśvanātha with the snake behind him and its seven hoods spread out over his head Another is a square block, apparently, part of a pillar, on each side of which a standing nude Jina is

represented with a triple *chhatri* or umbrellas, over their heads. A third is a slab with a Jina seated cross-legged under a *chhatri* and having a worshipper at each knee, and four small figures below, some apparently worshipping and others engaged, perhaps, discoursing music The chamber, in which these figures are, measures about 17 ft by 12 ft with two square pillars in front and two openings in the floor into the cistern, which probably extends far back under the rock

The great Sālā or hall of the cave is not quite square, being wider at the back than in front, the former width being 85 feet, the latter only 79 feet, while the depth is about 80 feet In this area are thirtytwo pillars, arranged in two concentric squares, the inner-square has twelve pillars, and encloses an area 23 ft 9 inch square, and 10 ft 2 inch high, the outer, about 9¼ ft from the walls, has twenty pillars and encloses an area about 55 ft. deep by 58 wide, leaving an aisle round the central square about 13 ft wide in front and back, while along the sides it is 14 ft wide The roofs of the aisles on each side of this outer square vary in height, with a tendency to increase towards the back, the back aisle being 12 ft 6 inch high and the one in front of it 11 ft 7 inch at the back, and slightly less in front, while the aisles are about 10 ft 4 inch. in height

In each side wall are eight cells, each about 9 ft square and in the back are six, three on each side of the shrine which occupies the centre The cells are all plain, and exactly of the character of those usually found in Bauddha caves In the floor of one cell, in the north-west corner, is a small hole which is constantly filled with water, and may possibly have some connection with the cistern, in one of the cells in the back is an image now worshipped as Hari Nārāyana, but this has, probably, been imported into its present position, and in a recess in the next cell to the left of the shrine, is a black statue of a nude Jina, 6 ft 1 inch high with a triple *chhatri* over his head The recess and figure have all been carefully done up with plaster some ten or twelve years ago and without breaking this coating it was impossible to say whether the image had been carved *in situ* or not There seems no reason, however, to doubt that it belonged originally to the cave

The shrine is 19 ft 3 inches wide by fully 15 ft deep and 13 ft high the threshold being raised by two steps considerably above the level of the floor of the cave It is occupied by a large, black image, seated on a *simhāsana* or lion-throne 4 ft high and 6 ft 10 inch wide with a passage or *pradakshinā* 5 ft wide quite round it This image has also been carefully repaired with plaster and represents Pārśvanātha, the 23rd Tīrthamkara, seated crosslegged in the ascetic attitude or *Dhyāna* Mudrā with his hands in his lap, the palms being turned up The ends of the seat are represented as supported by lions, one of them, however, much damaged In front are two deer, one on each side of an object now quite obliterated, but which, from other examples, I have no doubt, was a wheel much like those on the fronts of the thrones in the Bauddha caves

at Ajanta and Ellora and on the large Pārśvanātha image of the 13th century at the latter place Behind the image are represented the ends of a pillow against which he rests, from behind it issue the heads of *śārdulas* (mythological animals allied to the lion, but usually with a head some what resembling a goat's), and behind them again two *chauri*-bearers with high, jewelled headdresses and necklaces over the heads of whom are fat Vidyādharas, flying in the air, each of which holds one end of a garland which is supposed to hang behind the head of the Jina The great snake, with its seven hoods, shades his head, forming a sort of aureole round it, while on each snake-head is a small crown' These figures are all covered over with plaster and painted in a variety of colours The image itself is perfectly black, and, in the darkness, looks grim enough It measures 6 ft from knee to knee, 4 ft 2½ inch across the shoulders, 3 ft. 6 inch. from the palm of the hand to the chin, the face is 2 ft 5½ inch from ear to ear over the eyes, and 1 ft 5 inch in length upto the hair which is in curled folds with a top knot, and the ears are 7 inches in length

The description of the temple hall with its double row of pillars and twenty two cells, besides the central shrine and other chambers, affords enough justification for its being called a temple of a thousand pillars by our poet, while the description of the chief image agrees in substance with that which we find in our work of the image discovered by Karakanda and imported into the temple (iv, 9) The chamber connected with the cistern and having two holes in the floor is probably the old shrine where Karakanda discovered the fountain of water As said above, there is yet another cell where we have a hole in the floor constantly filled with water On comparing the old and the new description of the cave closely, one can not help feeling that in Kanakāmara's narrative has been preserved, for about a thousand years, a substantially correct account of this monument of great antiquity and interest

The name Dhārāśiva is probably derived from the fact that there was a spring of water (Dhārā) and that one ancient king of the place was named 'Śiva' In the Sanskrit version of the story by Subhachandra we are told that the persons who called upon Karakanda when the latter encamped near Terāpura, were two forest guards named Dhārā and Śiva [1]

WHO EXCAVATED THE FIRST CAVE ?

We have seen above that according to Kanakāmara Karakanda built two new caves and either renewed the first cave or built yet another cave before causing the fountain to be opened The question naturally arises 'Who excavated the first cave ?' This question occurred to Karakanda himself as it does to us,

[1] धारा-शिवाभिधानौ द्वौ भिल्लौ भीतिप्रदौ भुव. ।
एतद्वननियंतारावासाते द्वारि दूरत ॥ ७, २६ ॥

and he got some one to tell him the story of its origin[1] A Vidyādhara told Karakanda that two Vidyādhara brothers Nīla and Mahānīla, originally ruling in Southern Vedyardha (Veyaddha or Vijayaddha) came and settled down at Terāpura, became converted to Jainism and excavated the cave

While investigating whether any historical basis could be found for this origin of the cave, I came upon the following statement about the Silāhāra princes in the Early History of the Deccan by Sir R G Bhandarkara[2]

"The Silāhāra princes trace their origin to Jimūtavāhana the son of Jimūtaketu who was the king of a certain class of demigods called Vidyādharas, and who saved the life of a serpent named Sankhacūda by offering himself as a victim to Garuda in his place One of the titles borne by the princes of all the three families was Tagara-*puravarādhīśvara* or lords of Tagara, the best of cities, which fact has a historical significance It shows that the Silāhāras belonged to a family that once possessed supreme sovereignty and reigned at Tagara In one Silāhāra grant it is expressly stated that the race known by the name of Silāhāra was that of the kings who were masters of Tagara" (शिलाहाराख्यवशोऽयतगरेश्वरभूभुजाम्) As mentioned in a former section, Tagara was a famous town in the early centuries of the Christian era, and retained its importance till a very late period, but, unfortunately, the town has not yet been identified, nor have we found any trace of the Silāhāra kingdom with Tagara as its capital Perhaps it existed between the close of the Āndhrabhṛtya period and the foundation of the Cālukya power "

From this account, two facts emerge very prominently firstly, that the Silāhāra princes, according to their own statement, were the descendants of a Vidyādhara, and secondly, that they once had their capital at Tagara which, as already shown, is the same as our Terapura I, therefore, conclude that the first Jaina cave at Tera was excavated by one of the early Silāhāra princes who also installed the image of Pārśvanātha Kanakāmara has also incidentally given to us the origin of the Silāhāras which substantially corroborates and amplifies the information gathered from inscriptions He tells us that the Vidyādharas, Nīla and Mahānīla came from the Southern Vijayārdha In Somadeva's Kathāsaritsāgara[3] we are told that on the Himācala mountain there were two Vedyardhas of Vidyādharas, the Northern and the Southern On the upper side of Kailasa is the Northern Vedyardha and on the lower side is the southern Vedyardha

From this we might conclude that the ancestors of the Silāhāra princes originally came from the Southern Himalayas Kanakāmara tells us that they

1 Chapter V

2 Poona, 1927, p 119

3 Kathāsarit-sāgara XIV, 3, 65-66

इह विद्याधराणा द्वौ वेदर्धौ स्तो हिमाचले ।
उत्तरो दक्षिणश्चैव नाना तच्छृंगभूमिगौ ।
परत किल कैलासादुत्तरोऽर्वाक्तु दक्षिण. ।

had to leave their ancestral home and fly away from Rathnupura (Rahaneura) in Vedyardha on account of the pressure of the enemies On this point also the Kathāsaritsāgara throws some light In Lambaka XIV of that work we have an account of a protracted war between Naravāhanadatta and the Vidyādharas of the Southern Vedyardha in which the latter were completely vanquished and Naravāhanadatta was crowned king of the Vidyādharas The coronation is described in Lambaka XV We also find mention of Jīmūtavāhana (XVI, 3, 7) as the king of the Vidyādharas who lost his overlordship because he belauded his charity and sacrifice before Nārada [1]

The existence of a ruling dynasty of Vidyādharas to the south of the Narmadā is also vouchsafed by Padmagupta in his Navasāhasānkacarita where his contemporary hero Sindhurāja is said to have been helped by a Vidyādhara chief Sankhacūda the son of Sikhandaketu, against the Asura king Vajrānkuśa of Ratnavati [2]

I may appear to be making history out of fables and fairy tales, but the pieces of information culled here fit in so well with what we know from epigraphical records and literary traditions that the temptation to regard them as historical is irresistible At any rate, the conclusion can safely be drawn that the ancestors of the Silāhāras, came from the border of the Himalayas, that they founded the city of great fame and antiquity, Tagara, and that they early became converts to Jainism and built the large cave-temple near their capital Perhaps the name 'Silāhāra' also points to their mountain origin

Burgess has assigned the caves roughly to the period between 500 and 650 A D But this is only a conjecture As we have seen, all of them may not be of the same period The Silāhāras are known to have been reigning near the coast in the Thana district from 810 to 1260 having their capital at Puri (Elephanta) They were the governors of Konkan under the Rashtrakūta kings Their three branches ruled in the Deccan in different parts, but the period of their supremacy at Terapura or Tagara is quite unknown As we have already seen, Karakanda seems to have lived some time between 800 B C and 500 B C No wonder if that was the period of the Silāhāra ascendancy at Terapura

As to the image of Pārasvanātha which Karakanda found buried in an *anthill* on the top of the hill, and which he then installed in the first cave, Kanakāmara tells us, as Karakanda was told by the Vidyādhara, that another two Vidyādharas who were brothers and friends of Nīla, while on a religious tour

---

1 'जीमूतवाहनोऽप्येष पृष्टो विद्याधरेश्वर
चक्रवर्तिपदप्राप्तिकरण नारदर्षिणा ॥ ७ ॥
आचख्यौ कल्पवृक्षस्य दान निजतनोस्तथा
तेनाभ्रश्यत्पदात्स्वस्मात्सुकृतोदीरणेन स ॥ ८ ॥

2 Indian Antiquary, Vol LXII, 1933, pp 101 107

from their home in the Northern Vedyardha to Lankā, picked it up from a hill called 'Siripudi' in Malaya country (Malabar), and deposited it on the present hill. It is also said that the Jaina temple, at Siripudi was built by Sūraprabha the king of Lankā who was a descendant of Rāvana

METRE

The prevailing metre of Karakandacariu of Kanakāmara is पज्झटिका intercepted by a few lines or single Kadavakas here and there in अलिल्लह or पादाकुलक, besides the Dhruvakas The variations in complete stanzas are as follows—

Sandhi	Kadavaka	Name of metre	Nature of the metre
I	7-8, 12-13	समानिका	A vritta metre with the scheme र ज ग ल in each foot
	17	समानिका & तूणक	Half of the stanza is तूणक which is double of समानिका
III	14	स्रग्विणी	Consisting of four र.
	15 & 18	दीपक	Has 10 mātrās ending in a short
	17	समानिका	(See above)
IV	16	सोमराजी or संखणारी	Has two य.
V	1	समानिका	(See above)
	11	दीपक	(See above)
VII	10	समानिका	(See above)
	11	भ्रमरपदा	Has 24 mātrās in each foot with caesura after the 10th and 18th, two such feet rhyming with each other
VIII	2	स्रग्विणी	(See above)
	3	चित्रपदा	With the scheme भ भ ग ग
	4	सोमराजी	(See above)
	5	समानिका	(See above)
IX	3	प्रमाणिका	With the scheme ज र ग ग
	7 & 20	दीपक	(See above)
X	17	समानिका	(See above)
	26	चन्द्रलेखा	Has the first foot of 16 mātrās rhyming with the second of 8 matras

करकंडचरिउ

१

Victory to Jina

मणमारविणासहो सिवपुरिवासहो पावतिमिरहरदिणयरहो ।
परमप्पयलीणहो विलयविहीणहो सरमि चरणु सिरि जिणवरहो ॥

जय अणुवमसिवसुहकरण देव देविंदफणिंदणरिंदसेव ।
जय णाणमहोवहिकलियपार पाराविय सिवपहे भवियसार ।
जय कम्मभुवंगमदमणमंत मंताण वीज मणगहकयंत । 5
जय चउगइडरियजणेक्कसरण रणरहियसुयणदुहणिवहहरण ।
जय संजमसरवररायहंस हंसोवमबुहयणकयपसंस ।
जय कोहहुआसणपउरवारि वारियतम केवलणाणधारि ।
जय सासयसपयहियियवास वासवसयसेविय सुहणिवास ।
जय भवियसरोरुहकमलबंधु बंधुरगुण णियरसवहुलसिंधु ॥ 10

घत्ता—जय देव णिरंजण भवभयभंजण मंडण भुवणमहाघरहो ।
तव चरण णमंतहो मणे सुमरंतहो होइ समिच्छिउ फलु णरहो ॥१॥

२

The poet introduces himself to his readers

मणि धरिवि सरासइ दिव्ववाय तह पंडियमंगलएवपाय
जणसवणसुहावउ महुरु[1] ललिउ कल्लाणयविहि[2] यणेण कलिउ ।
पुणु कहमि पयडु गुणणियरभरिउ करकंडणरिंदहो तणउ चरिउ ।
जइ दुज्जण वंकुड मणि णिरुत्तु जइ जणवउ णीरसु मलिणचित्तु ।
वायरणु ण जाणमि जइ वि छंदु सुअजलहि तरेव्वइँ[3] जइ वि मंदु । 5
जइ कह व ण परसइ ललियवाणि जइ बुहयणलोयहो तणिय काणि ।
जइ कवियणसेव हु मइँ ण कीय जइ [4]जडयणसंगइँ मलिण कीय ।
तो सिद्धसेण सुसमंतभद्द अकलंकदेव सुअजलसमुद्द ।
जयएव सयंभु विसालचित्तु वाएसरिघरु[5] सिरिपुप्फयंतु ।

घत्ता—इय हियए सरंतहो विणउ करंतहो महु संजायउ जं जि फलु । 10
तम्हा सुहभरियउ दुहपरिहरियउ पयडमि वंछिउ णत्थि छलु ॥२॥

---

१ १ J गय. २ D पिहुल

२. १ D N महुर° २ D N विहि अण्णेण ३ D N तरेवउ. ४ J ज्डह्ण ५ D N वाएसरि व्व.

र ' चरिउ

हिन्दी अनुवाद

संधि—१

१—वन्दना

मैं उन श्री जिनेन्द्रदेवके चरणोंका स्मरण करता हूँ जिन्होने कामदेवका विनाश कर दिया है, शिवपुरमें निवास लिया है; जो पापरूपी अन्धकारका हरण करनेके लिए सूर्य है; जो परमात्म पदमें लीन है और मृत्युसे रहित है।

अनुपम मोक्षके सुखको देनेवाले तथा देवों, नागों और मनुष्योंके इन्द्रों द्वारा सेवित, हे देव! आपकी जय हो। जय हो आपकी—जिन्होंने ज्ञानरूपी महोदधिका पार पा लिया है ५ और उत्तम भव्यजनोंको मोक्षके मार्गपर लगा दिया है। जो कर्मरूपी भुजगोको दमन करनेके लिए मंत्ररूप है, जो समस्त मन्त्रोंके बीज है और मनरूपी ग्रहके काल (विनाशक) है। जो चारों गतियोंमें पडे हुए प्राणियोंके लिए एक मात्र शरण है तथा कलहरहित सज्जनोके दु ख-समूहका हरण करनेवाले है। जो सयमरूपी सरोवरके राजहस है एवं हंसोके समान उज्ज्वल बुद्धिमानो द्वारा प्रशसित है। जो क्रोधरूपी अग्निके लिए प्रचुर जलरूप है और जो अज्ञानतमका निवारण १० करनेवाले और केवल-ज्ञानको धारण करनेवाले हैं। जिन्होंने मोक्षरूपी शाश्वत लक्ष्मीके हृदयमें अपना निवास बनाया है, जो सैकडों इन्द्रों द्वारा सेवित है और सुखके निवास है। जो भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिए सूर्यरूप है, उत्तमगुण सम्पन्न है तथा आत्मरसके अगाधसमुद्र है! हे निरजन, भवभयभजन, भुवनमहागृहमडन देव! आपकी जय हो। जो कोई आपके चरणोंको नमस्कार करता है तथा मनमें आपका स्मरण करता है, उस मनुष्यको मनोवाछित १५ फलकी प्राप्ति होती है।

२—कविका विनय-प्रदर्शन

दिव्यवाणी सरस्वतीको मनमें धारण करके तथा पण्डित मगलदेवके चरणोंका स्मरण करके मै उस करकण्ड नरेन्द्रके चरित्रका वर्णन करता हूँ जो लोगोंके कानोंको सुहावना, मधुर और ललित लगनेवाला है, पञ्च कल्याणक विधिरूपी रत्नसे जटित है और जो गुणोंके समूहसे भरा हुआ एव प्रसिद्ध है। यद्यपि दुर्जन अपने मनमें अत्यन्त वक्र होते है, और जनपद (साधारण लोग) नीरस और मलिन चित्त है। मै स्वय भी न व्याकरण जानता हूँ और न छन्दशास्त्र; ५ एव शास्त्ररूपी समुद्रके पार पहुँचनेमें मन्द हूँ। मेरी वाणीमें लालित्यका प्रसार किसी प्रकार भी होता नहीं, और बुद्धिमान् लोगोंके सम्मुख मुझे लज्जा उत्पन्न होती है। मैने कभी कविजनोंकी सेवा भी नहीं की; प्रत्युत जड लोगोकी सगतिसे मेरी कीर्ति मलिन हुई है। तथापि शास्त्ररूपी जलके समुद्र सिद्धसेन, श्री समन्तभद्र, अकलकदेव, जयदेव, विशालचित्त स्वयभू एव वागेश्वरीगृह श्री पुष्पदन्त, इनका हृदयमे स्मरण और विनय करनेसे मुझे जो कुछ फल प्राप्त हुआ है उसीके १० सहारे सुखसे भरे हुए और दु खसे परिहृत अपने मनोवाछित चरित्रका वर्णन करता हूँ। इसमें किसी प्रकारका कोई छल नहीं है।

३

The story begins The country of Anga.

दीवाण पहाणहि दीवदीवे जंवूदुमलंछिए जबुदीवे
वेढियलवणण्णववलयमाणे जोयणसयसहसपरिप्पमाणे।
वित्थिण्णउ इह सिरि भरहछेत्तु गगाणइसिंधु[1] हि विप्फुरतु।
छक्खडभूमिरयणहँ णिहाणु रयणायरो व्व सोहायमाणु।
एत्थत्थि रवण्णउ अगदेसु महिमहिलइँ ण किउ दिव्ववेसु 5
जहिँ सरवरि उग्गय पकयाइँ ण धरणिवयणि[2] णयणुल्लयाइँ।
जहि हालिणिरूवणिवद्धणेह संचल्लहिँ जक्ख ण दिव्वदेह।
जहिँ वालहिँ रक्खिय सालिखेत्त मोहेविणु गीयएँ हरिणखत[3]।
जहिँ दक्खइँ भुजिवि[4] दुहु मुयति थलकमलहि पथिय सुहु[5] सुयति।
जहिँ सारणिसलिलि[6] सरोयपंति अइरेहइ मेडणि णं हसति। 10

घत्ता—तहिँ देसि रवण्णइँ धणकणपुण्णइँ अत्थि णयरि सुमणोहरिय।
जणणयणपियारी महियलि सारी चपा णामइँ गुणभरिय ॥३॥

४

The town of Campā

जा वेढिय परिहाजलभरेण ण मेइणि रेहइ सायरेण।
उत्तुंगधवलकउसीसएहिँ[1] ण सग्गु छिवइ वाहूसएहिँ।
जिणमन्दिर रेहहिँ जाहिँ तुंग णं पुण्णपुज णिम्मल अहग।
कोसेयपडायउ घरि लुलति ण सेयसप्प णहि सलवलति।
जा पचवण्णमणिकिरणदित्त कुसुमजलि ण मयणेण घित्त। 5
चित्तलियहि जा सोहइ घरेहिँ ण अमरविमाणहि मणहरेहिँ।
णवकुंकुमछडयहि जा सहेइ समरगणु मयणहो ण कहेइ।
रत्तुप्पलाइँ भूमिहिँ गयाइँ ण कहइ[2] धरती फलसयाइँ।
जिणवासपुज्जमाहप्पएण ण वि कामुय जित्ता कामएण।

घत्ता—तहिँ अरिविद्दारणु मयतरुवारणु धाडीवाहणु पहु हुयउ। 10
जो कलगुणजुत्तउ गुरुयणभत्तउ विज्जासायरपारगउ ॥४॥

५

King Dhāḍivāhana

जो धम्ममहारहधुरधरणु काणीणदीणदुत्थियसरणु।
जसु कित्तिएँ धवलिउ भुवणयलु जसु दाणइँ पीणिउ जणु सयलु।
गुणकित्तणु सुरयणु जसु करइ भयभीउ ण अरियणु[1] संचरइ।

---

३ १ JS सिंधुय २ SJ °वयण° ३ D ठत ४ DN जिम्मिवि ५ DN सुहि ६ JS सलिल°
४ १ J बहुसीसएहिँ, DN कउसीसएहिँ २ DJN कहव
५. १ DN भयभीयउ अरियणु

३—जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र और अंगदेशका वर्णन

द्वीपोंमें प्रधान, द्वीपोके दीपक समान, जम्बूवृक्षसे लक्षित जम्बूद्वीप है, जो लवणसमुद्रसे वलयके समान वेष्टित तथा प्रमाणमें एक लाख योजन है। इस जम्बूद्वीपमें विशाल श्री भरतक्षेत्र है, जो गंगा और सिन्धु नदियोसे विस्फुरायमान है। वह छह खण्ड भूमिरूपी रत्नोका निधान होनेसे रत्नाकरके समान शोभायमान है। ऐसे इस भरत क्षेत्रमें रमणीक अग देश है, जैसे मानो पृथ्वी-महिलाने दिव्य वेष ही धारण किया हो। जहाँके सरोवरोंमे कमल उग रहे है, मानो धरणीके मुखपर सुन्दर नयन ही हो। जहाँ किसान स्त्रियोके रूपमें स्नेहासक्त होकर दिव्य देहधारी यक्ष निश्चल हो गये है। जहाँ बालिकाएँ चरते हुए हरिणोके झुण्डोको अपने गीतसे मोहित करके धानके खेतोंकी रक्षा कर लेती है। जहाँ पथिक दाखका भोजनकर अपने यात्राके दु खसे मुक्त होते और स्थल कमलोपर सुखसे सो जाते है। जहाँकी नहरोके पानीमे कमलोकी पक्ति अति शोभायमान होती है, जैसे मानो मेदिनी हँस उठी हो। ऐसे धन-धान्यसे पूर्ण उस रमणीक अग देशमें बडी मनोहर, जननयन प्यारी, महीतलमें श्रेष्ठ और गुणोसे भरी हुई चम्पा नामकी नगरी है।

४—चम्पा नगरीका वर्णन

वह चम्पा नगरी जल-भरी परिखासे घिरी होनेके कारण, सागरसे वेष्टित पृथ्वीके समान शोभायमान है। वह अपने ऊँचे प्रासाद-शिखरोंसे ऐसी प्रतीत होती है मानो अपनी सैकडों बाहुओं-द्वारा स्वर्गको छू रही हो। वहाँ विशाल जिनमंदिर ऐसे शोभायमान है, मानो निर्मल और अभंग पुण्यके पुज ही हों। घर-घर रेशमकी पताकाएँ उड रही है, मानो आकाशमें श्वेत सर्प सलवला रहे हो। वह पचरगे मणियोंकी किरणोंसे देदीप्यमान हो रही है, मानो मदनने अपनी कुसुमाजलि ही चढायी हो। वह चित्रमय घरोंसे ऐसी शोभायमान है, जैसे मानो वे देवोंके मनोहर विमान ही हों। नयी केशरकी छटाओंकी वहाँ ऐसी शोभा है कि मानो वह कह रही हो कि मदनका समरागण यही तो है। वहाँ स्थान-स्थानपर रक्त-कमल बिखरे हुए है, मानो वह पुकार-पुकारकर कह रही है कि मैं ही सैकडो प्रकारके फलोंको धारण करती हूँ। वहाँ भगवान् वासु-पूज्यके माहात्म्यसे पुरुष कामी होकर कामदेव-द्वारा जीते नहीं जाते।

इस प्रकारकी उस चम्पा नगरीमें शत्रुओंका नाश करनेवाला मदरूपी वृक्षके लिए हाथीके समान धाडीवाहन प्रभु हुआ, जो समस्त कलाओं और गुणोंसे युक्त, गुरुजनोका भक्त तथा विद्याओंके सागरका पारगामी था।

५—धाडीवाहन राजाका वर्णन

राजा धाडीवाहन धर्मरूपी महारथके धुरेको धारण करता था तथा अनाथो, दीनों और दुखियोका सहारा था। उसकी कीर्तिसे भुवनतल धवल हो रहा था और दानसे सकल जन प्रसन्न थे। सुरजन भी उसके गुणोकी कीर्त्ति गाते थे, किन्तु अरिजन भयभीत होकर सचार नहीं

जसु मरसइ सोहइ मुहकमले लच्छी विवसइ सिरिवच्छयले ।
धणु देवएँ पसरइ जासु करु णउ पाणिवहेव्वइ धरइ सरु । 5
जसु आणइँ हरिणइँ आहयाइँ[2] परिभमइँ ण महियलि खजयाइँ[4] ।
संपुण्णवयणु जो सज्जणाहँ भूभगुरभीसणु दुज्जणाहँ ।
जसु[3] धम्मराएँ रंजियउ मणु ण विलित्तउ दुरियइँ एक्कु खणु ।
घत्ता—मणु जलहि व गहिरउ मेरु व धीरउ गयणु व पिहुलउ जसु तणउ ।
जसु परियणु भत्तउ गुणअणुरत्तउ सो जायउ जगमडणउ ॥५॥ 10

६

The king falls in love with a maiden of Kausāmbī

एक्कहिँ दिणे धाडीवाहणेण कुसुमउरहो गमु किउ ताउ तेण ।
जा सुदरि पालिय मालिएण तहि दिट्ठी तेण णराहिवेण ।
सा पेक्खिवि मणहर कयमएण विणडिउ सुणरवइ कामएण ।
विरहग्गितावसतत्तएण को वि पुच्छिउ णरु तेँ राणएण ।
भणु सहयर एह कसु तणिय बाल ण कामविडविपरिफलियडाल । 5
णरणाहहो तेण वि कहिय वत्त मालियहो धीय एह[1] लडहगत्त ।
कोक्काइवि[2] मालिउ कुसुमदत्तु ससएण पपुच्छिउ णिविडगत्तु ।
तुह तणिय बाल किँ होइ एह कि अण्णहो कासु वि कहि सणेह ।
घत्ता—तँ कहिउ णरिंदहो महियलि चदहो घरिणिएँ महो[3] कुसुमत्तइँ ।
गगाजलवाहे सुट्ठु अगाहे पाविय एह मजूसइँ ॥६॥ 10

७

The king discovers that his lady-love was a princess

तक्खणेण मालिएण धम्मभारु पालिएण ।
लेवि पेइया[1] खणेण ढाविया णिवस्स तेण ।
माणवेहिँ कीयसेव छुड्डिया वि एत्थु देव ।
जाणिया ण सामिसाल कासु धीय एह बाल ।
सा वि जोइया णिवेण णाणसायरं गएण । 5
तम्मि दिट्ठु हेमकतु अगुलीउ णामवतु ।
ताव तेण सुदराइँ वाइयाइँ अक्खराइँ ।
एह बाल रायधूव कामगेहु जा वि हूव ।
घत्ता—कउसबियरायहो[2] पसरियछायहो वसुपालहो पउमावइ दुहिय ।
इय[3] मण्णिवि राएँ कयअणुराएँ सा खणि परिणिय दुहमहिय ॥७॥ 10

८

He marries her Her dream foretells the birth of son

ताम राएँ मालियासु देवि दव्वु भव्वु तासु ।
कायकतिसगएण तेण तीएँ संजुएण ।
मदिर सुउच्छवेण पाविय कयत्थएण ।

५. २ JS °यइ ३ J धम्मराय° ४ N मणि.
६ १ J ए २ S कोक्काइउ ३ SJ कुसुमदत्तए
७ १ J एइया २ J कउसविए° ३ S मुणेवि

कर पाते थे। उसके मुखकमलमें सरस्वती शोभायमान थी और श्रीवक्षस्थलमें लक्ष्मी निवास करती थी। उसका हाथ धन देनेके लिए तो पसरता था, किन्तु उसका धनुष प्राणीका वध ५ करनेके लिए सरसधान नहीं करता था। उसकी मानो आज्ञा मात्रसे आहत व लँगड़े होकर हरिण महीतलपर (अन्नका नाश करते हुए) परिभ्रमण नहीं करते थे। सज्जनोंके लिए उसका मुख सौम्य और पुण्यवान् दिखायी देता था; किन्तु दुर्जनोंको चढ़ी हुई भौंहो युक्त भीषण। उसका मन धर्म-रागसे रंजित था और एक क्षणमात्र भी कभी पापसे लिप्त नहीं होता था। उसका मन जलधिके समान गभीर, मेरुवत् धीर व गगनवत् विशाल था। उसके परिजन भक्त और गुणानुरक्त १० थे। इस प्रकार वह राजा जगत्का मण्डन ही हो गया था।

६—राजाका प्रेम-जागरण और विवाह

एक दिन राजा धाड़ीवाहनने कुसुमपुरको गमन किया। वहाँ उन्होंने एक सुन्दरीको देखा जिसका पालन-पोषण वहाँके एक मालीने किया था। उस मनोहर कन्याको देखकर राजा कामदेवके मदसे पीड़ित हो उठा। विरहरूपी अग्निके तापसे सन्तप्त होकर राजाने एक मनुष्यसे पूछा—हे मित्र! कहो तो यह किसकी बालिका है। दिखायी तो ऐसी देती है जैसे कामरूपी वृक्षकी एक फली हुई डाल ही हो। उस मनुष्यने राजाको बात बतायी कि वह सुन्दरगात्री ५ मालीकी पुत्री है। राजाने तुरन्त कुसुमदत्त नामके मालीको बुलवाया और उस सुदृढ गात्रसे सशयपूर्वक पूछा कि यह सचमुचमें तुम्हारी ही बालिका है या किसी और की? तुम मुझे स्नेह-पूर्वक कहो। तब उस मालीने महीतलके चन्द्र नरेन्द्रको कहा कि मेरी कुसुमदत्ता नामकी गृहिणीने इसे गगाकी खूब अगाध धारामें एक पिटारीके भीतर रखा पाया था।

७—मालीकी पुत्री राजकन्या सिद्ध हुई

मालीने उसी क्षण धर्म-भारका पालन करते हुए उस पेटीको लाकर तुरन्त राजाको दिखलाया और कहा—मानवों द्वारा सेवित, हे देव! वह इसी पिटारीमें रखी पायी गयी थी। हे स्वामिसार! हमें ज्ञात नहीं हो सका कि यह बालिका किसकी पुत्री है। तब ज्ञानके सागर तक पहुँचे हुए उस राजाने उस पिटारीको जोहा (ध्यानसे देखा)। उसमें देखा क्या कि स्वर्णमयी अँगुलीकी मोहर लगी है जिसपर नाम भी लिखा है। उसने उन अति सुन्दर अक्षरोंको बाँचा। ५ लिखा था—"यह राजदुहिता है जो कामदेवके गृहके समान सुन्दरी हुई। यह कौशाम्बीके विस्तृत कीर्ति, सुप्रसिद्ध राजा वसुपालकी पद्मावती नामकी पुत्री है।" जब राजाने यह जान लिया कि वह राजपुत्री है, तब उसने अपने दु:खका मथन करनेवाली युवतीका अनुरागसे तुरन्त परिणय कर लिया।

८—रानीका स्वप्न

राजाने उस मालीको भव्य द्रव्य दिया। अपनी कायकान्तिके अतिरिक्त उस रमणीसे सयुक्त होकर अपनेको कृतार्थ मानते हुए राजाने बड़े उत्सवके साथ अपने मन्दिरमें प्रवेश

तम्मि ताइँ सुंदराइँ तोसएण कीलिराइँ ।
भामिणीए[1] तासु ताए जामिणीसु सुत्तियाए[1] । 5
दिट्ठु कुंभि सुप्पयंडु णिज्झरंतु उद्धसुडु ।
उट्ठियाए पत्थिवासु अक्खिय पि ताव तासु ।
पिक्खु[2] सामि हत्थि इट्ठु जामिणीहिँ एतु[3] दिट्ठु ।
घत्ता—त वयणु सुणेविणु सउणु मुणेविणु राएँ अक्खिउ ताहि फलु ।
तुह होसइ णदणु वसहो मडणु जणमणरंजणु हणियखलु ॥ ८ ॥ 10

९

She becomes pregnant

पिएण समाणिय[1] अच्छइ जाम दिणेहिँ पसत्थहि हूयउ ताम ।
वियभिय अगे अउव्विय छाय कवोल समुज्जल पडुर जाय ।
पओहरतेयविडवियसारु उरम्मि ण छज्जइ मोत्तियहारु
घुलतइँ तेण थणाहँ मुहाइँ सकज्जलवण्णइँ ताइँ कयाइँ ।
खलो वि रणेहिँ[2] विणामियसीसु णिमच्छरु होइ गुणीण गुणीसु 5
वलित्तउ लज्जए[3] जुत्तु खणेण पणट्ठउ वालहो णाइँ भएण
सुपोट्टभरेण हुआ गइँ मद[4] समालसजिंभ पवड्ढिय तंद[5] ।
कुणतउ अच्छइ मायहिं तुगे सुचिण्हइँ[6] गव्भहो सारइँ अगे ।
दिवायरचंदणिवारियथासु सुछदइँ गथिउ मोत्तियदासु ।
घत्ता—सा पेक्खिवि राणी जयहो पहाणी राएँ किउ ता सोहलउ । 10
तहिं तेहइँ अवसरे पयडइँ वासरे हूयउँ[7] तहिँ मणि दोहलउ ॥ ९ ॥

१०

Her longing

तेँ पीडिय माणिणि मयणलील ण पयंपइ कीरइ का वि कील ।
किउँ पावउँ चिंतिउ णियमणम्मि पडिखलइ महीयलि तक्खणम्मि ।
सा पेक्खिवि पुच्छिय णरवरेण विद्दाणिय किं तुहुँ कारणेण ।
किं दुक्खइँ सुंदरि तउ सरीरे पडिवयणु ण जपहि जेम धीरे[1] ।
ता दुक्खु वहतीए णरवरासु पडिवयणु दिण्णु तोसियसुरासु । 5
तुह कहियइं णरवइ किं मएण पहु अंगु[2] खणद्धे सुक्कु[3] जेण ।
महो अत्थि णरेसर चिंत का वि संवडइ ण मणुवह जा कया वि ।
वरिसतइँ जलहरे मंदमदे णररूउ करेविणु णियगइंदे ।
घत्ता—पइँ सहुँ चडेवि णरेसर पुर्णु[4] परमेसर पट्टणु भममि सगोउरउ ।
इउ हियवइँ वट्टइ जइ ण विघट्टइ तो णिच्छइँ एवहिं मरउँ ॥१०॥ 10

---

८ १ J °इ २ J पिक्खि ३ ND ताहे

९. १ S सुमणिय २ JDNरणेहिं ३ J लज्जइ ४ J गयमद ५ J तुद, Dरुद
६ S सुरेहइ ७ DN जायउ.

१० १ N अधीरि. २ N अग ३ DN सुक्क. ४ DN पुर

किया और वहाँ वे दोनों सुन्दर पति-पत्नी सन्तोषसे क्रीडा करने लगे। फिर एक दिन रात्रिमें सोते हुए उस भामिनीने स्वप्नमें एक सुप्रचण्ड हाथीको देखा जिसके मद झर रहा था और जो अपनी सूँड ऊपरको उठाये हुए था। निद्रासे उठकर रानीने राजासे कहा—"देखिए स्वामी, ५ रात्रिमें मैने एक सुन्दर हाथीको आते देखा है।" रानीका वचन सुनकर राजाने शकुनका विचार किया और उसका फल बतलाया कि हे प्रिये! तेरे एक पुत्र उत्पन्न होगा, जो वंशका मंडन, जनमनरंजक, तथा खलोंका हनन करनेवाला होगा।

९—रानीकी गर्भावस्था

जब पद्मावती अपने प्रियतमके साथ इस प्रकार रह रही थी, तब आनन्दके दिवस व्यतीत होते-होते एक नयी बात हुई। उसके शरीरमें अपूर्व छाया उत्पन्न हुई। उसके उज्ज्वल कपोल पीले पड गये। उसके उरमें अब वह मोतियोंका हार शोभायमान नहीं होता था, क्योंकि पयोधरोंके तेजने उसका सौन्दर्य हरण कर लिया था। उस हारने भी डोल-डोल कर स्तनोंके मुखोंको काजलके समान काला कर डाला था। खलका भी जब लड-लडकर सिर झुका दिया ५ जाता है, तभी वह गुणीजनोके प्रति मत्सरहीन होता है। रानीके उदरकी त्रिवली मानो बालकके भयसे लज्जायुक्त होकर नष्ट हो गयी। पेटके बडे भारसे उसकी गति मन्द पड गयी तथा आलस, जम्हाई और तन्द्राकी वृद्धि हो गयी। इस प्रकार बालक गर्भके सारभूत लक्षणोंको प्रकट करता हुआ माताके विशाल अंगमें रहने लगा, तथा अपने तेजसे सूर्य और चन्द्रके तेजको भी फीका पाडने लगा (इस कडवककी रचना मौक्तिक दाम छन्दमें की गयी है)। उस जगप्रधान रानीको १० ऐसी गर्भकी दशामें देखकर राजाने सोहला (सौभाग्योत्सव) मनाया। उसी अवसरपर उस शुभ दिन उसके मनमें एक दोहला उत्पन्न हुआ।

१०—रानीका दोहला

उस दोहलेसे उस गजगामिनी मानिनीको बडी पीडा हुई। वह अब न कुछ बोलती थी और न कोई क्रीडा करती थी। बस, उसे एक यही धुन थी कि अपने मनकी चिन्तित बातें कैसे पाऊँ? वह क्षण-क्षण महीतलपर स्खलित होती थी। उसे ऐसी दशामें देखकर राजाने पूछा— "हे प्रिये, तू किस कारणसे ऐसी पीडित हुई है? हे सुन्दरी! तेरे शरीरमें कौनसे दुःख उत्पन्न हुए जिनके कारण तू धीरवती होकर भी अब मेरी बातका उत्तर भी नहीं देती?" तब रानीने ५ अपना दुख धारण किये हुए उस देवोंको भी सन्तोष करानेवाले अपने श्रेष्ठ पुरुषको उत्तर दिया—"हे नरपति! जिस कारणसे मेरा पुष्ट शरीर इतनी जल्दी ऐसा सूख गया है, उस कारणको कहनेसे क्या लाभ? हे नरेश्वर! मेरे मनमें एक ऐसी चिन्ता (इच्छा) उत्पन्न हुई है जो मनुष्योंको कदापि सम्प्राप्त नहीं हो सकती। मेघोंकी मन्द-मन्द वर्षा हो और मै नररूप धारण करके अपने गजेन्द्रपर आपके सहित, हे राजन्, हे नरेश्वर चढकर फिर गोपुरों सहित पट्टनका भ्रमण करूँ। १० हे परमेश्वर, यह (अभिलाषा) मेरे हृदयमें वर्तमान है। यदि यह घटित न हो सकी तो मैं निश्चयसे योंही मर जाऊँगी।"

११

Arrangements to satisfy her Longing.

कि चिंतिउ सुंदरि इउ हिएण विहसतईं वोल्लिउ राणएण ।
मईं जाणिउ केण वि कारणेण उप्पण्णउ दुहु तुहँ महो तणेण ।
पइँ केत्तिउ सुंदरि गणिउ एहु मा खवहि अलीढइँ णियदेहु ।
ता माणिणि पभणइ गिभयालि दावाणललग्गइँ अडवमालि ।
कहिँ अच्छइ जलहरु सामिसाल संभवइ ण एहउ गुणविसाल । 5
ता राएँ णियमणि कलिवि एउ मच्चिंतिउ मेहकुमारदेउ ।
सो आयउ तहो चिरणेहएण परिणिम्मियमेहसरूवएण ।
सच्छायउ णहयलु तेण जाव जलकणहिँ पवरिसिउ देउ ताव ।

घत्ता—पुणु राएँ[1] उत्ती महिल सुचित्ती[2] पेक्खहि जलहरु कसणतणु ।
लइ लेहि पसाहणु मयणहो साहणु सथवहि भडारिए णिययमणु ॥११॥ 10

१२

The restive elephant flies to Kalinjar with the royal couple.

जा णिवेण पोट्टिवतु कुंजरो सुदिंत्तिवतु ।
तूरयाइँ वाइऊण मंगलाइँ गाइऊण ।
मंडिऊण सज्जिऊण भामिणीहि अप्पिऊण ।
सा चडाविया णिवेण[1] खंधे तासु सुंदरेण ।
तम्मि भाइ सो णरिंदु तीए जुत्तु ण सुरिंदु । 5
चंदणेण सीसियाउ ता सुअधु वाउ आउ ।
मेहजालु मंदु मंदु मोक्कलेइ तोयविंदु ।
ताउ तेण सभरीउ चित्ति विज्झु विप्फुरीउ ।

घत्ता—सो कुंजरु दुट्ठउ चित्ति पहिट्ठउ भग्गउ जाइ कलिंजरहो ।
ता जणवउ धाविउ कह व ण पाविउ वाहुडि गउ सो णियपुरहो ॥१२॥ 10

१३

They escape but separately

जाव कुंभि भग्गमाणु काणण पवज्जमाणु ।
राणियाए वोहियाए ताव कंतु वुत्तु ताए ।
देव देव उत्तरेहु मज्झु लग्गि मा मरेहु ।
तुम्हि होंति होइ रज्जु तुम्हि होंति धम्मकज्जु ।
तुम्हि होंति सयल लोय तुम्हि होंति जीवभोय । 5
पट्टणासु राय जाहि लेउ हत्थि मज्झु वाहि ।
राणएण तं सुणेवि रुक्ख लग्गि उल्ललेवि ।
ससएण पट्टणम्मि राउ पत्तु तक्खणम्मि ।
एत्थु ताव कुंजरेण सा वि णीय दुद्धरेण ।

घत्ता—सो कुंजरु जतउ सरवरु पत्तउ पइठउ तहिँ डोहतु जलु । 10
सा णरवइभामिणि ण सुरकामिणि ता जलि पडिय करेवि छलु ॥१३॥

---

११ १ DN रायए २ DN सचित्ती

१२ १ S णिएण, J णएण.

११—रानीके दोहलाकी पूर्ति

यह सुनकर राजा हँसते हुए बोला—"हे सुन्दरी ! यह तूने अपने हृदयमे क्या चिन्ता उत्पन्न की ? मैने जाना कि तुझे किसी मेरे कारणसे दु ख उत्पन्न हुआ है। हे सुन्दरी ! तूने इसको कितनी बडी बात समझा ? व्यर्थ अपनी देहको मत खपा।" तब वह भामिनी कहने लगी कि इस ग्रीष्मकालमें जब, भयकर दावानल लग रहे है तब, हे स्वामिसार ! जलधर कहाँसे आयेगा ? हे गुणविशाल ! यह होना सम्भव नहीं।" तब राजाने अपने मनमे इसको विचार कर मेघकुमार देवका चिन्तवन किया। वह देव राजाके चिरकालीन स्नेहवश मेघका रूप निर्मित कर वहाँ आया। उसने समस्त नभस्तलको आच्छादित कर दिया और वहाँ जल-बिन्दुओंकी वर्षा होने लगी। तब सुचित्त हुई महिलासे राजाने कहा—"हे कृशतनु ! देखो इस जलधरको; मदन-क्रीडाके साधनरूप प्रसाधन लो; और, हे भट्टारिके, अपने मनको सँभालो।" ५

१२—हाथीका मदोन्मत्त होकर भाग उठना

तत्पश्चात् राजाने एक पुष्ट और दीप्तिवान् हाथी तैयार कराया, बाजे बजवाये, मगल गीत कराया। वह हाथी मण्डित और सज्जित कराकर रानीको अर्पित किया गया। फिर उस सुन्दर राजाने रानीको उसके स्कन्धपर चढाया। उसके साथ राजा ऐसा शोभायमान हुआ जैसे सुरेन्द्र। उसी समय चन्दन-मिश्रित सुगन्धित वायु चलने लगी और मेघजाल मन्द-मन्द जल-बिन्दु बरसाने लगा। तभी उस हाथीको स्मरण आ गया और उसके चित्तमें विन्ध्यपर्वत स्फुरायमान हो उठा। तब चित्तमें प्रहर्षित होकर वह दुष्ट हाथी भागकर कालिंजरकी ओर चल पडा। लोग पीछे-पीछे दौडे, किन्तु वे उसे किसी प्रकार भी नहीं पा सके। वह अपनी पुरीसे निकलकर बाहर चला गया। ५

१३—राजाकी मुक्ति किन्तु रानीका अपहरण

जब हाथी भागता हुआ वनकी ओर जाने लगा, तब रानी बहुत भयभीत हुई। वह अपने पतिसे बोली—"हे देव, आप उतर जाइए। मेरे लिए मत मरिए। आपके रहते राज्य है, आपके होते धर्मकार्य है, आपके होते सभी लोग है। आपके होते ही सब जीवोंका भोग-विलास है। हे राजन्, पट्टणको लौट जाइए—हाथी मुझे भले ही ले जाये।" रानीकी बात सुनकर राजा एक वृक्षकी डालसे लगकर कूद गया और शीघ्र ही दु खी मनसे राजधानीको लौट आया। यहाँ वह दुर्द्धर कुजर रानीको लेकर भागता ही गया। जाते-जाते वह हाथी एक सरोवरमें प्रविष्ट हुआ। जहाँ कुछ गहरा पानी था वहाँ सुरकामिनीके समान वह रानी चतुराईसे जलमें कूद गयी। ५

१४

The miracle in the forest

अइदुक्खु वहंती णियमणम्मि मरु मुएवि महासइ गय वणम्मि ।
ता दिट्ठउ उववणु ढखरुक्खु मयरहियउ णीरसु [1]णाइँ मुक्खु ।
तहिं रुक्खहो तले वीसमइ जाम णंदणवणु फुल्लिउ फलिउ ताम ।
ता दंतीपुरे केण वि विचित्त भडमालिहिं अग्गइ कहिय वत्त ।
वणवाल णिसुणि महो तणिय वाय वणे दीसइ अज्जु अउव्व छाय । 5
पाफुल्लिय चंपय बउल चूय लयमंडव मयल वि हरिय हूय ।
अण्णण्णहिँ समयहिँ फलहिँ जे वि फलभारइँ तरुवर णमिय ते वि ।
भमरावलि परिमलगंधलुद्ध ण वणसिरि गायइ सर विसुद्ध ।
किं वम्महु आयउ तहिँ वणम्मि तं सुंदरु भावइ महो मणम्मि ।
आयण्णिवि त वणवालु तित्थु खणि गयउ वियभिउ मयणु जित्थु । 10

घत्ता—ता पेक्खिवि सो णरु त वणु सुंदरु हरिसइँ तरलिउ [2]एक्कु खणु ।
णउ अम्हहँ पुण्णइँ फलियउ वण्णइँ इउ हियइँ चियप्पिउ तेण पुणु ॥१४॥

१५

The forest-guard discovers her and takes her home

वणवालु वणेण [1]य परिभमेइ वणरिद्धिहे कारणु सो णिएइ ।
ता परिमलमीसिउ पवणु आउ वणरिद्धि कहइ ण णियसहाउ ।
मग्गेण य आयउ पवणु जेण गउ रक्खवालु गवेण तेण ।
तें तरुतले दिट्ठी दिव्व बाल ण वणसिरि सोहइ गुणवमाल ।
पुणु चिंतइ णउ सामण्ण एह रूवेण अउव्वी दिव्वदेह । 5
बुल्लाविय पुणु णिय सुअ भणेवि उट्ठाविय सा करयलु धरेवि ।
किं दुम्मण अच्छहि पुत्ति एहि लइ चलहि जाहि महो तणए गेहे ।
तहो वयणु सुणेविणु सवणरम्मु सच्चल्लिय कामिणि तासु हम्मु ।
वणवालहो घरि सा वसइ जाम कुसुमत्तएँ चिंतिउ हियइँ ताम ।

घत्ता—एह णारि विसिट्ठी तें तहि दिट्ठी किंणरि किं विज्जाहरिय । 10
णयणाण पियारी महिलहे सारी चंपयगोरी गुणभरिय ॥१५॥

१६

Her beauty makes Kusumadatta jealous of her

तणुरूवरिद्धि एह अइविहाइ णहरूवइँ रविससि सरिय णाइँ ।
सारउ सरीरु इच्छतियाए इह सारिउ जघउ कयलियाए ।
करिराएँ मण्णेवि करु ण चंगु ण सेविउ मेरुहि आहि तुंगु ।
सुरगिरिणा गणियउ कढिण एह अणुसरिय णियबहो ललियदेह ।
पिहुलत्तणु मणहरु सोणियाहि घरु मण्णिवि मयणे विहिउ ताहि । 5
मयरहरइँ गहिरिम णाहियाहे ण धीय भणेविणु दिण्ण आहे ।
[1]तहि लिहियइं पीणुण्णयथणाइँ ण कुंभिहे कुंभइँ णववणाइँ ।

---

१४ १] णायमुक्खु २ N एक्कखणु

१५ १. S वणे य

१६ १] तह

१४—रानीके पहुँचनेसे उपवनमें आश्चर्य

सरोवरसे निकलकर वह महासती अपने मनमे अति दु ख धारण करती हुई वनमे पहुँची। वहाँ उसने देखा कि वृक्ष सब सूखे पडे है और पशु भी कोई नहीं है। अतएव वह उपवन उस मूर्खके समान था, जो अपना कोई मत नहीं रखता और नीरस हो। वहाँ वह एक वृक्षके नीचे विश्राम लेने लगी। उसी समय वह नन्दनवन फल-फूल उठा। तब किसीने जाकर दन्तीपुरमें भटमालीके आगे वह विचित्र बात कही—"हे वनपाल, मेरी बात सुनो। आज वनमे एक अपूर्व ५ शोभा दिखायी दे रही है। चम्पक, बकुल और आमके वृक्ष प्रफुल्लित हो उठे है। समस्त लता-मण्डप हरे हो गये है। जो अन्य-अन्य समयमें फलते है, वे तरुवर भी फलोके भारसे झुक रहे है। सुगन्धकी लोभी भ्रमरावली ऐसी गुजार कर रही है जैसे मानो वनश्री विशुद्ध स्वरसे गा रही हो। क्या मन्मथ उस वनमे आ गया है, जो वह मुझे इतना सुन्दर दिखायी दिया ?" यह सुनकर वनपाल तुरन्त ही वहाँ गया, जहाँ उक्त प्रकार मदनका विलास दिखायी दे रहा था। उस वनको १० ऐसा सुन्दर देखकर माली एक क्षण-भरके लिए हर्षसे तरगित हो उठा और अपने हृदयमें विकल्प किया कि हमारे किसी पवित्र पुण्यसे तो यह फल नहीं है।

१५—रानी मालीके घर जाती है

वनपाल वनमे भ्रमण करने और वनकी ऋद्धिके कारणकी खोज लगाने लगा। उसी समय सुगन्ध मिश्रित पवन आया, मानो वनकी ऋद्धि अपना स्वभाव कह रही हो। जिस मार्गसे वह पवन आया था, रक्षपाल उसी ओर गन्धका अनुसरण करता हुआ चल पडा। उसने वृक्षके नीचे बैठी हुई उस दिव्य बालिकाको देखा, मानो गुणोसे भरपूर स्वय वनश्री विराजमान हो। माली विचार करने लगा, यह कोई साधारण स्त्री तो है नहीं; यह तो रूपमे अपूर्व दिव्य देहधारी है। ५ फिर उसने अपनी पुत्री कहकर उसे बुलाया और हाथ धरकर उसको उठाया। वह बोला—"हे पुत्री, दु खी मनसे यहा क्यों बैठी है? ले, मेरे साथ मेरे घरको चल।" उसके ऐसे कर्णमधुर वचन सुनकर वह कामिनी उसके घरको चल पडी। जब वह वनमालीके घरमे रहने लगी तब मालीकी स्त्री कुसुमदत्ताने अपने हृदयमें विचार किया—इस असाधारण स्त्रीको जो मेरे पतिने देखा है, सो यह कोई किन्नरी है या विद्याधरी, जो यह आँखोको ऐसी प्यारी लगती है; तथा महिलाओंमें १० श्रेष्ठ, चम्पक-गोरी और गुणोंसे भरपूर दिखायी देती है।

१६—रानीका सौन्दर्य व मालिनकी रानीसे ईर्ष्या

इसके शरीरकी रूप-ऋद्धि अत्यधिक भाती है। नखोके रूपमें मानो सूर्य और चन्द्र इसका अनुसरण करते है। इसके सुन्दर शरीरकी इच्छा करती हुई ही कदली इसकी जघाओका अनुकरण करने लगी है, और ऐरावत हाथीने उनके समक्ष अपनी सूडको भला न जान, मानो मेरुके उच्च शिखरका सेवन किया है। सुरगिरिने अपनेसे भी कठिन मानकर इस ललितदेह रमणीके नितम्बका अनुसरण किया है। इसके श्रोणि भागकी मनोहर विशालताका, मानो मदनने वहीं ही ५ अपना घर मानकर निर्माण किया है। नाभिकी गहराई तो इतनी है कि जैसे समुद्रने उसे ही अपनी कन्या (लक्ष्मी) मानकर, उपहारमें दी हो। उसके रेखाकित पीन और उन्नत स्तन तो ऐसे है, जैसे मानो नये घावोसे युक्त हाथीके कुम्भ ही हो। करपल्लवोंकी शोभासे युक्त उसकी भुजा लताओंकी

कि वण्णमि सरलिम भुवलयाहि करपल्लवमोहासजुआहि ।
दंतावलि सोहइ विप्फुरंति ण डाडिमवीयहँ अणुहरंति ।
णासहे उण्णइ असहतएण रत्तत्तणु वरियउ अहरएण । 10
सियकसण नयण सोहंति तार ण केययदलि गय भमर तार ।
अइकुडिली भउहावलि विहाइ वणुलट्ठि व मयणें धरिय णाइँ ।
सोहामहग्घु भालयलु भाइ अद्धिंदु व लग्गउ सहइ णाइँ ।
अलिणीलकेस सिररुह चुलंति मुहइंदुभयइँ ण तम मिलंति ।
घत्ता—जइ आयहि रूवइँ मयणसरूवइँ महो पिउ होइ विमणमणु । 15
ता कलहु करेविणु मइँ मेल्लेविणु णिच्छउ माणइ एह पुणु ॥१६॥

१७

The birth of the hero at the cemetery

ताव ताए रोमियाइँ डोसु देवि घल्लियाइँ ।
सा घराउ मेल्लि राउ तक्खणेण चल्लियाउ ।
दुक्खएण जंतियाए भूयथाणु दिट्ठु ताए ।
सूलभिण्ण चोरजार तुड खड[1] विट्ठ[2] घार ।
दारियाहँ जीवयाहँ लोहिएण थिप्पिर आमिसाण गिद्धएहि भूयएहि णच्चिर । 5
लोलजीह भल्लुएहि फाडिय मयोवर मसरत्तफेक्करतरक्खसाण गोयर ।
उट्ठिराण रिंगिराण पक्खिलक्खसंकुल चिच्चिजालजीववग्गडज्झमाणआउल ।
वायएण सोसभूयकेसभारलोलिर थामि थामि वड्ढियाहि चिंचियाहि घोलिर ।
देहिदेहगधएण माणुसेहिँ जूरिय कहिँ मि थामे भग्गएहि[3] खप्परेहिँ पूरिय ।
घत्ता—देहहो अवसाणइँ भीममसाणइँ तहि तहे जायउ पुत्तु वरु । 10
कणयामरवण्णउ लक्खणपुण्णउ जणमणणयणाणंदयरु ॥ १७ ॥

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयसे पंचकल्लाणविहाण-
कप्पतरुफलसंपत्ते करकंडजम्मोप्पत्तिवण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ।

॥ संधि ॥ १ ॥

---

17 १ JDN मुड २ DN 'विट्ठघार'के स्थानमे 'विट्ठय' ३ N भग्गताण

सुडौलताका तो मै क्या वर्णन करूँ ? दन्तावलि ऐसी चमकदार शोभा धारण कर रही है, मानो अनारके दानोंका ही अनुसरण कर रही हो। नासिकाकी उन्नतिको सहन न करके ही तो उसके अधरने वह (क्रोधकी) लालिमा धारण की है। उसके श्वेत और कृष्ण नयन तारे तो ऐसे सोहते है, जैसे मानो केतकीके पत्रपर दो बडे-बडे भौरे आ बैठे हों। उसकी अति कुटिल भौहोंकी आवलि ऐसी अच्छी भाती है, जैसे मानो मदनने अपनी धनुर्यष्टि धारण की हो। भालतल ऐसा महान् शोभा सम्पन्न भाता है, जैसे मानो अर्धचन्द्र ही वहाँ लगकर शोभा दे रहा हो। भौरोंके समान काले केश सिरपर लहलहाते हुए ऐसे प्रतीत होते है, जैसे मानो उसके मुखचन्द्रके भयसे अन्धकार वहाँ मिलकर काँप रहा हो। यदि इसके मदन स्वरूप सौन्दर्यसे मेरा पति विचलित मन हो गया, तो वह निश्चय ही कलह करके मुझे निकाल देगा और इसीको मानने लगेगा। १० १५

१७—भीषण श्मशानमें पुत्र-जन्म

ऐसा विचार कर उस मालिनने कुछ दोष देकर उसे घरसे निकाल दिया। वह घरसे मोह छोड उसी क्षण वहाँसे चल पडी। गर्भके कारण दु खसे चलते-चलते उसने श्मशान भूमिको देखा। वहाँ चोर और व्यभिचारी शूलोंसे भिदे हुए थे और उनके मृत शरीरको ढीठ चील-कौए अपनी चोंचोंसे खण्ड-खण्ड कर रहे थे। वहाँकी भूमि विदीर्ण हुए जीवोंके रुधिरसे भर रही थी। मासके लोभी गीध व अन्य प्राणी वहाँ नाच रहे थे। लपलपाती जीभो वाले भालू मृतशरीरोका पेट फाड रहे थे। मासके लोभी राक्षस फे-फे करते हुए वहाँ फिर रहे थे। उडते और रेंगते लाखों पक्षियोकी वहाँ भीड लगी थी। आगकी ज्वालामें जलते हुए जीवोंसे सारी भूमि व्याप्त थी। मृतशरीरोके केश वायुके झोंकोंसे लहरा रहे थे और स्थान-स्थानपर बँधी झण्डियाँ फहरा रही थीं। जीवोंके मृतशरीरोंकी सडी गन्धसे मनुष्योंको वहाँ ज्वर आ जाता था। भग्न हुए खप्परोंके वहा कहीं-कहीं ढेर लगे थे। इस प्रकार देहके अवसानभूत उस भयकर श्मशानमें पद्मावतीने एक पुत्र रत्नको जन्म दिया, जो कनक व अमर वर्ण, लक्षणोंसे पूर्ण और जन-मन-आनन्दकारी था। ५ १०

इति मुनि कनकामर विरचित भव्यजनकर्णावतस पञ्चकल्याणविधान कल्पतरु फल सपन्न करकण्ड महाराज चरित्रमें करकण्डजन्मोत्पत्तिवर्णन नामक प्रथम परिच्छेद समाप्त ॥

संधि—२

१

A Mātanga attempts to take the child away

उप्पण्णए बालए विमलदिणे मगलइँ अणेयइँ तहि हुयइँ ।
ण दिणयरु उइयउ णिम्मलइँ मजायइँ पयडइँ डिम्मुहइँ ॥ १ ॥
तेँ जायएँ तहे वीसरिउ दुक्खु ण अडविहे जायउ कापरुक्खु ।
ण मेइणि भिंदिवि सहिहरिद्रु ण जायउ णियकुलणहि छणिंदु ।
सो णदणु जायउ जाव लेइ मायगु ताम अग्गइ णिएइ । 5
कसणच्छवि लोयण रत्त जासु सो आयउ तहि णदणहो पासु ।
[1]उच्चायिउ तेँ सो णियकरेण ण हेमकलसु कुंजरवरेण ।
तहिँ करयलि थक्कउ सोह देइ ण फणिवइमत्थइँ मणि सहेइ ।
णियणिलउ लएविणु जाइ जाम पुक्कार पमेल्लिय ताए ताम ।
अरे भग्ग मलीमस केत्थु पत्तु कि लेवि जाहि महो तणउ पुत्तु । 10
ण वि एक्कहो दुक्खहो पारु जाम सपत्तउ गरुवउ दुक्खु ताम ।

घत्ता—मायंगहो रूवेँ खेयरइँ कर जोडिवि पउमावइ भणिय ।
मा रोवहि वहिणिए सुदरिए आयण्णहि वत्त महो तणिय ॥१॥

२

The Mātanga explains His parentage

एत्थत्थि भरहि पव्वयपहाणु विजयद्धु पसिद्धउ अप्पमाणु ।
पुव्वावरसायरलग्गमाणु ण तोलादडु सुसोहमाणु ।
सुरकिंणरखेयरसुरहँ सग्गु तारेण विणिम्मिउ जो अहगु ।
तहिँ दाहिणि सेढिहिँ णयरि अत्थि जहिँ जणहिँ जाहि णाणाहिँ पथि ।
विज्जुप्पह णामेँ जा पसिद्ध वरगुणपरियाणिय जा समिद्ध । 5
जो विज्जाणियरहिँ हुउ समिद्धु तहिँ णरवइ विज्जुप्पहु पसिद्धु ।
तहो घरिणि सुविज्जलया पहूय ण गउरि महेसहो कामरूव ।
तहि जायउ णदणु गुणणिकेउ हउँ वरणिहिँ पयडउ बालएउ ।
अणुराएँ रत्तिय सयलकाल महो घरिणि पहूई हेममाल ।

घत्ता—हउँ ताएँ समउ दक्खिणदिसिहेँ रम्ममाणु गयणयले गउ । 10
[1]अधकलिंगहो अतरिण[2] विंझसेलु अग्गइँ ठियउ ॥ २ ॥

---

१ १ DN उच्चायउ २ DJS ता

२ १ N में सुधार कर 'अध' के स्थान पर 'अग' २ SD अतरेण

संधि—२

१—जन्म होते ही मातंगका आगमन

जिस शुभ दिन उस बालकका जन्म हुआ, उस दिन वहाँ अनेकों मंगल हुए; मानो सूर्य उदित हुआ हो और दिशाओंके मुख स्पष्ट रूपसे निर्मल हो गये हों। पुत्र-जन्मसे माताको अपने दुःखका विस्मरण हो गया, मानो उस वनमें कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ हो, अथवा पृथ्वीको भेद कर पर्वतराज सुमेरु निकल आया हो, या अपने कुलरूपी नभमें पूर्णचन्द्रमा उदित हुआ हो। जैसे ही वह अपने उत्पन्न हुए पुत्रको लेने लगी, तैसे ही उसने अपने आगे एक मातंगको खड़ा देखा। ५
उसका रंग काला और नेत्र लाल थे। वह उस नवजात शिशुके पास आया और उसने अपने हाथमें बालकको ऐसा उठा लिया, जैसे मानो किसी विशाल हाथीने स्वर्णकलशको उठा लिया हो। उसके हाथमें स्थित वह बालक ऐसी शोभा देता था, जैसे मानो काले नागके फणपर मणि चमक रहा हो। उसे लेकर जब वह अपने घर जाने लगा, तब उसकी माताने पुकार मचायी—अरे भगोड़े, पापी, तू कहाँसे आया? और मेरे पुत्रको तू क्यों लिये जा रहा है? एक दुःखका ही तो पार पाया १०
नहीं कि यह दूसरा और बड़ा दुःख आ पड़ा। इसपर उस मातंग रूपधारी विद्याधरने हाथ जोड़कर पद्मावतीसे कहा—"हे सुन्दरी बहन, रो मत, मेरी बात सुन।"

२—मातंगका कुल-वर्णन

इसी भारत देशमें पर्वतोंमें प्रधान, प्रसिद्ध और अप्रमाण विजयार्द्ध पर्वत है। वह पर्वत पूर्व और पश्चिम सागरोंसे लगकर ऐसा शोभायमान हो रहा है, जैसे (पृथ्वीको तौलनेके लिए) तुला-दण्ड ही हो। वहाँ सुरों, किन्नरों और खेचरोंका समागम हुआ करता है। उसे अभगरूपसे तार (देवता) ने निर्माण किया है। उसकी दाहिनी श्रेणीपर एक नगरी है, जहाँ पथिक नाना प्रकारके यानोंसे गमन करते है। वह नगरी विद्युत्प्रभा नामसे प्रसिद्ध है, समृद्ध है और अपने उत्तम गुणों ५
के लिए विख्यात है। वहाँ विद्याओंके समूहोंसे समृद्ध हुआ विद्युत्प्रभ नामका प्रसिद्ध राजा था। उसकी गृहिणी विद्युल्लता नामकी हुई, जो महेशकी देवी गौरीके समान सुन्दरी थी। उसीसे उत्पन्न मैं गुणनिकेत पुत्र हुआ और पृथ्वीपर बालदेव नामसे प्रसिद्ध हुआ। मेरी गृहिणी हुई हेममाला, जो सदैव मुझमें स्नेहसे अनुरक्त रहती थी। एक बार उसीके साथ मैं दक्षिण दिशामें रमण करता हुआ आकाशमार्गसे जा रहा था। आन्ध्र और कलिंगदेशोंके बीच विन्ध्यपर्वत मेरे १०
आगे खड़ा था।

३

His insolence towards a sage

चलतु खलतु सकिकिणिरोलु परंजियतेयविवायरवोलु ।
णहेण वि जतउ तीए समाणु तहो णउ चल्लइ दिव्वविमाणु ।
थिरट्ठिउ पेक्खिवि त अयमाणु मरोसइँ कड्ढिउ तिक्खकिवाणु ।
पलोइवि दिम्मुहु[3] थाउ खणेण पणट्ठउ तोसु विमण्णु मणेण ।
अहोमुहु होएवि जोवइँ जाम मुणीसरु दिट्ठउ सुव्वउ ताम । 5
पवड्ढियकित्ति जणाण पससि णिवेसिय लोयण णासपएसि ।
पलवियबाहु करि व्व पयड्डु पयासिउ दुद्धरु इदियदड्डु ।
अकपउ मेरु व सुद्धु[4] सुयाणु[5] णिरुवउ झायइ णिच्चलु झाणु ।

घत्ता—सो पेक्खिवि रुट्ठउ वहिणि हउँ जहि अच्छइ झाणपरिट्ठियउ ।
असिलय करयलि करिवि पुणु सो कोहें हणणहुँ उट्ठियउ ॥ ३ ॥ 10

४

The sage's curse

महो जतहो कीयउ कज्जणासु इउ भणिवि किउ उवसग्गु तासु ।
तें रूसिवि पुणु महो दिण्णु साउ णउ भग्ग लहेसहि विज्जयाउ ।
तें सावें विज्जउ गउ खणेण मइँ चिंतिउ वहिणिए णियमणेण ।
एहु[1] मुणिवरु णउ सामण्णु होइ त होइ खणद्धें ज भणेइ ।
इय भणिवि चलणहिँ लग्गु तासु कि मुणिवर महो किउ विज्जणासु । 5
[2]हउँ किंकरु तुम्हहँ देवदेव जम्मे वि ण छडउँ तुज्झ सेव ।
कोहाणलु सामहि सामिसाल मा पसरउ तणुवणे भयलकाल ।
तें वयणें उवसमु गउ मुणिंदु मताण,पहावें ण फणिंदु ।

घत्ता—सो मुणिवरु जाणिवि तुट्ठमणु[3] कमकमल णवेविणु पभणियउ ।
हे मुणिवर करुणइ कहहि महो कह होहँहिँ[4] विज्जउ रमणियउ ॥ ४ ॥ 10

५

Modification of the curse

त सुणिवि मुणीसरु परमणाणि महो सम्मुहुँ वोल्लइ दिव्ववाणि ।
हे खेयर चपणराहिवासु सिरिधाडीवाहणवधुरासु ।
पोमावइ तहो भामिणि गएण णेवेवी दुट्ठें [1]हरिवि तेण ।
[2]पावेवी सा पुणु मालिएण दंतीपुरे णेवी तुरियएण ।
तहो घरिणिए कलहु करेवि सा वि णीसारिय आवेसइ इहावि । 5
तहो णदणु होसइ [3]परवतेउ पालेसहि सो तुहुँ गुणणिकेउ ।
सो रज्जु लहेसइ पुरि विसालि तुहँ विज्जउ [4]होसहिँ तम्मि कालि ।

३ १ D परिज्जिय २ JS अपमाणु ३ N दिम्मुह ४ सुट्ठु ५ D सयाण, J सयाणु
४ १ DJS ए २ J किंकरु हउ ३ D रुट्ठमणु ४ J होसइ
५ १ J करिवि २ S में भूलसे इस कडवकका शेष अश व अगलेकी ढाई पक्तियाँ 'ज भणहि वहिणि त करमि सव्वु' तक छूट गयी है । ३ D पउरतेउ ४ DN होहँहिँ

३—विद्याधरकी जैनमुनिसे भेंट

मै अपनी गृहिणीके साथ आकाशमें जा रहा था और मेरा दिव्य विमान चलता हुआ, मटकता हुआ, घटियोंकी ध्वनि करता हुआ, अपने तेजसे सूर्यके प्रतापको भी पराजित कर रहा था। अकस्मात् उस दिव्य विमानका चलना बन्द हो गया। उसे निश्चल खडा देख मैने रोषपूर्वक अपना तीक्ष्ण कृपाण खींच लिया। चारो दिशाओंमें देखता हुआ क्षणमात्र स्तब्ध रहा, मेरा सन्तोष नष्ट हो गया और क्षणमात्रमें मै विषादयुक्त हो गया। अधोमुख होकर जब मै नीचेकी ओर देखता ५ हूँ, तो मुझे वहाँ सुव्रत मुनीश्वर दिखायी दिये। उनकी कीर्तिकी प्रशसा लोगोंमें खूब बढ़ी हुई थी। उनके लोचन नासिका-प्रदेशपर निवेशित थे। उनके हाथीके समान प्रचण्ड बाहु नीचेको लटक रहे थे, मानो उन्होंने दुर्द्धर इन्द्रिय (निग्रहरूप) दण्डको प्रकट कर रखा हो। वे मेरुके समान अकप, शुद्ध और ज्ञानी होते हुए, निश्चल अरूपी ध्यानमें निमग्न थे। उन्हे देखकर, हे बहिन, मुझे रोष आ गया और जहाँ वे मुनिराज ध्यान लगाये बैठे थे, वहाँ अपने हाथमे तलवार लेकर १० क्रोधपूर्वक हनन करनेके लिए उठ खडा हुआ।

४—मुनिका शाप

'मेरे जाते हुए इन्होने मेरे कार्यका नाश किया'—ऐसा मनमें विचारकर मैने उनका उपसर्ग किया। उन्होंने रुष्ट होकर मुझे शाप दे दिया—'रे भगोडे, तुझे विद्याओका लाभ नहीं होगा।' उस शापसे मेरी विद्याएँ एक क्षणमें चली गयीं। तब, हे बहिन, मैने अपने मनमें विचारा—'ये मुनिवर कोई सामान्य नहीं है। ये जो कुछ कहते है, वैसा ही आधे क्षणमें हो जाता है।' ऐसा मनमें विचार कर मै उनके चरणोंमें लग गया और बोला—'हे मुनिवर, आपने मेरी ५ विद्याओका नाश क्यों कर दिया ? हे देवोंके देव, मै तो आपका किंकर हूँ। जन्म-भर भी मै आप की सेवाको नहीं छोडूँगा। हे स्वामिसार, अपने क्रोधानलको शान्त कीजिए और उसे सदा काल मेरे तनरूपी तृणवनमे न फैलने दीजिए।' मेरे इस वचनसे मुनि उपशमको प्राप्त हो गये, जैसे मन्त्रोंके प्रभावसे फणीन्द्र। जब मैने जान लिया कि मुनिवर अपने मनमें तुष्ट हो गये, तब उनके चरणकमलोको नमस्कार करके मैने कहा—'हे मुनिवर, करुणापूर्वक मुझे कहिए कि मेरी रमणीक १० विद्याएँ मुझे कब पुन प्राप्त होंगी ?'

५—शापका प्रायश्चित्त

मेरी बात सुनकर वे परमज्ञानी मुनीश्वर मेरे सम्मुख इस प्रकार दिव्यवाणी बोले—'हे खेचर, चम्पाके सुन्दर राजा श्रीधाडीवाहनकी भामिनी पद्मावतीको एक दुष्ट हाथी हरण करके ले जायेगा, वह एक मालीको मिल जायेगी और वह उसे तुरन्त दन्तीपुरमें ले जायेगा। मालीकी गृहिणी कलह करके उसे निकाल देगी और वह यहाँ (श्मशानमें) आवेगी। उसके एक प्रखर तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा और तू गुणनिकेत उसका पालन करेगा। वह उस विशाल पुरीमें राज्य प्राप्त करेगा। ५ उस समय तेरी विद्याएँ तुझे पुन प्राप्त हो जावेंगी।' मुनिकी यही बात मानकर मैने इस श्मशानका

३

His insolence towards a sage

चलतु खलतु सकिंकिणिगेलु पर[1]ज्जियतेयदिवायरबोलु ।
णहेण वि जतउ तीए समाणु तहो णउ चल्लइ दिव्वविमाणु ।
थिरट्ठिउ पेक्खिवि त अयमाणु[2] मणेमड कड्ढिउ तिक्खकिवाणु ।
पलोइवि दिम्मुहु[3] थाउ खणेण पणट्ठउ तोसु विसण्णु मणेण ।
अहोमुहु होएवि जोवइ जाम मुणीसरु दिट्ठउ सुव्वउ ताम । 5
पवड्ढियकित्ति जणाण पसम्मि णिवेसिय लोयण णासपएसि ।
पलवियबाहु करि व्व पयडु पयासिउ दुद्धरु इंदियदंडु ।
अकपउ मेरु व सुद्धु[4] सुयाणु[5] णिरुवउ झायइ णिच्चलु झाणु ।

घत्ता—सो पेक्खिवि रुट्ठउ वहिणि हउँ जहिं अच्छइ झाणपरिट्ठियउ ।
असिलय करयलि करिवि पुणु सो कोहें हणणहुँ उट्ठियउ ॥ ३ ॥ 10

४

The sage's curse

महो जतहो कीयउ कज्जणासु इउ मण्णिवि किउ उवसग्गु तासु ।
तें रूसिवि पुणु महो दिण्णु साउ णउ भग्ग लहेसहि विज्जयाउ ।
तें सावें विज्जउ गउ खणेण मइँ चिंतिउ वहिणिए णियमणेण ।
एहु[1] मुणिवरु णउ सामण्णु होइ त होइ खणद्धें ज भणेइ ।
इय मण्णिवि चलणहिँ लग्गु तासु कि मुणिवर महो किउ विज्जणासु । 5
[2]हउँ किंकरु तुम्हहँ देवदेव जम्मे वि ण छडउँ तुज्झ सेव ।
कोहाणलु सामहि सामिसाल मा पसरउ तणुवणे मयलकाल ।
तें वयणें उवसमु गउ मुणिंदु मताण,पहावें ण फणिंदु ।

घत्ता—सो मुणिवरु जाणिवि तुट्ठमणु[3] कमकमल णवेविणु पभणियउ ।
हे मुणिवर करुणइ कहहि महो कह होहिँ[4] विज्जउ रमणियउ ॥ ४ ॥ 10

५

Modification of the curse

त सुणिवि मुणीसरु परमणाणि महो सम्मुहुँ वोल्लइ दिव्ववाणि ।
हे खेयर चपणराहिवासु सिरिधाडीवाहणवधुरासु ।
पोमावइ तहो भामिणि गएण णेवेवी दुट्ठें [1]हरिवि तेण ।
[2]पावेवी सा पुणु मालिएण दतीपुरे णेवी तुरियएण ।
तहो घरिणिए कलहु करेवि सा वि णीसारिय आवेसइ इहावि । 5
तहो णदणु होसइ [3]परवतेउ पालेसहि सो तुहुँ गुणणिकेउ ।
सो रज्जु लहेसइ पुरि विसालि तुहुँ विज्जउ [4]होसहिँ तम्मि कालि ।

---

३ १ D परिज्जिय २ JS अपमाणु ३ N दिम्मुह ४ सुद्धु ५ D सयाण, J सयाणु
४ १ DJS ए २ J किंकरु हउ ३ D कट्ठमणु ४ J होसइ
५ १ J करिवि २ S में भूलसे इस कडवकका शेष अश व अगलेकी डाई पक्तियाँ 'ज भणहि वहिणि त करमि सव्वु' तक छूट गयी है । ३ D पउरतेउ ४ DN होहिँ

३—विद्याधरकी जैनमुनिसे भेंट

मै अपनी गृहिणीके साथ आकाशमे जा रहा था और मेरा दिव्य विमान चलता हुआ, मटकता हुआ, घटियोकी ध्वनि करता हुआ, अपने तेजसे सूर्यके प्रतापको भी पराजित कर रहा था। अकस्मात् उस दिव्य विमानका चलना बन्द हो गया। उसे निश्चल खडा देख मैने रोषपूर्वक अपना तीक्ष्ण कृपाण खींच लिया। चारो दिशाओमें देखता हुआ क्षणमात्र स्तब्ध रहा, मेरा सन्तोष नष्ट हो गया और क्षणमात्रमें मै विषादयुक्त हो गया। अधोमुख होकर जब मै नीचेकी ओर देखता ५ हूँ, तो मुझे वहाँ सुव्रत मुनीश्वर दिखायी दिये। उनकी कीर्तिकी प्रशसा लोगोमें खूब बढी हुई थी। उनके लोचन नासिका-प्रदेशपर निवेशित थे। उनके हाथीके समान प्रचण्ड बाहु नीचेको लटक रहे थे, मानो उन्होंने दुर्द्धर इन्द्रिय (निग्रहरूप) दण्डको प्रकट कर रखा हो। वे मेरुके समान अकप, शुद्ध और ज्ञानी होते हुए, निश्चल अरूपी ध्यानमे निमग्न थे। उन्हे देखकर, हे बहिन, मुझे रोष आ गया और जहाँ वे मुनिराज ध्यान लगाये बैठे थे, वहाँ अपने हाथमे तलवार लेकर १० क्रोधपूर्वक हनन करनेके लिए उठ खडा हुआ।

४—मुनिका शाप

'मेरे जाते हुए इन्होने मेरे कार्यका नाश किया'—ऐसा मनमें विचारकर मैंने उनका उपसर्ग किया। उन्होंने रुष्ट होकर मुझे शाप दे दिया—'रे भगोडे, तुझे विद्याओका लाभ नहीं होगा।' उस शापसे मेरो विद्याएँ एक क्षणमें चली गयीं। तब, हे बहिन, मैंने अपने मनमें विचारा—'ये मुनिवर कोई सामान्य नहीं है। ये जो कुछ कहते है, वैसा ही आधे क्षणमें हो जाता है।' ऐसा मनमें विचार कर मै उनके चरणोमे लग गया और बोला—'हे मुनिवर, आपने मेरी ५ विद्याओका नाश क्यों कर दिया ? हे देवोंके देव, मै तो आपका किंकर हूँ। जन्म-भर भी मै आप की सेवाको नहीं छोडूँगा। हे स्वामिसार, अपने क्रोधानलको शान्त कीजिए और उसे सदा काल मेरे तनरूपी तृणवनमे न फैलने दीजिए।' मेरे इस वचनसे मुनि उपशमको प्राप्त हो गये, जैसे मन्त्रोंके प्रभावसे फणीन्द्र। जब मैंने जान लिया कि मुनिवर अपने मनमें तुष्ट हो गये, तब उनके चरणकमलोंको नमस्कार करके मैंने कहा—'हे मुनिवर, करुणापूर्वक मुझे कहिए कि मेरी रमणीक १० विद्याएँ मुझे कब पुन प्राप्त होंगी ?'

५—शापका प्रायश्चित्त

मेरी बात सुनकर वे परमज्ञानी मुनीश्वर मेरे सम्मुख इस प्रकार दिव्यवाणी बोले—'हे खेचर, चम्पाके सुन्दर राजा श्रीधाडीवाहनकी भामिनी पद्मावतीको एक दुष्ट हाथी हरण करके ले जायेगा, वह एक मालीको मिल जायेगी और वह उसे तुरन्त दन्तीपुरमें ले जायेगा। मालीकी गृहिणी कलह करके उसे निकाल देगी और वह यहाँ (श्मशानमें) आवेगी। उसके एक प्रखर तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा और तू गुणनिकेत उसका पालन करेगा। वह उस विशाल पुरीमे राज्य प्राप्त करेगा। ५ उस समय तेरी विद्याएँ तुझे पुन प्राप्त हो जावेंगी।' मुनिकी यही बात मानकर मैने इस श्मशानका

इउ मण्णिवि सेविउ मइँ मसाणु हउँ पालिमि जा होहइ मयाणु।
घत्ता—इउ मण्णिवि मइँ तउ सुउ गहिउ मा रोवहि हियवउ मथवहि।
जो अज्जिउ अण्णभवंतरइँ ते वियह महासइ अणुहवहि ॥५॥ 10

६

Padmāvatī allows him the guardianship of the child and herself takes vows

जं विज्जाणाहें भणिउ वाए तं चिंतिवि पोमावइए ताए।
तहो अप्पिउ णंदणु दुक्खियाए पालेसहि बुद्धिए णिउणियाए।
जं भणहि बहिणि तं करमि सव्वु पालेसमि एहु सव्वगभव्वु।
सो खेयरु एहउ तहे भणेवि गउ णियघरु णंदणु तणउ लेवि।
तं अप्पिवि घरिणिहे वयणु वुत्तु लइ हेममालि एहु तुज्झ पुत्तु। 5
सो लइयउ ताइँ तुरंतियाइँ परिपालिउ पुत्तु भणंतियाइँ।
ता दुक्खिए मणि पोमावयाएँ समणियरहो णयरहो खणि गयाएँ।
समणिरया अज्जियकंतियाहे अच्छंतिएँ जम लइँ ताव ताहे।
घत्ता—तहि देक्खिवि मुणिवरु झाणतणु णामेण समाहिगुत्तु पवरु।
वउ लइयउ ताएँ तुरंतियएँ तहो पासि मुणिंदहो दुक्खहरु ॥६॥ 10

७

The child is named Karakanda A miracle

सा पुत्तहो णेहें दिणि जि दिणे गुडसक्करलड्डु व लेवि खणे।
सपाडइ तहो खेयरहो घरि परिपालइ णंदणु वइरिअरि।
तहो पउरकडु देखेवि करि करकंडु णामु किउ पयडु धरि।
सो वड्ढइ दिणि दिणि कलणिहाणु ण रेहइ ससहरु फुरियभाणु।
तहि अवसरि आया सुअसमुद्द जसहद्द मुणीसर वीरभद्द। 5
अइझीणा दुद्धरतवभरेण सघेण समउ चउविहवरेण।
के वि झाणसमग्गल णाणवंत के वि जल्लमलेण विलित्तगत्त।
ते भीमसमसाणएँ आय जाम तहिँ एक्कें दिट्ठउ चोज्जु ताम।
घत्ता—णरहो कवाले समुट्ठियउ णयणवयणे वसहो विडउ।
इउ कारणु पभणहि मुणिपवर जं पुच्छिउ तं सयलु वि घडउ ॥७॥ 10

८

Sage Jasahadda explains the miracle Karakanda acquires the lucky bamboos

तं वयणु सुणिवि जसहद्दएण लहु मुणिहि पयासिउ तं पि तेण।
तिहिँ वसहिँ एयहिँ अइपयड होसहिँ धयअंकुसछत्तदंड।
जसु हत्थे चडेसहिँ वसलेस पावेसइ मेइणि सो असेस।
मुणिणाहहो पासि परिट्ठिएण आयण्णिउ इउ सम्मइट्ठिएण।

---

५ D पालेसमि, N पालेसु ६ DJ सइ

६ १ S मुज्झ

७ १ SJ समसूल २ SJ कवालु, DN कवाल ३ J एउ ४ S घडिउ

सेवन किया है। सयाना होने तक मै इसका पालन करूँगा। इसी विचारसे मैने तेरे इस पुत्रको ग्रहण किया है। रोवो मत, अपने हृदयको सम्हालो जो कुछ अन्य भवान्तरमे अर्जित किया है, उसीके अनुसार दिन तुम्हे अनुभव करने पड रहे है।

६—मातंग बालकको अपने घर ले जाता है, और पद्मावती व्रत लेती है

इस प्रकार उस विद्याधरने अपनी वाणीसे जो कुछ कहा, उसका चिन्तन करके, पद्मावतीने दु खी होकर भी, अपना पुत्र उसे यह कहते हुए अर्पित कर दिया कि तू निपुण बुद्धिसे इसका पालन करना। 'हे बहिन, जैसा तू कहती है, मै सब वैसा ही करूँगा और उसका ऐसा पालन करूँगा कि वह सर्वांग भव्य बन जाये।' उसे इतना कहकर, विद्याधर उस छोटेसे बालकको ले, अपने घर चला गया और उसे अपनी गृहिणीको अर्पितकर वचन बोला—ले हेममाला, यह तेरा ५ पुत्र है। उसने तुरन्त उस बालकको ले लिया और पुत्र कह-कहकर उसका पालन किया। इधर पद्मावती मनमें दु खी होती हुई, उसी क्षण सन्निकट नगरमें चली गयी। वहाँ वह सामयिक धर्ममें निरत आर्यिका कान्तिके पास रहने लगी और उसीसे उसने यम (अणुव्रत) धारण कर लिये। वहीं उसने क्षीणशरीर समाधिगुप्त नामके प्रवर मुनिवरके दर्शन किये और उन्हीं मुनीन्द्रके पाससे उसने तुरन्त ही दु खहारीव्रत (अर्जिका) व्रत ले लिया। १०

७—बालकका नामकरण, मुनि-आगमन व आश्चर्यदर्शन

पद्मावती पुत्रके स्नेहसे दिन-प्रतिदिन गुड व शक्करके लड्डू लेकर जल्दी-जल्दी उस खेचरके घर पहुँचा आती। वह खेचर भी उसके पुत्रका इस प्रकार पालन करने लगा कि वह अपने शत्रुओंको जीतनेवाला बने। बालकके हाथमे एक बडा खाजका दाग देखकर उसने उसका नाम करकण्ड रखकर प्रकट किया। वह दिनो-दिन बढने और कलाओंका निधान बनने लगा, जैसे मानो चन्द्रमा अपनी स्फुरायमान होती हुई कलाओसे शोभित होता है। उसी अवसरपर वहाँ ५ शास्त्रोके समुद्र, यशोभद्र और वीरभद्र मुनीश्वर आये। वे दुर्द्धर तपके भारसे अति क्षीण शरीर थे। उनके साथ उत्तम चतुर्विध सघ भी था। कितने ही साधु ध्यानमे सलग्न व ज्ञानवान् थे एव कितने ही जल्ल और मलमे विलिप्त गात्र थे। वे जब उस भीम श्मशानमे आये तब उनमें-से किसी एकने एक चौज (अचरज) देखा। एक नर-कपालके, आँखों और मुखसे बाँसका विटप निकला था। इसे देखकर उस साधुने अपने आचार्यसे पूछा—हे मुनिराज, इसका कारण बतलाइए, जिससे मैने १० जो पूछा, वह सब ही घटित हो जाये।

८—आश्चर्यका फल

यह वचन सुनकर उन यशोभद्र मुनिने लघुमुनिको वह बात इस प्रकार बतलायी—'इन तीन बाँसोंके ध्वजा, अकुश और छत्रके प्रचण्ड दण्ड बननेवाले है। ये थोडेसे बाँस जिसके हाथ चढ जायेंगे, वह समस्त पृथ्वीको पावेगा।' यह बात मुनिनाथके पास बैठे हुए सम्मति नामक

पुणु हियवए मंतेइ दिणवियाले मुणिवयणु ण चुक्कइ कहि मि काले । 5
ता एक्कहिँ दिणि ते वस तेण खंडाविय तिण्णि वि तुरियएण ।
फिर जाइ लेवि सो णियघरासु करकंडु परायउ पासि तासु ।
उद्दालिय भट्टहो पासि तेण तेँ भट्टेँ अप्पिवि भीयएण ।
तहो पुरउ तेउ असहंतएण पुणु भट्टेँ भणिउ विसण्णएण ।
तुहुँ जइयहुँ रज्जु लहेहि मित्त मइँ मंति करेमहि ललियगत्त । 10

घत्ता—करकंडइँ भणिउ त सयलु जं भणियउ भट्टेँ मणहरइँ ।
गउ वस लएविणु णियघरहो पुणु अक्खिउ तायहो कलसरइँ ॥ ८ ॥

९

Karakanda is taught various arts and sciences.

करकंडो उप्परि खेयरासु अइपउरु पवड्ढिउ णेहु तासु ।
पाढाविउ सो णीतिए जुयाइँ वायरणतक्कणाडयसयाइँ ।
[1]कविविरइयकव्वइँ बहुरसाइँ वच्छायणगणियइँ णवरसाइँ ।
मंताइँ असेसइँ ततयाइँ वसियरण सुसोहइँ जतयाइँ ।
असिचक्ककुतछुरियउ वराउ धणुवेयसत्तिढिढतोमराउ । 5
मल्लाण जुज्झ तणुघट्टणाइँ उल्ललणइँ वलणइँ लोट्टणाइँ ।
फलफुल्लपत्तछेयतराइँ जाणाविउ सयलइँ सुहयराइँ ।
पडु पडह मुरय वीणाइ वसु विज्जाइँ असेसइँ कलिउ एसु ।

घत्ता—ज कि पि पसिद्धउ भुवणयले खेयरइँ जणाविउ सो सुरइ ।
लोहेण विडविउ सयलु जणु भणु किं फिर चोज्जइँ णउ करइ ॥९॥ 10

१०

The story of learned company

हियएण गरुउ उवयारु वहइ करकंडहो सो पुणु खयरु कहइ ।
विज्जाहिवेण सहुँ संगु करहि घरे जाएवि सो णियमेण सरहि ।
करकंडु भणइ किं ताय[1] तासु उवयारु अत्थि विज्जाहिवासु ।
ता कहइ खयरु सुणि सरलचित्त कणउज्जणयरे दुइ अत्थि मित्त ।
वणिविप्प कलिय विज्जाए सत्त गय चोडदेसे धणलोल सत्त । 5
धणु अज्जिवि पुणु ते घरहो चलिय अद्धवहिहेँ दियसासुरउ [2]बलिय ।
तहिँ दिट्ठा ससुरइँ दियवरासु णिय तेण तुरिउ ते णियघरासु ।
सम्माणिय ते वीसमहिँ जाव वज्जतउ डिंडिमु आउ ताव ।

घत्ता—आयण्णिवि डिंडिमु खरविरसु परिपुच्छिउ [3]सुसुरउ तेहिँ खणे ।
केँ कज्जेँ वज्जइ माम इहु असुहावउ कण्णहँ पयडु जणे ॥१०॥ 10

११

The story continues

तेँ कहिउ एत्थु णरणाहधूव णिय मडइँ रक्खसेँ कामरूव ।
छडावइ को वि ण सा वराय रक्खेण जित्त णरणियर राय ।

---

८ १ N चिंतइ
९ १ N के हासियेमे इससे पूर्व जोडा गया है— वसियरणु सुसोहइ जतयाइ कण्णाडयाइभासासयाइ,
१० १ S ताए २ DN चलिय ३ J सुसरउ

द्विजने सुन ली। सन्ध्याके समय उसने अपने हृदयमें मन्त्रणा की कि मुनिका वचन किसी काल में भी चूकता नहीं। तब किसी एक दिन उसने जल्दीसे उन तीनों बाँसोंको कटवा लिया। ५ किन्तु ज्योंही उन्हें लेकर वह अपने घर जाने लगा, त्योंही करकण्ड उसके पास आ पहुँचा। करकडने भट्टके पाससे उन बाँसोंको उडा लिया। भट्टने भयभीत होकर उन बाँसोंको उसे अर्पित करके, अपने सम्मुख उसका तेज सहन न कर, विषादयुक्त होकर पुन. कहा—'हे मित्र, जब तू राज्य प्राप्त कर ले, तब, हे ललितगात्र, मुझे मन्त्री बना लेना।' उस मनोहर भट्टने जो कुछ कहा, उस सबको करकडने मान लिया और उन बाँसोंको लेकर वह अपने घर गया। फिर उसने १० मधुर स्वरसे अपने तातको सब वृत्तान्त सुना दिया।

९—मातंगने करकण्डको नाना विद्याएँ सिखलायीं

करकण्डके ऊपर उस खेचरका बहुत अधिक स्नेह बढा। उसने उसे नीति-सहित व्याकरण, तर्क व सैकडों नाटक पढाये। कवियों-द्वारा विरचित बहुरसात्मक काव्य, वात्स्यायन-द्वारा गिनाये गये नौ रस, समस्त मन्त्र और तन्त्र, वशीकरण और सुशोभनीय यन्त्र, असि, चक्र, कुन्त, छुरी, धनुर्वेद, शक्ति, हढतोमर ये सब उत्तम कलाएँ, मल्लोंके युद्ध, तनुघट्टन, उल्ललण, वलण और लोटन, फल, फूल व पत्रोंका नाना प्रकारसे छेदन, ये सब सुखकारी कलाएँ सिखायीं। ५ पटुपटह, मुरज, वीणा आदि व बाँसुरी, ये सभी विद्याएँ भी उसे सिखलायीं। इस भुवनतलपर जो भी प्रसिद्धकला है, विद्याधरने उसे बडी लगनसे सिखलाया। सब जन लोभसे विडम्बित होकर कहो कैसे-कैसे आश्चर्य नहीं करता।

१०—विद्यावान्‌की संगतिका उपदेश

वह विद्याधर अपने हृदयमें करकण्डसे बडे उपकारकी वाछा रखता था। वह करकण्डको उपदेश देने लगा—'तू विद्यावान्‌के साथ ही संग कर, उसके घर जाकर नियमसे उसका अनुसरण कर।' करकण्डने पूछा—'हे तात, विद्यावान्‌से क्या उपकार होता है?' तब वह खेचर बोला—हे सरलचित्त, सुन। कान्यकुब्ज नगरमें दो मित्र रहते थे, एक वणिक् और दूसरा विप्र। वे दोनों विद्यासे सम्पन्न थे। धन कमानेकी लालसासे वे चौड देशको गये। धन अर्जित कर जब वे घरको ५ लौटने लगे तो आधे मार्गमें वे द्विजकी ससुरालकी ओर मुड गये। वहाँ द्विजके श्वसुरने उन्हें देखा और वह उन्हें तुरन्त अपने घर ले गया। वहाँ सम्मानित होकर जब वे विश्राम कर रहे थे तब वहाँ बजता हुआ डिंडिम (डौंडी) आया। उस खर और विरस डिंडिमको सुनकर उन्होंने श्वसुरसे पूछा—हे मामा, यह कानोंको असुहावना डिंडिम जनतामें खुलकर किस कार्यसे बाज रहा है? १०

११—राक्षसका उपद्रव

श्वसुरने कहा—यहाँके राजाकी सुन्दर कन्याको एक राक्षस बलपूर्वक ले गया है। उस बेचारीको कोई नहीं छुडा पाता। उस राक्षसने लोगोंके समूहोंको व राजाओंको जीत डाला है।

णइपारि णयरि उव्वसि वसेइ तहो भीएँ को वि ण ऊससेइ ।
विज्जाहिउ णरु आयउ णिएइ ते कज्जेँ दिवि दिवि इहु भमेइ ।
तं सुणिवि वयणु पहसियमुहेहिँ मद्दतउ डिंडिमु धरिउ तेहिँ । 5
ता तक्खणे डिंडिमवाइएण णरणाहहो कहिउ पराइएण ।
णर दोण्णि पराइय देव इत्थ णं धम्मपुज णिम्मल पसत्थ ।
ते भणहि देव मणे धरहिँ गव्वु ज भणइ राउ त करहुँ सव्वु ।
घत्ता—ता राएँ जाइवि वे वि जण सम्माणिवि णीया णियघरहो ।
परिपेसिय तक्खणे तेण पुणु रक्खसहो पासि अइदुद्धरहो ॥११॥ 10

१२

The story of learned company concluded

गय विण्णि वि ते रक्खसणिवासे परिभमइ ण कवणु वि जासु पासे ।
तहिँ थोरपओहर दिट्ठ कण्ण लायण्णतरंगिणि कणयवण्ण ।
पुणु दिट्ठउ रक्खसु कविलकेसु उच्चारइँ मतहो गलियदेसु ।
असहतउ पभणइ मततेउ हउँ किंकरु तुम्हहँ पवणवेउ ।
ससिद्धउ मण्णिवि तेहिँ रक्खु गय कण्ण लेवि जहिँ णिउ समक्खु । 5
रक्खससमेय कण्णाएँ जुत्तु आवंत दिट्ठ लोएहि वुत्तु ।
जण भणहिँ अज्जु हुय एत्थु संति एवंविह आया जेत्थु मति ।
ते दिक्खिवि राणउ हिट्ठचित्तु अइपउरु पइण्णउ ताहँ वित्तु ।
घत्ता—कण्ण भणेविणु णियवहिणि तेहिँ समप्पिय णरवरहो ।
पुणु करिकरपीवरथोरभुयँ गय लीलएँ ते णियपुरवरहो ॥१२॥ 10

१३

The story of foolish company

किउ विज्जावंतहो संगु जेण सुहसपइ लब्भइ णरहो तेण ।
तेँ विज्जावंतहो तणउ सगु सयमेव करेव्वउ जह अहगु ।
विज्जाविहीणु मा करहि मित्तु विवरीउ करइ सो विहुरे चित्तु ।
किं विज्जएँ हीणहो दिट्ठु दोसु सो खयरु कहइ तहो जणियतोसु ।
वाणारसिणयरहो मित्त वे वि देसतरु गय अण्णाण ते वि । 5
धणु अज्जिवि आवहिँ वलिवि जाव ता अतरि रक्खसु दिट्ठु ताव ।
सो पेक्खिवि ते भयभीय णट्ठ पाविट्ठ जेम तवचरणभट्ठ ।
णउ मुणहिँ किं पि हियवएँ अयाण ते पाविय तेण पलायमाण ।
घत्ता—ता णिसियरेँ सहुँ जुज्झेवि फुडु ते केण वि बद्धइँ पथियइँ ।
छडाविय सहयर वे वि जण परउवयारेँ सठियइँ ॥ १३ ॥ 10

१४

The story of low company

तह णिच्चएँ सहुँ ससग्गु धीर इहु कह व ण किज्जइ लडहवीर ।
णिच्चेण समउ जेँ कियउ सगु उप्पज्जइ तहो खेवेण भगु ।

---

१२ १ D] °वेसु २] पवरु ३] ताहि ४] °भुव
१४ १ S णीचए २ S णीचेण

नदीके उस पार ऊजड नगरीमें वह राक्षस निवास करता है। उसके भयसे कोई श्वास भी नहीं ले पाता। कोई विद्यावान् पुरुष इस नगरमें आया दिख जाये इसी कार्यसे दिन-प्रतिदिन यह डौंडी घुमायी जाती है। श्वसुरका यह वचन सुनकर उन्होंने प्रसन्नमुख होकर उस बजते हुए डिंडिमको रोका। तब उसी क्षण डौंडी बजानेवालेने लौटकर राजासे कहा—"हे देव, यहाँ दो पुरुष आये है, मानो निर्मल और प्रशस्त धर्मपुज ही हो। हे देव, वे कहते है और मनमे गर्व रखते है कि राजा जो कुछ कहे, हम सब कर सकते है।" तब राजा स्वय आकर व उन दोनो पुरुषोका सम्मान कर उन्हें अपने घर लिवा लाया और उसी क्षण उस अत्यन्त दुर्द्धर राक्षसके पास भेजा। ५

१२—राक्षसका पराजय और राज-कन्याका उद्धार

वे दोनो उस राक्षसके निवासको गये जिसके पास कोई परिभ्रमण नहीं करता था। वहाँ उन्होंने उस स्थूलपयोधरा, लावण्यतरगिणी, कनकवर्ण कन्याको देखा। फिर उन्होंने उस कपिल-केश राक्षसको भी देखा। उनके मन्त्रोच्चारणसे राक्षसका द्वेष गलित हो गया। वह मन्त्रका तेज सहन न कर बोला—"मै तो आपका पवनवेग नामका किंकर हूँ।" जब उन्होने जाना कि वह राक्षस उन्हें भले प्रकार सिद्ध हो गया, तब वे उस कन्याको लेकर राजाके समक्ष लौटे। ५ राक्षस-सहित और कन्यासे युक्त आते हुए उनको लोगोने देखा और घेर लिया। लोग कहने लगे—"यहाँ आज शान्ति हुई जब इस प्रकारके मन्त्रवेत्ता यहाँ आये।" उन्हें देखकर राजा अपने चित्तमें बहुत हर्षित हुआ और उसने उन्हें अति प्रचुर धन दिया। उन्होने उस कन्याको अपनी बहिन कहकर राजाको समर्पित किया। फिर हस्तीकी सूडके समान पुष्ट और विशाल भुजाओं-वाले वे दोनो मित्र आनन्दपूर्वक अपने नगरको चले गये। १०

१३—मूर्ख-संगतिका कुफल

जिसने विद्यावान्‌का सग किया उस मनुष्यको सुख-सम्पत्तिका लाभ होता है। इसलिए विद्यावान्‌का सग स्वयमेव ऐसा करना चाहिए कि कभी भग न हो। विद्या-विहीनको कभी अपना मित्र मत बनाना। आपत्ति पडनेपर वह अपना चित्त विपरीत कर लेता है। करकण्डने पूछा—"विद्यासे हीन मनुष्यका आपने कौन-सा दोष देखा?" इसके उत्तरमें वह खेचर उसे सन्तोष उत्पन्न करता हुआ बोला—"बनारस नगरके निवासी दो मित्र देशान्तरको गये। वे दोनों ५ ही अज्ञानी थे। धन उपार्जन कर जब वे लौट कर आ रहे थे, तब बीचमें ही उन्हें एक राक्षस दिखायी दिया। उसे देखकर वे भयभीत होकर ऐसे भागे, जैसे पापिष्ठ तपश्चरणसे भ्रष्ट होकर भाग उठते हैं। वे हृदयसे अज्ञानी कुछ नहीं जानते थे। पलायन करते हुए उन्हें उस राक्षसने पा लिया। तब किसी एक पथिकने उस निशाचरके साथ खुलकर युद्ध करके उन्हें बन्धनसे छुडाया। इस प्रकार वे दोनों सहचर परोपकारके द्वारा जीवित रहे। १०

१४—नीच-सगतिकी कहानी

"उसी प्रकार, हे धीर! हे लाडले वीर! नीचके साथ ससर्ग यहाँ कभी नहीं करना चाहिए! जिसने नीचके साथ सग किया उसका खेदके साथ भग हो जाता है। सुन, मै तुझे एक नीचकी

सुणु णीचकहाणी कहमि तुज्झु इह णीउ सुलक्खण हियएँ बुज्झु ।
को वि अत्थि सुदंसणु णाम वणिउ सो णिवणरिंदें लहु जि भणिउ ।
जइ अहरअलग्गी पढहि गाह हउँ देमि धरित्ती तुह अवाह । 5
उट्ठउडअलग्गी गुणसणाह ता वणिणा तुरिएँ पढिय गाह ।
गाथा—अरितेयजलणजालासजलिया धरणि काणणे मयले ।
असिजलधारातोएँ संसित्ता णिहणय जाया ॥
तें राएँ तूसिवि वणिवरासु महि दिण्णी खेवें सुन्दरासु ।
ता एक्कहि दिणि गुणसायरेण मपीणिय दुत्थिय वणिवरेण । 10
घत्ता—ससग्गु कियउ सहुँ चेडियइँ कुडिलेण य वणिणा जाम तहिं ।
ता जायउ गब्भु खणेण तहे सजणिय मणोरह सयल जहि ॥ १४ ॥

१५

The story of low company concluded

ता तुरिउ ताएँ सो वणिउ उत्तु महो एक्कु वयणु तुहुँ करि णिरुत्तु ।
एह रायहो वरहिणिमसुएण महो दिज्जइ जीवमि णिच्छएण ।
ता गयउ तुरतउ वणिपहाणु तहो वरहिणि सम्मुहुँ लद्धु ठाणु ।
सो वरहिणु लिहक्किवि जीउ अवरु घरे जाइवि तें तहे दिण्णु पवरु ।
वणिवरहो तुरिउ आसीस देवि त खद्ध ताइँ मोरउ भणेवि । 5
ता णयरिहिं सिहि अलहतएण देवाविउ डिंडिमु राणएण ।
सो सुणिवि ताएँ चेडिएँ णिवासु सिहिवइयरु अक्खिउ सयलु तासु ।
सो णरवइ रुट्ठउ वणिवरासु मारणहँ समप्पिउ तलवरासु ।
घत्ता—अणुहुजिवि णिचहो संगफलु भयभीएँ वणिणा तुरियएण ।
घरु जाइवि णिवणराहिवहो मोरुल्लउ अप्पिउ तक्खणेण ॥ १५ ॥ 10

१६

The story of noble company

पुणु उच्चकहाणी णिसुणि पुत्त संपज्जइ संपइ जें विचित्त ।
परिकलिवि सगु णीचहो हिएण उच्चेण समउ किउ संगु तेण ।
वाणारसिणयरि मणोहिरासु अरविंदु णराहिउ अत्थि णासु ।
संतोसु वहंतउ णियमणम्मि पारद्धिहे गउ एक्कहिँ दिणम्मि ।
जलरहियहिँ अडविहिँ सो पडिउ तहिँ तण्हएँ भुक्खएँ विण्णडिउ । 5
अमिएण विणिम्मिय सुहयराइँ तहो दिण्णइँ वणिणा फलइँ ताइँ ।
सतुट्ठउ तहो वणिवरहो राउ घरि जाइवि तहो दिण्णउ पसाउ ।
उवयारु महंतउ जाणएण वणि णिहियउ मतिपयम्मि तेण ।
घत्ता—अणुराएँ विण्णि वि तहिँ वसहिँ दिणयरतेयकलायर ।
गुणगणरयणहँ सीलणिहि गहिरिमाइँ ण सायर ॥ १६ ॥ 10

---

१४ ३] सलक्खण ४] तहो
१५ १] अह २] महु ३] तहिं ४ S णीचहो
१६ १ S अरिविंद,

कहानी कहता हूँ । इस नीतिको, हे सुलक्षण, अपने हृदयसे बूझ ले । कोई एक सुदर्शन नामका वणिक् था । उसे एक नीच राजाने सहज ही कहा–'यदि तू अपने होठोंको बिना मिलाये एक गाथा पढ दे तो मै तुझे अबाध (कर आदिकी बाधासे रहित) भूमि दूँगा ।' तब उस वणिक्ने ५ तुरन्त ही ओष्ठ पुट लगाये बिना एक सगुण गाथा पढ़ी । गाथा–'अरिके तेजरूपी ज्वलनकी ज्वाला समस्त धरणी रूपी काननमें सज्वलित थी । किन्तु वह आपके खड्गकी धाररूपी जलधाराके जलसे सिंच कर नाशको प्राप्त हो गयी ।' इसपर उस राजाने सन्तुष्ट होकर उस सुन्दर वणिक्वरको तुरन्त भूमि प्रदान कर दी । तत्पश्चात् एक दिन उस गुणसागर वणिक्वरने एक दुश्चरित्र स्त्रीसे प्रेम किया । जब उस कुटिल वणिक्ने चेटीके साथ ससर्ग किया, तब जहाँ उसके सकल १० मनोरथ उत्पन्न हुए थे, वहाँ उसके उसी समय गर्भ उत्पन्न हो गया ।"

१५—चेटीका विश्वासघात

तब तुरन्त ही चेटीने उस वणिक्से कहा—"तू मेरी एक बात अवश्य कर । इस राजाके मयूरका मास मुझे दे, तब मैं निश्चयसे जी सकूँगी ।" इसपर वह वणिक्-प्रधान तुरन्त ही गया और उस मयूरको पकडने योग्य स्थानपर पहुँचा । उसने उस मयूरको छिपाकर एक दूसरे जीवका बहुत-सा मास घर जाकर उस चेटीको दे दिया । उसने वणिक्वरको तुरन्त आशीष देकर उस मासको मयूर कहकर खा लिया । इधर राजाने नगरीमें अपने मयूरको न पाकर डौडी दिलवायी । उसे सुनकर उस चेटीने राजाको मयूरका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया । वह राजा उस वणिक्वर ५ पर रुष्ट हो गया और मारनेके लिए उसे तलवारधारियोंको सौप दिया । इसप्रकार नीचके सगका फल अनुभव करके, भयभीत हुए उस वणिक्ने तुरन्त घर जाकर उस नीच राजाको तत्क्षण ही मोर अर्पित कर दिया ।

१६—उच्च पुरुषकी कहानी

हे पुत्र, अब एक उच्च पुरुषकी कहानी सुन, जिससे विचित्र सम्पत्ति प्राप्त होती है । नीचके सगको अपने हृदयसे विचार कर उस वणिक्वरने एक उच्च पुरुषके साथ सग किया । बनारस नगरमें एक अरविन्द नामका मनोभिराम राजा था । वह एक दिन अपने मनमें सन्तोष धारण करता हुआ शिकारके लिए गया । वह एक जलरहित अटवीमें जा पडा । वहाँ भूख-प्याससे वह बहुत दुःखी हुआ । तब उस वणिक्ने उसे अमृतसे बने, सुखकारी, तीन फल दिये । राजा उस वणिक्वरपर सन्तुष्ट हो गया और घर जाकर उसने उसे प्रसाद दिया । उसके महान् उपकारको ५ जानकर राजाने वणिक्को मन्त्री पदपर बैठाया । वे दोनो अनुरागपूर्वक, तेजमें सूर्य और चन्द्रके समान, गुणगणरूपी रत्नो व शीलके निधान तथा गम्भीरिमामें सागरके समान, वहाँ रहने लगे ।

१७

The story of noble company continues

ता एक्कहिँ दिणि मंतीवरेण तहो रायहो णंदणु हरिवि तेण ।
आहरणइँ लेविणु दिहिकरासु गउ तुरिउ विलासिणिमंदिरासु ।
गयमोल्लइँ जणणयणहँ पियाइँ तहि वणिणा ताहे समप्पियाइँ ।
[1]सरयागमससहरआणणीहे[2] पुणु कहियउ तेण विलासिणीहे ।
मइँ मारिउ णंदणु णरवईहिँ इउ कहियउ सयलु वि थिरईहिँ[3] । 5
त सुणिवि ताइँ पभणिउ सणेहु मा कासु वि पयडु करेहिँ[4] एहु ।
एत्तहिँ अलहतेँ सुउ णिवेण देवाविउ डिंडिमु णयरे तेण ।
जो रायहो णंदणु कहइ को वि सहुँ दविणइँ मेइणि लहइ सो वि ।
घत्ता—ता केण वि विट्ठेँ तुरियएण णरणाहहो अग्गइँ भणिउ ।
उवलक्खिउ तुह सुउ देव मइँ सो णवलइँ[5] मतिएँ हणिउ ॥ १७ ॥ 10

१८

The story of noble company concluded

तं वयणु सुणेविणु सरलबाहु सतुट्ठउ मतिहे धरणिणाहु ।
तिहि फलहि मज्झे एक्कहो फलासु णिरहरियउ रिणु मइँ मइवरासु ।
अवराह दोण्णि अज्ज वि खमीसु खणि हुयउ पसण्णउ धरणिईसु ।
परियाणिवि मतिइँ रायणेहु णिवणंदणु अप्पिउ दिव्वदेहु ।
अइ होहि णरेसर परममित्तु मइँ देव तुहारउ कलिउ चित्तु । 5
वणिवयणु सुणेविणु णरवरेण अइपउरु पसाउ पइण्णु तेण ।
गुरुआण सगु जो जणु वहेइ हियइच्छिय सपइ सो लहेइ ।
एह उत्तकहाणी कहिय तुज्झु गुणसारणि पुत्तय हियइँ बुज्झु ।
घत्ता—करकडु जणाविउ खेयरइँ हियबुद्धिएँ सयलउ कलउ ।
इय णित्तिएँ जो णरु ववहरइ सो भुजइ णिच्छउ भूवलउ ॥ १८ ॥ 10

१९

The king of Dantipur dies heirless Selection of
a successor by a divine method

त वयणु सुणेविणु खेयरासु करकडु ण मेल्लइ पासु तासु ।
णियमदिरु मेल्लिवि रम्ममाणु करकडु ण मेल्लइ तं मसाणु ।
रइ करइ तेत्थु लीलाएँ जाम दतीपुरि एक्कहिँ दिवसि ताम ।
वियरतवडरिविद्दावणासु दुस्सीलरायभयदावणासु ।
[1]जणु आण ण लघइ तणिय जासु हुउ णयरि णरिंदहो णासु तासु । 5
हा हा रउ उट्ठिउ पुरवरम्मि अइदुक्खु पवड्ढिउ जणवयम्मि ।
जणु जपइ को वि ण अत्थि कुमरु जो रज्जु करेसइ एत्थु पवरु ।

---

१७ १ D सुरयागम २ S आणणाहें ३ J थिरमईहिं ४ D करेवि ५ S J णवल्लइ
१९ १ J दुण्णील, S दुण्णीइ

१७—विलासिनीका सच्चा प्रेम

फिर किसी एक दिन वह मन्त्रिवर उस राजाके पुत्रका हरण करके और उसके आभरणों को लेकर तुरन्त सुखकारी विलासिनीके घर गया और उसे वणिक्‌ने वे अमूल्य व जन-नयन-प्रिय आभूषण समर्पित कर दिये। फिर उस शरद्‌के आगमकालवर्ती चन्द्रके समान मुखवाली विलासिनी को उसने कहा—"मैंने राजाके पुत्रको मारा है।" यह सारी बात उसने उस स्थिर प्रेमवाली स्त्री से कही। इसे सुनकर उसने स्नेहपूर्वक कहा—"यह बात किसीपर भी प्रकट मत कीजिए।" यहाँ ५ राजाने अपने पुत्रको न पाकर नगरमें डौंडी दिलवायी, "जो कोई राजाके पुत्रका वृत्तान्त कहेगा, वह धनके साथ भूमि भी पायेगा।" इसपर किसी एक ढीठने तुरन्त ही राजाके आगे कह दिया—"हे देव, मैंने तुम्हारे पुत्रको देखा है। उसे आपके नये मन्त्रीने मार डाला है।"

१८—राजाकी कृतज्ञता

यह बात सुनकर वह सरलबाहु राजा मन्त्रीपर सन्तुष्ट हुआ और बोला—"उन तीन फलो में-से एक फलका ऋण मैने मतिवर मन्त्रीका चुका दिया। अन्य दो फलोंका ऋण अभी भी क्षमा कीजिए। इस प्रकार धरणीश उस क्षण प्रसन्न हुआ। मन्त्रीने जब राजाके स्नेहको जान लिया, तब उस दिव्यदेह राजकुमारको लाकर राजाको अर्पित कर दिया। वह बोला—"हे नरेश्वर, आप मेरे परम मित्र है। हे देव, मैंने तो आपके चित्तकी परीक्षा की थी।" वणिक्‌का यह वचन सुनकर ५ राजाने उसे अपना खूब प्रसाद दिया। इस प्रकार जो मनुष्य गौरवशाली पुरुषोका सग करता है, वह मनचाही सम्पत्ति प्राप्त करता है। यह मैने तुझे एक उच्च पुरुषकी कहानी कही। हे पुत्र, इस गुणोंकी सारभूत कहानीको अपने हृदयमें बूझ ले। करकण्डको उस खेचरने हितबुद्धिसे समस्त कलाएँ सिखा दीं। इस नीतिसे जो मनुष्य व्यवहार करेगा वह निश्चय ही भूमण्डलका उपभोग कर सकता है। १०

१९—दन्तीपुरके राजाकी मृत्यु

खेचरके ऐसे वचन सुनकर करकण्ड कभी उसका पास नहीं छोडता। अपने घरको छोडकर यदि वह क्रीडाके लिए बाहर जाता, तो वह श्मशानको न छोडता। इस प्रकार जब वह वहाँ क्रीडामें अनुरक्त था, तब दन्तीपुर नगरमे एक दिन उस राजाकी मृत्यु हो गयी जो अपने विरुद्ध चलनेवाले वैरियोका विनाशक और दुःशील राजाओंको भयदायक था, तथा जिसकी आज्ञाका लोग कभी उल्लघन नहीं करते थे। राजधानीमे हाहाकार मच गया। देश-भरमे अति दुःख बढा। ५ लोग कहते—"कोई राजकुमार भी तो नहीं है जो यहाँ इतने बडे राज्यको सँभाले।" तब मन्त्रीके

ता मतिमणहो परिफुरिउ मतु　　अवलोयउ गयवरु लडहदंतु ।
घत्ता—तं पुज्जिवि मयगलु मडवरइँ परिपुण्णउ कुंभु समप्पियउ ।
जो रज्जु करेसइ तहो उवरि ढालेसहि एउ वियप्पियउ ॥ १९ ॥　10

२०

Karakanda's luck

पढंत दिएसर साम सरेण　　मिलाविय देवणिकाय वरेण ।
ससंख सडिंडिम काहलतूरु　　पवज्जिउ महलु[1] मेइणिपूरु ।
घराउ विणिग्गउ वारणु तुंगु　　विलासिणिगेहहो णाइँ भुयंगु ।
लुलावियसुंडु चलावियकण्णु　　विलोलसुलोयणु उज्जलवण्णु ।
स पुण्णउ कुंभु करेण करंतु　　छणिंदु व पव्वयसिंगु सरंतु　　5
पुरम्मि घरेण घराइँ लहंतु　　समुण्णइ तो वि समग्ग वहंतु ।
भमेविणु पट्टणु चच्चरवंतु　　गओ गउ बाहिरि दूरे भमंतु ।
मसाणहो मज्झे अउव्वउ मारु　　गएण तुरंतएँ दिट्ठु कुमारु ।
सुसोहणु कुंभु सिरेण णएण　　सिरम्मि विरेइउ तासु गएण ।
घत्ता—सो देक्खिवि लोयहिँ सिरु धुणिउ[2] हा हा रउ गरुयउ घोसियउ ।　10
कि कीयउ एएँ करिवरिण[3] मायगहो कलसु णिवेसियउ ॥ २० ॥

२१

Karakanda is made king of Dantipur

इउ भणिवि ते सामंत मंति　　णउ अग्गइ चल्लहिँ णउ णियंति ।
उद्दुमण अच्छहिँ जा मणम्मि　　खेयरहो ताम तहिँ तक्खणम्मि ।
मुणिदिण्ण[1] सावेँ जउ णासियाउ　　विज्जाउ पराइउ तासु ताउ ।
ता हरिसुक्कंठएँ खयरेण　　लोयहँ परिअक्खिउ सुंदरेण ।
मायगहो सुउ णउ होइ एहु　　णिवणंदणु एहउ दिव्वदेहु ।　5
मा सकहु वुच्चइ सरइ अग्गि　　करु लायहु तुम्हइँ करिकरग्गि ।
जा विज्ज लेवइँ[2] णर सगरम्मि　　करकंडहो सा[3] देविणु करम्मि ।
इउ करिवि खयरु विज्जावलेण　　णियभवणु गयउ पुणु णहयलेण ।
घत्ता—जयघोसु पवड्ढिउ गयणयले अमरेहिँ सुमंगलु पूरियउ ।
कणयामरवण्णहिँ माणवहिँ करकंडु रज्जे वइसारियउ ॥ २१ ॥　10

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाण-कप्पतरुफलसंपत्ते करकंडरज्जलंभो णाम बीउ परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ २ ॥

---

२० १ J मद्दलु २ S धुणेवि ३ S करिवरेण

२१ १ N मुणिदिण्णें २ N लइय देवेण रम्मि ३ S J सो

मनमें एक मन्त्र (युक्ति) स्फुरायमान हुआ। उसने सुन्दर दाँतोंवाले एक श्रेष्ठ गजको देखा (चुना) बुद्धिमान् मन्त्रीने उस हाथीको पूजकर उसे जलसे परिपूर्ण घडा समर्पित किया और "जो कोई राज्य करनेवाला हो, उसके ऊपर इसे ढालेगा"—ऐसा विकल्प अपने मनमें किया।

२०—हाथी-द्वारा दैवी विधिसे राजाका चुनाव

द्विजेश्वर स्वरसे सामवेद पढने लगे। वरण (आह्वान)-द्वारा देवगणोको एकत्र किया गया। शख, डिंडिमके साथ काहल और तूर्य एव मार्दल (नगाडा) बजने लगा, जिससे मेदिनी पूरित हो गयी। ऐसे अवसरपर वह विशाल हाथी घरसे निकला, जैसे प्रेमी अपनी विलासिनीके घरसे निकलता है। वह हाथी सूँड डुला रहा था और कान चला रहा था। उसकी सुन्दर आँखें चचल थीं। वह स्वय उज्ज्वल वर्ण था। जलसे भरे हुए घडेको वह अपनी सूँडमें ऐसे लिये हुए ५ था, जैसे मानो पूर्णचन्द्र पर्वतके शिखरपर चल रहा हो। वह उस पुरमें एक घरसे दूसरे घरोंको पार करता हुआ समग्र उन्नतिको धारण किये हुए, चौराहों-सहित समस्त पट्टणका भ्रमण करके बाहर दूर तक भ्रमण करता चला गया। उसने श्मशानके बीच तुरन्त एक कुमारको देखा, जो अपूर्व कामदेव ही था। हाथीने उसके आगे अपने सिरको नवाकर, वह शोभनीक कुम्भ उसीके सिरपर खाली कर दिया। उसे देखकर लोग सिर धुनने लगे, महान् हाहाकारका रव घोषित हो १० उठा। अरे, इस करिवरने यह क्या किया जो मातगके ऊपर कलश रख (ढाल) दिया।

२१—करकंडकी राज्यप्राप्ति

इसी असमजसमें पडकर वे सामन्त और मन्त्री न आगेको चलते और न सामनेको देखते। वे जब अपने मनमें इस प्रकार उदास खडे थे, तब उसी क्षण उस खेचरकी, जो मुनि-द्वारा दिये गये शापसे नष्ट हो गयी थीं, वे सब विद्याएँ लौट आयीं। तब उस सुन्दर विद्याधरने हर्ष से उत्कंठित होते हुए लोगोंको बतलाया—"अरे! यह कोई मातगका पुत्र नहीं है, यह दिव्यदेह राजकुमार है। तुम शका मत करो। उसे अपने आगे चलने दो और तुम उसके हाथीकी सूँडके ५ अग्रभागपर अपना हाथ लगाओ।" ऐसा कहकर, तथा जो विद्या सग्राममें लोगोंको स्खलित कर देती है, उसे करकण्डके हाथमें देकर, यह सब करके, वह खेचर विद्याके बलसे नभस्तल-द्वारा अपने भवनको गया। वहाँ गगनतलमें जयघोष बढा, देवोंने सुमगल पूरा किया तथा कनक वा अमरवर्णके मानवोंने करकण्डको राज्यपर बैठाया।

इति मुनि कनकामर विरचित, भव्यजनकर्णावतस, पचकल्याणविधानरूप कल्पतरु फल सम्पन्न करकण्ड महाराज चरित्रमें, करकण्डको राज्य लाभ नामक दूसरा परिच्छेद समाप्त।

१

Karakanda enters Dantipur with pomp and ceremony

ध्रुवक—पुणु मतिहि भणियउ[1] णवउ णिउ तुहुँ गयवरखंधि समारुहहि।
चलु चलु सुंदर लहु चलहि दंतीपुरि रज्जहो भरु वहहि ॥

णिज्झरझरंतमयगिल्लगंडे करकंडु चडिउ ता करिपयंडे।
क वि लीला मणहरु अइवहेइ ण सुरवइ अइरावइँ सहेइ।
सचल्लिउ सो सहुँ णरवरेहिं विज्जिज्जमाणु चलचामरेहिं। 5
लीलाविलाससुहसा[2]मिणीहिँ गाइज्जमाणु वरकामिणीहिँ।
कलयठिरावकयहीलणेहिँ मथुव्वमाणु वंदीजणेहिँ।
गुणपउररायतग्गयमणेहिँ सेविज्जमाणु णायरजणेहि।
परलोयकज्जे उज्जुवगईहिँ सलहिज्जमाणु सज्जणमईहिँ।
अवरेहिँ वि लोयहि कलियमाणु गउ सुंदरु पुरवरे जणसमाणु। 10

घत्ता—सो पुरवरणारिहिँ गुणणिलउ पइसतउ दिट्ठउ णयरे कह[3]।
ण दसरहणंदणु तेयणिहि उज्झहिं सुरणारीहिँ जह ॥ १ ॥

२

The flutter amongst the damsels of the town at his entry

तहिँ पुरवरि खुहियउ रमणियाउ झाणट्ठियमुणिमणदमणियाउ।
क वि रहसइँ तरलिय चलिय णारि विहडप्फड संठिय का वि [1]वारि।
क वि धावइ णवणिवणेहलुद्ध परिहाणु ण गलियउ गणइ मुद्ध।
क वि कज्जलु बहलउ[2] अहरे देइ णयणुल्लएँ लक्खारसु करेइ।
णिग्गथवित्ति क वि अणुसरेइ विवरीउ डिंभु क वि कडिहिँ लेइ। 5
क वि णेउरु करयलि करइ बाल सिरु छंडिवि कडियले धरइ माल।
णियणंदणु मण्णिवि क वि वराय मज्जारु ण मेल्लइ साणुराय।
क वि धावइ णवणिउ मणे धरंति विहलंघल मोहइ धर मरति।

घत्ता—क वि माणमहल्ली मयणभर करकंडहो समुहिय चलिय।
थिरथोरपओहरि म[3]यणयण उत्तत्तकणयछवि उज्जलिय ॥ २ ॥ 10

३

He enters the decorated palace and is crowned king

णवरज्जलभरंजियहिएण करकंडइँ पुरे पइसतएण।
गयखंधे चडिण्णय जतएण णिउ राउलु लीलएँ पत्तएण।

---

१ १ S भणिउ २ D J N भामिणीहिं ३ S किह. ४ S जिह

२ १ S चारि २ D बहुलउ

सन्धि–३

१—राजारूढ़ करकण्डका नगर-प्रवेश

फिर मन्त्रियोंने नये राजासे कहा—"आप इस गजवरके स्कन्धपर आरूढ़ हो जाइए। चलिए, चलिए, हे सुन्दर, शीघ्र चलिए; और दन्तीपुरमें राज्यके भारको वहन कीजिए।" तब करकण्ड, निर्झरके समान झरते हुए मदसे जिसके गण्डस्थल गीले हो रहे थे, ऐसे उस प्रचण्ड हाथीपर चढा। इस समय वह ऐसी मनोहर शोभाको धारण कर रहा था जैसे मानो सुरपति ऐरावत हस्तीपर विराजमान हो। वह उन नरवरोंके साथ वहाँसे चला। उसके ऊपर ५ चॅवर ढोले जा रहे थे, लीला, विलास व सुखकी स्वामिनी उत्तम कामिनियाँ उसके गीत गा रही थीं। कोकिलकी ध्वनिको लज्जित करनेवाले वन्दीजन उसकी स्तुति कर रहे थे। गुणोंके अत्यन्त अनुरागसे उसीमें अपना मन लगाकर नगरके लोग उसकी सेवा कर रहे थे। तथा परलोक कार्यमें सीधी गतिसे चलनेवाले सज्जनमति उसकी श्लाघा कर रहे थे। और भी अन्य लोगोंसे सम्मानित वह सुन्दर राजा सब जनोंके साथ पुरवरमें प्रविष्ट हुआ। नगरमें प्रवेश करते समय उस गुणोंके १० निलय राजाको पुरकी नारियोंने कैसा देखा जैसे कि तेजनिधि दशरथनन्दनको अयोध्यामें सुरनारियोंने देखा था।

२—करकण्डको देखनेके लिए नगरनारियोंकी विह्वलता

उस समय नगरकी उन रमणियोंमें क्षोभ उत्पन्न हो उठा, जो ध्यानस्थ मुनियोंके मनको भी दमन कर लेती थीं। कोई रमणी उत्कण्ठित होकर वेगसे चल पडी, कोई विह्वल होकर द्वारपर ही खडी रह गयी। कोई नये राजाके स्नेहसे लुब्ध होकर दौड पडी। उस मुग्धाको अपने गलित हुए परिधानकी भी सुध न रही। कोई अपने अधरमें खूब काजल देने लगी और नेत्रोंमें लाक्षारस करने लगी। कोई निर्ग्रन्थवृत्तिका अनुसरण कर रही थी, तो कोई अपने बालकको विपरीत ५ (उलटा) कटिपर ले रही थी। कोई बाला नूपुरको करतलमें पहन रही थी और मालाको शिर छोड कर कटितलपर धारण कर रही थी। कोई बेचारी अनुरागमें इतनी डूब गयी कि वह मार्जार (बिलौटे) को अपना पुत्र समझकर उसे छोडती ही नहीं थी। कोई नये राजाको मनमें धारण कर दौड रही थी और विह्वल हुई भूमिपर चलती-चलती मूर्च्छित हो रही थी। कोई स्थिर-स्थूल पयोधरी, मृगनयनी, उत्तप्त कनक-छवि और उज्ज्वल महामानिनी मदनके वश होकर करकण्डके १० सम्मुख ही चल पडी।

३—करकण्डका राजकुल-प्रवेश

नये राज्यके लाभसे हृदयमें प्रसन्न होते हुए नगरमें प्रवेश करते, गजके स्कन्धपर चढ कर जाते हुए लीलासहित नये राजकुलमें पहुँचकर करकण्डने उस उत्तुंग राजनिकेतको देखा जो

तें दिट्ठउ रायणिकेउ तुंगु अइमणहरु णं हिमवंतसिंगु ।
मुत्ताहलमालातोरणेहिँ ण विहसइ सियदंतहि घणेहिँ ।
किंकिणिरणंतु धयवडवमालु ण णच्चइ [1]पणयिणि विहियतालु । 5
चामीयरमणिरयणेहिँ घडिउ ण सग्गहो अमरविमाणु पडिउ ।
तहिँ पइसइ णवणिउ विमलबुद्धि पारंभिय [2]गुरुयण मणविसुद्धि ।
करहेमकुंभ मंगलु करंति क वि माणिणि णिग्गय ता तुरंति ।
परिमंगलु किउ वरदीवएहिँ जय कारिउ पुणु णारीसएहिँ ।
सोवण्णकलसकयउच्छवम्मि पइसारिउ सो णिवमंदिरम्मि । 10

घत्ता—सो सयलगुणायरु सीलणिहि विणयभावसंजुत्तउ ।
[3]सामंतमंतिजणपरियरिउ पुरि अच्छइ रज्जु करंतउ ॥ ३ ॥

४

Karakanda sees a portrait and feels attracted

तहिँ तेण वि रज्जु करंतएण आणाविय वम तुरंतएण ।
आएसवसेण व जे धरिय धयअकुसछत्तहँ दंड किय ।
आसावसेण जो तहि जि ठिउ[1] पुणु आणिवि हियवरु मंति कि[2]उ ।
ता एक्कहिँ दिणि करकंडएण वरलीलएँ णयरे भमंतएण ।
देसंतरु जो हिंडंतु पत्तु तहि दिट्ठउ सो णरु ललियगत्तु । 5
पुणु दिट्ठउ तहो करे पडु विचित्तु जो मोहइ लोयहँ तणउ चित्तु ।
सो भणियउ करकंडइँ णिवेण पडु अप्पहि देक्खहुँ सहुँ हिएण ।
ता तेण समप्पिउ पत्थिवासु जणु रत्तउ अणुराएण जासु ।
सो पंचवण्णु गुणगणसमहं[3]तु करकंडइँ जोयिउँ[4] पडु महंतु ।
तहिँ रूउ सलक्खणु तेण दिट्ठु ण मयणबाणु हियवएँ पइट्ठु । 10
मुहकमलु सउण्हउ दीहसासु जरु दाहु अरोचकु हुयउ तासु ।

घत्ता—करकंडइँ जोइउ पडु पवरु थिउ [5]हियवएँ विंभिउ एक्कु खणु ।
जणे पुलयइँ वहियउ तहो विरहु तें मउलि[6]उँ णवणिउ विमणमणु ॥ ४ ॥

५

He learns that the portrait was of the princess of Saurastra

णिवहियउ मुणिउ पडधरणरेण वरु होहइ कण्णहे प्रहु भरेण ।
इय मुणिवि तो वि पडिलविउ भाय पडु अप्पहि अम्हहँ जाहुँ राय ।
णउ छंडइ सो पडु उल्लसंतु पुणु भणइ णरेसरु णीससंतु ।
महो सहयर अक्खु पयत्तएण पडु लेवि भमहि कज्जेण केण ।
आयण्णिवि तें वयणाणुसारु तहो रायहो कहियउ पडवियारु । 5
एत्थत्थि देव सोरट्ठु देसु सुरलोउ विडंविउ जें असेसु ।
तहिँ णयरु अत्थि गिरिणयरु णामु सुरखेयरणरणयणाहिरामु ।

---

३ १ D N पणए २ N गुरयण, D गुणरयणमणसुद्धि ३ N सामंति

४ १ J ठियउ, २ J कियउ, ३ S महंतु, ४ DJ जोयउ, ५ S हियए ६ Mss मउलिय.

हिमवन्तके शिखरके समान अति मनोहर था। वह प्रासाद मुक्ताफलोंकी मालाके तोरणोंसे मानो अपने सघन श्वेत दाँतोंसे हँस रहा था। किंकिणियोंकी ध्वनि सहित अपनी ध्वजा और पताकाओंकी माला-सहित ऐसा प्रतीत होता था, मानो कोई प्रणयिनी ताल दे-देकर नाच रही हो। सुवर्ण और मणिरत्नोंसे जड़ा हुआ वह प्रासाद ऐसा दिखायी देता था, मानो स्वर्गसे देवोंका विमान आ पड़ा हो। उस विमल-बुद्धि नये राजाने अपने मनकी विशुद्धि-सहित गुरुजनोंको प्रारम्भ (आगे) करके वहाँ प्रवेश किया। उसी समय तुरन्त कोई एक मानिनी हाथमें सुवर्ण-कलश रूप मगल करती हुई निकली। उत्तम दीपकोंसे राजाका सब प्रकार मगल किया गया और फिर सैकड़ों नारियोंने उसका जयजयकार किया। इस प्रकार सुवर्ण-कलशोंसे सजाये हुए उस राजमन्दिरमें करकण्डका प्रवेश कराया गया। वह सकलगुण-शीलनिधि, विनयभाव-सयुक्त करकण्ड, सामन्त, मन्त्री व अन्य जनोंसे परिचारित राज्य करता हुआ उस पुरीमें रहने लगा।

४—करकण्डका प्रेम-जागरण

वहाँ राज्य करते हुए करकण्डने शीघ्र ही वे बाँस मँगवाये जो आदेशके अनुसार रखे हुए थे। उनके ध्वज, अकुश और छत्रके दण्ड बनवाये गये। जो द्विजवर आशाके वश वहीं रह रहा था, उसको बुलाकर मन्त्री बनाया गया। फिर एक दिन जब करकण्ड बड़ी लीलासे नगरमें भ्रमण कर रहा था, तब उसने एक ललितगात्र मनुष्यको देखा, जो देशान्तरमें भ्रमण करता हुआ वहाँ पहुँचा था। फिर उसके हाथमें उन्होंने एक विचित्र पट देखा, जो लोगोंके चित्तको मोहित कर रहा था। करकण्ड राजाने उससे कहा—"जरा पट तो दे, मै उसे हृदयसे देख लूँ।" उसने राजाको वह पट समर्पित किया जिसके अनुरागसे लोग आसक्त हो रहे थे। करकण्डने उस पचरगे, गुणगणोंसे शोभायमान महान् पटको देखा। ज्योंही उसने उसमें उस सलक्षण रूपको देखा, त्योंही मानो उसके हृदयमें मदनका बाण प्रविष्ट हो गया। उसका मुखकमल सूख गया। दीर्घ श्वासें निकलने लगीं, तथा उसे ज्वर एव अरोचक दाह भी हो उठा। करकण्डने उस उत्तम चित्रपटको देखा और वह एक क्षण अपने हृदयमें विस्मित होकर रह गया। लोगोंके रोमाचने उसके विरहकी बात कही। उस रोमाचसे मुकुलित वह नया राजा उदास मन होकर रह गया।

५—मदनावलीका जन्म-वृत्तान्त

पटधारी मनुष्यने राजाके हृदयको समझ लिया और जान लिया कि बहुत करके यही कन्याका वर होगा। ऐसा समझकर फिर भी उसने कहा—"हे भाई, हे राजन्, पट दीजिए, मैं जाऊँ।" किन्तु राजा अपने उल्लासमें उस पटको छोड़ता ही नहीं था। श्वासें भरता हुआ राजा बोला—"हे मेरे सहचर, ठीकसे कहो तो सही कि तुम इस पटको लेकर किस कार्यसे घूम रहे हो।" यह सुनकर उसके वचनानुसार राजासे उसने पटका वृत्तान्त कहा—"हे देव, यहाँ सोरठ नामका देश है जिसने अशेष रूपसे सुरलोकका अनुकरण किया है। वहाँ गिरिनगर नामका नगर है जो सुरों, खेचरों व नरोंका नयनाभिराम है। वहाँ अपने शत्रुओंके सिरोंका यमराज अजयवर्म नामका राजा

तहिँ राउ अत्थि अरिसिरकयंतु अजवम्मु णाउ[1] अजियंगिकंतु ।
घत्ता—[2]तहे रूवकरंडी कलसरिय जा णयणपियारी णरवरहँ ।
मयणावलि णामइँ तेयणिहि सा हूई धीय मणोहरहँ ॥ ५ ॥ 10

६

She herself had become enamoured of him.

मयणावलि सा एक्कहिँ दिणम्मि गय सहियहि सहुँ णंदणवणम्मि ।
तहिँ खेयर जणमणणयणइट्ठ डोल्लहरि[1] चडीणा ताइँ दिट्ठ ।
गायंता गेयइँ मणहराइँ कागलियइँ करकंडहो[2] किराइँ ।
गेयाइँ मणोज्जइँ सा सुणेवि धरणीयले णिवडिय तणु धुणेवि ।
विहलघल गयकल झीणदेह कसणम्मि पक्खि णं चंदलेह । 5
वायाहयकेलि व कंपमाण णिय सहियहि घरु सोएँ समाण ।
समसीलहिँ जणमणदुहहरीहिँ परिपुच्छिय विणएँ महयरीहिँ ।
विहलंघल कि हूई सहीए अम्हहँ कहि वहिणिए वच्छलीए ।
मोहेण वि सहियहि सरलियाए विरहाणलु अक्खिउ वालियाए ।
घत्ता—जो गीयउ गायउ खेयरहि मइँ सूवउ करकंडहो तणउ । 10
तो तेण वियंभिउ महो हियउ पुणु चउद्दिसु लायउ रणरणउ ॥ ६ ॥

७

Marriage—proposal.

मइँ तुज्झ सहिए पायडिय वित्ति जइ सक्कहि ता महो करि परित्ति ।
विरहग्गिजालपज्जलियमाण [1]महो णासहिँ जाव ण[2] सहिए पाण ।
ता दुक्खु वहंतिए णरवरासु सखेवेँ अक्खिय वत्त तासु ।
करकंडगेयआयण्णणेण मयणावलि पीडिय कामएण ।
आयण्णेवि वालहे तणिय वत्त राएण लिहाविय हरिणणेत्त । 5
जयभूसण कुलगयणम्मि चंद पडु अप्पिउ राएँ महो णरिंद ।
अरिदूसहसोंडणमडसहाउ हउँ तुज्झ णयरे पडु लेवि आउ ।
पडु पेक्खिवि गच्छइ मोहु जो वि वरु होइ णरेसर [3]ताहे सो वि ।
घत्ता—मइँ एहउ पिसुणिउ तुज्झ णिव एउ इत्तिउ तम्हा महो सरउ ।
सा कमलदलच्छी ससिवयण तउ करयलु करपल्लवे धरउ ॥ ७ ॥ 10

८

Madanāvalī is brought and is married to Karakaṇḍa

[1] तहो सुणिवि वयणु पडधरणरासु पडिवण्णिउ राएँ सयलु तासु ।
तेँ सरिसा कुलणहससहरेण सपेसिय णियणर णिववरेण ।
दिवहम्मि पसण्णए कयसहाय मयणावलि लेविणु ते वि आय ।
किय हट्टसोह घरि तोरणाइँ सबद्धइँ तहो [1]करकंकणाइँ ।

---

५ १ D णामु २ J तहिं
६ १ S डोल्लहरि २ S में इसे काटकर हाँसियेमे 'तणाइ' किसी अन्यके हस्ताक्षरोंमें लिखा गया है।
७ १ J मह २ J णु सहिय ३ J ताहिं
८. १ D करे

अपनी अजितागी नामक कान्ता-सहित रहता है। उसी मनोहर रानीकी मदनावली नामकी रूप-करण्डी कल-स्वरा, लोगोंकी नयन-पियारी, तेजनिधि, पुत्री हुई।

६—मदनावलीका मोह

एक दिन वह मदनावली सखियोंके साथ नन्दन वनको गयी। वहाँ उसने देखा कि लोगोंके मनों और नयनोंको इष्ट खेचर झूलेमें चढकर मधुर ध्वनिसे करकडकी कीर्त्तिके मनोहर गीत गा रहे है। उन मनोहर गीतोंको सुनकर मदनावली अपने शरीरको धुन कर धरणीतलपर गिर पडी। वह ऐसी विह्वल, कलहीन व क्षीण देह हो गयी जैसे कृष्ण पक्षमें चन्द्रलेखा। पवनसे आहत केलीके समान कॉपती हुई उसे सखियॉ शोक-सहित घर ले आयीं। जनोंके मनके दु खोंको हरण करनेवाली ५ उसकी समशीला सहचारियोंने विनयसे पूछा—"हे सखी, तू विह्वल क्यो हो गयी? हे प्यारी बहन, हमें कह तो।" तब उस सरल बालिकाने मोहवश अपनी सखियोंसे अपने विरहानलकी बात कही—"जो उन खेचरोंने करकड-सम्बन्धी गीत गाया, उसे मैने सुना; उसीसे मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठा, और चारों दिशाओंमे उत्सुकता लगने लगी।

७—चित्रपट-द्वारा प्रेमीकी खोज

हे सखि, मैने तुझे बात प्रकट कर दी। यदि तुझसे हो सके तो मेरा सन्तोष कर, जबतक कि, हे सखि, विरहाग्निकी ज्वालासे जलते हुए मेरे ये प्राण नष्ट न हो जायें।" तब उस सखीने दु ख धारण करते हुए राजासे वह बात सक्षेपमें कही कि करकण्डका गीत सुननेसे मदनावली कामसे पीडित हो उठी है। बालिका-सम्बन्धी इस बातको सुनकर राजाने उस हरिणनेत्रीका चित्रपट लिखवाया और हे जगभूषण! व कुलरूपी गगनके चन्द्र नरेन्द्र! उस राजाने वह पट मुझे अर्पित ५ किया। उसी पटको लेकर, दुस्सह शत्रुओंको मोडनेमें समर्थ वीरोंके साथ, मै तुम्हारे इस नगरमे आया हूँ। इस पटको देखकर जो कोई मोहको प्राप्त हो, हे नरेश्वर, वही उस कन्याका वर होगा। हे नृप, मैने तुम्हें यह सब बतला दिया। अब आप भी मेरी इतनी बात मानिए कि वह कमलदलाक्षी शशिवदना आपके करतलको अपने करपल्लवमें ग्रहण करे।

८—करकण्डका मदनावलीसे विवाह

उस पटधारी मनुष्यका यह वचन सुनकर राजाने उसकी समस्त बात मान ली। फिर अपने कुलरूपी नभके चन्द्र राजा करकण्डने उस भटके सदृश ही अपने निजी मनुष्य प्रेषित किये। वे मनुष्य एक शुभ दिन सहायकों-सहित मदनावलीको लेकर लौट आये। हाटकी शोभा की गयी।

णाणाविह वज्जइँ वाइयाइँ गीयाइँ रसालइँ गाइयाइँ । 5
भावड्ढइँ णच्चइँ णच्चियाइँ गयतुरयहँ थट्टइँ खंचियाइँ ।
उग्घाडिउ मुहवडु विहिँ जणाहँ ण मोहपडलु तग्गयमणाहँ ।
²वयजलिअजलणभामरिउ सत्त देवाविय भट्टहिँ पढिवि मत ।
करु बालहे³ अप्पिउ णववरेण किय सवहणाइँ दाहिणकरेण ।
भउ तारामेलउ णिविडु तेम जम्मे वि ण विहडइ णेहु जेम । 10
पहिलारउ मिलियउ मणु पसत्थु किउ लोयचारु जणरजणत्थु ।
सुविसुद्धदिणहि रजियमणाहँ सामतहिँ कियउ विवाहु ताहँ ।
घत्ता—णरणाहहो हुयउँ⁴ विवाहु तहि सुर खेयर देक्खिवि उल्लसिय ।
णियभोयहो उवरि विरत्तमणु तहो तणिय रिद्धि मणि अहिलसिय ॥ ८ ॥

९

Karakanda's mother appears at the marriage
Ambassy from the king of Campa

तहि अवसरि पोमावइ वि माय णियणदणु देक्खहुँ तुरिय आय ।
सा दिट्ठी करकडेँ णिवेण पुणु पणमिय भावे णवणवेण ।
णियपुत्तविवाहेँ हरिसियाएँ आसीस पदिण्णी तुरिउ ताएँ ।
चिरु जीवहि णदण पुहइणाह कालिन्दी सुरसरि जाव वाह ।
वइसारिय विणएँ सा णवेवि दिणु अज्जु सहलु एहउ भणेवि । 5
सम्माणिय वयणहि कोमलेहि परिहाविय वत्थहिँ उज्जलेहि ।
आसीस देवि सा गय तुरति करकडकित्ति णं विप्फुरति ।
ता एत्तहिँ जणमणजणियराउ करकडपुरउ पडिहारु आउ ।
घत्ता—करकमल णिवेसिवि सिरकमले पडिहारु पयपइ ¹पुट्ठसरु ।
चपाहिवरायहो दूउ णिव सो अच्छइ सिहवारम्मि वरु ॥ ९ ॥ 10

१०

The king of Campa claims homage from Karakanda

त सुणिवि वयणु करकडएण पडिहारु पउत्तउ तुरियएण ।
लइ जाहि तुरिउ सो सुहडु जेत्थु चपाहिवदूवउ आणि एत्थु ।
त रायहो वयणु सुणेवि तेण लहु आणिउ सो पडिहारएण ।
सो देक्खिवि दूवउ राणएण समाणिउ दाणइँ आसणेण ।
संसिद्धी¹ मेइणि सयल जासु भणु कुसलु दूव चपाहिवासु । 5
दूवेण भणिउ तहो कुसलु राय पइँ जेहा अच्छहि जसु सहाय² ।
अणवरउ णरिदहि विहियसेव सो सुमरइ तुम्हहँ देवदेव ।
जह जलहँ ण भिण्णउ सीयलत्तु तह चपणरिदहो तुहुँ णिरुत्तु ।
घत्ता—लइ पालहि णिव करकंड तुहुँ चंपाहिवरायहो केर वर ।
होएविणु एक्कइँ वे वि जण अणुहुजहु तुम्हइँ भोय धर ॥ १० ॥ 10

---

२ J घिय ३ J बालहिं ४ S J में 'हुहउ' पाठ था किन्तु उसके स्थानपर S और J मे 'हुअउ' लिख दिया गया है।

९ १ J N तुट्ठसरु या रुट्ठसरु (?)

१० १ N सदिट्ठी २ J सहाइ

घरपर तोरण लगाये गये। हाथोंमें कंकण बाँधे गये। नानाविध वादित्र बजवाये गये। रसाल गीत गाये गये। भावपूर्ण नृत्य नाचे गये। गजों और तुरङ्गोंके ठाठ खींचे गये। वधू-वर दोनोंका मुखपट उघाड़ा गया, जैसे मानो उनके मनका मोहपटल उघाड़ दिया गया हो। घृतसे प्रज्वलित अग्निकी भट्टोंने मन्त्र पढ़कर सात भाँवरें दिलवायीं। नये वरने अपना कर बालिकाको अर्पित किया व दाहिने हाथसे शपथ आदि विधियाँ कीं। तारा-मेल ऐसा सघन हुआ कि जिससे जन्म-भर स्नेह विघटित न हो। प्रशस्त मन तो पहले ही मिल चुका था, यह लोकाचार तो लोगोंके मनोरंजनार्थ किया गया। इस प्रकार एक शुद्ध दिन उन अनुरक्त-मन वधू-वरका विवाह सामन्तों-द्वारा करा दिया गया। राजाका जब वह विवाह हुआ तो उसे देखकर सुर और खेचर भी उल्लसित हो उठे। अपने भोगोंके ऊपर उनका मन विरक्त हो गया और मनमें करकण्डकी ऋद्धिकी अभिलाषा जाग उठी।

९—माताका आशीर्वाद

उस अवसरपर पद्मावती माता भी अपने पुत्रको देखनेके लिए तुरन्त आयी। करकण्ड राजाने उसके दर्शन किये और नये-नये भावसे उसे प्रणाम किया। अपने पुत्रके विवाहसे हर्षित होकर उसने तुरन्त आशीष दी—"हे नन्दन, पृथ्वीनाथ, चिरजीवी हो, जबतक कि यमुना और गंगाकी धारा बह रही है।" करकण्डने नमनपूर्वक विनयसे यह कहते हुए उसे बैठाया कि मेरा आजका यह दिन सफल हुआ। कोमल वचनोंसे उसका सम्मान किया गया और उसे उज्ज्वल वस्त्र पहनाये गये। वह आशीष देकर तुरन्त वापिस चली गयी, मानो करकण्डकी कीर्त्ति विस्फुरायमान हो रही हो। इसी समय लोगोंके मनमें अनुराग उत्पन्न करता हुआ प्रतिहार करकण्डके सम्मुख आया। प्रतिहारने अपने करकमलोंको सिरपर रखकर स्पष्ट स्वरमें कहा—"हे राजन्, चम्पाके राजाका बड़ा दूत सिंह-द्वारपर खड़ा है।"

१०—चम्पाधीशका सन्देश

यह वचन सुनकर करकण्डने तुरन्त प्रतिहारसे कहा—"जल्दी जा, जहाँ वह सुभट है, और चम्पाके राजाके दूतको यहाँ ले आ।" राजाका वचन सुनकर वह प्रतिहार उसे शीघ्र ले आया। राजाने दूतको देखकर आसन व दानसे उसका सम्मान किया, और पूछा—"हे दूत, जिनकी समस्त मेदिनी ससिद्ध (वशीभूत) हो चुकी है, उन चपाधीशकी कुशल कहो।" दूतने कहा—"हे राजन्, जिसके आप-जैसे सहायक बैठे हों उसकी कुशल ही है। हे देवदेव, निरन्तर अन्य नरेन्द्रोंसे सेवित होते हुए भी वे तुम्हारा स्मरण किया करते हैं। जिस प्रकार जलमें शीतलता भिन्न नहीं है, उसी प्रकार चम्पा-नरेशके लिए पूर्णरूपसे आप हैं। हे करकण्ड राजन्, तुम चम्पाके राजा की उत्तम सेवाका पालन करो और आप दोनों जन एक होकर भोगो और धराका उपभोग करो।"

११

Karakanda proposes to decide the issue by an open battle.

विणु केरइँ लब्भइ णाहि मित्त एह मेइणि भुंजहँ हत्थमेत्त ।
ण वि पालहि जइ पुणु सेव तासु तो ठाउ करहि अह कहि मि णासु ।
त सुणिवि वयणु करकंडएण तेँ हियवएँ कोहु धरतएण ।
आयवणयण भालयले णीय ण चढविवायर मग्गि ठीय ।
जाजाहि दूव तउ सामि जेत्थु तुहुँ वयणु वि एक्कु मा वमहि एत्थु । 5
संखेवेँ कहि चपाहिवासु हउँ आयउ तुरियउ तुज्झ पासु ।
जइ सगरि अत्थि भडावलेउ सगामु मज्झु ता तुरिउ देउ ।
इउ सुणिवि वयणु गउ दूउ तेत्थु सिरिधाडीवाहणु वसइ जेत्थु ।
घत्ता—तेँ कहियउ दतीपुरिणिवइँ सो पइँ देव ण[3] वि णवइ ।
सगामरगि तुम्हेँ हि सहुँ अइजुज्झइ वीरउ इउ लवइ ॥११॥ 10

१२

Karakanda's march The Ganges Siege of Campa

तं [1]सुणिवि वयणु चंपाहिराउ सण्णज्झइ ता किर वद्धराउ ।
तावेत्तहिँ दतीपुरिणिवेण कंपाविय मेइणि मदरेण ।
णिण्णासियअरि[2]यणजीवएण उड्डाविय दहदिसि रय रणेण
णहु छायउ खलियउ रवि रएण[3] लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण
गंगापएसु सपत्तएण गगाणइ दिट्ठी जतएण । 5
सा सोहइ सियजल कुडिलवति ण सेयभुवंगहो महिल जंति ।
दूराउ वहती अइविहाइ हिमवतगिरिंदहो कित्ति णाइँ ।
विहिँ कूलहिँ लोयहिँ ण्हंतएहि आइच्चहो जलु परिदितएहिँ ।
दब्भकियउड्ढहिँ करयलेहिँ णइ भणइ णाइँ एयहिँ छलेहिँ ।
हउँ सुद्धिय णियमग्गेण जामि मा रूसहि अम्महो उवरि सामि । 10
णइ पेक्खिवि णिउ [4]करकंडणामु गउ जणणणयरु गुणगणियधामु ।
घत्ता—जेँ सगरि सुरवरखेयरहँ भउ जणियउ धणुहरमुअसरहिँ ।
तेँ वेढिउ पट्टणु चउदिसिहिँ गयतुरयणरिंदहि दुद्धरहिँ ॥१२॥

१३

The king of Campā receives information.

तं वेढिउ जा राएण तेण ता आउलि पुरयणु हुउ खणेण ।
णरणाहहो कहिउ परेण केण उवरुद्धउ परवलु सयलु जेण ।
हे णरवइ परवलवणहुआसं बदीयणसज्जणपूरियास
उद्दंडसुड गय गुलुगुलत कुडिलाणण वरहय हिलिहिलत ।
सच्चल्लिय रहवर [2]घरहरत फारक्कहिँ फुरियहिँ फरहरत । 5
करवालकिरण रविकरहरत वकुडिय कउत्तल थ[3]रहरत ।

११ २ S सग्गे २ J तुज्झु ३ DN ण णवि.
१२. १ S सुणेवि २ S N अरिणर ३ S J वएण ४ J करकडु णामु
१३ १ J °सु २ S J थरहरत. ३ S J थलहरत, N घरहरत

११—करकण्डका रोष

"हे मित्र, बिना सेवाके यह मेदिनी एक हस्तमात्र भी भोगनेके लिए नहीं मिल सकती। यदि आप चम्पाधिपका सेवा-पालन नहीं करेंगे तो यहाँसे भागकर कहीं अन्यत्र अपना ठाँव कीजिए।" इस वचनको सुनकर करकण्डने अपने हृदयमें क्रोध धारणकर लाल आँखें कपालकी ओर खींच लीं, जैसे मानो चन्द्र और सूर्य स्वर्गमें स्थित हों। वह बोला—"हे दूत जा, चला जा यहाँसे जहाँ तेरा स्वामी है। तू अब एक क्षण भी यहाँ मत ठहर। संक्षेपसे चम्पाधिपको कहना कि मैं तुरन्त ही तुम्हारे पास आता हूँ। यदि समरमें शूर-वीरताका अभिमान हो तो जल्दी मुझसे संग्राम करे।" यह वचन सुनकर दूत वहाँ गया, जहाँ श्री धाडीवाहन राजा रहता था। उसने कहा—"हे देव, वह दन्तीपुरका राजा आपको नमन करनेके लिए तैयार नहीं है। समरांगणमें वह तुम्हारे साथ जूझेगा। वह धीर ऐसा कहता है।" ५

१२—दुर्धर सेना चलकर गंगातीर पहुँचती है।

यह वचन सुनकर, तब चम्पाधिराज लगनके साथ युद्धकी तैयारी करने लगा। उसी समय यहाँ दन्तीपुरके राजाने मन्दर-सहित मेदिनीको कम्पायमान कर दिया। जिसने अपने शत्रुजनोंको जीव-रहित करके नाश कर दिया था, उस करकण्डने रण-यात्राके द्वारा दसों दिशाओंमें धूल उड़ायी। आकाश आच्छादित हो गया और रवि अपनी चालसे स्खलित हो गया। क्रुद्ध होकर उसने जल्दी-जल्दी प्रयाण किया। चलते-चलते गंगा प्रदेशमें आकर उसने गंगा नदीको देखा। वह श्वेत जल-सहित अपनी कुटिल धारासे ऐसी शोभायमान थी जैसे मानो श्वेत भुजङ्गकी महिला जा रही हो। दूरसे ही बहती हुई वह ऐसी दिखायी दी, जैसे वह हिमवन्त गिरीन्द्रकी कीर्त्ति ही हो। दोनों कूलोंपर नहाते हुए व आदित्यको जल चढ़ाते हुए दर्भसे युक्त ऊँचे उठाये हुए करतलों-सहित लोगोंके द्वारा, मानो इन्हीं बहानोंसे, नदी कह रही थी कि 'मैं शुद्ध हूँ, और अपने मार्गसे जाती हूँ, हे स्वामी, हमारे ऊपर रुष्ट मत होइए।' नदीको देखकर करकण्ड राजा अपने पिताके नगर गुणगणोंके धाम चम्पापुरको गया। जिसने बड़े-बड़े देवों और खेचरोंको समरमें धनुषसे छोड़े हुए बाणों-द्वारा भय उत्पन्न किया था, उसने चम्पापट्टणको चारों दिशाओंमें दुर्द्धर गज, तुरङ्ग और नरेन्द्रोंकी सेनाओंसे घेर लिया। ५ १०

१३—आक्रमणकारी सैन्यका समाचार

जब उस राजाने नगरको घेर लिया, तब एक क्षणमें पुरजन आकुल हो उठे। किसी एकने, जिसने समस्त शत्रुकी सेनाको घेरा डालते देख लिया था, जाकर राजासे कहा—"हे नरपति, शत्रुके सैन्यवनके दावानल, बन्दीजनों और सज्जनोंके आशा-पूरक, उधर उद्दण्ड सूँडोंवाले गज गुड़गुड़ा रहे हैं। टेढ़ी ग्रीवा किये बड़े-बड़े घोड़े हिनहिना रहे हैं। बड़े-बड़े रथ घर्राते हुए व स्फुरायमान ध्वजाओंसे फहराते हुए चल रहे हैं। तलवारोंकी किरणें सूर्यकी रश्मियोंको भी जीत रही हैं। बाँकुड़े कुन्तल थर्रा रहे हैं। छुरियों-सहित भाले खूब चमचमा रहे हैं। योद्धा पवनके ५

छुरिएहिँ कोंत अइविप्फुरंत पवणा इव वेएँ संचरंत ।
सीहोव मदुद्धरु अइपयडु तुहु उवरि पराइउ वइरिदंडु ।

घत्ता—त सुणिवि णरिंदहो मुहकमलु सजायउ रत्तुप्पलसरिसु ।
डसियाहरु भूभंगुरणयणु कोहाणलु वड्ढिउ गउ हरिसु ॥ १३ ॥ 10

१४

The Campa-king marches out with his forces

ताव सो उट्ठिओ धाइया किंकरा संगरे जे वि देवाण भीयकरा ।
वाउवेया हया सज्जिया कुंजरा चक्कचिक्कार संचल्लिया रहवरा ।
हक्क डक्कार हुंकार मेल्लतया धाविया के वि कुंताइँ गेण्हंतया ।
के वि सम्माणु सामिस्स मण्णतया पायपोमाण रायस्स जे भत्तया ।
चावहत्था पसत्था रणे दुद्धरा धाविया ते णरा चारुचित्ता वरा । 5
के वि कोवेण धावंति कप्पतया के वि उग्गिण्णखग्गेहिँ दिप्पतया ।
के वि रोमंचकंचेण सजुत्तया के वि सण्णाहसंबद्धसगत्तया ।
के वि संगामभूमीरसे रत्तया सग्गिणीछंदमग्गेण सपत्तया ।

घत्ता—चंपाहिउ णिग्गउ पुरवरहो हरिकरिरहवरपरियरिउ ।
उद्दडचडपीवरकरहिँ भणु केहि ण केहिँ ण अणुसरिउ ॥ १४ ॥ 10

१५

Fight begins.

ता हयइँ तूराइँ भुवणयलपूराइँ ।
वज्जंति वज्जाइँ सज्जंति सेण्णाइँ ।
आणाए घडियाइँ परवलइँ भिडियाइँ ।
कुंताइँ भज्जंति कुंजरइँ गज्जंति ।
रहसेण वग्गंति करिदसणे लग्गंति । 5
गत्ताइँ तुट्टंति मुंडाइँ फुट्टंति ।
रूंडाइँ धावंति अरिथाणु पावंति ।
अंताइँ गुप्पंति रुहिरेण थिप्पंति ।
हड्डाइँ मोडंति गीवाइँ तोडंति ।

घत्ता—के वि भग्गा कायर जे वि णर के वि भिडिया के वि पुणु । 10
खग्गुग्गामिय के वि भड मडेविणु थक्का के वि रणु ॥ १५ ॥

१६

Karakanda requisitions the Vidya

ता रोसें चंपाहिउ णरिंदु रह चडिवि पधायउ णं सुरिंदु ।
सो तुरिउ गयउ परवलणिवासु अब्भिडियउ करकंडहो णिवासु ।

---

४ D सीहो इव ५ DN तहो
१४ १ SD केहिँ
१५ १ J में 'कुंजरइ गज्जति' छूटा है २ J कि वि
१६ १ S चंपाहिव, २ N अब्भडियउ

समान वेगसे सञ्चार कर रहे है। इस प्रकार वैरीका सिंहके समान दुर्द्धर, अति प्रचण्ड सैन्य आपके ऊपर चढ आया है। यह सुनकर राजाका मुखकमल रक्तोत्पलके सदृश लाल हो उठा। उन्होंने अपने होंठ चबाये; आँखोंपर भौहे चढ गयीं, क्रोधानल भभक उठा और हर्ष चला गया।

१४—चम्पाकी सेना भी तैयार हुई

तब वह चम्पाका राजा उठ खडा हुआ। दौडने लगे वे किंकर जो समरमें देवोंको भी भयङ्कर थे। वायुवेग घोडे और कुञ्जर सज गये। बडे-बडे रथ चक्कोंकी चीत्कार करते हुए चल पडे। हाँकें, डॅकारें और हुँकार छोडते हुए कितने ही योद्धा भाले ग्रहण करके दौड पडे। कितने ही अपने स्वामीके सम्मानको मानते थे, और राजाके चरण-कमलोंके भक्त थे। वे प्रशस्त, रणमें दुर्द्धर नर प्रसन्नचित्त होकर हाथोमें धनुष लिये दौडे। कितने ही कोपसे काँपते हुए और कितने ही उघाडे हुए खड्गोंसे दीप्तिमान् होते हुए दौडे। कितने ही रोमाञ्चरूप कञ्चुकसे सयुक्त थे, और कितने ही अपने गात्रपर सन्नाह बाँधकर तैयार थे। कितने ही सग्राम-भूमिके रसमें रक्त होकर स्वर्ग पानेके इच्छित मार्गसे आ पहुँचे। (इस कडवक की रचना सर्गिणी छन्दमें हुई है)। चम्पाधिप उत्तम घोडों, हाथियों और रथोंसे युक्त होकर पुरवरसे निकल पडा। उद्दण्ड, चण्ड, स्थूल भुजाशाली, कहो, किन-किनने उसका अनुसरण नहीं किया ?

१५—भीषण संग्राम

तब नगाडोपर चोट पडी जिससे भुवन-तल पूरित हो गया। बाजे बज रहे है और सैन्य सज रहे है। आज्ञानुसार व्यूह-घटित होकर वे सेनाएँ शत्रु-बलसे भिड गयीं। भाले भग्न हो रहे है, कुञ्जर गरज रहे है, योद्धा वेगसे बढ रहे है, हाथीके दाँतोंसे लग रहे है। गात्र टूट रहे है, मूँडें फूट रही है। रुण्ड दौड रहे हैं और शत्रु स्थानको पा रहे है। आँतें निकल रही है, रुधिर से सन रही है। हड्डियाँ मुड रही है, ग्रीवाएँ टूट रही है। जो कोई नर कायर थे, वे भाग उठे, कोई भिड गये। भट खड्ग तानकर और कोई रणमाड कर डट गये।

१६—करकण्ड और चम्पाधिपका युद्ध

तब रोषसे चम्पाधिप नरेन्द्र रथपर चढकर दौडा, जैसे सुरेन्द्र। वह तुरन्त परसैन्यके नृपके समीप गया और करकण्ड राजासे भिड गया। तब दोनो बलोंमे कलकल बढ गया। नभस्तल

छुरिएहिं कोत अइविप्फुरंत पवणा इव वेएँ संचरंत।
सीहोव[4] मडुद्धरु अइपयडु तुह[5] उवरि पराइउ वइरिदडु।
घत्ता—त सुणिवि णरिंदहो मुहकमलु सजायउ रत्तुप्पलसरिसु।
डसियाहरु भूभंगुरणयणु कोहाणलु वड्ढिउ गउ हरिसु॥ १३॥ 10

१४

The Campa-king marches out with his forces

ताव सो उट्ठिओ धाइया किंकरा सगरे जे वि देवाण भीयकरा।
वाउवेया हया सज्जिया कुजरा चक्कचिक्कार सचल्लिया रहवरा।
हक्क डक्कार हुंकार मेल्लतया धाविया के वि कुताइँ गेण्हतया।
के वि सम्माणु सामिस्स मण्णंतया पायपोमाण रायस्स जे भत्तया।
चावहत्था पसत्था रणे दुद्धरा धाविया ते णरा चारुचित्ता वरा। 5
के वि कोवेण धावंति कप्पतया के वि उग्गिण्णखग्गेहिँ दिप्पतया।
के वि रोमंचकचेण सजुत्तया के वि मण्णाहसंवद्धसगत्तया।
के वि सगामभूमीरसे रत्तया सग्गिणीछदमग्गेण सपत्तया।
घत्ता—चपाहिउ णिग्गउ पुरवरहो हरिकरिरहवरपरियरिउ।
उद्दडचडपीवरकरहि भणु केहि ण [1]केहिँ ण अणुसरिउ॥ १४॥ 10

१५

Fight begins

ता हयइँ तूराइँ भुवणयलपूराइँ।
वज्जति वज्जाइँ सज्जति सेण्णाइँ।
आणाए घडियाइँ परबलइँ भिडियाइँ।
कुंताइँ भज्जति [1]कुजरइँ गज्जति।
रहसेण वग्गति करिदसणे लग्गति। 5
गत्ताइँ तुट्टति मुडाइँ फुट्टति।
रुडाइँ धावंति अरिथाणु पावति।
अताइँ गुप्पति रुहिरेण थिप्पति।
हड्डाइँ मोडति गीवाइँ तोडति।
घत्ता—के[2] वि भग्गा कायर जे वि णर के[2] वि भिडिया के वि पुणु। 10
खग्गुग्गामिय के वि भड मडेविणु थक्का के वि रणु॥ १५॥

१६

Karakanda requisitions the Vidya

ता रोसें[1] चपाहिवे णरिंदु रह चडिवि पधायउ ण सुरिंदु।
सो तुरिउ गयउ परबलणिवासु अब्भिडियउ[2] करकडहो णिवासु।

---

४ D सीहो इव ५ DN तहो
१४ १ SD केहँ
१५ १ J में 'कुजरइ गज्जति' छूटा है २ J कि वि
१६ १ S चपाहिव, २ N अब्भडियउ

समान वेगसे सञ्चार कर रहे है। इस प्रकार वैरीका सिंहके समान दुर्द्धर, अति प्रचण्ड सैन्य आपके ऊपर चढ आया है। यह सुनकर राजाका मुखकमल रक्तोत्पलके सदृश लाल हो उठा। उन्होंने अपने होंठ चबाये; आँखोंपर भौहे चढ गयीं, क्रोधानल भभक उठा और हर्ष चला गया।

१४—चम्पाकी सेना भी तैयार हुई

तब वह चम्पाका राजा उठ खडा हुआ। दौडने लगे वे किंकर जो समरमें देवोंको भी भयङ्कर थे। वायुवेग घोडे और कुञ्जर सज गये। बड़े-बडे रथ चक्कोंकी चीत्कार करते हुए चल पडे। हाँकें, डॅकारें और हूँकार छोडते हुए कितने ही योद्धा भाले ग्रहण करके दौड पडे। कितने ही अपने स्वामीके सम्मानको मानते थे, और राजाके चरण-कमलोके भक्त थे। वे प्रशस्त, रणमें दुर्द्धर नर प्रसन्नचित्त होकर हाथोंमें धनुष लिये दौडे। कितने ही कोपसे कॉपते हुए और कितने ही उघाडे हुए खड्गोंसे दीप्तिमान् होते हुए दौडे। कितने ही रोमाञ्चरूप कञ्चुकसे सयुक्त थे, और कितने ही अपने गात्रपर सन्नाह बाँधकर तैयार थे। कितने ही संग्राम-भूमिके रसमे रक्त होकर स्वर्ग पानेके इच्छित मार्गसे आ पहुँचे। (इस कडवक की रचना सर्गिणी छन्दमें हुई है)। चम्पाधिप उत्तम घोडो, हाथियों और रथोंसे युक्त होकर पुरवरसे निकल पडा। उद्दण्ड, चण्ड, स्थूल भुजाशाली, कहो, किन-किनने उसका अनुसरण नहीं किया? ५ १०

१५—भीषण संग्राम

तब नगाडोंपर चोट पडी जिससे भुवन-तल पूरित हो गया। बाजे बज रहे है और सैन्य सज रहे है। आज्ञानुसार व्यूह-घटित होकर वे सेनाएँ शत्रु-बलसे भिड गयीं। भाले भग्न हो रहे है, कुञ्जर गरज रहे है, योद्धा वेगसे बढ़ रहे है, हाथीके दाँतोंसे लग रहे है। गात्र टूट रहे है, मूँड फूट रही है। रुण्ड दौड रहे है और शत्रु स्थानको पा रहे है। आँतें निकल रही है, रुधिर से सन रही है। हड्डियाँ मुड रही है, ग्रीवाएँ टूट रही है। जो कोई नर कायर थे, वे भाग उठे, कोई भिड गये। भट खड्ग तानकर और कोई रणमाड कर डट गये। ५

१६—करकण्ड और चम्पाधिपका युद्ध

तब रोषसे चम्पाधिप नरेन्द्र रथपर चढकर दौडा, जैसे सुरेन्द्र। वह तुरन्त परसैन्यके नृपके समीप गया और करकण्ड राजासे भिड गया। तब दोनो बलोंमें कलकल बढ़ गया। नभस्तल

ता कलयलु वड्ढिउ विहि बलाहँ   वाणावलिछाइयणहयलाहँ ।
करकंडें कोहाणलजुएण   अइरावइकरदीहरभुएण ।
ता तुरियइँ चंपणराहिवासु   सहसत्ति पमेल्लिय सत्ति तासु ।   5
रहु छिण्णिउ चिण्हद्धउ खणेण   पुणु सारहि पाडिउ तुरिउ तेण ।
ता खेवें चंपणराहिवेण   मपेसिय वाण तुरंतएण ।
सर पेसिय जा चंपाहिवेण   करकंडहो वलु भग्गउ खणेण ।
घत्ता—करकंडएँ पेच्छिवि वलु चलिउ मणि रोसु महंतउ विप्फुरिउ ।
जा विज्ज पइण्णी खेयरइँ तहे पेसणु दिण्णउ तें तुरिउ ॥ १६ ॥   10

१७

The havoc wrought by the Vidya until overpowered by Campā-king

ताव तेण दुद्धरेण   मुक्क विज्ज मच्छरेण ।
ता खणेण विज्ज धिट्ठ   धाविया तुरंत[1] दिट्ठ ।
फे क्करंति हु क्करंति   वाउवेय संचरंति
रक्खसी व वावरंति   भासुरा वि खे मिलंति ।   5
कुंभिकुंभ णिद्दलंति   रहवरेण रह दलंति ।
संगरम्मि जे वि दिट्ठ   दसणेण ताहे णट्ठ ।
के वि मुच्छमोहियाइँ   के वि जोह[3] जोहियाइँ ।
के वि घायखंडियाइँ   के वि जीव छंडियाइँ ।
घत्ता—ता कुवियइँ चंपणरेसरइँ तुरिएण वि असिलय करे धरिय ।
जा विज्ज गिलंती णरसयइँ वलसत्ति खणद्धें तहे हरिय ॥ १७ ॥   10

१८

Karakanda takes up his bow in wrath

गय विज्ज तट्ठीय   करकंडें दिट्ठीय ।
रोसं वहंतेण   करे धणुहु[1] किउ तेण ।
तहो चप्पे गुणु दिण्णु   त पेक्खि जणु खिण्णु ।
ता गयणे गुणसेव   खोहं गया देव ।
टंकारसद्देण   घोरें[2] रउद्देण ।   5
धरणियलु तडयडिउ   तस[3] कुम्मु कडयडिउ ।
भुवणयलु खलभलिउ   गिरिपवरु टलटलिउ ।
मयरहरु झलझलिउ   धरणिंदु सलवलिउ ।
खगणाहु परिसरिउ   सुरराउ थरहरिउ ।
घत्ता—सो सद्दु सुणेविणु धणुगुणहो[4] रह भग्गा णट्ठा गयपवर ।   10
मउगलियउ चंपणराहिवहो भयभीय ण चल्लहिँ कहिँ खयरें[5] ॥ १८ ॥

---

१७ १ N S दुट्ठ २ J N S में यह चरण छूटा है, तथा D मे वह हाँसियेमें जोडा गया है ३ J जीय

१८ १ J का पत्र १९ अप्राप्त होनेसे इस कडवकके 'हु किउ तेण' से लेकर कडवक १९, २० और २१ की प्रथम ८ पंक्तियाँ नही मिली २ S J घोरेण ३ N तसु ४ D धणुहरहो ५ S J 'कहिँ खयर'के स्थानमें 'खेयर'

बाणावलिसे आच्छादित हो गया। तब क्रोधानल युक्त होकर, ऐरावतकी सूँडके समान दीर्घ भुजशाली करकण्डने तुरन्त चम्पा-नराधिपपर शक्तिके साथ अपनी शक्ति छोडी। उसने एक क्षणमें चिह्नध्वज-सहित रथको छिन्न कर डाला, और फिर तुरन्त ही सारथीको धराशायी किया। तब ५ शीघ्र ही चम्पाधिपने जल्दी-जल्दी बाण प्रेषित किये। जब चम्पाधिपने बाण छोडे, तब एक क्षणमें करकण्डका सैन्य भाग उठा। करकण्डने जब अपने बलको चलायमान देखा तब उसके मनमें महान् रोष विस्फुरित हुआ, और जो विद्या उसे खेचरने दी थी उसे तुरन्त प्रेषण दिया।

१७—करकण्डकी खेचरी विद्याका प्रभाव

तब उस दुर्द्धर राजा करकण्डने मात्सर्यसे विद्या छोडी। वह ढीठ विद्या एक क्षणमे तुरन्त दौडती हुई दिखायी दी। वह विद्या फे करती, हूँ करती, वायुवेगसे सञ्चार करती एव राक्षसोके समान व्यापार करती तथा चमकती हुई आकाशमे मिल जाती। हाथियोके कुम्भस्थलोका निर्दलन करती। एक रथसे दूसरे रथको टकराकर चूर्ण करती। सग्राममें जिनकी ओर उसने देखा वे उसके दर्शनमात्रसे नष्ट हुए। कोई मूर्च्छासे मोहित हो गये। कितने ही योधा जूझ गये। कोई घातसे ५ खण्डित हो गये और कितने ही जीवनसे छूट गये। तब चम्पानरेशने कुपित होकर तुरन्त ही खड्गलता हाथमे धारण की और जो विद्या सैकडों नरोको निगल रही थी, उसकी बल-शक्तिको क्षणार्द्धमें हर लिया।

१८—करकण्डकी भीषण धनुष-टंकार

करकण्डने देखा कि उसकी विद्या चली गयी। तब उसने रोष धारण करके, अपने हाथमें धनुष लिया और उसकी चापपर प्रत्यञ्चा चढायी। इसे देख लोग खिन्न हो उठे। उसी समय गगनमे गुणसेवी देव क्षोभको प्राप्त हुए। धनुषके घोर व रुद्र टङ्कार शब्दसे धरणीतल तडतडाया। उसके नीचेका कूर्म कडकडाया, भुवनतल खलभलाया। प्रवर गिरि टलटलाया। सागर झलझलाया और धरणीन्द्र सलबलाया। खगनाथ खिसक गया और सुरराज थर्रा उठा। धनुषकी प्रत्यञ्चाके ५ उस शब्दको सुनकर रथ (के घोडे) भाग उठे, गजप्रवर नष्ट हुए, चम्प-नराधिपका मद गलित हुआ तथा भयभीत खेचर निश्चल हो गये।

१६

Karakanda's mother appears on the scene

सुरलोयहँ छुडु हियवउ विभिण्णु छुडु परवलु भयभीयउ णिसण्णु ।
सवद्धउ छुडु वइसाहथाणु[1] छुडु भग्गउ चपणरिंदमाणु ।
छुडु चाउ खणद्धें सज्जियाउ छुडु सेयजलें गुणु मज्जियाउ ।
करकंडें गुणे किउ वाणु पवरु चपाहिवेण ता मुक्कु अवरु ।
हुउ वाणु णिरत्थउ सो हु जाव पोमावइ सगरे पत्त ताव । 5
सा दिट्ठिय तेण णरेसरेण पुणु [2]पणमिय दूरहो णयसिरेण ।
हे माए माए सगरे असज्झे कि आइय तुहुँ भडनियरमज्झे ।
सा भणइ पुत्त सवरहि चाउ एहु धाडीवाहणु तुज्झ ताउ ।
घत्ता—कहि माए महासइ गुणणिलउ किमु ताउ महारउ णिउ हवइ ।
ता ताईं तुरतईं तहो कहिउ सुणि पुत्त महावल धरणिवइ ॥ १९ ॥ 10

२०

Padmavatī[1] recalls the incidents connected with his birth

चपाउरिरायहो घरे रमणी हउँ होंती जणवयमणदमणी ।
सजायउ जइयहुँ गब्भे तुहुँ उप्पण्णउ तइयहुँ दुक्खु महु[2] ।
हउँ हरिवि णीय ता करिवराईं दंतीपुरि वाहिरि दुद्धराईं ।
तहि जायउ भीममसाणि तुहु[3] पईं पेक्खिवि जायउ मज्झु सुहु ।
करकडु णरेसरु एक्कु खणु त सुणिवि वयणु थिउ विमणमणु । 5
णियपुत्तहो अक्खिवि चत्तभया पुणु तुरियउ कतहो पासे गया ।
सा दिट्ठिय चपणरेसरेण गग्गाणइ ण रयणायरेण ।
जाणतें एह पोमावइया तो वि तेण सहावें सा णमिया ।
अह [4]गरुवउ जो वयभरु धरेइ तें राणउ कतहे थुइ करेइ ।
घत्ता—परिपुच्छिय चपणराहिवईं कहु छुट्टिय तुहुँ तहो गयवरहो । 10
ता कहियउ ताईं तुरतियएँ णिव गयएँ पमुक्की तडे सरहो ॥ २० ॥

२१

The battle field becomes a scene of family embraces

तहो पासे मसाणएँ महो सुयउ कुलमडणु णदणु सो हुयउ ।
परिपालिउ केण वि खेयराईं वउ लइयउ तहिँ मईं णिव भराईं[1] ।
दतीपुरिराणउ ता मुयउ तहिँ णयरे णराहिउ सो कियउ ।
सो जाणहि एवहिँ तुह भिडिउ तुहु[2] कोहपिसाएँ परिणडिउ ।
मा मुज्झहि छडहि एहु गहु[2] णिव णदणु तेरउ एहु पहु[3] । 5
त वयणु सुणिवि चपाहिवइ सतुट्ठउ तक्खणे सो हियईं ।
हउँ धण्णउ जसु एहउ सुयउ जो संगरे धीरउ दिढभुयउ ।
परिछडिवि [4]वणुहरु गलियसरु करकडपासु[5] गउ णिवपवरु ।

---

१९ १ N वइराह ठाणु २ N पणविय लहु पहु णियसरेण
२० १ N हुतिय २ D J S °रइ ३ N णविया ४ D J S गरुयउ जो वयभारु घरइ
२१ १ N सइ २ N गाहु ३ N जाहु ४ N धणु गभीरसरु ५ N करकड पयासिउ णिउ पवरु

१९—समराङ्गणमें पद्मावती माता

तुरन्त ही सुर लोगोंका हृदय भिन्न हो गया और शत्रुबल भयभीत होकर सन्न रह गया। उसी क्षण करकण्डने बशाख स्थान साधा (शरसन्धान मुद्रा धारण की) जिससे तुरन्त ही चम्पा नरेन्द्रका मान भङ्ग हो गया। उसी समय क्षणार्द्धमें चापको सजाया और पसीनेके जलसे प्रत्यञ्चा को मॉजा। करकण्डने ज्योंही इधर प्रचण्ड बाणको प्रत्यञ्चापर किया, तभी उधर चम्पाधिपने दूसरा बाण छोडा। ज्योंही वह बाण निरर्थक हुआ, त्योंही समरमें पद्मावती आ पहुँची। करकण्ड ५ नरेश्वरने उसे देखा और दूरसे ही सिर नवाकर प्रणाम किया। वह बोला—"हे माता, माता, इस असाध्य सग्राममें, भटसमूहके मध्य, तू क्यो आई ?" वह बोली—"हे पुत्र, चाप रोको; यह धाडीवाहन तुम्हारा पिता है। करकण्डने पूछा—"हे महासती माता, कहो तो, यह गुणनिलय नृप मेरा पिता कैसे होता है ?" तब उसने तुरन्त उससे कहा—"हे महाबली धरणीपति पुत्र, सुनो"

२०— वतीने पिता-पुत्रकी पहचान करायी

मै चम्पापुरीके राजाके घरमें उनकी रमणी थी। समस्त देशके लोगोंका मन मुझसे प्रसन्न था। ज्योंही तू गर्भमें आया, त्योंही मुझे एक दुःख उत्पन्न हुआ। मुझे एक बडा दुर्द्धर हाथी हरकर दन्तीपुरके बाहर ले गया। वहाँ भीम श्मशानमें तू उत्पन्न हुआ। तुझे देखकर मुझे सुख हुआ। करकण्ड नरेश्वर उस वचनको सुनकर एक क्षणके लिए मनमें विस्मित होकर रह गया। उधर पद्मावती अपने पुत्रसे उक्त प्रकार कहकर, भय छोड, तुरन्त अपने कान्तके पास गयी। ५ उसे चम्पा नरेशने देखा, जैसे रत्नाकर गङ्गानदीको देखे। यह जानकर भी कि पद्मावती है, उसने उसे स्वभावत· नमन किया। वह जो गौरवशाली व्रतोंका भार धारण किये हुए थी, इससे राजाने अपनी कान्ताकी स्तुति की। फिर चम्पनराधिपने उससे पूछा कि तू उस गजवरसे छूटी कैसे ? तब उसने तुरन्त कहा—"हे राजन्, गजसे मुझे सरोवरके तटपर मुक्ति मिली।"

२१—पिता-पुत्र सम्मेलन

"उसीके पास श्मशानमें मुझे प्रसूति हुई और वह कुलमण्डन नन्दन उत्पन्न हुआ। किसी एक खेचरने उसे पाला। मैने वहीं हृदयके भारसे व्रत ले लिया। फिर दन्तीपुरके राजाकी मृत्यु हुई और मेरे उसी पुत्रको नगरका राजा बनाया गया। जान लीजिए, वही पुत्र इस प्रकार तुमसे आ भिडा है। तुम क्रोधरूपी पिशाचसे विडम्बित हुए हो। मूढ मत होइए। इस आग्रहको छोडिए। हे नृप, यह तेरा ही प्रभावशाली पुत्र है।" उस वचनको सुन करचम्पाधिप तत्क्षण हृदयसे ५ सन्तुष्ट हुआ और बोला—"मै धन्य हूँ जिसका ऐसा पुत्र हो, जो दृढ भुजाशाली और सग्राममें धीर हो। उस प्रवर राजाने अपने धनुषको छोडा, बाणको नीचे गिरा दिया और करकण्डके पास गया

घत्ता—पुणु जाइवि धाडीवाहणइँ आलिंगिउ णंदणु सो खणिण।
जह सगरें जाइवि तेयणिहि पज्जुण्णु कुमरु दामोयरिण ॥ २१ ॥ 10

२२

Karakanda is Crowned King of Campā and his father retires for penances

करकंडइँ वुत्तउ णियजणणु पइँ सरिसउ ज मइँ कियउ रणु।
मा गिण्हहि मेरउ देव छलु तं खमहि भडारा महो सयलु।
त सुणिवि वयणु चंपाहिवइँ उल्लसियउ तक्खणे सो हियइँ।
गउ लेविणु णयरहो सहुँ णिवेहिँ पइसारिउ णाणाउच्छवेहि।
सा णयरी करकंडें सहेइ अमराउरि लच्छा तहो वहेइ। 5
णर रयणइँ लेविणु साणुराय णिवमंदिरे वद्धावणहुँ आय।
ता दुद्धररायहँ जो घरट्टु करकंडहो वद्धउ रायपट्टु।
पुणु अप्पुणु राएँ तक्खणेण तणु मंडिउ तवसिरिभूसणेण।
कम्मट्ठगंठिणिट्ठवणसारु तउ चरिवि सुदुद्धरु कामसारु।
तणु छंडिवि खंडिवि हिययगंठि सो लग्गउ सिववहुतणएँ कंठि। 10

घत्ता—गउ धाडीवाहणु सिवणिलउ कणयामरवण्णउ गुणहँ घरु।
करकंडु करंतउ रज्जु पुरि सो अच्छइ माणिणिहिययहरु ॥ २२ ॥

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाण-कप्पतरुफलसंपत्ते करकंडचंपापुरिपवेसो णाम तइउ परिच्छेउ समत्तो।

॥ संधि ॥ ३ ॥

---

६ में 'कुमरु'के स्थानमें 'णाइ'

२२ १ N मरट्ठु

वहाँ जाकर धाडीवाहनने उसी क्षण अपने पुत्रका आलिङ्गन किया, जिस प्रकार कि संग्राममें जाकर दामोदरने तेजनिधि प्रद्युम्नकुमारका आलिंगन किया था।

२२—करकण्ड चम्पामें सिंहासनारूढ़

करकण्डने अपने पितासे कहा—"आपके साथ मैंने रण किया, इसे हे देव, मेरा (अपराध) मत ग्रहण कीजिए। उस मेरे समस्त अपराध को, हे भट्टारक, क्षमा कीजिए।" इस वचनको सुनकर वह चम्पाधिप तत्क्षण हृदयमें उल्लसित हो उठा। वह उसे लेकर अन्य राजाओं-सहित नगरको गया और नाना उत्सवोंसे उसका प्रवेश कराया। करकण्डके द्वारा वह नगरी ऐसी शोभायमान हुई कि अमरपुरी भी उससे लज्जित हो गयी। लोग रत्न लेकर अनुराग-सहित राज- ५ महलमें बधाईके लिए आये। फिर दुर्द्धर राजाओंको पीसनेके लिए घरट्टके समान राजपट्ट करकण्ड को बाँधा गया, और राजाने उसी क्षण अपने शरीरको तपश्रीरूपी भूषणसे मण्डित किया। राजा अष्टकर्म रूपी ग्रन्थिका नाश करनेमें समर्थ, काम-विनाशक सुदुर्द्धर तपश्चरण करके, शरीरको छोड़कर, हृदयकी गाँठको खण्डित कर, शिवरूपी वधूके कण्ठसे जा लगे। गुणोंके घर धाडीवाहन कनक व अमरवर्ण शिवनिलयको गये, और यहाँ नगरीमें मानिनियोंके हृदयहारी करकण्ड चम्पापुरी १० में राज्य करते हुए रहने लगे।

इति मुनि कनकामर विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान कल्पतरु फल सम्पन्न करकण्ड महाराज चरित्रमें करकण्डका चम्पापुरी-प्रवेश नामक तृतीय परिच्छेद समाप्त।

संधि–४

१

Karakanda's resolve to subdue the kings of the South

ध्रुवक—करकंडएँ साहिवि महि मयल परिपुच्छिउ मइवरु विमलमइ।
भणु सम्मइ मइवर को वि णरु जो अज्जु वि दुट्ठउ ण वि णवइ॥

सो मइवरु पभणइ देवदेव तुह महियलु सयलु वि करइ सेव।
परि दविडदेसे णिव अत्थि थिट्ठ ते णमहिँ ण कासु वि हियइँ दुट्ठ।
सिरि चोडि पडि णामेण चेर णउ करहि तुहारी देव केर। 5
आयण्णिंवि तं चपाहिवेण सपेसिउ दूवउ तहो खणेण।
तेँ जाइवि ते चोडाइराय इउ भणिय णवहु करकंडपाय।
णिब्भत्थिउ दूवउ तेहिँ सो वि जिणु मेल्लिवि अण्णु ण णवहुँ को वि।
करकंडहो आइवि कहिउ तेण णउ करहिँ सेव तुह किं परेण।
त सुणिवि वयणु करकंडु राउ जइ देमि ण तहो सिरि णिययपाउ। 10
तो महियलपुत्तइ दियसुहासु महो अत्थि णिवित्ति परिग्गहासु।
इह पंइज करवि करकंडएण लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण।

घत्ता—चपाहिउ चल्लिउ तहो उवरि गय चडिवि विणिग्गउ पुरवरहो।
चउरंगइँ सेण्णइँ संजुयउ सो लीला धरइ सुरेसरहो॥ १॥

२

His march and camp at Terapur

तहो जंतहो महि हयखुरहिँ भिण्ण गयणगणि गय रय धूमवण्ण।
पसरंतहिँ तेहि दिगाणणाहँ ण मुहवडु किउ दिसिवारणाहँ।
महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरिंद कंपत पणट्ठा खे सुरिंद।
दक्खिणवहे गउ तेरापुरम्मि तहो दक्खिणदिसिहिँ महावणम्मि।
आवासिउ तहिँ बलु चाउरंगु खणे सीहपुलिंदहँ हुयउ भगु। 5
सताडिय दूसय पचवण्ण ण अमरगेह भूमिहिँ पवण्ण।
गय करिवर लेविणु जलहो मेट्ठ रासहियहिँ धाविय खर पहिट्ठ।
लोलाविय [1] धय णिवणरवरेहिँ महि णच्चइ ण उब्भियकरेहिँ।

घत्ता—आवासिउ अच्छइ [2] जाव तहिँ करकंडणराहिउ [3] पउरबलु।
पडिहारु पराइउ तहो पुरउ दूराउ णमतउ हरियमलु॥ २॥ 10

---

१. १ N पर २ S पयज

२. १ D J N गय, २ J जाम, ३ N पवर° ४ J परायउ,

१—करकण्डकी द्रविड़ देशको जीतनेकी प्रतिज्ञा

करकण्डने समस्त पृथ्वीको वशीभूत करके विमलमति मन्त्रिवरसे पूछा, "हे सन्मति मन्त्रि-वर, कहो, क्या कोई आज भी ऐसा दुष्ट मनुष्य है जो मुझे नमन न करता हो ?" तब उस मन्त्रि-वरने कहा—"हे देव देव, आपकी समस्त ही महीतल सेवा करता है। परन्तु द्रविड देशमें ऐसे ढीठ नृप है जो किसीको नमन नहीं करने। वे हृदयसे बडे दुष्ट है। श्री चोड, पाण्ड्य और चेर नामके राजा, हे देव, आपकी सेवा नहीं करते।" यह सुनकर चम्पाधिपने उनके पास उसी क्षण ५ एक दूतको प्रेषित किया। उसने जाकर उन चोड आदि राजाओंसे कहा कि आप करकण्डके चरणोंको नमन कीजिए। किन्तु उन्होंने उस दूतको बहुत डॉटा-फटकारा और कहा—"जिनेन्द्रको छोडकर हम अन्य किसीको नमन नहीं करते।" उस दूतने आकर करकण्डसे कहा—"वे आपकी सेवा नहीं करेंगे, बहुत कहनेसे क्या ?" इस वचनको सुनकर करकण्ड राजाने प्रतिज्ञा की कि 'यदि मै उन राजाओंके सिरपर अपना पॉव न दूँ, तो महीतल, पुत्र, इन्द्रियसुखों एव परिग्रहोंसे मेरी १० निवृत्ति है' (अर्थात् मै इन सबका त्याग कर दूँगा)। यह प्रतिज्ञा करके करकण्डने क्रुद्ध होकर शीघ्र प्रयाण कर दिया। चम्पाधिप उस देशपर चढाई करने चल पड़ा। वह एक हाथीपर चढकर राजधानीसे निकला। अपनी चतुरङ्गिणी सेनासे सयुक्त होकर वह सुरेश्वरकी शोभाको धारण करने लगा।

२—करकण्डका चतुरङ्गिणी सेनासहित प्रयाण

करकण्डकी यात्रासे पृथ्वी घोडोके खुरोंसे भिद गयी और धूमवर्ण रज गगनाङ्गणमें उडने लगी। उस धूलिने दिशाओमें प्रसारकर मानो दिग्गजोंके मुखोंपर पट डाल दिया। मही हिल पड़ी, बडे-बडे पर्वत चलायमान हो गये और सुरेन्द्र आकाशमें कम्पित हुए भागे। दक्षिणापथ पर चलते हुए करकण्ड तेरापुरमें पहुँचा। वहाँ नगरकी दक्षिण दिशामें महावनके बीच चतुरङ्गिणी सेना का डेरा डाला गया। क्षणमात्रमे वहॉके सिंहों और पुलिन्दोंकी भगदड मच गयी। पचरङ्गे तम्बू ५ ठोक दिये गये, मानो देवोंके विमान भूमिपर उतर आये हों। महावत हाथियोको लेकर जलाशयको गये, और गधे प्रहृष्ट होकर गधियोकी ओर दौडे। राजपुरुषोंने ध्वजाएँ फहरा दीं, मानो मही ऊँचे हाथ करके नाचने लगी हो। इस प्रकार जब करकण्ड नरेश अपनी विशाल सेनासहित वहॉ डेरा डाले बैठे थे, तब उनके सम्मुख प्रतीहार आया और दूरसे ही उसने विशुद्धभावसे नमन किया।

३

Śiva, the king of Terapur, visits Karakaṇḍa

णिउ अत्थि देव तेरापुरम्मि सिउ णामें रूढउ भूवलम्मि ।
सो तुम्हहँ पेक्खहुँ एत्थु आउ कि आवइ कि सो वलिवि जाउ ।
करकंडें वयणु सुणेवि तासु पडिहारु भणिउ तेराहिवासु ।
[1]पइसारु खणद्धें तासु देहि तुहुँ अप्पुणु जाएवि लेवि एहि । 5
पडिहारें सो णिउ आणिओ वि करकंडएँ पुणु सम्माणिओ वि ।
पुणु तेण पपुच्छिउ करिवि वाल तुह कुसलु णरेसर सयलकाल ।
तें भणिउ णरेसर कुसलु मज्झु ज सिंचिउ कम्णजलेण तुज्झु ।
तहो वयणें करकंडहो णिवासु तहो उवरि पवड्ढिउ णेहु तासु ।
अइपउरु पइण्णउ पुणु पसाउ किउ दाणइँ वयणइँ माणुराउ ।
घत्ता—पुणु पुच्छिउ सिउ करकंडएण महो भाइय अक्खु पयत्तएण 10
ज दिट्ठउ कि पि मणोहरउ अच्छरिउ वणम्मि भमतएण ॥ ३ ॥

४

Karakaṇḍa, guided by Śiva, explores the locality

त वयणु सुणिवि तेराहिवेण करकंडहो अक्खिउ पुणु सिवेण[1] ।
[2]एत्थत्थि देव पच्छिमदिसाहि अइणियडउ पव्वउ रम्मु ताहिँ ।
ताहि अत्थि लयणु णयणावहारि थम्हाण सहासहि ज पि धारि ।
तहो लयणहो उप्परि गिरिवरम्मि चूडामणि ण मउडहो सिरम्मि ।
गुरु वामिउ अच्छइ सोहमाणु केणावि ण कलियउ जासु माणु । 5
जलु पउमइँ लेविणु तहिँ पवण्णु त पुज्जइ करिवरु सेयवण्णु ।
एम अच्छइ सो करि वहुअकाल एउ कहियउ मइँ तुहुँ सामिसाल ।
आयण्णिवि त करकडु राउ गउ पव्वयसम्मुहुँ सिवसहाउ ।
घत्ता—महिमहिलहे थणु व मणोहरउ कीलाघरु देवहँ जो भरेण ।
करकंडइँ सो गिरि दिट्ठु खणे कइलासु णाइँ भरहेसरेण ॥ ४ ॥ 10

५

Discovery of an old cave-temple

करिकुभ वियारिवि जहिँ भमति मुत्ताहल चरणहिँ हरि मुअति ।
रुजति सीह कत्थइँ सहति जहिँ मयजलु मयगल णउ वहति ।
सारग णिरतरु जहिँ चरति साहामय कत्थइँ वुक्करति ।
परिभमहिँ कहिँ मि दाढाकराल हरिसम्मुह दितहो दुक्क कोल ।
थोवतरि तहिँ सो चडइ जाम करकडइँ दिट्ठउ लयणु ताम । 5
ण हरिणा अमरविमाणु दिट्ठु करकडु णराहिउ तहिँ पइट्ठु ।
सो वण्णु सलक्खणु हरियदभु जें लयणु करावित सहसखभु ।
पुणु दिट्ठउ तें जिणु वीयराउ सथुणणहिँ लग्गउ णाणुराउ ।
घत्ता—जय चउगइणासण मलहरण जय माणगिरिंदहो दलणपवि ।
महो देव णिरजण तुहुँ सरणु अण्णाणतिमिरपरिहरणरवि ॥ ५ ॥ 10

---

३ १ D पयसारु.
४ १ S] वि तेण २ S N अत्थत्थि.

३—तेरापुरके राजाकी भेंट

प्रतीहार बोला—"हे देव ! तेरापुरमें एक राजा है जो शिव नामसे भूमण्डलमे प्रसिद्ध है। वह आपके दर्शनके लिए यहाँ आया है; वह क्या आवे या लौटकर चला जाये ?" करकण्डने उसका वचन सुनकर प्रतिहारीसे कहा—"तेराधीशको क्षणार्द्धमें प्रवेश दे। तू स्वय जाकर उन्हे लेकर आ।" प्रतीहार उस राजाको ले आया और करकण्डने उसका सम्मान किया। शिष्टाचार करनेके पश्चात् फिर उसने पूछा—"हे नरेश्वर, आपकी सदाकाल कुशल तो है ?" उसने उत्तर ५ दिया—"हे नरेश्वर, मेरी कुशल ही है, जो मै आपके करुणारूपी जलसे सींचा गया।" उसके वचनसे करकण्ड राजाका उसके ऊपर स्नेह बढ गया। उन्होंने उसपर अपनी खूब प्रसन्नता दिखायी और दानसे व वचनोसे उसे सानुराग किया। फिर करकण्डने शिव राजासे पूछा—"हे मेरे भाई, प्रतीतिपूर्वक कहो तो, क्या तुमने वनमें भ्रमण करते हुए कोई मनोहर आश्चर्य देखा है ?"

४—तेराधीश-द्वारा पर्वतपर सह म्भ गुफा व पूज्य वामीका समाचार

उस वचनको सुनकर तेराधिप शिवने फिर करकण्डसे कहा—"हे देव, यहाँसे पश्चिम दिशामें अति निकट एक रम्य पर्वत है। वहाँ एक नयनाकर्षक लयण (गुफामन्दिर) है, जो सहस्रों स्तम्भोंके आधारसे बनी है। उस लयणके ऊपर पर्वतपर सिरपर मुकुटके चूडामणिके समान एक बडी सुन्दर वामी है, जिसका प्रमाण किसीने भी नहीं जाना। वहाँ जल और कमल लेकर एक श्वेतवर्ण हाथी आकर उसकी पूजा करता है। इस प्रकार वह हाथी बहुत कालसे रह रहा ५ है। हे स्वामिसार, मैंने तुम्हे यह बात कह दी।" इसे सुनकर करकण्ड राजा शिवके साथ उस पर्वतके सम्मुख गया। महीरूपी महिलाके स्तनके समान मनोहर जो देवोंका एक बडा क्रीडागृह था, उस पर्वतको करकण्डने उसी क्षण देखा, जैसे भरतेश्वरने कैलासके दर्शन किये थे।

५—भीषण वन तथा लयणका दर्शन

जहाँ हाथियोंके कुम्भस्थलोंको विदीर्ण कर सिंह घूमते है और अपने चरणोंमें-से मुक्ताफल बिखराते है। कहीं सिंह दहाडते हुए सोहते है, जिससे वहाँ हाथी मदजल नहीं झराते। जहाँ निरन्तर सारग चरते है व कहीं बन्दर बुप्-बुप् कर रहे है। कहीं विकराल दाढ़ोंवाले कोल (वराह) केहरीके सम्मुख ढोक देते हुए परिभ्रमण कर रहे है। वहाँ थोडे ऊपर चढ़नेपर करकण्डने उस लयणको देखा, जैसे देवेन्द्र देव विमान को देखे। करकण्ड नराधिपने वहाँ प्रवेश किया। धन्य है ५ वह सुलक्षण, दम्भरहित भव्यपुरुष जिसने उस सहस्र स्तम्भ लयणको बनवाया। फिर उसने वीतराग जिनेन्द्रके दर्शन किये और भक्तिसहित स्तवन करने लगा—"जय, चतुर्गतिनाशक, मलहरण, जय मानगिरीन्द्रके विदारक वज्र; हे निरञ्जन, अज्ञानरूपी तिमिरके परिहारक रवि; हे देव, तू ही मेरे लिए शरण है।"

६

An elephant is found worshipping an ant-hill

जिणेसरु वदिवि पत्थिव बे वि गिरिदहो उप्परि सिग्घ चडेवि ।
णिहालिय तेहिँ दिसाहँ मुहाइँ मणम्मि णिवाहहँ जाइँ सुहाइँ ।
णिहालिय अच्छहिँ जाव वणम्मि सुवारणु पत्तउ ताव खणम्मि ।
सरोवरे पोमइँ लेवि करिट्ठु समायउ पव्वउ णाइ समुद्दु ।
झलाझल कण्णरएण सरतु कवोलचुण्ण मएण झरतु । 5
सुपिंगललोयणु दतहि ससु चडावियचावसमुण्णयवसु ।
दुरेहकुलाइँ सुदूरे करतु दिसामुह सुडजलेण भरतु ।
करेण सरोयसयाइँ हरतु सुमोत्तियदाम सिरेण धरतु ।
घत्ता—तेँ करिणा लेविणु पकयइँ करु भरेवि जलेण तुरतएण ।
परिदक्खिण देविणु सिंचियउ तं पूजिउ वामिउ भत्तियएण ॥ ६ ॥ 10

७

Karakanda sees the lake and examines the ant-hill

गउ वामिउ पूजिवि करि सुगाउ ता गयउ सरहो करकडु राउ ।
आवतहो तहो अइदिहि जणतु खगरावइँ आवहु ण भणतु ।
जलकुभिकुभकुभइँ धरतु तण्हाउरजीवहँ सुहु करतु ।
उहंडणलिणिउण्णइ वहतु उच्छलियमीणहिँ मणु कहतु ।
डिंडीरपिंडरयणहिँ हसतु अइणिम्मलपउरगुणेहिँ जतु । 5
पच्छण्णउ वियसियपकएहिँ णच्चतउ विविहविहगएहिँ ।
गायतउ भमरावलिरवेण धावतउ पवणाहयजलेण ।
ण सुयणु सुहावउ णयणइट्ठु जलभरिउ सरोवरु तेहिँ दिट्ठु ।
घत्ता—जलु लेविणु दोहिँ वि णिववरहिँ पय धोइवि मुहुँ पक्खालियउ ।
ज पुज्जउ करिणा पकयहि त वामिउ तेहिँ णिहालियउ ॥ ७ ॥ 10

८

The ant-hill is excavated

करकडेँ चिंतिउ मणि मणोज्जु एउ वामिउ णिच्छउ वदणिज्जु ।
इह अच्छइ को वि महतु देउ परिपूजिवि करि गउ तेँ सुवेउ ।
जेँ वामिउ पुज्जइ करि पसण्णु तेँ धम्मेँ हुउ ण सेयवण्णु ।
मणि चिंतिवि इउ सो साणुराउ उववासइँ थिउ करकडराउ ।
अण्णहिँ दिणि वामिउ तं पि तेण [2]खाणाविउ करकडेँ खणेण । 5
त समथलु तेहिँ खणेण कीउ ण पावपडलु णिण्णासु णीउ ।
थोवतरु खणियउँ पुणु वि जाव मणिकिरणदित्ति णीसरिय ताव ।
धत्ता—ता मिलिय णहगणे अइवहल चउदिसिहिँ भमेविणु णिम्मलिय ।
करकडहो णावइ कित्ति वर अमराहिउ देखहुँ सचलिय ॥ ८ ॥

---

६ १] में यह व आगे के ३ चरण छूटे है

८ १ N मे इससे पूर्व हाँसिये मे जोडा गया है—'ज अच्छइ वामिए किं पि वत्थु त पेक्खउ जइ ता महु पसत्थु २ S खण्णाविउ ३ S] खणियइ

६—सरोवरमें हाथी कमल लेने आया

जिनेश्वरकी वन्दना करके और पर्वतके ऊपर शीघ्र चढकर उन दोनों राजाओंने चारों दिशाओंका अवलोकन किया जिससे उन राजाओंके मनमें सुख हुआ। जब वे वनमें देखते हुए खड़े थे, तब उसी क्षण वह सुन्दर हाथी वहाँ आया। सरोवरमें-से कमल लेनेके लिए आता हुआ वह करीन्द्र ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मानो एक पर्वत समुद्रके पास आया हो। वह कानोंसे झलझल स्वर उत्पन्न कर रहा था और कपोलोंसे मद बहा रहा था। उसके लोचन खूब लाल वर्ण थे। ५ दाँतोंसे वह प्रशसनीय था, तथा उसकी रीढ चढाये हुए चापके समान उठी हुई थी। वह भौंरोंके पुञ्जोंको दूर हटाता जाता था और सूँडके जलसे दिशामुखोंको भर रहा था। वह सूँडसे सैकड़ों कमलोंको तोड रहा था और सिरपर मोतियोंकी माला धारण किये था (यहाँ मौक्तिक दाम छन्दका प्रयोग है)। उस हाथीने कमलोंको लेकर तथा अपनी सूँडको जलसे भरकर तुरन्त आकर वामीकी प्रदक्षिणा दी, जल सींचा और पूजा की। वह हाथी ऐसा भव्य था। १०

७—सरोवर-द्वारा राजाका स्वागत

भक्तिसहित वामीकी पूजा करके हाथी चला गया। तब करकण्ड राजा उस सरोवरके पास गया। उसे आते देख वह सरोवर मानो उसे विश्वास दिलानेके लिए पक्षियोंके कोलाहल द्वारा कह रहा था— 'आइए।' वह जल हस्तियोंके कुम्भस्थलों-द्वारा कलश धारण किये था और तृष्णातुर जीवोंको सुख उत्पन्न करता था। वह उच्च-दण्ड कमलोंके द्वारा उन्नति वहन कर रहा था और उछलती मछलियों-द्वारा अपना उछलता मन प्रकट कह रहा था। फेन पिण्डरूपी दाँतोंको ५ प्रकट करता हुआ वह हँस रहा था, एव अति निर्मल व प्रचुर गुणो-सहित चल रहा था। फूले हुए कमलों-द्वारा वह अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहा था और विविध विहगोंके रूपमें नाच रहा था। भ्रमरावलीकी गुंजार-द्वारा वह गा रहा था और पवनसे प्रेरित जलके द्वारा दौड रहा था। इस प्रकार एक सुहावने व नयन-इष्ट सज्जनके समान उस जलसे भरे हुए सरोवरको उन्होंने देखा। जल लेकर दोनों राजाओंने अपने पैर धोये और मुखका प्रक्षालन किया। तत्पश्चात् उन्होंने उस १० वामीको देखा, जिसकी हाथीने कमलोंसे पूजा की थी।

८—वामीका खनन

करकण्डने मनमें विचारा—यह मनोज्ञ वामी निश्चय ही वन्दनीय है। यहाँ कोई महान् देव रहता है। इसीलिए वह हाथी इतने वेगसे आकर व पूजा करके गया है। चूँकि वह हाथी प्रसन्न होकर वामीकी पूजा करता है, इसी धर्मसे मानो वह श्वेत वर्ण हो गया है। इस प्रकार मनमें चिन्तन करके करकण्ड राजा उस दिन भक्तिसहित उपवास करके रहे। दूसरे दिन करकण्डने क्षणमात्रमें उस वामीको खनवाया। लोगोंने क्षणमात्रमें ही उसे समतल कर दिया, जैसे ५ मानो पापका पटल नाशको प्राप्त किया गया हो। जब थोडा और गहरा खोदा गया तब मणि-किरणोंकी दीप्ति निकल पडी। वह दीप्ति इतनी निर्मल और तेज थी कि चारों दिशाओंमें घूमकर आकाशमें जा मिली, मानो करकण्डकी उत्तम कीर्त्ति अमरेश्वरको देखने चली हो।

९

Discovery of a Jina image

ते रहसें तरलिय खणहि जाव जिणबिंबु विणिग्गउ तेत्थु ताव ।
मणिरयणविणिम्मिउ फणकडप्पु छत्तायमाणु तहो सहइ सप्पु ।
दुदुहि भामंडलु चमर वे वि सुह जणहिं सवणणयणाण ते वि ।
सिंहासणु बहुरयणहिं जडीउ सुरराएँ ण अप्पणु घडीउ ।
तं पयडउ किउ बाहिरे विहाइ महि भिंदिवि धम्महो पिंडु णाइँ । 5
ता अमरहिं दुंदुहि णहे हईय घणकुसुमविट्ठि गयणहो पडीय ।
अइणिम्मल दिम्मुह सयल जाय सभूया परिमलमहिय वाय ।
गुणरयणणिहाणहो पत्थिवासु सपुण्ण मणोरह सयल तासु ।

घत्ता—अणुराएँ तहो कंटइयतणु पप्फुल्लिउ तोसें मुहकमलु ।
जलु लेवि सरोवरि जिणु ण्हविउ बहुकमलहिं पुज्जिउ विगयमलु ॥९॥ 10

१०

Karakanda's hymn to the Jina

वरभत्तिभारसण्णयसिरेण पारंभिय पुणु थुइ णिवबरेण ।
जय सुरतिरीडमणिलिहियपाय जय भुवणणयरपालणसुराय ।
जय कम्मविडविछिंदणकुठार जय चउगइसायरपरमतार ।
जय पावतिमिरफेडणदिणेस जय णिज्जियमयभडणिरवसेस ।
जय रायभुवगमदमणमंत जय मयणइक्खुपीलणसुजंत । 5
जय केवलकिरणफुरंत संत जय रुंभियकम्मासवबहंत ।
जय जय सिरिवहुकण्णावतंस जय भवियणमणसररायहंस ।
जय णिच्च णिरंजण कलविहीण जय सिवगइमहिलहे वयणे लीण ।

घत्ता—जय जय देव जिणिंद पहु पइँ झायइँ अणुदिणु णियमणिण[3] ।
तवँ दंसणे णयणइ अज्जु पुणु संजायइँ णिद्धइँ महो खणिण । ॥ १० ॥ 10

११

The Jina image is carried into the cave

[1]उच्चायिउ सो जिणु णिववरेण कइलासु णाइँ लंकेसरेण[2] ।
बिहिँ करहिं धरिउ सिरउवरि भाइ गोवद्धणु हरिणा कलिउ णाइँ ।
तहि अवसरे देवहिं कुसुमविट्ठि परिमेल्लिय तहो मणे भइय तुट्ठि ।
अमरेहिं मि केहि मि धरिउ छत्तु घुसिणेण वि चच्चिउ किहिं मि गत्तु ।
परिचालिय केहिँ मि चमर तार दुदुहि अप्फालिय केहिँ फार । 5
के वि तडउ णच्चहिँ साणुराय दूराउ णमहिँ के वि जिणहो पाय ।
जिह अमरहिँ ण्हाइवि मंदराउ घरु णियउ जिणेसरु मंदराउ ।
एयाँइँ[3] विहिँ[4] तह गुणणिकेउ करकंडें णीयउ लयणु देउ ।

घत्ता—लियणे णिवेसिउ तें णिवेण परिपुज्जिवि अच्चिवि चंदणिण[5] ।
अवलोइय पढमी पुणु पडिम अणुराउ वहंतें णियमणिण[6] ॥ ११ ॥ 10

९ १ JN अप्पुणु २ SD किय

१० १ N काम २ DN माण ३ S मणेण. ४ N तउ ५ N खणेण

११ १ JDN उच्चायउ २ N लंकेसुरेण ३ S एयई ४ DN णियेण ५ S चदणेण ६ S भणेण

९—वामीसे जिन-बिम्ब निकला

जब वे आवेगसे जल्दी-जल्दी खोदने लगे, तब वहाँ एक जिनबिम्ब निकला। मणिरत्न निर्मित फणावलीयुक्त सर्प उसपर छत्रके समान शोभायमान था। दुन्दुभि, भामण्डल और दो चमर ये भी श्रवण और नयनोको सुख उत्पन्न कर रहे थे। सिंहासन बहुतसे रत्नोसे जडा हुआ था, मानो सुरेन्द्रने उसे अपने हाथो गढा हो। जब उस बिम्बको निकालकर बाहर किया, तब वह ऐसा भाया, जैसे मानो महीको भेदकर धर्मका पिण्ड ही निकल पडा हो। तब देवोने आकाशमें ५ दुन्दुभी बजायी और गगनसे घनी पुष्पवृष्टि हुई। समस्त दिशाओंके मुख अति निर्मल हो गये और सुगन्धयुक्त वायु चलने लगी। इस प्रकार उस गुणरत्नोंके निधान पार्थिवके सब मनोरथ पूरे हुए। अनुरागसे उसका शरीर रोमांचित और मुखकमल सन्तोषसे प्रफुल्लित हो गया। उसने सरोवरसे जल लेकर जिन भगवान्को स्नान कराया और मल-रहित हुए बिम्बकी बहुतसे कमलोंसे पूजा की। १०

१०—जिनेन्द्रकी स्तुति

फिर उस नृपवरने उत्तम भक्तिके भारसे सिर झुकाकर स्तुति प्रारम्भ की—जय हो भगवन् आपकी, जिनके चरण देवोंके मुकुट-मणियोंसे घर्षित होते है और जो ससार-नगरके पालन करनेवाले उत्तम राजा है, जो कर्मरूपी वृक्षको काटनेवाले कुठार है और चतुर्गतिरूप सागरके परमतारक है। जय हो आपकी, जो पापान्धकारको नाश करनेवाले दिनेश है। हे भगवन्, आपने मदरूपी घटोंको पूर्णरूपसे जीत लिया है; आप रागरूपी भुजङ्गको दमन करनेके लिए मन्त्र तथा ५ मदनरूपी इक्षुको पेरनेके लिए उत्तम यन्त्र है। आप केवलज्ञानकी किरणोंसे स्फुरायमान है तथा आपने कर्मके प्रवाहको अवरुद्ध कर डाला है। जय हो, भगवन् आपकी, जो जयश्री रूपी वधूके कर्णावतस एव भव्यजनोंके मनरूपी सरोवरके राजहस है। जय हो, नित्य निरञ्जन, इन्द्रियविजयी, जय हो आपकी, जो शिवगतिरूपी महिलाके वदनमें लीन है। जय-जय, देव जिनेन्द्र प्रभु, आपका ध्यान अपने मनमें तो मैंने प्रतिदिन किया, किन्तु आज इस क्षण आपके दर्शनोंसे मेरे नेत्र भी सन्तुष्ट हो गये। १०

११—करकण्ड जिनबिम्बको लयणमें ले आये

उस राजाने जिनबिम्बको उठाया, जैसे लकेश्वरने कैलाशको उठाया था। दोनों हाथोंसे सिरके ऊपर रखा हुआ वह बिम्ब ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मानो हरिने गोवर्द्धनको उठा लिया हो। उस अवसरपर देवोंने पुष्प-वृष्टि की, जिससे राजाके मनमें सन्तोष हुआ। किन्हीं देवोंने छत्र धारण किया और किन्हींने केशरसे गात्रका लेप किया। किन्हींने चमचमाते चमर चलाये और किन्होंने जोरसे दुन्दुभी बजायी। कोई अनुरागसे ताण्डव नृत्य करने लगे और कोई दूरसे ही ५ जिनेन्द्रके चरणोको नमन करने लगे। जिस प्रकार देव अभिषेक करके मन्दराग जिनेश्वरको मन्दरपर्वतसे घर वापस लाये थे, उसी प्रकार करकण्ड राजा उन गुणनिकेत देवको लयणमें ले गये। राजाने जिन भगवान्को लयणमें प्रतिष्ठित कर दिया और फिर उनकी पूजा करके व चन्दनसे अर्चना करके अपने मनमें अनुराग धारण करते हुए पहली प्रतिमाका अवलोकन किया।

१२

Karakanda discovers a knot on the lion-seat of the first image and an sculptor explains to him its purpose

ता तक्खणे तहो जिणे गइय दिट्ठि हरिवीढहो उप्परि दिट्ठिं गंठि ।
णं फलिहसिलहे हरिमणि विहाइ उडुरायहो लग्गउ हरिणु णाइँ ।
सा पेक्खिवि मणे चिंतेइ राउ गठीएँ हयउ जिणबिंबराउ ।
जो सयलकम्मपरिकरणकारि कोकाविउ मो तें सुत्तधारि ।
भो परममित्त अक्खहि पसत्थु तुहुँ जाणहि सयलु वि कम्मसत्थु । 5
परिपुच्छिउ वोल्लिवि अइपियाइँ जिणपडिमहे दीसइ गंठि काइँ ।
तं णिसुणिवि पभणइ पावहारि पडिमागय[२]रूवअणेयकारि ।
जं पुच्छिउ देव मणोहिराउ त अक्खमि तुम्हहँ दुहविराउ ।
घत्ता—जिणपडिम घडिय जइयहुँ णिवड जलवाहिणि सिर तइयहो खणेण ।
मइँ णिसुअउ दिट्ठु परपरएँ एह धरिय गठि तें कारणेण ॥ १२ ॥ 10

१३

Karakanda desires to see the water-spring blocked by the knot

ता भणइ णरेसरु परममित्त किम दीसइ जलवाहिणि विचित्त ।
त सुणिवि भणइ भो ललियदेह णीसरइ कह व जइ देव एह ।
वहुरोय करइ जणवएँ पसत्थ जे सलिलु पियहिँ ते चिरु असत्थ ।
वहुदुक्खपरंपरभरिएँ आएँ इउ मण्णेवि कि पयडाइआएँ ।
ता राएँ भणियउ त सुणेवि जलु धरमि मित्त लयणु वि चिणेवि । 5
कोऊहलु एउ दक्खालि तो वि पुणु सुत्तधारि पभणइ सुणेवि ।
जइ एह गठि फेडेहुँ देव णीसरहुँ तुरिउ जलभरिए[१] केव ।
तं वयणु सुणंतें[२] णिववरेण दद्दुरउ कराविउ तक्खणेण ।
घत्ता—त लयणु चिणिवि णिउणउ करिवि सणरालहिं वहुविहपत्थरहिँ ।
सो राणउ सिलवइ दो वि जण जिणपडिमहे सम्मुहु सचरहिँ ॥ १३ ॥ 10

१४

The knot is scraped and water gushes forth

जा राएँ [१]असुहाइँ गणिया सिलवइणा टंकिएँ सा हणिया ।
गुरुघायवडणेँ णिग्गय फुलिंग ण कोहवसइँ अहिजलणलिंग ।
[२]तहे गठिहे वयणहो वहलफार ता णिग्गय तक्खणि सलिलधार ।
पढमउ भुंभुक्कइ णिग्गमेइ ण मेइणि भीएँ उव्वमेइ ।
णिग्गती वाहिरि सा विहाइ महि भिंदिवि फणिवइघरिणि णाइँ । 5
परिसहइ सा वि भूमिहिँ मिलति गंगाणइ ण खलखल खलति
पसरंतिएँ ताएँ खणेण भव्वु त भरियउ लयणु जलेण सव्वु ।
णं अमियकुंडु बहुरसजलेण ण धम्मसारु थिउ जलछलेण

---

१२ १ DN दीह २ DN °गइ°

१३ १ S G जलभरिय, DN जलभरिउ २ प्रतिपु 'तुरते'

१४, १ J असुहा २ DN तहे वयणहो बहलइ देइ फार

१२—सिंहासनपर गाँठ दिखायी दी

तब उस समय राजाकी दृष्टि जिनप्रतिमापर गयी और उन्हे सिंहासनके ऊपर एक गॉठ दिखायी दी, जैसे मानो स्फटिक शिलापर हरा मणि चमक रहा हो, अथवा जैसे चन्द्रमापर हरिण लगा हो। उस गॉठको देखकर राजाने सोचा कि इस गॉठसे जिनबिम्बकी शोभा नष्ट होती है। उन्होंने एक सूत्रधारको बुलवाया, जो सब प्रकारके निर्माण कार्यमे कुशल था। उन्होने उससे अति प्रिय वचन बोलकर पूछा—"हे परममित्र! तुम समस्त उत्तम कर्मशास्त्र (वास्तुकला) को भले प्रकार जानते हो, अतएव कहो तो कि जिनप्रतिमा (के सिंहासन) पर यह गॉठ क्यो दिखायी देती है?" यह सुनकर वह निष्पाप सूत्रधार, जिसने अनेक प्रतिमागत रूपोका निर्माण किया था, बोला—"हे देव, आपने जो मनोहर बात पूछी, उसे मै बताता हूँ, जिससे आपका दु:ख दूर हो। हे नृपति, जब यह जिनप्रतिमा गढी गयी थी, तभी यहाँ एक जलवाहिनी निकल पडी थी। उसी कारणसे (जलवाहिनीको रोकनेके लिए) यह गॉठ धर दी गयी है," ऐसा मैने परम्परासे देखा-सुना है।

१३—राजाका जलवाहिनी-दर्शनके लिए कुतूहल

तब नरेश्वर बोला—"हे परममित्र, वह विचित्र जलवाहिनी मुझे कैसे दिखायी दे?" यह सुनकर सूत्रधार बोला—"हे ललित-देह देव, यदि किसी प्रकार वह जलवाहिनी निकल पडी, तो वह जनपदमें बहुतसे भीषण रोग उत्पन्न करेगी, जो उसका जल पीयेंगे वे चिरकालके लिए अस्वस्थ हो जावेंगे। यह समझकर यह जो बहुत दु:खोंकी परम्परासे भरी है उसे प्रकट करानेसे क्या लाभ?" यह सुनकर राजाने कहा—"हे मित्र, मै जलको रुकवा दूँगा और लयणको भी चिनवा दूँगा, किन्तु यह कौतूहल तो तू मुझे दिखला ही दे।" यह सुनकर सूत्रधार पुनः बोला—"हे देव, यदि मै इस गॉठको फोड दूँ तो जल भर जानेपर मै तुरन्त निकलूँगा कैसे?" इस वचनको सुनकर राजाने उसी क्षण एक दर्दुर (टीला) बनवाया। फिर उस लयणको टेढे-मेढे बहुत प्रकारके पत्थरों से निपुणतापूर्वक चिनवा कर वह राजा और शिलपति ये दोनों जन जिनप्रतिमाके सम्मुख गये।

१४—जलवाहिनी निकल पड़ी

जिस गॉठको राजाने अशोभनीय गिना था, उसे शिलपति (शिल्पी) ने टॉकीसे ठोका। भारी चोटें पडनेसे चिनगारियॉ निकलने लगीं, मानो शेषनागके क्रोधवश जल उठनेके चिह्न हो। फिर उस गॉठके मुखसे शीघ्र ही एक बडी भारी जलकी धारा निकल पडी। पहले झुक-झुक करती हुई निकली, मानो मेदिनी भयसे वमन करने लगी हो। बाहर निकलती हुई वह जलधारा ऐसी प्रतीत हुई जैसे मानो पृथ्वीको भेद कर नागेन्द्रकी गृहिणी निकल पडी हो। भूमिमें मिलकर वह ऐसी शोभायमान हुई, जैसे मानो गगा नदी खल-खला रही हो। उसने प्रसार करते हुए एक क्षणमें उस समस्त लयणको जलसे भर दिया, जैसे मानो वह बहुत रसोंके जलसे भरा अमृतकुण्ड हो; अथवा जैसे जलके बहानेसे धर्मसार भरा हो, अथवा जैसे मानो उस गिरिने अपना मन प्रकट

घत्ता—अह पयडिउ गिरिणा णिययमणु हुउँ एत्थउ मज्जणु हिययहरु ।
ण तुट्टें तासु णराहिवहो सखेवें दिण्णउ अमियधरु ॥ १४ ॥　　10

१५

Karakanṇḍ s repentance

तं पेक्खिवि ते मणे भयभरीय　　तम्हाउ दुहेण विणीसरीय ।
दहरहो उवरि सो गयउ राउ　　चिंताविवण्णु थिउ महराउ ।
ण कुलिसणिहाएँ महिहरिंदु　　ण भग्गए वले थिउ सुरवरिंदु ।
ण मयगलु केसरिणहविभिण्णु　　थिउ णरवइ तहिं दुक्खेण खिण्णु ।
पुणु कपइ डोलइ सलवलेइ　　अणवरउ दुहेण सुकर मलेइ ।　　5
सिरकमलु धुणइ दीहरु कणंइ　　घग्घरसरेण पुणु पुणु भणेइ ।
हा कि किउ मइँ दुट्टें खलेण　　हा दुरिउ लहमि इह फलेण ।
हा कम्में केण गलत्थियउ　　करु वयणे णिवेसिवि णिउ थियउ ।
घत्ता—जो अमरणिकायहिं वंदियउ पुज्जमहिम थम्महँ णिलउ ।
सो हा हा पावें देउ मइँ कहिं आणिवि मुक्कउ जगतिलउ ॥ १५ ॥　　10

१६

A Sura appears and consoles the king

णिवो सोयभिण्णो　　थिओ जा विसण्णो ।
सुरो को वि धण्णो　　णहाओ पवण्णो ।
गुणाण णिवासो　　दुहाण विणासो ।
विराय हणतो　　सराय जणतो ।
तिरीडेण जुत्तो　　जिणे दिण्णचित्तो ।　　5
महादित्तिवंतो　　णहेण भमतो ।
सुरूव धरतो　　गिरिंद सरतो ।
धराएविसारो　　भुजगो कुमारो ।
णएण णमतो　　विसुद्ध चवतो ।
सुसंपुण्णगत्तो　　तहिं ताव पत्तो ।　　10
णिवेणावि दिट्ठो　　मणेण पहिट्ठो
णिवाणंदयारी　　जणाणंदयारी ।
घत्ता—सो भणइ णराहिव दुहु मुअहि मा सोयहिं छंडहि एहु गहु ।
ज चिंतिउ णियमणें किं पि मइँ पइँ कीयउ तं पुणु करिवि बहु ॥ १६ ॥

१७

The Sura congratulates the king for what he had done

भो णरवइ हउँ चिरु वसउँ एत्थु　　जलवाहिणि इह धरणहिं समत्थु ।
जइ रूसमि पाडमि गहगणो वि　　धरणीयले तोडमि फणिफणो वि ।
मुसुमूरमि भूधर विप्फुरत　　पडिखलमि देव सगरे सरत ।

३] अमियतरु
१५ १ DN णरवरिंदु.

किया हो कि मै ऐसा हृदयहारी सज्जन हूँ; अथवा जैसे उसने सन्तुष्ट होकर राजाको संक्षेपमें अमृतका घर प्रदान किया हो। १०

१५—राजाका पश्चात्ताप

उसे देखकर वे राजा और सूत्रधार दोनो मनमें भयभीत हुए और दु:खपूर्वक वहाँसे निकले। राजा दर्दुरके ऊपर चढ गया और चिन्तासे फीका मुख और हतोत्साह हुआ ठहरा। जैसे वज्रके प्रहारसे महीधरेन्द्र, जैसे सैन्य भग्न हो जानेसे सुरेन्द्र, अथवा जैसे केशरीके नखोंसे विदीर्ण हुआ हाथी; वैसे ही वह नरपति वहाँ दु:खसे खिन्न हुआ ठहरा। वह काँपता, डोलता व सलबलाता था और लगातार दु:खसे अपने हाथ मलता था। सिरकमल धुनता, दीर्घ ध्वनि करता ५ और गद्‌गद स्वरसे पुन:-पुन: कहता—हाय, आज मुझ दुष्ट खलने यह क्या किया? हाय, इसके फलसे मुझे पाप लगेगा। हाय, मै किस कर्मसे प्रेरित हो गया। राजा हाथपर मुँह रखकर बैठ रहा और कहने लगा—"जो देवसमूहों-द्वारा वंदित, पूज्य-महिम व धर्मका निलय था, उस जगतिलक देवको मैने कहाँ लाकर छोड़ा?"

१६—देवका आगमन व राजाको आश्वासन

इस प्रकार शोकसे विह्वल, विषादयुक्त हुआ राजा जब वहाँ बैठा था, तभी कोई एक पुण्यवान् देव आकाशसे वहाँ आ उतरा। वह गुणोंका निवास और दु:खोंका विनाश था, एवं विरागका हन्ता और सरागका जनक। किरीटसे युक्त, जिनेन्द्रमें दत्त-चित्त, महा दीप्तिवान्, नभमे भ्रमणशील, सुरूपधारी, गिरीन्द्रका अनुसरण करता हुआ, धरादेवीका सार, भुजङ्गकुमार, झुककर नमनशील और विशुद्ध वाक्‌शील तथा सम्पूर्ण रूपसे सुन्दर गात्र वह देव वहाँ आकर पहुँचा। ५ राजाने उसे देखा और मनमें प्रसन्न हुआ। वह देव नृपका आनन्दकारी और जनोका भी आनन्दकारी था। वह बोला—"हे नराधिप, दु:खका त्याग कर। किन्तु शोकवश अपने इस आग्रहको मत छोड। मैंने अपने मनमें जो कुछ सोचा था, उसे तूने किया और वही आगे करेगा भी बहुत।"

१७—देवका आत्म-परिचय

हे नरपति! मै यहाँ चिरकालसे रहता हूँ और इस जलवाहिनीको रोकनेमें समर्थ हूँ। यदि मै रुष्ट हो जाऊँ तो ग्रहोंके समूहको भी नीचे गिरा दूँ, धरणीतलमें शेषनागके फणको भी तोड डालूँ, विस्फुरायमान भूधरोंको चूर-चूर कर दूँ, व संग्राममें बढते हुए देवोको भी प्रति-

संचरइ ण महो भीएँ सुरो वि कि अवरु [1]विरुद्धउ पुणु णरो वि ।
[2]पर अच्छिउ पडिमहे रक्खवालु भारियउ ह्वेसइ दुसमु कालु । 5
चिरकालेँ कलियउ सरलचित्त पेच्छतहँ तुहु [3]आयउँ सि मित्त ।
मइँ रक्खिय एत्तिउ कालु भद्द थिय णिक्खय सद्धिमहाम अद्द ।
लइ सुदर [4] सुदरु कियउ एउ जललयणि णिवेसिउ परमदेउ ।

घत्ता—जिणु आणवि धरियउ रयणमउ कणयामरलयणे समुज्जलए ।
पइँ कीयउ णिव हउँ मोक्कलउ सइँ हिंडमि लीलएँ महिवलए ॥ १७ ॥ 10

इय करकडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयंसे पचकल्लाणविहाण-कप्पतरुफलसपत्ते करकडजिणपडिमादसणो णाम चउत्थो परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ ४ ॥

१७ १ N वि कुद्धउ २ N अर अत्थिउ ३ J आयओ सि, S आउसि ४ S J सुदरु

संधि—५

१

Who built the ancient cave ?

ध्रुवक—करकंडें पुच्छिउ सो अमरु भणु केण कराविउ इहु लयणु।
वररयण विणिम्मिय कें पडिम रंजियउ जाएँ महो तणउ मणु॥

त सुणेवि वाउवेउ ता फणीकुमारु एउ
पुच्छिय पि ज णिवेण त कहेइ तक्खणेण।
एत्थु जंबुदीवयम्मि भारहम्मि खेत्तयम्मि। 5
तत्थ अत्थि सोहमाणु विजयड्ढु अप्पमाणु।
खेयरेहिं रम्ममाणु कुंजरेहिं गज्जमाणु।
तासु तुंग बे वि अग्ग सायरस्स जाइ लग्ग।
चक्कलत्तु जोयणाइं पंचवीसदूणियाइं।
तुंगएण पंचवीस जोयणाइं अत्थि तस्स। 10

घत्ता—जोयणदसहिं मि उप्परिण अत्थि सेणि दाहिणिय वरं।
विज्जाणाहहिं परियरिय अहिलसहिं जा वि देक्खिवि सुर॥ १॥

२

Nila and Mahānila came from Vijayārdha, settled at Terapur and became devotees of Jina

तहिं अत्थि णयरु खेयरवमालु णामें रहणेउरु चक्कवालु।
तहिं खेयर भायर अत्थि वे वि णामेण णीलमहणील ते वि।
ते अच्छहिं रज्जु करत जाव पडिपेल्लिय दोण्णि वि अरिहिं ताव।
उद्दालिउ ताहँ वि विज्जयाउ णिद्धाडिवि घल्लिय पट्टणाउ।
सिरिपासजिणिंदहो तणइं काले सुरखेयरकिण्णररववमाले। 5
अइदुम्मण दुक्खु वहंति भाय महि लंघिवि तेराणयरु आय।
तहिं थाइवि कीयउ रज्जु भव्वु उवसाहिउ महियलु तेहिं सव्वु।
कह पासजिणिंदहो दुरियणासि सुय एक्कहिं दिणि मुणिवरहो पासि।

घत्ता—सा सुणिवि मणोहर दुहमहिय परिओसें ते कंटइयतणु।
थिय णिच्चल धम्में दयसहिय जिणु झायहिं भत्तिए एयमण॥ २॥ 10

---

१ १ N हर

२ १ J N उद्दमण

सन्धि—५

१—विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणी

करकण्डने उस देवसे पूछा—"कहिए, इस लयणको किसने बनवाया है, तथा जिस प्रतिमाने मेरे मनको इतना अनुरक्त किया है उस उत्तम रत्नमयी प्रतिमाको किसने निर्मित कराया ?" यह सुनकर वायुवेग नामके नागकुमार देवने जो कुछ राजाने पूछा वह तत्क्षण कहा—"इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें शोभायमान व अप्रमाण विजयार्द्ध पर्वत है। वहाँ खेचर रमण करते है, एवं कुञ्जरोकी गर्जना सुनायी देती है। उसके दो ऊँचे अग्र (पार्श्व) भाग है जो समुद्रसे जाकर लगे है। उस पर्वतकी परिधि पचीसके दुगुने (अर्थात् पचास) योजन है, और उसकी ऊँचाई पचीस योजन है। उसकी दस योजनकी ऊँचाईपर वह उत्तम दक्षिण श्रेणी है जो विद्याधरोंसे सेवित है, एव जिसे देखकर देव भी उसकी अभिलाषा करने लगते है।" ५

२—नील और महानील विद्याधरोंका तेरानगरमें आगमन

वहाँ खेचरोंसे भरा हुआ रथनूपुरचक्रवाल नामका नगर है। वहाँ नील और महानील नामके दो विद्याधर भ्राता रहते थे। जब वे वहाँ राज्य करते हुए रह रहे थे, तब उन दोनोंपर वैरियोंने दबाव डाला। उन्होंने दोनोंकी विद्याओंको उडा दिया और उन्हें पट्टणसे बाहर निकाल फेंका। यह श्रीपार्श्व जिनेन्द्रके कालकी बात है जब सुरों, खेचरों व किन्नरोंके कोलाहलकी खूब धूम थी। वे दोनों भाई बडे उदास, दु खधारण करते हुए, पृथ्वीको लाँघकर तेरानगरमें आये। ५ वहाँ रहकर उन्होंने भव्य राज्य किया और समस्त पृथ्वीतलको अपने वशीभूत किया। एक दिन उन्होंने मुनिवरके पास पार्श्व जिनेन्द्रकी पापनाशिनी कथा सुनी। उस मनोहर, दुःखनाशक कथाको सुनकर वे परितोषसे रोमांचित हो उठे, तथा निश्चल होकर धर्म व दयासहित भक्तिपूर्वक एकाग्र मनसे जिनेन्द्रका ध्यान करने लगे।

संधि–५

१

Who built the ancient cave ?

ध्रुवक—करकडें पुच्छिउ सो अमरु भणु केण कराविउ इहु लयणु ।
वररयण विणिम्मिय कें पडिम रंजियइ जाएँ महो तणउ मणु ॥

त सुणेवि थाउवेउ ता फणीकुमारु एउ
पुन्छियं पि ज णिवेण त कहेइ तक्खणेण ।
एत्थु जबुदीवयम्मि भारहम्मि खेत्तयम्मि । 5
तत्थ अत्थि सोहमाणु विज्जयड्ढु अप्पमाणु ।
खेयरेहिं रम्ममाणु कुजरेहिं गज्जमाणु ।
तासु तुग बे वि अग्ग सायरस्स जाइ लग्ग ।
चक्कलत्तु जोयणाइँ पंचवीसदूणियाइँ ।
तुंगएण पंचवीस जोयणाइँ अत्थि तस्स । 10

घत्ता—जोयणदसहिं मि उपरिण अत्थि सेणि दाहिणिय वरं ।
विज्जाणाहहिं परियरिय अहिलम्महिं जा वि देक्खिवि सुर ॥ १ ॥

२

Nila and Mahanila came from Vijayardha, settled at Terapur and became devotees of Jina

तहिं अत्थि णयरु खेयरवमालु णामें रहणेउरु चक्कवालु ।
तहिं खेयर भायर अत्थि वे वि णामेण णीलमहणील ते वि ।
ते अच्छहिं रज्जु करंत जाव पडिपेल्लिय दोण्णि वि अरिहिं ताव ।
उद्दालिउ ताहँ वि विज्जयाउ णिद्धाडिवि घल्लिय पट्टणाउ ।
सिरिपासजिणिंदहो तणइँ काले सुरखेयरकिण्णररववमाले । 5
अइदुम्मण दुक्खु वहंति भाय महि लंघिवि तेराणयरु आय ।
तहिं थाइवि कीयउ रज्जु भव्वु उवसाहिउ महियलु तेहिं सव्वु ।
कइ पासजिणिंदहो दुरियणासि सुय एक्कहिं दिणि मुणिवरहो पासि ।

घत्ता—सा सुणिवि मणोहर दुहमहिय परिओसें ते कटइयतणु ।
थिय णिच्चल धम्में दयसहिय जिणु झायहिं भत्तिए पयमण ॥ २ ॥ 10

---

१ १ N हर
२ १] N उद्दमण

सन्धि—५

१—विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणी

करकण्डने उस देवसे पूछा—"कहिए, इस लयणको किसने बनवाया है, तथा जिस प्रतिमाने मेरे मनको इतना अनुरक्त किया है उस उत्तम रत्नमयी प्रतिमाको किसने निर्मित कराया ?" यह सुनकर वायुवेग नामके नागकुमार देवने जो कुछ राजाने पूछा वह तत्क्षण कहा—"इस जूम्बद्वीपके भरतक्षेत्रमें शोभायमान व अप्रमाण विजयार्द्ध पर्वत है। वहाँ खेचर रमण करते है, एवं कुञ्जरोंकी गर्जना सुनायी देती है। उसके दो ऊँचे अग्र (पार्श्व) भाग है जो समुद्रसे जाकर लगे है। उस पर्वतकी परिधि पचीसके दुगुने (अर्थात् पचास) योजन है, और उसकी ऊँचाई पचीस योजन है। उसकी दस योजनकी ऊँचाईपर वह उत्तम दक्षिण श्रेणी है जो विद्याधरोंसे सेवित है, एव जिसे देखकर देव भी उसकी अभिलाषा करने लगते है।" ५

२—नील और महानील विद्याधरोंका तेरानगरमें आगमन

वहाँ खेचरोंसे भरा हुआ रथनूपुरचक्रवाल नामका नगर है। वहाँ नील और महानील नामके दो विद्याधर भ्राता रहते थे। जब वे वहाँ राज्य करते हुए रह रहे थे, तब उन दोनोंपर वैरियोंने दबाव डाला। उन्होंने दोनोंकी विद्याओंको उडा दिया और उन्हें पट्ठणसे बाहर निकाल फेंका। यह श्रीपार्श्व जिनेन्द्रके कालकी बात है जब सुरों, खेचरों व किन्नरोंके कोलाहलकी खूब घूम थी। वे दोनों भाई बडे उदास, दुःखधारण करते हुए, पृथ्वीको लाँघकर तेरानगरमें आये। वहाँ रहकर उन्होंने भव्य राज्य किया और समस्त पृथ्वीतलको अपने वशीभूत किया। एक दिन उन्होंने मुनिवरके पास पार्श्व जिनेन्द्रकी पापनाशिनी कथा सुनी। उस मनोहर, दुःखनाशक कथाको सुनकर वे परितोषसे रोमाचित हो उठे, तथा निश्चल होकर धर्म व दयासहित भक्तिपूर्वक एकाग्र मनसे जिनेन्द्रका ध्यान करने लगे। ५

३

They built the beautiful cave.

अणुराएँ तेहिँ मि भायरेहिँ पुणु लयणु कराविउ खेयरेहिँ ।
थभाण सहासहिँ णिम्मवीउ अब्भतरु सुंदरु कारवीउ ।
मणिरयणहिँ मणिणिम्मविययाहँ किउ ठाउ तेहि जिणपडिमयाहँ ।
अणवरउ ण्हाणपूया करत थिय बहुयकाल जिणु अणुसरत ।
तहिँ वड्ढिय अणुदिणु मणहरीय णाणाविह महिमा खेयरीय । 5
इहु पव्वउ वेढ्ढिउ खेयरेहि ण मेरु महागिरि सुरवरेहिँ ।
सा सोहा पेक्खिवि सुरगणेस ठिय विंभियमण तहिँ णिरवसेस ।
तहिँ अवसरे भो भो सरलचित्त तावाइय णीलहो परममित्त ।
घत्ता—वेयड्ढहो तहो उत्तरदिसिहिँ णयरु अत्थि गयणयलु पिउ ।
सुरकिण्णरखेयरवल्लहउ णं अमरणयरु आवेवि थिउ ॥ ३ ॥ 10

४

Amitavega and Suvega find a Jina temple on Pūdi mountain on their way to Lankā

तहिँ खगवइ अच्छहिँ वे वि भाय अण्णोण्णणिविडमवद्धराय ।
ससिकतदिवायरपउरधाम ते अमियवेयसुव्वेयणाम ।
सुविसुद्धसील संगरे अहग *सम्मत्तरयणपरिभूसियग ।*
ते पव्वदिवहिँ वदण करत सचल्लिय एक्कहिँ दिणे महत ।
दक्खिणदिसि लकहिँ जतएहिँ मलयम्मि विसएँ ता दिट्ठु तेहिँ । 5
सिरिपूदी णामें गिरिवरिंदु जहिँ कीलणत्थु आवइ सुरिंदु ।
तहो उवरि खणद्धें[2] ऊवडीय ण सग्गहो सुरवइ परिवडीय ।
घत्ता—ते पेक्खिवि छुहपंकयधवलु[3] चउवीसजिणालउ गयगयणु ।
त पेक्खिवि हरिसहिँ तहि जि गय विणिवारिउ दूरहो जेहि मयणु ॥४॥

५

The temple was built by a descendant of Ravāna.

सुहभावेँ लंकाणाहएण रावणहो वसे उप्पण्णएण
सूरप्पहणामपसिद्धएण सिरिसेणाघरिणिहिँ कतएण ।
एक्कहिँ दिणि रमणहिँ णिग्गएण पुणु पूदीमदरु पत्तएण ।
मलयम्मि विसएँ[1] परिजतएण अइरमणभूमि देक्खंतएण ।
कइलासे जेम भरहेसरेण चउवीस पडिम भत्तीभरेण । 5
तहँ तेण कराविउ सुहयराहँ चउवीसजिणालउ जिणवराहँ ।
मणिरयणविणिम्मियणिम्मलाहँ झायतहँ मणे फेडियमलाहँ ।
जो सयलकालु वदिउ सुरेहिँ परिपुज्जिउ झायउ आयरेहिँ ।
घत्ता—देक्खतहँ णयणहँ सुहु जणहिँ झायतहँ फेडहि दुरियमलु ।
ससारणिहोडणु खणे करहिँ ज चिंतिउ त पावहिँ सयलु ॥ ५ ॥ 10

---

४ १ N में इससे पूर्व हासियेमें जोडा गया है–कियअक्कियपडिमउ अणुसरत । णयराउ तो वि जिणगुण वहत । २ D ज चडीय, J N खणद्ध उवरोय ३ D पकइ

५ १ N में इससे पूर्व हासियेमें जोडा गया है—त रम्मि विसए परिजतएण

३—विद्याधर भ्राताओं-द्वारा जैनधर्म ग्रहण

फिर उन खेचर भ्राताओंने अनुरागसे यह लयण बनवाया। उसका निर्माण सहस्रों स्तम्भों-सहित किया गया और उसका भीतरी भाग सुन्दर कराया गया। उन्होंने मणिनिर्मित जिन-प्रतिमाओंके लिए भी यह स्थान मणि-रत्नोंसे बनवाया। निरन्तर स्नान-पूजा करते व जिनेन्द्रका अनुसरण करते हुए वे खेचर भ्राता बहुत काल तक रहे। यहाँ दिनोंदिन खेचरोंकी मनोहर व नानाविध महिमा बढ़ी। यह पर्वत खेचरोंसे वेष्टित हो गया, जैसे मेरु महागिरि सुरवरोंसे। उस ५ शोभाको देखकर समस्त सुरगणेन्द्र यहाँ विस्मित मन होकर रह जाते थे। उस अवसरपर, हे सरलचित्त! नीलके परम मित्र आये। उस विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर दिशामें गगनतल नामका प्रिय नगर है, जो सुरों, किन्नरों व खेचरोंका वल्लभ है, जैसे मानो देवनगर ही आकर ठहर गया हो।

४—अमितवेग और सुवेग विद्याधरोंका सिरिपूदीपर्वतपर चतुर्विंशति जिनालयका दर्शन

उस गगनतल नामक नगरमें दो खगपति भ्राता रहते थे। उनका परस्पर घनिष्ठ प्रेम था। चन्द्रके समान कमनीय तथा दिवाकरके समान प्रवर तेजस्वी उन भाइयोंके नाम थे अमितवेग और सुवेग। वे सुविशुद्ध शील, समरमें अभग तथा सम्यक्त्वरूपी रत्नसे परिभूषिताग थे। वे महान् खेचर पर्वके दिनोंमें एक दिन वन्दना करनेके लिए चल पड़े। दक्षिण दिशामें लंकाको जाते हुए मलय प्रदेशमें उन्होंने उस सिरीपूदी नामके गिरिवरेन्द्रको देखा, जहाँ सुरेन्द्र भी क्रीड़ार्थ ५ आता था। क्षणार्द्धमें वे उस पर्वतके ऊपर उतर पड़े, मानो स्वर्गसे सुरपति उतरे हों। वहाँ उन्होंने सुधापकसे धवल (चूनेसे पुता हुआ स्वच्छ) गगनचुम्बी चतुर्विंशति जिनालय देखा। उसे देख हर्षसे वे वहाँ (जिनबिम्बोंके समीप) गये, जिन्होंने दूरसे ही मदनका निवारण किया था।

५—रावण-वंशी राजा सूरप्रभ-द्वारा उस जैनमन्दिरका निर्माण

रावणके वशमें एक सूरप्रभ नामसे प्रसिद्ध लंकाका राजा हुआ। उसकी प्रिय गृहिणीका नाम श्रीसेना था। एक दिन वह रमण करनेके लिए निकल कर मलय प्रदेशमें जाते हुए व अति रमणीक भूमि देखते हुए पूदीपर्वतपर आ पहुँचा। और जिस प्रकार भरतेश्वरने भक्तिभावसे कैलासपर चौबीस प्रतिमाएँ करायी थीं, उसी प्रकार उस लकानाथने शुभ भावसे पूदी मन्दरपर जिनवरोंका वह चतुर्विंशति जिनालय निर्माण कराया था। वे जिनप्रतिमाएँ मणिरत्नोंसे विनिर्मित, ५ निर्मल तथा ध्यान करनेवालोंके मनमें मलोंका नाश करनेवाली थीं। उस जिनालयकी देव सदाकाल वन्दना व आदरसे पूजा व ध्यान करने लगे। वे जिनबिम्ब दर्शन करनेवालोंके नेत्रोंको सुख उत्पन्न करते, ध्यान करनेवालोंके पापरूपी मलका नाश करते, एव एक क्षणमें (जन्ममरणरूप) ससारका नाश करते थे। उनके दर्शकगण जो चिन्तन करते वह सकल वस्तु पा जाते थे।

६

Hymn to the Jina

जिणेसरबिंबइँ दिट्ठइँ तेहि णिवारिउ मिच्छमहातमु जेहि ।
सरीरइँ वायइ सुद्धमणेहि जिणिंदु अणिंदु सुदेउ थुणेहिँ¹ ।
ण अत्थि जयत्तए तेत्तियं वाणि सुथुव्वइ जेत्तिएँ केवलणाणि ।
तिलोयसरूवहो लद्धपमाण णमो जयणाह अमेय अमाण ।
णमो मणमारमहापहु देव णमो भयवंत अरूव अलेव । 5
णमो गयराय मयारिविणास णमो णरदेव सुहाण गयास ।
णमो कलहीण सिवम्मि णिलीण णमो जियमार वियारविलीण ।
णमो हयकम्म सुझाण खणेण णमो तुह पाय णमामि मणेण ।
घत्ता—जय जिण केवलणाणरविमिच्छत्ततिमिरणिण्णासयर ।
ते वंदिवि पूजिवि सथुणिवि एक्केक्क णिहालहिँ पुणु खयर ॥ ६ ॥ 10

७

They brought the image to Terapur

ते पडिमउ देक्खिवि सुंदराउ अणवरउ जणिउ मणे साणुराउ ।
पुणु भणहिँ ते वि विजयड्ढयम्मि सुरकीलाथाणहो उवगयम्मि ।
पडिछंदेँ आयहँ केरएण जिणबिंब करावहुँ तहिँ रएण ।
इउ भणिवि अइभत्तीभरेहिँ सगाहिय पडिम वेहिँमि करेहिँ ।
जिणपासहो बहुरयणहिँ कलीय उच्चाएवि सा ते सचेलीय¹ । 5
गयणयलि सुणिम्मल विप्फुरेइ ण चडलेह विवरीसरेइ ।
णं विज्जु² लवंती अइविहाइ गय उत्तरदिसि जमु मुएवि णाइँ ।
जिणजणियराय परिणिविडगत्त ते³ वे वि सहोयर एत्थु पत्त ।
घत्ता—परिमेल्लिवि उप्परि गिरिवरहो रयणेहिँ विणिम्मिय सा पडिम ।
गय लयणहो सम्मुहुँ गुणहँ घर अवहरिय जेण भवभयपडिम ॥ ७ ॥ 10

८

But they could not carry it further

तहिँ बदणहत्ति करेवि वे वि णियपडिमहि सम्मुहँ गय वलेवि ।
तहिँ जाइवि सा पुणु लेहिँ जाम णियथाणहो ण चलइ पडिम ताम ।
णं थंभिय केण वि खेयरेण ण रम्मु णिएविणु थिय भरेण ।
सा णिच्चल पेक्खिवि णियमणम्मि सपीडिय दुक्खेँ तक्खणम्मि ।
परलोयकज्जे परमुद्धएहि¹ हा किं किउ अम्हहिँ दुट्ठएहिँ । 5
जं थाणहो चालिउ जिणहो लिंगु त होइ णरयपडिवडणलिंगु ।
विहुँ थाणहुँ एक्कु ण हुयउ थाणु परिवड्ढिउ केवलु पउरु णाणु² ।
मंजूस करेवि ता भयगएहिँ णिक्खणिवि मुक्क भूमीएँ तेहिँ ।
घत्ता—सा झपिवि ते परिझीणतण गय तुरियउ सहसकूडभवणु ।
तं वंदिवि झाणपरिट्ठियउ मुणि जसहरु दिट्ठउ जित्तमणु ॥ ८ ॥ 10

---

६ १ N थुणेहिं
७. १ D सचलीय २ N विज्ज ३ N तो
८ १ N परमुद्धिएहिं. २ N भाणु

६—विद्याधरों-द्वारा जिनेन्द्रकी स्तुति

(उन अमितवेग और सुवेग नामक खेचर भाइयोंने उसी लकानाथ-द्वारा निर्मापित चतुर्विंशति जिनालयमें) उन जिनेश्वरके बिम्बोंको देखा, जिन्होने मिथ्यात्वरूपी महातमका निवारण किया था। वे शरीरसे, वचनसे तथा शुद्ध मनसे उन अनिंद्य सुदेव जिनेन्द्रकी स्तुति करने लगे। जगत्-त्रयमें उतनी वाणी नहीं है, जितनीसे केवलज्ञानीकी भले प्रकार स्तुति की जा सके। त्रिलोकके स्वरूपका प्रमाण जाननेवाले किन्तु स्वयं अमेय और अमान, हे जगन्नाथ, आपको ५ हमारा नमन है। हे मन्मथको जीतनेवाले महाप्रभु देव, आपको नमस्कार है। नमस्कार है हे भगवन्त, अरूप, अलेप। नमस्कार है, हे वीतराग, मदरूपी शत्रुके विनाशक। नमस्कार है नरदेव, जिन्होंने (सासारिक) सुखोंकी आशा छोड दी है। हे इन्द्रियहीन, व शिवमें विलीन, नमस्कार है आपको। मारको जीतनेवाले और विकारोंको विलीन करनेवाले, नमस्कार है आपको। अपने शुक्ल ध्यान द्वारा क्षणमात्रमे कर्मोंका घात करनेवाले, नमस्कार है आपको। आपके चरणोको मै १० मनसे नमस्कार करता हूँ। हे केवलज्ञानरूपी रविके द्वारा मिथ्यात्वरूपी अन्धकारका पूर्ण रूपसे नाश करनेवाले जिनेन्द्र, जय हो आपकी। इस प्रकार वन्दना, पूजा व स्तवन करके वे खेचर उन प्रतिमाओंको एक-एक करके देखने लगे।

७—पार्श्वकी प्रतिमाको लेकर उनका तेरापुर आना

उन सुन्दर प्रतिमाओंको देख-देखकर निरन्तर उनके मनमें अनुराग उत्पन्न हुआ। फिर वे कहने लगे कि देवोके क्रीडास्थानको प्राप्त विजयार्द्ध पर्वतपर इन प्रतिमाओंके ही समान हम भी भक्तिपूर्वक जिनबिम्ब बनवायेंगे। ऐसा मनमें विचारकर उन्होंने अति भक्तिभारसे अपने दोनों हाथों-द्वारा जिनेन्द्र पार्श्वनाथकी नाना रत्नोंसे जडी प्रतिमा ग्रहण की और उसे उठाकर वे वहाँसे चल पडे। वह सुनिर्मल प्रतिमा गगनतलमें ऐसी स्फुरायमान हुई, जैसे चन्द्रमाकी चाँदनी ५ फैल रही हो, अथवा जैसे विद्युत् लपलपाती हुई शोभायमान हो। उसे लेकर वे उत्तर दिशामें चले, मानो (दक्षिण दिशावर्ती) यमको छोडकर जा रहे हों। वे परिनिविड गात्र (सबल शरीर) जिन भगवान्में अनुरक्त दोनों सहोदर यहाँ पहुँचे। यहाँ वे गुणोंके घर (दोनो भ्राता) उस रत्नोंसे निर्मित प्रतिमाको पर्वतके ऊपर छोडकर उस लयणके सम्मुख गये जिसने भव (ससार) के भयकी प्रतिमाको दूर कर दिया था। १०

८—पार्श्व-प्रतिमा पर्वतपर अचल हो गयी

वहाँ (उस गुफामें) वे दोनों भ्राता वन्दन-भक्ति करके लौटकर अपनी उसी प्रतिमाके सम्मुख आये। वहाँ जाकर जब वे उस प्रतिमाको पुनः लेने लगे, तब वह अपने स्थानसे चलायमान ही न हुई, मानो किसी खेचरने उसे स्तम्भित कर दिया हो, अथवा मानो उस रम्य स्थानको देखकर वह स्वय अपने ही भारसे स्थिर हो गयी हो। उसे निश्चल देखकर वे दोनों भाई अपने मनमें तत्क्षण दु खसे बहुत पीडित हुए। परलोक कार्यमें परम उत्सुक होकर, हाय, हम दुष्टोंने ५ यह क्या किया ? हमने जो जिनेन्द्रकी प्रतिमाको उसके स्थानसे चलायमान किया, यही हमारे नरकमें पडनेका कारण होगा। दो स्थानोंमें-से एक भी स्थान न रहा। इस प्रकार उन्हें केवल-(शुद्ध) प्रचुर ज्ञान बढ़ा। तब उन्होंने भयभीत होकर एक मजूषा बनायी और उसे खोदकर भूमिमें रख दिया। उसे झाँपकर वे परिक्षीण शरीर हो तुरन्त सहस्रकूट भवनको गये और उसकी वन्दना करके, वहाँ मनको जीतकर ध्यानमे स्थित यशोधर मुनिको उन्होंने देखा। १०

६

Amitavega practised Penances and attained heaven

सो वंदिवि पुच्छिउ तेहिँ जई भो मुणिवर णिसुणहि सुद्धमई ।
अम्हेहि भमतहिं जिणपडिमा उवलद्धिय बहुविहकयमहिमा ।
सा लेविणु जतहि णियपुरे परिधरिय एत्थु गिरिवरसिहरे ।
वदण करेवि लयणम्मि वर सा तुरिय लेवि जा वलहुँ फिर ।
ता ण चलइ थाणहो कि करहुँ किं मामिय जीवहुँ कि मरहुँ । 5
तं सुणिवि भणइ तहँ मुणिपवरु इत्थम्मि हवेसइ तित्थवरु ।
अण्णहिँ भवि भायरु तुह तणउ सम्मत्तु लएसइ बहुगुणउ ।
त सुणिवि खणद्धें वे वि भाय तवे सठिय ता ते साणुराय ।
घत्ता—अमियवेउ विज्जाणियरु परिछड्डिवि तणु व मणोहरउ ।
गउ सग्गहो तक्खणे तउ करिवि तहि हूयउ सो सुरु वधुरउ ॥ ९ ॥ 10

१०

Suvega practised religious hypocrisy and was reborn an elephant

एत्तहिँ लहुभायरु जणे महिउ तें वारहवरिसइँ सगहिउ ।
गुरुपासि पसिद्धउ अइतुरिउ एक्कतरेण भोयणु सरिउ ।
ता एकहिँ दिणि सो सलवलिउ वावीसपरीसहपरिमलिउ ।
छुहतण्हएँ पीडिएँ कि कियउ गामंतरे गमणु सुचिंतियउ ।
तहिँ जाइवि भुत्तउ जलु पियउ जणे पयडिउ अणसणु मइँ कियउ । 5
गामतरि पुणु अण्णहिँ जि दिणे उववासु पघोसिउ पयडु जणे ।
एयाइँ विहिएँ बहुदिण थियउ जणु सयलु सुउत्तिएँ वचियउ ।
मायाएँ सुवेएँ कियउ तउ पुणु मरिवि सो वि वणे हत्थि भउ ।
घत्ता—जो डिभें धम्मु समायरइ वगवेसें खचिय णियतणु ।
सो विरसु रसतउ भग्गडउ परदुक्खइँ पावइ मूढमणु ॥ १० ॥ 10

११

He is, however, re-enlightened by Amitavega

ता अमियवेएण अमरेण हूएण
थियएण सग्गमि चितियउ हियम्मि
महो भाय लहुओ वि उप्पण्णु कहिँ होवि ।
पुणु ओहिणाणेण परिकलिउ सो तेण ।
तहो तणएँ करुणेण सचलिउ वेएण । 5
करि वसइ वणे जम्मि सो पत्तु खणे तम्मि ।
मुणिवेसु परिकरिवि सो कुमि अणुसरिवि ।
अइमहुरवयणेण पुणु भणिउ करि तेण ।
भो णिसुणि सुअवेय दुहु पत्तु बहुभेय ।
मिच्छत्तमूलाइँ तउ कियउ मायाइँ । 10
तुहुँ तेण बलिएण करि हुवउ दुरिएण ।
त सुणिवि तहो वयणु करि सरइ मुणिचरणु ।

९—मुनिराज-द्वारा भविष्यवाणी और विद्याधरोंकी ˜ -दीक्षा

उस यतिकी वन्दना करके उन्होंने पूछा—"हे मुनिवर, शुद्धमति, सुनिए। हमने भ्रमण करते हुए नाना प्रकारकी महिमासे युक्त एक जिनप्रतिमा प्राप्त की। उसको लेकर अपने पुरको जाते हुए हमने उसे इस गिरिराजके शिखरपर रख दी। किन्तु जब लयणमें उत्तम वन्दना करके उसे तुरन्त लेनेके लिए लौटे, तब वह स्थानसे चलती ही नहीं। हम क्या करें ? हे स्वामी, हम जियेंगे कि मरेंगे ?" यह सुनकर मुनिप्रवरने उनसे कहा—"यहाँ एक बड़ा तीर्थ बनेगा और तुम्हारा ५ यह भाई अन्य भवमें यहाँ बहुगुणयुक्त सम्यक्त्व प्राप्त करेगा। यह सुनकर क्षणार्द्धमें उन दोनो भाइयोंने भक्ति-सहित तप धारण कर लिया। अमितवेग विद्याधर तप करके व अपने मनोहर शरीरको छोड़कर शीघ्र ही स्वर्ग गया और वहाँ सुन्दर देव हुआ।

१०—लघु भ्राता-द्वारा व्रतका दम्भ व उस पापसे हाथीका जन्म

वहाँ उसका लघु भ्राता लोगोंमें पूज्य हुआ और उसने बहुत जल्दीमें गुरुके पास बारह वर्षोंके लिए प्रसिद्ध एकान्तर भोजनका व्रत धारण कर लिया। किन्तु एक दिन वह बाईस परीषहों से पीड़ित होकर सलबला उठा। क्षुधा व तृष्णासे पीड़ित होकर उसने क्या किया कि दूसरे ग्राममें गमन करनेका सोचा। वहाँ जाकर उसने भोजन किया व जल पिया, तथा जनपदमें प्रकट किया कि (पूर्वदिन) मैंने अनशन किया था। दूसरे दिन पुनः अन्य ग्राममें लोगोंमें प्रकट उपवास ५ घोषित किया कि मैंने कल उपवास किया था। इसी विधिसे वह बहुत दिन करता रहा और सब लोगोंको अपनी उक्तिसे वंचित करता रहा। इस प्रकार सुवेगने मायासे तप किया। अतः वह मरकर वनमें हाथी हुआ। जो कोई वक-वेषसे अपने शरीरको खींचकर तप धारण कर दम्भसे धर्मका आचरण करता है, वह नीरस बकवाद करता हुआ भगोड़ा व मूढ़-मन बड़े दुःख पाता है।

११—अमितवेग देव-द्वारा हाथीको उपदेश

तब जो अमितवेग देव हुआ था उसने स्वर्गमें स्थित होते हुए हृदयमें चिन्ता की कि मेरा लघु भाई कहाँ उत्पन्न हुआ होगा। फिर अवधिज्ञानसे उसने उसे जान लिया। उसके प्रति करुण होकर वह वेगसे चल पड़ा और एक क्षणमें वह उस वनमें आ पहुँचा जहाँ वह हाथी रहता था। उसने मुनिका वेष बनाकर उस हाथीका अनुसरण किया, और फिर वह अतिमधुर वचन-द्वारा हाथीसे बोला—"हे सुवेग, सुन, तूने नानाप्रकार दुःख पाया। तूने मिथ्यात्वमूलक मायाचारसे तप किया। उसी बलवान् पापसे तू हाथी हुआ है। उसका यह वचन सुनकर हाथीने मुनिके चरणो ५ का अनुसरण किया। वह सिरकी ओर आँखें चढ़ाकर पूर्वजन्मका स्मरण करने लगा। वह दुःखसे

चिरजम्मु सुमरंतु सिरे णयण कुणंतु ।
दुक्खेण वेल्लंतु सरु पउरु मेल्लंतु ।
घत्ता—तें देवें जाणिउ करिहियउ पुणु भणियउ वयणु सुकोमलउ । 15
सम्मत्तरयणु मा मुयहि तुहुँ जें पावहि णाणु सुणिम्मलउ ॥ ११ ॥

१२

The religious elephant attains heaven

पुणु दिण्णइँ अणुवयगुणवयाइँ जणसोक्खकरइँ सिक्खावयाइँ ।
णिसिभोयणविरमणु बहुगुणालु पचुवरवज्जणु सयलकालु ।
चिरजम्मसुणियभयवेविरासु पूजाफलु कहियउ करिवरासु ।
पुणु कहिय पडिम तहो मणहरीय जा वामिएँ तेहि मि चिरु धरीय ।
जं किं पि पयासिउ सुरवरेण तं सयलु वि गहियउ करिवरेण । 5
इउ कहिवि गयउ सुरु णियघरम्मि[1] सो करि पुहु अच्छइ इह वणम्मि ।
अण्णहिँ दिणे जलु पोमाइँ लेवि जा आवइ वामिए पुणु यलेवि ।
णउ देक्खइ तहिँ जिणु वीयराउ जलु पोमइँ मेल्लिवि करिवराउ ।
घत्ता—सम्मत्तु लएविणु दिढु करिवि सण्णासु करेविणु सो खयरु ।
सुहभावेँ भाविवि देउ जिणु करि हूयउ तइए सग्गे सुरु ॥ १२ ॥ 10

१३

Karakanda constructs two more caves

भो णरवइ जं पइँ पुच्छियउ मइँ सयलु वि तं तुह अक्खियउ ।
पइँ सुंदरु कीयउ महो मणिउ जं लयणु णरेसर पइँ चिणिउ ।
तम्हा तुहुँ एवहिँ इउ सरहि लयणोवरि अवरु लयणु करहि ।
इउ भणिवि पयत्तेँ णिववरहो गउ सुरवरु लीलइँ णियघरहो ।
लयणोवरि करकंडेँ लयणु काराविउ जिणवेरवरभवणु । 5
तहो उप्परि पुणु खुड्डयलयणु अइमणहरु कारिउ हयमयणु ।
तिहु लयणहो सोहा वहइ कह सुरणाहघरहँ अणुहरइ जह ।
णिउ करिवि ताइँ जिणमंदिरइँ ण्हइँ पूजिवि अंचिवि मणहरइँ ।
अइतोसु वहंतउ हियएँ बहु आवासहो गउ पुणु धरिणिपहु ।
घत्ता—जावच्छइ तहिँ आवासे ठिउ करकंडु णरेसरु अरिमहणु । 10
ता आयउ करि थिरथोरकरु जलु पियणहँ सरवरे मयमहणु ॥ १३ ॥

१४

A ferocious elephant threatens Karakanda's forces and disappears

जा अच्छइ तीरे सरोवरासु सेण्णाहिँ गंधु ता गयउ तासु ।
उच्चाइवि करयलु सिरु धुणेवि अवलोइयं करिणा मुहु वलेवि ।
सा पेक्खिवि सो करिवरु विरुद्धु उद्धाविउ[1] करि मयगधलुद्धु ।
करु दसणे करतउ गुलुगुलतु पयभारेँ मेइणि णिद्दलंतु ।
सो पेक्खवि लोयहिँ अइणिरुत्तु करि धरणहुँ णिब्भरु कियउ चित्तु । 5

---

१२ १ N में 'णियघरासु' पाठ है और हासियेमे जोडा गया है—करि गयउ तुरिउ ता सरवरासु । कर भरिवि जलेँ पोमाइ लेवि । आहारु चउव्विहु तहिँ मुएवि ।

१४ १ N उद्धाविउ.

वेल उठा और जोरकी चीत्कार करने लगा। तब उस देवने हाथीके हृदयको जान लिया। वह फिर सुकोमल वचन बोला कि तू अब सम्यक्त्वरूपी रत्नको मत छोड़ना। उसीसे तुझे सुनिर्मल १० ज्ञान प्राप्त होगा।

१२—पूजाके प्रभावसे हाथी मरकर स्वर्ग गया

फिर उसने उसे जनसुखकारी अणुव्रत, गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत प्रदान किये एवं सदा कालके लिए बहुत गुणयुक्त निशिभोजन-त्याग व पञ्च उदुम्बर-त्यागके व्रत भी दिये। उसने अपने पूर्व जन्मको जानकर भयसे काँपते हुए करिवरको पूजाका फल भी कह सुनाया। फिर उसने उस मनोहर प्रतिमाकी बात कही जो उन्होंने उस वामीमें बहुत पहले रखी थी। इस प्रकार जो ५ कुछ उस सुरवरने प्रकाशित किया उस समस्त बातको करिवरने ग्रहण कर लिया। पूर्वोक्त प्रकार कहकर वह सुर अपने घर चला गया, और वह हाथी यहीं वनमें रहने लगा। तत्पश्चात् अन्य दिन जब वह जल और कमल लिये हुए फिर लौटकर वामीपर आया तब उसे वहाँ वीतराग जिनेन्द्र दिखायी नहीं दिये। तब उस करिवरने जल और कमलोंको वहीं डाल दिया तथा सम्यक्त्व को लेकर उसे दृढ़ करके व सन्यास करके वह खेचर (का जीव हाथी) शुभ भावसे जिनेन्द्रदेवकी १० भावना करके तीसरे स्वर्गमें देव हुआ।

१३—करकण्ड-द्वारा दो और लयनोंका निर्माण

हे नरपति! जो कुछ तूने पूछा वह समस्त बात मैंने तुझे कह दी। तूने मेरे मनकी सुन्दर बात की, जो नरेश्वर, तूने लयणको चिनवाया। इसलिए अब तू इतना और स्वीकार कर कि लयणके ऊपर एक दूसरा लयण बनवा दे। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक राजाको कह कर वह सुरवर लीलासे अपने घर चला गया। करकण्डने लयणके ऊपर जिनेन्द्रका सुन्दर भवनरूप लयण बनवाया ५ तथा उसके भी ऊपर एक अति मनोहर मदनापहारी छोटा-सा लयण और बनवाया। उन तीनों लयणोंकी शोभा कैसी हुई, जैसे मानो वे सुरनाथके घरोंका अनुहरण कर रहे हों। वह राजा धरणीनाथ उन जिनमन्दिरोंको बनवाकर और उन मनोहर मन्दिरोंकी स्वयं पूजा-अर्चा करके अपने हृदयमें बहुत सन्तोष धारण करता हुआ अपने डेरेपर आया। जब वह शत्रु-विनाशक करकण्डु नरेश्वर वहाँ अपने आवासमें था, तब एक स्थिर व स्थूल सूँड़वाला महान् मदोन्मत्त १० हाथी सरोवरमें जल पीने आया।

१४—करकण्डकी सेनापर एक मदोन्मत्त हाथीका आक्रमण

जब वह हाथी सरोवरके तीरपर खड़ा था, तब उसे सेनाकी गन्ध मिली। तब अपनी सूँड़को उठाकर व सिर हिलाकर हाथीने मुख मोड़कर उस ओर अवलोकन किया। उस सेनाको देखकर वह करिवर विरुद्ध हो गया (भड़क उठा) और मदकी गंधका लोभी वह हाथी सूँड़को दाँतपर रखकर गुलगुलाता हुआ, पैरोंके मारसे पृथ्वीको रौंदता हुआ दौड़ पड़ा। उसे देखकर लोगोंने हाथीको रोकनेमें पूर्णरूपसे अपने चित्तको लगाया। वे उठकर तुरन्त हाथीसे जा लगे ५

ते उट्ठिवि तुरियहिँ करिहे लग्ग   करिघायभयएँ पुणु सयल भग्ग ।
तो धाइउ णरवइ करकिवाणु   पडिखलियउ वारणु जुज्झमाणु ।
करणाइँ[2] देवि किर हणइ जाम   अइंसणु वारणु हुयउ ताम ।
घत्ता—अइंसणे हूयएँ करिवरइँ णिहुरियणयणु सो तक्खणिणं[3] ।
पेक्खंतहँ णासिवि करि गयउ थिउ विंभिउ णरवइ णियमणिणं[3] ।।१४।। 10

१५

Madanavali is found missing.

आवासहो आवइ जाव राउ   मयणावलि णउ पेच्छइ वि ताउ ।
जोइयइ चउदिसु[1] हिययहीणु   उव्वेविरु हिंडइ महिहे दीणु ।
ता सकिउ णरवइ गलियगव्वु   कहिँ गउ कलत्तु सव्वगभव्वु ।
मयणावलि जा आणंदभूअ   सा एवहिँ किं विवरीय हूअ ।
ता पेसिय किंकरवर णिवेण   अवलोवहु सामिणि दिसिवहेण । 5
जोएवि दिसिहिँ आगय वलेवि   पुक्कारहिँ उब्भा कर करेवि ।
ता राएँ देक्खिवि ते रुवंत   परिमुक्क अंसु णयणहिँ तुरंत ।
हे पयवय[2] तुहुँ सवणाणुबंधु   महु अक्खहि सुदरि णेहबंधु ।
हा मुद्धि मुद्धि तुहुँ केण णीय   किं एवहिँ ल्हिक्किवि कहिँ मि ठीय ।
हा कुंजर किं तुहुँ जमहो दूउ   किं रोसइँ महो पडिकूलु हूउ । 10
घत्ता—चिरु मोहु वहंतउ को वि हियइँ लडहरूउ अग्गइँ हुयउ ।
विज्जाहरु आयउ सो वि तहिँ विज्जासायरपारु गउ ।। १५ ।।

१६

The king in his bereavement is consoled by a Vidyadhara.

वोल्लाविउ तेँ खेयरवरेण   अहो णरवइ किं रोवइ भरेण ।
किं महिलहे कारणे खवहि देहु   जणे महिल होइ दुहणिवहगेहु ।
जा कीरइ णारी णरयवासु   कह किज्जइ णारीसहु णिवासु ।
परिफुरिए[1] चित्ते जा जरु करेइ   दुहकारणु सा को अणुसरेइ ।
भववल्ली वड्ढइ जाहे संगि   रामा[2] लायइ दुह मणुयअंगि । 5
बलवंता कीरइ बलविहीण   सा अबला सेवहिँ जे णिहीण ।
तं वयणु सुणेविणु णीससंतु   अवलोवइ मयणावलि भणतु ।
ता[3] खेयरु देक्खिउ णियमणम्मि   हेट्ठामुहु लज्जइँ हुउ खणम्मि ।
घत्ता—तेँ खयरेँ पुणु पुणु सो भणिउ किं अच्छहि तुहुँ परिचत्तजणु ।
कोमलवयणपउत्तियहिँ बुज्झाविउ णरवइ विमणमणु ।। १६ ।। 10

१७

The Vidyadhara recalls an incident of his past life.

तं वयणु सुणेविणु समरधीरु   सतुट्ठउ मण करकंडु वीरु ।
तेँ भणिउ खयरु संजणियधम्मु   कहिँ लद्धउ वयणविलासु रम्मु ।

---

२ N करुणाइ ३ J °णेण

१५ १ J चउदिसि २ S पायव तुहु सउणाणुबधु

१६ १ J परिफुरिय चित्ति २ J रामा लायइ जा मणुउ अंगि, DN को रामा लायइ मणुउ अंगि
३ J DN सो.

(भिड़े)। किन्तु हाथीके आघातके भयसे वे सब भाग गये। तब स्वयं नरपति हाथमें कृपाण लेकर दौड़ा और उसने युद्ध करके हाथीको रोक दिया। किन्तु करण (अर्थात् पैतरा) देकर जब वह चोट करने लगा तभी वह हाथी अदृष्ट हो गया। करिवरके अदृष्ट हो जानेपर वह राजा तत्क्षण आँखोंसे अकचका गया। देखते-देखते हाथी लुप्त हो गया। इसपर नरपति अपने मनमें विस्मित होकर खड़ा रहा। १०

१५—मदनावलीका अपहरण व करकण्डका विलाप

जब राजा अपने डेरेपर आया, तब उसे वहाँ मदनावली दिखायी नहीं दी। वह हृदयहीन होकर चारों दिशाओंमें देखने लगा और काँपता हुआ हीनभावसे पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा। राजा शंकित हो उठा और उसका गर्व गलित हो गया। कहाँ गयी—मेरी सर्वांग-भव्य पत्नी? जो मदनावली मेरी आनन्दभूत थी, वह इस प्रकार विपरीत क्यों हो गयी? फिर राजाने अच्छे-अच्छे किंकरोंको प्रेषित किया और कहा—प्रत्येक दिशाके मार्गसे अपनी स्वामिनीको देखो तो। ५ सब दिशाओंमें देखकर वे लौट आये और ऊँचे हाथ करके पुकार मचाने लगे। तब राजाने उन्हें रोते देखकर अपनी आँखोंसे भी तुरन्त आँसू बहाये (वह विलाप करने लगा) हे पादप! जिस प्रकार प्रजापति सज्जनोंका बन्धु है, उसी प्रकार तू शकुनों (पक्षियों) का बड़ा बन्धु है; अतएव मेरी स्नेहकी पात्र सुन्दरीकी खबर तो कहो। हे मुग्धे! मुग्धे! तुझे कौन ले गया? क्यों तू इस प्रकार कहीं छिपकर ठहरी हुई है? हाय कुञ्जर, क्या तू यमका दूत था? तू क्यों रोषसे १० मेरे प्रतिकूल हो गया? ऐसे समयपर कोई एक विद्याधर जो सुन्दररूप, विद्यारूपी सागरका पारगामी था वह चिरकालीन स्नेह धारण करता हुआ राजाके आगे आकर खड़ा हो गया।

१६—विद्याधर-द्वारा करकण्डका सम्बोधन

उस खचरवरने राजाको बुलाते हुए कहा—हे नरपति! तू इतना अधिक क्यों रोता है क्यों एक महिलाके कारण अपनी देहको खपाता है। लोगोंको यह महिला दुःख-समूहोंका घर है। जो नारी नरकवास उत्पन्न करती है, ऐसी नारीके साथ क्यों निवास किया जाये? जो चित्तमें परिस्फुरित होने मात्रसे ज्वर (ताप) उत्पन्न करती है, ऐसी दुःख-उत्पादक नारीका कौन अनुसरण करे। रमणीके संगसे भववल्ली (जन्ममरणरूप संसारकी बेल) बढ़ती है और वह मनुष्यके अंगमें ५ दुःख लाती है। जिसके द्वारा बलवान्, बलहीन कर दिये जाते हैं, ऐसी अबलाका वे ही सेवन करें जो नितान्त हीन हों। इस वचनको सुनकर राजा निःश्वास भरता हुआ व 'हाय मदनावली' कहता हुआ उसकी ओर देखने लगा। खेचरको देखकर वह अपने मनमें लज्जित होकर एकक्षण नीचेको मुख किये रह गया। तब उस खेचरने उसे पुनः-पुनः कहा कि तू अपने सब लोगोंको छोड़कर क्यों बैठा है? उसने उदास मन राजाको कोमल वचन-प्रोक्तियों-द्वारा सम्बोधित किया। १०

१७—विद्याधरसे करकण्डका प्रश्न

उसके वचनको सुनकर समर-धीर, करकण्डवीर अपने मनमें सन्तुष्ट हुआ। उसने खेचरसे पूछा कि आपने धर्मोपदेश देने योग्य यह रम्य वचन-विलास कहाँसे प्राप्त किया। क्या आपने

दूराउ पणासियहरिसरोसु किं मुणिवरु सेविउ विगयदोसु ।
तव दंसणे णयणइँ णिद्धयाइँ पइँ पेक्खिवि अण्णहिँ ण वि गयाइँ ।
कुलगयणचंदआणंदभूउ किं बंधउ अण्णहिँ जम्मि हूउ । 5
परिपुच्छिउ पइँ हउँ ससएण कि को वि देउ कहि णिच्छएण ।
तं वयणु सुणेविणु मइगहीरु आहासइ खेयरु णिवहो धीरु ।
पारावयकुले चिरलद्धजम्मु हउँ हुतउ तुज्झु वि णयणरम्मु ।
घत्ता—तहिँ अच्छहिँ जा पंजरे ठियइँ रम्ममाणु घरिणिहिँ वलिउ ।
ता गुरुफुक्कारहिँ फुक्करिवि महु समुहउ विसहरु सचलिउ ॥ १७ ॥ 10

१८

He explains to Karakaṇḍa his friendship and the other Vidyadhara's enmity towards him.

अवलोइवि तेँ महो गहिउ पाउ ता धाविउ खणे तुहुँ मिउसहाउ ।
मइँ करुणइँ रक्खहुँ विसहरासु छडाविउ पुणु हउँ पइँ मि तासु ।
तहो भीएँ हउँ मुच्छापवण्णु पइँ करुणइँ महो णवयारु दिण्णु ।
तहो फलइँ मुओ विज्जाहिवासु उप्पण्णउ हउँ गुणणियरवासु ।
मइँ जाणिउ तुहुँ अइसंसएण जुज्झतउ पेक्खिवि सहुँ गएण । 5
उवयारु महंतउ तुह वहतु विज्जाहरकुमरहिँ सहुँ रमतु ।
किर होसमि तुज्झ वि हउँ सहाउ इउ भणिवि तुरियउ एत्थु आउ ।
सो विसहरु खेयरु हुउ खणेण णवकारइँ मुणिणा दिण्णएण ।
घत्ता—तहिँ अवसरे तेँ परिहवगएण मयणावलि पीणपओहरिया ।
तेँ करिवररूवेँ खेयरइँ णिय तुह घरिणि मणोहरिया ॥ १८ ॥ 10

१९

He assures the king that he will regain Madanāvalī and illustrates his point by the story of Naravāhanadatta

उद्धाणणु उरु हत्थेँ हणतु हा मुद्धि मुद्धि एहउ भणंतु ।
रोवतउ पइँ पेक्खेवि आउ मा रोवहि छडहि मणि विसाउ ।
अइपवर महावल अवगणेवि आवेसहि जइयहुँ महि जिणेवि ।
पहु[1] खेयरु भणिवि गुणविसालु पणवेसइ पइँ पुणु सामिसालु ।
छणवासरससहरआणणीय पावेसइ पुणु इह कामणीय । 5
करकडु सुणिवि तहो ललिय वाणि पडिवयणु भणइ ता दीहपाणि ।
भो खयर[2] सुलक्खण गुणविणीय किं आवहिँ तिय[3] जे हरिवि णीय ।
तो खयरु भणइ महुरइँ सरेण हउँ अक्खमि तुम्हहँ कि परेण ।
घत्ता—णरवाहणदत्तहो वल्लहिया कणयामरवरगुण णिम्मलिया ।
सा मिलिय तुरंती तहो णिवहो विज्जाणियरहिँ संवलिया ॥ १९ ॥ 10

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयण-कण्णावयंसे पंचकल्लाणविहाण-कप्पतरुफलसंपत्ते णीलमहाणीलआयमणो णाम पंचमो परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ ५ ॥

---

१८ १ J सुहउ, D सुक्ख.

१९. १ J अहु २ S खेयर सलक्खणु ३ S ति, J N ते

कोई ऐसे मुनिवरकी सेवा की है जिन्होंने दूरसे ही हर्ष और रोषको नष्ट कर दिया है और जो दोषरहित है ? आपके दर्शनसे मेरे नेत्र ऐसे स्निग्ध हुए है कि वे आपको देखकर अन्य किसीकी ओर जाते ही नहीं है। क्या आप अन्य जन्मके अपने कुलरूपी गगनमें चन्द्रके समान आनन्द उत्पन्न करनेवाले मेरे कोई बन्धु है ? अथवा, मै सशयपूर्वक आपसे पूछता हूँ कि आप कोई देव तो नहीं है ? मुझे निश्चयसे कहिए। यह वचन सुनकर वह गम्भीर-मति व धीर खेचर राजासे कहने लगा—पूर्वमें परेवाके कुलमें जन्म लेकर मै तुम्हारा नयन-रम्य पक्षी था। उस जन्ममें जब मै अपनी गृहिणी (परेवी) के साथ रमण करता हुआ तुम्हारे यहाँ पिंजडेमें रह रहा था, तब एक विषधर बडी फूत्कारोंसे फुफकारता हुआ मेरी ओर बढ़ा।

१८—विद्याधर-द्वारा पूर्वजन्म-वृत्तान्त

उसने मुझे देखकर मेरा पैर पकड़ लिया। तब तुम मृदुस्वभावी होते हुए उसी क्षण करुणापूर्वक विषधरसे मेरी रक्षा करनेके लिए दौड पडे, और मुझे आपने उससे छुडा लिया। किन्तु उसके भयसे मै मूर्च्छित हो गया। तब आपने करुणासे मुझे नमोकार मन्त्र दिया। उसके फलसे मै जो शुक था वह गुणसमूहोंका निधान विद्याधर उत्पन्न हुआ हूँ। मैने तुम्हें गजके साथ युद्ध करते देखकर बडे सशयसे पहचाना। मै तुम्हारे उस महान् उपकारको धारण करता हुआ विद्याधर कुमारोंके साथ रमण करते हुए भी यह सोचकर तुरन्त यहाँ आया हूँ कि मै भी सम्भवतः तुम्हारा सहायक हो सकूँ। वह जो विषधर था वह भी मुनि-द्वारा दिये गये नमोकार मन्त्रके प्रभावसे उसी क्षण खेचर हुआ। चूँकि उस अवसरपर उसका तुम्हारे द्वारा पराभव हुआ था, अतएव उस खेचरने उस महान् हाथीका रूप धारण करके तुम्हारी पीनपयोधरा मनोहारिणी गृहिणी मदनावलीका अपहरण किया है।

१६—विद्याधर-द्वारा मदनावलीकी पुनः प्राप्तिका आश्वा

ऊँचा मुँहकर हाथसे उरस्थलको पीटते हुए, तथा हे मुग्धे! हे मुग्धे! ऐसा कहकर तुम्हें रोते हुए देखकर मै यहाँ आया हूँ। अब आप रोइए मत, तथा अपने मनके विषादको छोड़ दीजिए। जब आप अतिप्रवर व महाबलवान् (द्रविड राजाओ) को पराजित कर व पृथ्वीको जीतकर यहाँ फिर लौटेंगे- तब वही खेचर आपको महागुणशाली मानकर अपने स्वामिश्रेष्ठके रूपमें प्रणाम करेगा। तभी आप अपनी पूर्णचन्द्रमुखी कामिनीको भी पुन प्राप्त करेंगे। उस खेचरकी इस ललित वाणीको सुनकर दीर्घपाणि करकण्डने पूछा—हे खेचर! जो सुलक्षण व गुण-विनीत स्त्रियाँ हरणकर ले जायी गयी है, वे क्या पुन वापस आ सकती हैं ? तब खेचरने मधुर स्वरसे कहा—अन्य क्या, मै तुम्हें (इसका उदाहरण) कहता हूँ। नरवाहनदत्तकी कनक व अमरके समान श्रेष्ठ गुणवती, निर्मल वल्लभा अनेक विद्याओंके समूहों-सहित उस राजाको शीघ्र ही प्राप्त हुई थी।

इति मुनि कनकामर विरचित-भव्यजनकर्णावतस पचकल्याणविधानरूप कल्पतरु फल सम्पन्न करकण्ड महाराज चरित्रमें नील-महानीलका वर्णन करनेवाला पाँचवाँ परिच्छेद समाप्त।

संधि—६

१

Naravāhanadatta is crowned king

करकंडें पुच्छिउ सो कहइ णरवाहणदत्तहो तणिय कह।
आयण्णहि तुहुं एक्कें मणिणे आणंदिय जें सुरवरहें सह॥

एत्थम्मि भरहे वच्छावयसि कउसंबि णयरि तहिं अत्थि ससि।
तहिं अत्थि णराहिउ वच्छराउ जसु अणुदिणु णिम्मलु धम्मि राउ।
तहो घरिणि सुवीणा णाम जाय हियएण सरइ जिणवरहो पाय। 5
तहो णंदणु अइसयगुणमहंतु णरवाहणु हूयउ जसमहंतु।
जो सयलकलालउ पउरधामु रूवेण विडंबिउ जेण कामु।
सो पिउणा पेक्खिवि वुद्धिवंतु किउ पट्टबंधु राएँ तुरंतु।
अप्पुणु पडिवण्ण रिसिंदवित्ति वित्थारिय तिहुवणे णियकित्ति।
तउ करिवि घोरु मयणावहारि गउ सिद्धिविलासिणि तणइँ वारि। 10

घत्ता—णियजणणविओएँ विमणमणु णरवाहणदत्तु ण कहिं रमइ।
वाहजलोल्लियमुहकमलु विहलंघलु उद्धाणणु भमइ॥ १॥

२

In sorrow for his father's retirement, he goes to the forest and meets a sage.

णरवाहणदत्तहो अमियलच्छि दिण्णी ण वि भावइ रायलच्छि।
हिययम्मि वहंतउ जणणसोउ ण समीहइ सुंदरु अंगभोउ।
पियसोउ वहंतउ णियमणम्मि ता णरवइ लहु एक्कहिं दिणम्मि।
सुरखेयरणरवरहियरम्मि संपत्तउ गिरिकालिंजरम्मि।
विज्जाहरकिण्णरणयणइट्ठु कुसुमावलिणंदणवणे पइट्ठु। 5
धम्माणुराउ जणमणि कुणंतु सहजायविरुद्धहँ दिहि जणंतु।
मिच्छामयजणवयमणु हरंतु परमप्पयपवयणु अणुसरंतु।
दूराउ णिवारिउ जेण दोसु तहिं दिट्ठउ जइवरु हरियरोसु।

घत्ता—तेण तुरंतएँ मुणिवरहो पयकमलहिं जुंजउ णिययमणु।
पुणु वंदिउ गुरु गुरुभत्तियएँ पयपाडिउ सयलु वि जेण जणु॥ २॥ 10

---

१ 1 S मणेण 2 SN जइ महतु, J जाइमतु

२ 1 S जणयण, N जणमण. 2 D परमप्पयवयणु वि

संधि—६

१—नरवाहनदत्तका राज्याभिषेक व पितृशोक

करकण्डके पूछनेपर उस खेचरने कहा—हे राजन्, अब तू एकाग्र मनसे नरवाहनदत्तकी उस कथाको सुन, जिसके द्वारा देवोंकी सभा भी आनन्दित हुई थी। इसी भरतक्षेत्रमें, वत्सदेश में प्रधान, प्रशंसनीय कौशाम्बी नगरी है। वहाँ वत्सराज नराधिप था जिसका प्रतिदिन धर्ममें निर्मल अनुराग रहता था। उसकी गृहिणी सुवीणा नामकी थी और वह भी हृदयसे जिनवरके चरणोंका स्मरण करती थी। उस राजाका पुत्र अतिशय गुणशाली महायशस्वी नरवाहन नामका हुआ। ५ वह समस्त कलाओंका आलय, अति तेजस्वी, एव रूपमें कामदेवके समान था। उसे पिताने बुद्धिमान् देखकर शीघ्र ही उसका पट्टबन्ध (राज्याभिषेक) कर दिया और स्वय आपने ऋषीन्द्र वृत्ति (मुनि-दीक्षा) स्वीकार कर ली, तथा त्रिभुवनमें अपनी कीर्ति फैलायी। कामवासनाको दूर करनेवाला घोर तप करके, वह सिद्धिविलासिनी (मुक्ति) के द्वारपर जा पहुँचा। इधर अपने पिताके वियोगमें उदास-मन होकर नरवाहनदत्त कहीं भी प्रसन्न नहीं होता था। वह अश्रुजलसे १० अपने मुखको गीला किये हुए विह्वल रूपसे मुँह उठाये इधर-उधर फिरता था।

२—नरवाहनदत्तका वनमें मुनिदर्शन

नरवाहनदत्तको वह दी हुई अमित (अपार) लक्ष्मीयुक्त राजलक्ष्मी भाती नहीं थी। वह हृदयमें पिताका शोक धारण करता हुआ सुन्दर शारीरिक सुखोंकी इच्छा नहीं करता था। पिताके शोकको अपने मनमें लिये हुए वह नरपति एक दिन सहज ही उस कालिंजर गिरिपर जा पहुँचा जो देवों, खेचरों तथा नरवरोंके हृदयको रमणीय था। वहाँ वह विद्याधर व किन्नरोंके नेत्रोंको इष्ट राजा पुष्पोंकी पंक्तियोंसे युक्त नन्दन वनमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ उसने एक यतिवरके ५ दर्शन किये जो लोगोंके मनमें धर्मानुराग उत्पन्न करते थे, सहज-विरोधी जीवोंमें परस्पर स्नेह उत्पन्न करते थे, मिथ्या मत (मिथ्यात्व) से लोगोंके मनको हटाते थे; परमात्म प्रवचनका अनुराग करते थे, जिन्होंने दोषोंका दूरसे ही निवारण किया था; तथा जिन्होंने रोषका परित्याग कर दिया था। नरवाहनने तुरन्त इन मुनिवरके चरणकमलोंमें अपना मन योजित किया (लगाया) और फिर बडी भक्तिसे उस गुरुकी वन्दना की जिन्हें सभी लोग पैरोंमें पडकर नमस्कार १० करते थे।

३

The sage preaches the householder's dharma to him

पयपाडियफणिसुरवरणरिंद तुहुँ करुण करेविणु मुणिवरिंद ।
महो अक्खहि णिम्मलु धम्मसारु परिपावउँ जें संसारपारु ।
ता कहइ भडारउ वीयराउ जें वद्धउ सिवंपहे णिविडु राउ ।
बहुएण पलावें किं किएण भाविज्जइ जिणवरु सहुँ हिएण ।
अणवरउ णराहिव दाणबुद्धि अइणिम्मल किज्जइ मणविसुद्धि । 5
अणुवयइँ पंच सिरसिहरे देवि सिक्खावय गुणवय दिव्व लेवि ।
भेसहआहाराभयसुणाणु चउभेयभिण्णु जो देइ दाणु ।
हियइच्छिय णिम्मल फलसमिद्धि सो लहइ णरेसर विउलरिद्धि ।
घत्ता—णिसिभोयणु णरवरु परिहरइ मोणवएण भोयणु असइ¹।
सो अच्छरगणियहिँ परियरिउ सुरहर लीलएँ परिवसइ ॥ ३ ॥ 10

४

The sage illustrates the bad effect of expecting penitential reward by the story of Mādhava and Madhūsudana

उवहसिय सुरूवें णरसुरिंद मणि सोउ ण किज्जइ हे णरिंद ।
सोएण णिवज्झइ गुरुउ कम्मु णउ पावइ सोहणु मणुवजम्मु ।
उप्पज्जइँ वयरइँ हियहारि णयणाण पियारी लडहणारि ।
मणरंजण णंदण इट्ठ भाय वइराण णियाणइँ सयल आय ।
णउ सक्कहिँ तहिँ भवि दुहु करेवि णीयाणु करहिँ परिभउ वहेवि । 5
अण्णहिँ भवि एहँ दुहु देहुँ जेव होएज्जहि अम्हहँ जीव तेव
चिरु पयडी जा कह मुणिगणेण सा णिसुणि णरेसर थिरमणेण ।
एत्थत्थि पसिद्धी णयणरम्म महुराउरि मणिचित्तलियहम्म ।
तहिँ दियवर दाइय णाइँ हत्थि माहवमहुसूयण दोण्णि अत्थि ।
ते वइरु महंतउ मणे वहंति अवरोप्परु गुणगणु णउ सहंति । 10
घत्ता—दिवसेहिँ गलंतहिँ महावहो धणरिद्धि परम्मुह लहु भइउ ।
णउ णिवसणु घरिणिहिँ संपडइ बलसत्ति वि सयल वि तहो गलिय ॥४॥

५

Mādhava in his penury goes to his rival Madhusūdana

तहो घरिणिएँ ता एक्कहिँ दिणम्मि संचिंतिउ दुत्थिएँ णियमणम्मि ।
तुहुँ पिययम णिसुणहि वयणु किं पि महुसूयणु तुरियउ सरहु गंपि ।
मुक्खाइँ किलावियणिद्धणाहँ सो देहइ भोयणु विहिँ जणाहँ ।
तहे वयणु सुणेविणु माहवेण पडिवयणु भणिउ खलिएँ रवेण ।
माणुण्णइँ छंडिवि किं परासु घरि जाइवि पइसहुँ दुहयरासु । 5
वरि कवलहिँ खाइवि विसु मुयउ णउ दुज्जणघरि किंकरु हुयउ ।
पुणु भणियउ माहवघरिणियाइँ माणुण्णइणियरिँ किं कियाइँ ।

३ १ प्रतिषु 'सिवपहु'
४ १ J परिहउ

३—मुनिका नरवाहनदत्तको धर्मोपदेश

फिर नरवाहनदत्तने मुनिसे कहा—नाग, देव और नरेन्द्र जिनके चरणोंमें नमस्कार करते है, ऐसे हे मुनि-वरेन्द्र, आप करुणा करके मुझे वह निर्मल धर्मका सार कहिए जिससे मै संसारका पार पा सकूँ। तब शिवमार्गमें दृढ़ अनुराग बाँधनेवाले उन वीतराग भट्टारकने कहा—बहुत प्रलाप करनेसे क्या लाभ? अपने हृदयसे जिनवरकी भावना करो। हे नराधिप, निरन्तर दानमें बुद्धि व अति निर्मल मनकी विशुद्धि करते रहना चाहिए। जो कोई पाँच अणुव्रतोंको अपने सिरके ऊपर रखकर (धारण करके) तथा दिव्य शिक्षाव्रत और गुणव्रत लेकर, औषध, आहार, अभय और सुज्ञान, इन चार भेदोंसे विभक्त दान देता है, वह, हे नरेश्वर, मनोवाछित निर्मल समृद्धि तथा विपुल ऋद्धि रूप फल पाता है। जो मनुष्य निशिभोजनको त्याग देता है तथा मौनव्रतसे भोजन करता है, वह अप्सरारूपी गणिकाओंसे सेवित देवोंके विमानमें लीला करता हुआ रहता है।

४—निदान वैरका दृष्टान्त

अपने रूपसे नरेन्द्रों व सुरेन्द्रोंका उपहास करनेवाले, हे नरेन्द्र, मनमें शोक नहीं करना चाहिए। शोकसे बड़ा कर्म बँधता है, जिससे शोभनीक मानव-जन्म नहीं प्राप्त होता। हृदयहारी व नयनप्यारी सुन्दर नारी वैरसे उत्पन्न होती है, व वैरके निदानसे ही मनरजन पुत्र व इष्ट भ्राता आदि सब आते हैं। वे एक भवमें दुःख उत्पन्न नहीं कर सकते, इसलिए वे पराभवकी भावना रखकर निदान करते है कि अन्य भवमें जिस प्रकार हम इसे दुःख दे सकें, ऐसा हमारा जीव उत्पन्न होवे। इस विषयपर मुनिगणने जो कथा चिरकालसे प्रगट की है उसे, हे नरेश्वर, स्थिर मनसे सुनो। इसी देशमें प्रसिद्ध व नयनरम्य मथुरापुरी है, जहाँके भवन मणियोंसे चित्रित है। वहाँ माधव और मधुसूदन नामके दो ब्राह्मण थे, जो दायाद होते हुए परस्पर हाथियोंके समान वैरी थे। वे अपने मनमें महान् वैर रखते थे और एक दूसरेके गुणगणको सहन नहीं करते थे। दिवस जाते शीघ्र ही माधवकी धन-ऋद्धि पराङ्मुख हो गयी। यहाँतक कि उसकी गृहिणीके लिए वस्त्र भी प्राप्त नहीं होता था। उसकी समस्त बलशक्ति भी क्षीण हो गयी।

५—माधवकी दुर्भावना और मधुसूदनकी　　नता

तब उसकी गृहिणीने अपनी दुरवस्थामें एक दिन मनमें विचार किया (और अपने पतिसे कहा)—हे प्रियतम, तू कुछ मेरा वचन सुन। जाकर तुरन्त मधुसूदनका अनुसरण कर। वह भूखसे पीड़ित व निर्धन हम दोनों जनोंको भोजन देगा। उसका यह वचन सुनकर माधवने गद्गद स्वरसे उत्तर दिया—मै अपनी मानोन्नतिको छोड़कर दुःखकारी परायेके घरमें जाकर कैसे प्रवेश करूँ? अपने कौरोंसे विष खाकर मर जाना अच्छा, किन्तु दुर्जनके घर किंकर होना अच्छा नहीं। इसपर माधवकी गृहिणीने फिर कहा—ऐसी मानोन्नतिका पुज लेकर रहनेसे क्या लाभ?

तहे सुणिवि वयणु महुसूयणासु गउ माहउ तहो घरि सज्जणासु ।
घत्ता—सहुँ घरिणिएँ माहउ दुहणिलउ घरे आयउ पेक्खिवि विमणमणु ।
महुसूयणु करपंजलि करिवि तहो सम्मुहुँ हूयउ एयमणु ॥ ५ ॥ 10

६

The latter receives him well, but Mādhava thinks of a peculiar way of punishing him in his next birth

विणएण विणामियसीसएण भणियाइँ ताइँ महुसूयणेण ।
महो पियरइँ तुम्हइँ कवणु चोज्जु हउँ तुम्हहँ दिण्णउ असमि भोज्जु ।
जगि करुणवतु अइमण्णणिज्जु कह होइ ण सज्जणु वदणिज्जु ।
हियएहिँ ताइँ मच्छरु वहति तहो तणिय रिद्धि मणि णउ सहति ।
एक्कहिँ दिणि रोसें माहवेण किउ गमणु पयागहो तुरिउ तेण । 5
तहिँ दिट्ठु तवोहणु कसणु एक्कु तहो पायमूलि खणु एक्कु थक्कु ।
सो पुंच्छिवि जइवरु माहवेण तवचरणु लयउ णिट्ठुरहिएण ।
तणु खवियउ तें सल्लेहणेण सो मुयउ णियाणइँ तक्खणेण ।
घत्ता—हउँ होसमि महुसूयणहो सुउ महुराउरिविप्पहो वल्लहउ ।
पुणु देविणु सुक्खु महंतु तहो महो पच्छइँ मरणु वि सभवउ ॥६॥ 10

७

Mādhava is reborn Madhusūdana's son and dies young, thus causing grief to the latter

सो माहउ महुसूयणघरम्मि उप्पण्णउ दियहहिँ सुंदरम्मि ।
जणसूहउ सयलकलाणिहाणु लहुओ वि हुयउ लोयहँ पहाणु ।
ता एक्कहिँ दिणि जमदूवएहिँ लहु विप्पहो णदणु णियउ तेहिँ ।
महुसूयणु पुत्तहो तणु सरंतु धरणियले णिवडिउ सिरु धुणतु ।
तहो कठु ण मेल्लइ मरणे जाइ रोवतउ एक्कु वि खणु ण थाइ । 5
बुज्झाविउ णउ बुज्झइ वराउ सवद्धउ तणयहो उवरि भाउ ।
सुअदुक्खइँ मरणहुँ बंभणाउ पायागहो गउ तग्गयमणाउ ।
दुक्खाणलदड्ढउ मरइ जाम खेयरइँ केण सो धरिउ ताम ।
घत्ता—तें अक्खिउ वइयरु माहवहो तवचरणणियाणइँ जो मुयउ ।
महुसूयण महुराउरिणयरि तुहु णदणु मणहरु सो हुयउ ॥ ७ ॥ 10

८

Naravāhanadatta narrates his experiences, how he lost his wife

सो सुणिवि वयणु विज्जाहरासु गउ सोउ मुएविणु णियघरासु ।
सोएण विडंविय णरसुरिंद तें सोउ ण किज्जइ हे णरिंद ।
ता लद्धावसरइँ तहिँ ठिएण णिउ पुच्छिउ केण वि खेयरेण ।
भो णरवइ किं पइँ दिव्वदेह उवसाहिय मेइणि पवर एह ।
ता कहइ णरेसरु खेयरासु मणिरयणमउडमंडियसिरासु । 5
कुमरत्तणि हउँ वलवतदेहु महो माणिणि कवण ण करइ णेहु ।

---

६ १ N जणमण्णिणिज्जु २ N पुज्जिवि.

उसकी यह बात सुनकर माधव सज्जन मधुसूदनके घर गया। दुखी और उदास मन माधवको गृहिणी-सहित अपने घर आया देखकर मधुसूदन हाथ जोड़कर एकाग्र मनसे उसके सम्मुख उपस्थित हुआ।

६—माधवका निदानपूर्वक मरण

मधुसूदनने विनयसे सिर झुकाकर उनसे कहा—हे मेरे माता-पिता, तुम्हें कौन चिन्ता है? मै तो तुम्हारा दिया-अन्न खाता हूँ। जगत्में करुणावान् सज्जन क्यों न अति माननीय और वन्दनीय होवें? किन्तु वे दोनों (माधव और उसकी गृहिणी) अपने हृदयमें मात्सर्य (डाह) रखते हुए मधुसूदनकी ऋद्धिको अपने मनमें सहन नहीं करते थे। एक दिन माधवने रोषसे अकस्मात् प्रयागका गमन कर दिया। वहाँ उसे एक कृश तपस्वीका दर्शन हुआ और वह एक क्षण उसके ५ चरणोंके समीप बैठा। माधवने यतिवरसे पूछकर निष्ठुरभावसे तपश्चरण ले लिया। उसने सलेखना-द्वारा अपने शरीरको क्षीण कर डाला और वह तत्क्षण निदान करके मरा कि मै मथुरापुरीके मधु-सूदनका प्यारा पुत्र होऊँ और फिर उसे महान् सुख देकर पीछे मेरा मरण हो जाये।

७—मधुसूदनका पुत्र-प्रेम व मोहका निराकरण

इस प्रकार माधव कुछ दिनों पश्चात् मधुसूदनके सुन्दर गृहमें उत्पन्न हुआ। बचपनमें ही वह जनप्रिय, सकल कलाओंका निधान तथा लोगोंमें प्रधान हो गया। फिर एक दिन वह विप्रका छोटा-सा पुत्र यमदूतों-द्वारा अपहृत (मृत्युको प्राप्त) हो गया। मधुसूदन पुत्रके शरीरका अनु-सरण करता हुआ, सिर धुनता हुआ, भूतलपर गिर पड़ा। वह उसका कण्ठ छोड़ता ही नहीं था। स्वयं मरने जाता व रोता हुआ एक क्षण भी नहीं रुकता था। वह बेचारा समझानेपर भी ५ समझता ही नहीं था। अपने पुत्रके ऊपर उसने ऐसा अनुरागभाव बाँधा था। पुत्रके दुःखसे वह ब्राह्मण उसीमें चित्त लगाये मरनेके लिए प्रयागको गया। दुःखाग्निसे दग्ध होकर जब वह मरने लगा, तब किसी खेचरने उसे रोका। उस खेचरने उसे उस माधवका वृत्तान्त कहा जो तपश्चरण करके निदानपूर्वक मरा था। उसने कहा—हे मधुसूदन, माधवका वही जीव मथुरा नगरीमें तुम्हारा मनोहर पुत्र हुआ था। १०

८—नरवाहनदत्तका आत्मनिवेदन

विद्याधरका यह वचन सुनकर मधुसूदन शोक छोड़ अपने घर लौट गया। विद्याधर नर-वाहनदत्तसे बोला—हे नरेन्द्र, सभी नरेन्द्र और सुरेन्द्र शोकसे विडम्बित हुए हैं। इसलिए शोक नहीं करना चाहिए।

तत्पश्चात् अवसर पाकर वहींपर बैठे हुए किसी एक खेचरने राजा नरवाहनदत्तसे पूछा—हे दिव्यदेह नरपति, आपने इस विशाल पृथ्वीको किस प्रकार अपने वशीभूत किया? ५ तब उस मणिरत्नमयी मुकुटसे मण्डित सिरवाले खेचरको नरेश्वरने कहा—कुमारकालमें मै सबल-शरीर था। कौन ऐसी मानिनी स्त्री थी, जो मुझसे स्नेह न करे। मेरे नामसे शत्रुजन थर्रा जाने

महो णामें अरिणर थरहरंति भयभीयचित्त वणु अणुसरंति ।
जा अच्छउँ हउँ सहुँ सयणरेण[1] महो घरिणि ताव णिय खेयरेण[2] ।
घत्ता—तहे तणएँ विओएँ दुम्मियउ विहलघलु कह व ण रइँ करमि ।
किं देसहो हुतउ णीसरमि कि केत्तहो जाइवि हउँ मरमि ॥ ८ ॥ 10

९

How he meets a young woman near Paithan

इउ चिंतिवि सयलु वि णियघराउ गउ सुरसरितीरु सुरोहराउ ।
पइठाणसमीवइँ सुहणिवासु मइँ जिणवरु देक्खिवि दुहविणासु ।
पणवेप्पिणु जिणु वीसमिउ तेत्थु कुसुमाउहसरु पइसइ ण जेत्थु ।
णिद्दाभरमउलियलोयणेण पडिसद्दु सुणिउ तहिँ तक्खणेण ।
किं सोवहि कुमर विरत्तचित्तु तुह तुरिउ मिलेसइ णियकलत्तु । 5
परिफुरियउ तं महो वयणे राउ णीसरियउ हउँ जिणमंदिराउ ।
अवलोइय चउदिसु मणहरीय ण वि णयणहिँ दिट्ठिय सुंदरीय ।
णीसरिवि गयउ उववणहो जाव तहिँ दिट्ठी सुंदरि का वि ताव ।
घत्ता—मुहकमलु करंती करकमले अंगुलिएँ लिहती धरणियलु ।
कोमलवयणपउत्तियहिँ सा परिपुच्छिय मइँ सयलु ॥ ९ ॥ 10

१०

The woman tells him about her love troubles

तुहुँ सुंदरि अच्छहि कि वणम्मि समणयणहिँ झायहि किं मणम्मि ।
सण्णाणसरोरुहखरदिणिंद[1] ता ताइँ पयासिउ महो खगिंद ।
विज्जाहरपव्वयदाहिणंगे पुरि अत्थि जयंती सिंधुसिंगे ।
तहिँ धूमकेउ विज्जाहिणाहु[2] घरि घरिणि सुणंदा अत्थि ताहु[3] ।
अवरुप्परु विरइयतिलरिणाहँ हउँ धूव हूव तहु विहिँ जणाहँ । 5
एक्कहिँ दिणे सहियहिँ अणुसरेवि एत्थागय कीला मणे धरेवि ।
णाणाविहकीलाकीलिरीहिँ सहुँ सहियहिँ खेलमि सुंदरीहिँ ।
जा कील करेविणु सुह ठियाउ ता खेयरु मयणामरु इहाउ ।
घत्ता[4]—सो पेक्खिवि मयणेँ हउँ णडिय वायाहय केलि व कंपविय ।
महो हियउ मुणतिएँ सहयरिएँ तहो सहयरु जाइवि अणुसरिय ॥१०॥ 10

११

How she had fallen in love with a Vidyādhara

सो पुच्छिउ ताएँ महासईएँ को अक्खहि प्रहु णिम्मलमईएँ ।
सो भणइ एत्थु विजयड्ढे रम्मि सिरिउप्पलखेडि मणोहरम्मि ।
तहिँ खेयरु हूयउ पउमएउ तहो तणउ तणउ प्रहु मयणवेउ ।
उत्तरवेयड्ढहो गुणणिकेउ मणवेयहो णंदणु पवणवेउ ।
तहो णेहएँ तहिँ किर जाइ जाव ता तुम्हइँ दिट्ठउ एहु ताव । 5

---

८ १ D सहयरेण, N सह यरेण २ SD मइ

१० १ D] N अण्णाण २ D विज्जाहिवासु ३ D तासु ४ N में इससे पूर्व हासियेमें जोडा गया है—विणु सुयणहु तहो को करइ णेहु. जाणेविणु वल्लह परममोहु

थे और चित्तमें भयभीत होकर वनका अनुसरण करते थे। इस प्रकार जब मै अपने स्वजनों-सहित रहता था, तब एक खेचर मेरी गृहिणीका अपहरण कर ले गया। उसके वियोगसे दुखित होकर विह्वल हुआ मै किसी प्रकार भी अपने चित्तको प्रसन्न नहीं कर पाता था (और ऐसा विचार होता १० था) कि क्या मै देशसे निकल जाऊँ, अथवा कहीं जाकर आत्मघात कर लूँ ?

९—नरवाहनदत्तका पत्नी-वियोगमें भ्रमण

ऐसा सब चिन्तन कर मै अपने घरसे निकल पड़ा और उस सुरसरि (गोदावरी) के तीरपर जा पहुँचा जो सुरगणोंको प्यारा है। प्रतिष्ठान (पैठण) के समीप मुझे सुखके निवास व दुःखके विनाशक जिनवरके दर्शन हुए। जिनेन्द्रको प्रणाम कर मैं उसी स्थलपर (मन्दिरमें) विश्राम करने लगा, जहाँ कामदेवका बाण प्रवेश नहीं करता। जब निद्राके भारसे मेरे नेत्र मुँद रहे थे, तभी मैंने उसी क्षण एक शब्दध्वनि सुनी—'हे कुमार, तू विरक्त चित्त हुआ क्यों सो रहा है; शीघ्र ही ५ तुझे अपनी भार्या मिल जायेगी।' इससे मेरे मुखपर रंग आ गया, और मै जिनमन्दिरसे निकल पड़ा। मैने चारों दिशाओंमें देखा किन्तु वह मनोहर सुन्दरी मेरी आँखोको कहीं दिखायी न दी। वहाँसे निकलकर जब मै उपवनमें पहुँचा, तब वहाँ मुझे कोई एक सुन्दरी दिखायी पड़ी। वह अपने मुखकमलको हस्तकमलपर करके अँगुलीसे भूतलपर कुछ लिख रही थी। मैंने कोमल वचन-प्रोक्तियों-द्वारा उससे सब बात पूछी। १०

१०—विद्याधरीका आत्म-निवेदन

मैंने पूछा—हे सुन्दरि, तू इस वनमें क्यों बैठी है, और शान्त नेत्रोंसे अपने मनमें क्या ध्यान कर रही है ? तब, हे सज्ञानरूप कमलोंके प्रखर सूर्य खगेन्द्र, उसने मुझपर प्रगट किया कि विद्याधर पर्वतके दक्षिण भागमें सिन्धु-शिखरपर जयन्ती नामकी पुरी है, वहाँ धूमकेतु नामका विद्याधर राजा रहता है। उसके घरमें उसकी सुनन्दा नामकी गृहिणी है। परस्पर स्नेह करनेवाले उन दोनोंकी मैं पुत्री उत्पन्न हुई। एक दिन अपनी सखियोंके साथ चलकर मनमें क्रीड़ाकी इच्छा ५ करके यहाँ आ पहुँची और नानाप्रकारकी क्रीडाओंमें आसक्त हुई अपनी सुन्दरी सखियोंके साथ खेलने लगी। जब क्रीड़ा करके हम सब सुखसे बैठी थीं, तब मदनामर नामका खेचर यहाँ आया। उसे देखकर मैं मदनसे विह्वल हो गयी, और पवनसे आहत केलीके समान काँप उठी। मेरे हृदय को जानकर मेरी सहचरीने जाकर उस विद्याधरके सहचरका अनुसरण किया।

११—उसके प्रेमी विद्याधरका परिचय

उस निर्मलमति महासखीने उस मदनामरके सखासे पूछा—कहिए, ये कौन है ? उसने कहा—इस रम्य विजयार्धपर मनोहर श्री उत्पलखेड नगरमें पद्मदेव नामका खेचर हुआ है, उसीका यह मदनदेव नामका पुत्र है। उत्तर विजयार्धमें मनवेगका गुणनिधान पुत्र पवनवेग रहता है। उसीके स्नेहसे यह वहाँ जा रहा है। इसी बीच तुमने उसे यहाँ देख लिया है। उसने भी मेरे

परिपुच्छिवि सो कुलु महो महंतु मणु मेरउ णेहलु सो लहंतु ।
इउ कहिवि ताहें गय खयर बे वि मयणामरु आयउ पुणु वलेवि ।
तहो लज्जएँ ण वि महो वयणि वाणि वोल्लंति वि तें सहुँ वहउँ काणि ।
ता सहियएँ भणिउ तुरंतियाएँ भो सुंदर णिवसहि सहुँ पियाएँ ।
घत्ता—णियकंठउ लेविणु णियकरइँ मुत्ताहलमाला सुंदरिय 10
जा घल्लइ कंठइँ महो तणइँ ता कोक्कहुँ आइय सहयरिय ॥ ११ ॥

१२

How her lover was turned in to a parrot by the curse of an ascetic girl whose modesty he outraged.

ता केउमइएँ हउँ घरहो णीय विवणम्मण घरें दुक्खेण थीय ।
पुणु वलिवि आय हउँ पंथ जाव मयणामरु मइँ ण वि दिट्ठु ताव ।
तहो तणउ विरहु विज्जाहरीएँ परिअक्खिउ काएँ वि दुहहरीएँ ।
सुविरुद्धवयणु पुणु पुणु लवतु उद्धाणणु विहलघलु भमतु ।
विरहाणलताविउ पइँ सरंतु रिसिकण्णहें लग्गउ सो तुरंतु । 5
ता तुरिउ विलक्खी हूइयाएँ मयणामरु सूयउ कियउ ताएँ ।
तहें सहियएँ धम्में तरलियाएँ सा भणिय तुरतिय करुणियाएँ ।
तुहुँ देवि अणुग्गहु करहि तेव णियभज्जहे सहुँ कीलेइ जेव ।
घत्ता—ता भणियउ ताएँ महासइएँ णरवाहणदत्तइँ ज ढिवसि ।
परिणेवउ रूउ मणोहरउ रइविब्भमणामउ लद्धजसि । ॥ १२ ॥ 10

१३

Another woman arrives there with a portrait

हे सहियरे सुंदरु ललियदेहु णरु होसइ तइयहुँ पुणु वि एहु ।
हे सुंदर इउ महो ताईं कहिउ इउ भणिवि मइँ वणवासु गहिउ ।
आयण्णिवि त हउँ थियउ जाव लीलावइ आइय तेत्थु ताव ।
तह करयले णिहियउ पडु विचित्तु पेच्छतहँ मोहइ जणहँ चित्तु ।
परिपुच्छिय सा मइँ उज्जएण एत्थागय तुहुँ कज्जेण केण । 5
ता भणिउ ताएँ सुणि पवर वीर जणवल्लह सुंदर मेरुधीर ।
विजयड्ढहो दाहिणसिंधुतीरे सुरखेयरपरिमलवरसमीरे ।
रयणाण णिलउ णयणाहिरामु तहिँ अत्थि णयरु कणयउरु णामु ।
घत्ता—तहिँ राणउ णामें हंसरहु विज्जाहरणियरहिँ परियरिउ ।
हसिणिएँ हंसु व मणहरउ सो विमलाएविएँ अणुसरिउ ॥ १३ ॥ 10

१४

She gives information about his lost wife

तें आणिय माणवि हरिवि का वि अहिलासहो कह व ण तहो गया वि ।
तहो मंदिरे अच्छइ सरियधम्म जा मयणकरंडी रयणरम्म ।
ण वि जपिउ केण वि समउ ताएँ णियरमणु अलेहिउ तग्गयाएँ[3] ।

११ १ DN णियकुलु
१४ १ J S माणिवि. २ DN तग्गाया वि ३ N भग्गयाएँ

महान् कुलकी बात पूछ ली। मेरे स्नेहल मनको लेकर वह खेचर, तथा पूर्वोक्त वार्तालाप करके ५
उसका वह सहचर, ये दोनों विद्याधर वहाँसे चले गये। मदनामर पुन. लौटकर आया। किन्तु
लज्जावश मेरे मुखसे वाणी ही नहीं निकली। उसके साथ बोलनेमें भी मुझे लाज लगी। तब मेरी
सखीने तुरन्त उससे कहा—हे सुन्दर, प्रियाके साथ बैठिए। इसपर उसने अपने हाथसे अपने कण्ठ
की सुन्दर मोतियोंकी माला ज्यों ही मेरे कण्ठमें डाली, त्यों ही एक सहचरी मुझे बुलाने आ पहुँची। १०

१२—ऋषिकन्या- शाप व भविष्यवाणी

फिर केतुमती मुझे घर ले गयी। मैं घरमें उदास मनसे दु:खपूर्वक रही। मै जब पुनः
लौटकर उसी मार्गपर आयी, तब मुझे वहाँ मदनामर दिखायी नहीं दिया। उसके विरहकी बात एक
कोई दु:खहारिणी विद्याधरीने मुझे सुनायी कि—मदनामर पुनः-पुनः बहुत विरुद्ध वचन बोलता
हुआ (असबद्ध प्रलाप करता हुआ) मुँह उठाये विह्वल होकर घूमता हुआ, विरहानलसे सतप्त
होकर तेरा स्मरण करता हुआ, शीघ्र एक ऋषि-कन्यासे जा लगा। उस कन्याने तुरन्त घबराकर ५
(अपने शाप-द्वारा) मदनामरको सूआ बना दिया। तब उसकी सखीने धर्मसे तरलित होकर
तुरन्त करुणापूर्वक ऋषि-कन्यासे कहा—हे देवि, तुम इतना तो अनुग्रह करो कि यह अपनी भार्यासे
क्रीड़ा कर सके। तब उस महासतीने कहा कि जिस दिन नरवाहनदत्तसे मनोहर रूपवती व
यश प्राप्त रतिविभ्रमा नामकी कन्यासे, विवाह होगा—

१३—नरवाहनदत्तके चित्रपट लेकर लीलावतीका आगमन

हे सखि, तब यह पुनः सुन्दर और ललित देह मनुष्य हो जावेगा। हे सुन्दर, (नरवाहन-
दत्त राजा)—यह बात उस विद्याधरीने मुझसे कही। और उसीको मानकर मैंने वनवास ग्रहण कर
लिया। (नरवाहनदत्त विद्याधरसे कहता है कि) यह सुनकर मै जब वहीं बैठा था, तब वहाँ
लीलावती आयी। उसके हाथमें एक सुन्दर चित्रपट था, जो देखनेवाले लोगोंके चित्तको मोहित
करता था। मैंने उद्यत होकर उससे पूछा कि तू किस कार्यसे यहाँ आयी है? तब उसने कहा— ५
"हे प्रवरवीर, जनवल्लभ, सुन्दर, मेरुधीर, सुन। विजयार्द्धके दक्षिणमें सिन्धुके तीरपर जहाँ देवों
और खेचरों (को प्रसन्न करनेवाली) उत्तम सुगन्धित वायु चलती है, वहाँ रत्नोंका निधान, नयना-
भिराम कनकपुर नामका नगर है। वहाँ विद्याधरोंके समूहोंसे सेवित हसरथ नामका राजा है। वह
विमला देवीसे युक्त ऐसा मनोहर दिखायी देता है जैसा हसिनीके साथ हंस।

१४—नरवाहनदत्तकी पत्नी मदनमंजूषाका पता

वह किसी एक मानवीको हरकर ले आया है। किन्तु उस मानवीको उसके प्रति कोई
अभिलाषा नहीं है। वह नयनरम्य मदनकरंडी (मदनमजूषा) उसके महलमें धर्मका अनुसरण
करती हुई रहती है। वह किसीके साथ बातचीत भी नहीं करती। उसने चुपचाप मन लगाकर

सो पेक्खिवि णियमणि रमइ जाव वेगवइ सुखेयरि आय ताव ।
परिपुच्छिय सरमंजूस ताएँ को लिहियउ पडेँ एहु भणहि माए । 5
किं खेयरु किण्णरु सुरु णरो वि किं वम्महु सवियगुणभरो वि ।
वेगवइहे कहियउ ताएँ सारु णरवाहणु महु पिउ एहु चारु ।
अवलोइउ जा त फलहु लेवि धरणियले णिवडिय तणु धुणेवि ।
घत्ता—परिपुच्छिय जाणिवि वेगवइ किउ हासउ कणयमईए तहे ।
ण वि रुच्चइ कवणु वि ताहे वरु रूवेण वि दिट्टइँ गय धरहे ॥ १४ ॥ 10

१५

Naravahanadatta is attracted by the portrait brought by her

तं कोडएँ देक्खहुँ लद्धसलहु लेवोचिउ कणयमईए फलहु ।
परिभावइ जा पुणु त मणम्मि धरणियले णिवडिय सा खणम्मि ।
दुक्खेण सचेयण कह व हूअ परिपुच्छिय सहियहि सरलभूअ ।
मुच्छाइँ पवण्णी सहिए काइँ तुहुँ दुक्खइँ भणु हिययम्मि जाइँ । 5
सा भणइ बहिणि इहु पडु विचित्तु महो कीयउ एण णिरत्थु चित्तु ।
किं सुरउ माइ कि होइ कामु लइ भावइ एयहो तणउ णामु ।
तहो विरहेँ अइविमणम्मणीहि हउँ पेसिय ताहिँ मि विहिँ जणीहिँ ।
चिरु चारणमुणिणा जं भणीउ त ताहि मि णियमणि परिगणीउ ।
रइविब्भम जो परिणेइ सतु सो होसइ अम्हहँ तणउ कंतु । 10
सा तुरिउ लिहाविय पडे सुराय सो पडु लएवि हउँ एत्थु आय ।
घत्ता—जा पडु वि लएविणु णियकरइँ पुणु भाविउ रूउ मणोहरउ ।
ता मुच्छएँ रुभिउ हियउ महो हे खेयर किं पि ण सभरउ ॥ १५ ॥

१६

Naravahanadatta concludes his story by saying that he went and married all those girls

सहियाण मज्झे णिम्मलमईएँ तहिँ णीयउ हउँ लीलावईएँ ।
ता जाइवि गरुवइँ उच्छवेण रइविब्भम परिणिय मइँ णिवेण ।
वेयमइएँ सहुँ कंचणमई वि वेवाहिय पुणु लीलावई वि ।
अवराइँ वि पंचसयाइँ तेत्थु वेवाहियाइँ थिउ मयणु जेत्थु । 5
खेयरइँ तेण जा हरिवि णीय महो मिलिय घरिणि सुमणोहरीय ।
ससाहियाइँ खेयरसयाइँ उप्पाइयाइँ अरिमणे भयाइँ ।
संसिद्धी मेइणि जलहि जाम जहिँ वसहि णिरतर विउल गाम ।
आणाविउ जणवइ ताउ देव कउ पट्टबधु जणविहियसेव ।
घत्ता—इउ वइयरु अक्खिउ खगवइहे परिपुच्छिउ पइँ हउँ जं सयलु ।
कणयामरद्धाणइँ जणु थविउ परिवंदिउ मइँ जिणपयजुयलु ॥ १६ ॥ 10

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयसे पचकल्लाणविहाणकप्पतरु-फलसपत्ते णरवाहणदत्त-अक्खाण-आयण्णणो णाम छट्ठो परिच्छेउ समत्तो ।

संधि ॥ ६ ॥

---

१४ ४] वम्मह सविउ ५ प्रतिषु 'अवलोइय'.
१५ १] लेहाविउ २ N पवण्णा D] S इह फलहि चित्तु ४ D N मणउ ५ N मुच्छिउ.
१६ १] ताव २] किउ ३] S खगवयहो

अपने पतिका चित्र लिखा। उसे देख-देखकर जब वह अपने मनमें प्रसन्न हो रही थी, तभी वेगवती नामकी सुन्दर खेचरी वहाँ आ पहुँची। उसने स्मरमजूषा (मदनमंजूषा) से पूछा—आपने यह कौन लिखा है, (किसका चित्र बनाया है) मुझे कहिए तो ? यह कोई खेचर है, या किन्नर, या देव अथवा मनुष्य, या प्रत्यंचापर बाण चढ़ाये मन्मथ ही है ? तब मदनमंजूषाने वेगवतीसे सार बात कही—यह मेरा सुन्दर पति नरवाहन है। उसने उस फलकको लेकर ज्यों ही देखा, त्यों ही वह शरीर धुनकर भूतलपर गिर पड़ी। वेगवतीको मूर्छित हुई जानकर कनकमतीने उसका हास्य किया—इसे तो कोई वर रुचता ही नहीं था, और अब रूप देखने मात्रसे धरापर पड़ रही।

१५—रतिविभ्रमाका चित्रपट

फिर कौतुकवश देखनेके लिए उस प्रशसनीय फलकको कनकमतीने ले लिया। ज्यों ही उसने अपने मनमें उसकी परिभावना की, त्यों ही उसी क्षण वह भी धरणीतलपर गिर पड़ी। जब वह दुःखसे किसी प्रकार सचेत हुई, तब उस सरलबाहुसे सखियोंने पूछा—हे सखि, तू क्यों मूर्च्छा को प्राप्त हो गयी ? तेरे हृदयमें जो दुःख हों वे कह। उसने कहा—हे बहन, इस फलकपर जो चित्र लिखा है, उसने मेरे चित्तको निरर्थक (विवश) कर डाला। हे माता, यह कोई सुर है, या काम ? मुझे इसका नाम बहुत भाता है। (पटधारिणी लीलावती नरवाहनदत्तसे कहती है कि) उसीके विरहसे अति उदासमन होकर उन दोनों विद्याधरियोंने मुझे भेजा है। बहुत पहले जो चारण मुनिने कहा था, वह उन्होंने अपने मनमें सोच रखा है—जो कोई रतिविभ्रमाका परिणय करेगा, वह हमारा भी पति होगा। तब उस रतिविभ्रमाका सुन्दर चित्रपट लिखाया गया और उस पटको लेकर मैं यहाँ आयी हूँ।" जब उस पटको अपने हाथमें लेकर मैंने (नरवाहनदत्तने) उस मनोहर रूपको देखा तब मेरा हृदय मूर्च्छासे रुद्ध हो गया, और, हे खेचर, मुझे कुछ भी स्मरण न रहा।

१६—पति-पत्नीका पुनर्मिलन व नरवाहनकी समृद्धि

तब वह निर्मलमति लीलावती मुझे उन सखियोंके बीच ले गयी। वहाँ जाकर बड़े उत्साहसे मैंने रतिविभ्रमाका परिणय कर लिया। वेगमतीके साथ कचनमतीको भी विवाहा, और फिर लीलावतीको भी। अन्य पाँच-सौ कन्याओंको भी वहीं विवाहा, जहाँ मदनका निवास बन गया था। जिसे वह खेचर हरकर ले गया था, वह मेरी सुमनोहर गृहिणी भी मुझे मिल गयी। मैंने सैंकड़ों खेचरोंको वशीभूत किया, शत्रुके मनमें भय उत्पन्न किये, और जहाँ निरन्तर विपुल ग्राम बसे हुए हैं, ऐसी जलधि-पर्यन्त मेदिनी मेरे अधीन हो गयी। तब, हे लोकसेवित देव, मुझे जनपदमें लाया गया और मेरा पट्टबन्ध (राज्याभिषेक) कर दिया गया। हे खेचर, तूने जो कुछ मुझसे पूछा, वह सब वृत्तान्त मैंने सुना दिया। मैंने कनक और अमरदानसे लोगोंको सन्तुष्ट कर स्थापित किया, तथा जिनेन्द्रके चरण-युगलकी वन्दना की।

इति-मुनि-कनकामर विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान-कल्पतरु-फलसम्पन्न करकण्डमहाराज-चरित्रमें नरवाहनदत्त-आख्यानश्रवण नामक छठा परिच्छेद समाप्त।

१

The story of good omen A Brahmin sees a good omen and dances over it

करकंड सुबंधव भणमि पईं[1] लइ देहि पयाणउ तुरिउ तुहुँ।
अइ[2] सउणु सुहावउ सुंदरउ तहु[3] फलइं लहेसहि णारिसुहु॥
भणु कवणहो सँउणहो फलईं धीर   महो णारि हवेसइ खयरवीर।
तहो कहइ खयरु मुणि पुरउ पेक्खु   फलु देइ णिरुत्तउ दिव्वचक्खु
कहि सउँणहो[4] फलु संपत्तु केण   ता कहइ खयरु संपत्तु जेण। 5
को वि बभणु भुक्खउ खीणदेहु   संचल्लिउ देसहो मुइवि गेहु।
तें काणणि जइवरु एक्कु दिट्ठु   तहो तोसु महत्तउ मणे पइट्ठु।
एहु[2] सउणु सुहावउ मणि धरेवि   सो णच्चिउ उब्भा कर करेवि।
खेलंतु अहेडउँ[5] रायउत्तु   ता तेत्थु खणद्धें को वि पत्तु।
एक्कल्लउ अडविहिँ हुट्ठमाणु   तें दिट्ठउ बंभणु णच्चमाणु। 10
घत्ता—भो विप्प भडारा भणमि पईं किं रण्णे पणच्चहि मोक्कलउ।
अह लद्धउ किं पि मणोहरउ किं भायर हूवउ वावलउ॥ १॥

२

A prince acquires the good omen in exchange for his ornaments and horse

तहो कहइ दिएसरु सरलचित्त   णउ वायगहिउ हउँ होमि मित्त।
गयभूसणणिवसणजंतएण   आणंदमहारसु पत्तएण।
पंचाणणु णिवसइ जहिँ समत्थु   मइँ सवणु सुहावउ लद्धु एत्थु।
तहो फलइँ लहेसमि रायलच्छि   भुंजेसमि मेइणि हरियकच्छि।
ता कुमरईं तुरिउ पउत्तु भट्ट   उज्झाय तुहारउ हउँ मि चट्ट। 5
महो देहि भडारा सवणु एहु   लइ भूसणु घोडउ दिव्वदेहु।
आहरणसमाणउ तुरउ लेवि   गउ विप्पु घरहो तहो सवणु देवि।
अहिणवमुणालवेल्लहलदेहु   सचल्लिउ कुमरु पइण्णणेहु।
घत्ता—जिणसासणदेविएँ तहो पुरउ णियविज्जएँ णिम्मिउ ज जि तणु।
तं मेल्लिवि कीयउ अवरु पुणु पेक्खंतहँ पसरइ जेण मणु॥ २॥ 10

---

१ १ DJ लइ २ D J N सवणु ३ प्रतिषु 'वहु' ४ D J N सवणहो ५ S अहेडुउ
२ १ D में इससे पूर्व पाठ है—विप्पहु वयणाउ वि गहिउ सट्टु

१—शुभ-शकुन

खेचरने कहा—हे सुबन्धु करकण्ड, मैं आपसे कहता हूँ कि आप यहाँसे तुरन्त प्रयाण कर दीजिए, क्योंकि इस समय बहुत सुन्दर सुहावना शकुन हुआ है, जिसके फलसे तुम्हें नारीसुखका लाभ होगा। (इसपर करकण्डने पूछा) कहिए—हे धीर, खेचरवीर, कौनसे शकुनके फलसे मुझे नारीकी प्राप्ति होगी। इसपर खेचरने कहा—देखिए अपने सम्मुख दिव्यचक्षु मुनिको; यह शकुन अवश्य अपना फल देगा। तब करकण्डने पूछा, कहिए, किसने इस शकुनका ऐसा फल पाया ५ है? तब खेचरने इस फल-प्राप्तिकी कथा कही। कोई एक भूखा, क्षीण-शरीर ब्राह्मण घर छोडकर विदेशको चल पड़ा। उसने वनमें एक यतिवरको देखा, जिससे उसके मनमें महान् सन्तोष हुआ। इसी सुहावने शकुनको मनमें धारण कर वह हाथ ऊँचे उठाकर नाचने लगा। उसी समय क्षणार्द्धमें वहाँ आखेट खेलता हुआ कोई राजपुत्र (क्षत्रियकुमार) आ पहुँचा। उसने अटवीमें उस ब्राह्मण-को अकेले हर्षसे नाचते हुए देखा। यह देखकर उसने पूछा—हे भट्टारक विप्र, मै तुमसे पूछता १० हूँ कि तुम मुक्तभावसे इस अरण्यमें क्यों नाच रहे हो? क्या तुम्हे कोई मनोहर वस्तु प्राप्त हुई है, अथवा क्या, हे भाई, तुम बावले हो गये हो?

२—शकुनके फ उदाहरण

तब राजपुत्रसे उस द्विजेश्वरने कहा—हे सरलचित्त मित्र, मै वातगृहीत (बावला) नहीं हुआ। बिना भूषण-वस्त्रके जाते हुए, व आनन्द महारसको पाते हुए यहाँ, जहाँ प्रबल पंचानन निवास करता है, मैने एक सुहावना शकुन पाया है। उस शकुनके फलसे मुझे राज्यलक्ष्मीका लाभ होगा, और मै हरी-भरी पृथ्वीका भोग करूँगा। यह सुनकर उस राजकुमारने तुरन्त भट्टसे कहा—हे उपाध्याय, मै तो तुम्हारा शिष्य हूँ; हे भट्टारक, यह शकुन आप मुझे दे दीजिए, और ५ मेरे आभूषण तथा दिव्यदेह घोडेको आप ले लीजिए। इसपर वह विप्र आभरणों-सहित घोडेको लेकर, तथा अपना शकुन उस राजपुत्रको देकर, अपने घर चला गया। इधर नये मृणालके समान कोमल देहवान् कुमार प्रसन्न होकर आगे बढ़ा। तब उसी समय जिनशासन देवीने उसके सम्मुख अपनी विद्यासे जो शरीर निर्माण किया था, उसे छोड, अन्य ऐसा शरीर धारण किया जिससे देखनेवालोंका मन उसकी ओर आकृष्ट हो गया।

१०

संधि—७

१

The story of good omen A Brahmin sees a good omen and dances over it

करकंड सुबंधव भणमि पईं[1] लइ देहि पयाणउ तुरिउ तुहुँ।
अइ[2] सउणु सुहावउ सुंदरउ तहु[3] फलइं लहेसहि णारिसुहु॥
भणु कवणहो सँउणहो फलइँ धीर महो णारि हवेसइ खयरवीर।
तहो कहइ खयरु मुणि पुरउ पेक्खु फलु देइ णिरुत्तउ दिव्वचक्खु
कहिं सउँणहो फलु संपत्तु केण ता कहइ खयरु संपत्तु जेण। 5
को वि बभणु मुक्खउ खीणदेहु संचल्लिउ देसहो मुइवि गेहु।
तें काणणि जइवरु एक्कु दिट्ठु तहो तोसु महंतउ मणे पइट्ठु।
एहु[2] सउणु सुहावउ मणि धरेवि सो णच्चिउ उब्भा कर करेवि।
खेलतु अहेडउँ रायउत्तु ता तेत्थु खणद्धें को वि पत्तु।
एक्कल्लउ अडविहिँ तुट्ठमाणु तें दिट्ठउ बंभणु णच्चमाणु। 10
घत्ता—भो विप्प भडारा भणमि पइं किं रण्णे पणच्चहि मोक्कलउ।
अह लद्धउ किं पि मणोहरउ किं भायर हूवउ वावलउ॥ १॥

२

A prince acquires the good omen in exchange for his ornaments and horse

तहो कहइ दिएसरु सरलचित्त णउ वायगहिउ हउँ होमि मित्त।
गयभूसणणिवसणजतएण आणंदमहारसु पत्तएण।
पचाणणु णिवसइ जहिँ समत्थु मइँ सवणु सुहावउ लद्धु एत्थु।
तहो फलइँ लहेसमि रायलच्छि भुंजेसमि मेइणि हरियकुच्छि।
ता कुमरइँ तुरिउ पउत्तु भट्टु उज्झाय तुहारउ हउँ मि चट्टु। 5
महो देहि भडारा सवणु एहु लइ भूसणु घोडउ दिव्वदेहु।
आहरणसमाणउ तुरउ लेवि गउ विप्पु घरहो तहो सवणु देवि।
अहिणवमुणालवेल्लहलदेहु सचल्लिउ कुमरु पइण्णणेहु।
घत्ता—जिणसासणदेविएँ तहो पुरउ णियविज्जएँ णिम्मिउ जं जि तणु।
त मेल्लिवि कीयउ अवरु पुणु पेक्खंतहँ पसरइ जेण मणु॥ २॥ 10

---

१ १ DJ लइ २ DJN सवणु ३ प्रतिषु 'वहु'. ४ DJN सवणहो ५ S अहेडउ
२ १ D में इससे पूर्व पाठ है—विप्पहु वयणाउ वि गहिउ सट्ठ

सन्धि—७

१—शुभ-शकुन

खेचरने कहा—हे सुबन्धु करकण्ड, मैं आपसे कहता हूँ कि आप यहाँसे तुरन्त प्रयाण कर दीजिए, क्योंकि इस समय बहुत सुन्दर सुहावना शकुन हुआ है, जिसके फलसे तुम्हे नारीसुखका लाभ होगा। (इसपर करकण्डने पूछा) कहिए—हे धीर, खेचरवीर, कौनसे शकुनके फलसे मुझे नारीकी प्राप्ति होगी। इसपर खेचरने कहा—देखिए अपने सम्मुख दिव्यचक्षु मुनिको, यह शकुन अवश्य अपना फल देगा। तब करकण्डने पूछा, कहिए, किसने इस शकुनका ऐसा फल पाया ५ है? तब खेचरने इस फल-प्राप्तिकी कथा कही। कोई एक भूखा, क्षीण-शरीर ब्राह्मण घर छोडकर विदेशको चल पडा। उसने वनमें एक यतिवरको देखा, जिससे उसके मनमें महान् सन्तोष हुआ। इसी सुहावने शकुनको मनमें धारण कर वह हाथ ऊँचे उठाकर नाचने लगा। उसी समय क्षणार्द्धमें वहाँ आखेट खेलता हुआ कोई राजपुत्र (क्षत्रियकुमार) आ पहुँचा। उसने अटवीमें उस ब्राह्मण-को अकेले हर्षसे नाचते हुए देखा। यह देखकर उसने पूछा—हे भट्टारक विप्र, मै तुमसे पूछता १० हूँ कि तुम मुक्तभावसे इस अरण्यमें क्यों नाच रहे हो? क्या तुम्हें कोई मनोहर वस्तु प्राप्त हुई है, अथवा क्या, हे भाई, तुम बावले हो गये हो?

२—शकुनके फ उदाहरण

तब राजपुत्रसे उस द्विजेश्वरने कहा—हे सरलचित्त मित्र, मै वातगृहीत (बावला) नहीं हुआ। बिना भूषण-वस्त्रके जाते हुए, व आनन्द महारसको पाते हुए यहाँ, जहाँ प्रबल पचानन निवास करता है, मैने एक सुहावना शकुन पाया है। उस शकुनके फलसे मुझे राज्यलक्ष्मीका लाभ होगा, और मै हरी-भरी पृथ्वीका भोग करूँगा। यह सुनकर उस राजकुमारने तुरन्त भट्टसे कहा—हे उपाध्याय, मै तो तुम्हारा शिष्य हूँ; हे भट्टारक, यह शकुन आप मुझे दे दीजिए, और ५ मेरे आभूषण तथा दिव्यदेह घोड़ेको आप ले लीजिए। इसपर वह विप्र आभरणो-सहित घोड़ेको लेकर, तथा अपना शकुन उस राजपुत्रको देकर, अपने घर चला गया। इधर नये मृणालके समान कोमल देहवान् कुमार प्रसन्न होकर आगे बढा। तब उसी समय जिनशासन देवीने उसके सम्मुख अपनी विद्यासे जो शरीर निर्माण किया था, उसे छोड, अन्य ऐसा शरीर धारण किया जिससे देखनेवालोंका मन उसकी ओर आकृष्ट हो गया। १०

३

The prince finds divine companions

तहो अग्गइँ हूईं हरिणणेत्त ण राहवघरिणि सणेहचित्त ।
हउँ तुज्झु कुमर अणुमग्गयारि संहूई तुह,अरिपलयकारि ।
सो ताएँ समउ गउ अडविमज्झि णरखेयरकिंणरसुरअसज्झि ।
तहिँ कुउ चिराणउ तेहिँ दिट्ठु हिययम्मि महाडरु णउ पइट्ठु ।
सहुँ दिट्ठउ विसहरु दद्दुरेण जुज्झतउ तहिँ णिट्ठुरकरेण 5
जुज्झंता पेक्खिवि तुरिउ तेण णियअगु पमण्णिवि तिणु व जेण ।
असिघेणुआएँ खंडेवि खाहु णियमंसु णिवेसिउ मज्झि ताहु ।
ता बिण्णि वि साहसु तहो मुणेवि अवयरिया अग्गइँ मणुव होवि ।

घत्ता—आहीरइँ रूवइँ एक्कु हुउ अण्णेक्कु वि वड्डुयहँ रूवधरु ।
तिहिँ जणहिँ सुसोहिउ सो कुमरु णं सग्गहो आयउ को वि सुरु ॥३॥ 10

४

Another prince attempts treachery and reaps the evil reward

दिट्ठाइँ ताइँ केण वि णिवेण सम्माणियाइँ वयणुच्छवेण ।
देक्खेविणु रूवकरंडणारि मणि पइठी णं तहो पलयमारि ।
तहे णारिहे अहिलासहो गएण तहो पाणणासु चिंतियउ तेण ।
पारद्धिहिँ राणइँ कुमरु णीउ तहिँ अधकूउ एक्कति ठीउ ।
तहिँ पेल्लिवि घल्लिउ कुमरु सो वि गउ राणउ महिलहे सम्मुहो वि । 5
सप्पेण डसिउ सो मुयउ जाम सालूरइँ आणिउ कुमरु ताम ।
तहो कुमरहो बद्धउ रायपट्टु सव्वेहिँ समप्पिउ तुरयथट्टु ।
सो लीलइँ माणइ रायलच्छि तेँ पुच्छिय सा चक्कोरअच्छि ।

घत्ता—हे सुदरि का तुहुँ कहहि महो णेहभरेण कयायरिय ।
ता वित्तु चिराणउ तहो कहिवि णियमंदिरु तक्खणि अणुसरिय ॥४॥10

५

Karakanda starts off and reaches the Simhala island

गुणसायर सुंदर णिसुय पइँ एह सवणकहाणी कहिय मइँ ।
इउ भणिवि खयरु गउ णियघरासु णामेण सच्छलच्छीपुरासु ।
ता एक्कहिँ दिणि करकंडएण पुणु दिण्णु पयाणउ तुरियएण ।
गउ सिंहलदीवहो णिवसमाणु करकंडु णराहिउ णरपहाणु ।
जहिँ पाडलपिल्लइँ मणु हरंति सुर खेयर किंणर जहिँ रमंति 5
गयलीलइँ महिलउ जहिँ चलंति णियरूवेँ रइरूउ वि खलंति
जहिँ देक्खिवि लोयहँ तणउ भोउ वीसरियउ देवहँ देवलोउ ।
आवासिउ णयरहो बहिपएसे अरिसंक पवड्ढिय तहिँ जि देसे ।
आवासु मुएवि सहयरसमेउ करकंडु गयउ [1]रमणहिँ अमेउ ।

---

५ १ प्रतिषु 'रमणिहिं'

३—शासनदेवीका अवतार

फिर वह मृगनयनी रामकी स्त्री (सीता)के सदृश सस्नेहचित्त होकर उसके आगे आयी और बोली—हे कुमार, मै तुम्हारी अनुचरी हूँ और तुम्हारे शत्रुओका प्रलय करनेके लिए उत्पन्न हुई हूँ। कुमार उसके साथ अटवीके मध्य भागमें गया जहाँ मनुष्यों, खेचरों, किन्नरों व देवोंका भी प्रवेश असाध्य था। वहाँ उन्होंने एक पुराना कूप देखा। तथापि उनके हृदयमें उससे कोई बड़ा डर प्रविष्ट नहीं हुआ। वहाँ उन्होंने देखा कि एक सर्प निष्ठुर पजोंवाले मेढकसे युद्ध कर रहा है। उनको युद्ध करते देख उस कुमारने तुरन्त अपने अगको तृण समान समझकर तलवारसे अपना मास काटा, और उनके खानेके लिए उनके बीच फेंक दिया। उसके साहसको जानकर वे दोनों मानव होकर उसके आगे आ उतरे। एकने अहीरका रूप बनाया था, और दूसरेने वटु (ब्राह्मणकुमार) का। उन तीन व्यक्तियोंसे वह कुमार ऐसा सुशोभित हुआ जैसा मानो स्वर्गसे कोई सुर आ गया हो।

४—राजपुत्रकी रक्षा और समृद्धि

उन्हें किसी राजाने देखा और उत्साहपूर्ण वचनोंसे उनका सम्मान किया। उस रूपकी पिटारी नारीको देखकर राजाके मनमें मानो प्रलयकी बीमारी प्रविष्ट हो गयी। उस नारीकी अभिलाषाको प्राप्त होकर राजाने कुमारके प्राणनाशका विचार किया। राजा उस कुमारको शिकार खेलने ले गया। वहाँ एकान्तमें एक अन्धकूप था। राजाने कुमारको उसमें ढकेलकर पटक दिया और आप महिलाके सम्मुख पहुँचा। किन्तु वहाँ उसे सर्पने डस लिया, जिससे वह मर गया। उसी समय मेढक कुमारको कुएँसे निकाल लाया। कुमारको राजपट्ट बाँधा गया और सबने घोड़ों का समूह समर्पित किया। अब वह लीलापूर्वक राज्यलक्ष्मीका उपभोग करने लगा। एक बार उसने उस चकोराक्षीसे पूछा—हे सुन्दरि, तू कौन है, मुझे कह दे। मै खूब स्नेहसे आदरपूर्वक तुझसे पूछता हूँ। तब वह शासनदेवी अपना वही पुराना वृत्तान्त राजाको कहकर उसी क्षण अपने निवासस्थानको चली गयी।

५—करकण्डका सिंहलद्वीपमें रमण

खेचरने करकण्डसे कहा—हे गुणसागर, सुन्दर, मैंने जो शकुनकी कहानी कही, वह तुमने सुन ली। यह कहकर वह खेचर सत्यलक्ष्मीपुर नामक अपने घर चला गया। फिर एक दिन करकण्डने तुरन्त वहाँसे प्रयाण कर दिया। नरप्रधान करकण्ड राजा (बीच-बीचमें) निवास (पड़ाव) करता हुआ सिंहलद्वीप पहुँचा, जहाँ राजहस-शिशु मनको हरते थे, जहाँ सुर, खेचर व किन्नर रमण करते थे; जहाँ महिलाएँ गजलीलासे चलतीं तथा अपने रूपसे रतिके रूपको भी पराजित करती थीं; जहाँके लोगोंका भोग-विलास देखकर देवोंको देवलोक भी विस्मृत हो जाता था। करकण्डने नगरके बाहरी प्रदेशमें अपना पड़ाव डाला, जिससे उस देशमें शत्रुके आनेकी शंका बढ़ उठी। अमेय (दुर्जेय) करकण्ड अपने आवासको छोड़कर सहचरोंके साथ रमण करने निकला। वहाँ उसे एक महान् वटवृक्ष दिखायी दिया, जो सैकड़ों पक्षियोंसे भरा हुआ था, मानो देवोंसे

तहिँ गरुवउ सवणसएहिँ भरिउ ण कप्पवच्छु देवेहिँ धरिउ । 10
दलवंतहिँ पत्तहि परियरिउ वड्डु दिट्ठु राएँ समु वित्थरिउ ।
घत्ता—करकंडेँ पेक्खिवि तहो वडहो दीहइँ सुट्ठु सुकोमलइँ ।
ता लेविणु गुलिया धणुहडिया विद्धाइँ असेसइँ सद्दलइँ ॥ ५ ॥

६

The Simhala king invites Karakanda to his palace.

वडपण्णइँ विद्धइँ जं सरेण णरणाहहो कहियउ सो चरेण ।
जो भासिउ चारणमुणिवरेण वरु आयउ णरवइ सो भरेण ।
ण वि जाणहुँ किं सो वरुणु चंदु अह होइ णरेसरु किं सुरिंदु ।
खेलंतेँ वणे णिवसुयगणेण वडपत्तणिवहु विद्धउ खणेण ।
ता राएँ पेसिय णरपहाण गय सिमिरहो खेवेँ ते सयाण 5
चंपाहिउ भणियउ तेहिँ मित्त पइँ कोक्कइ णरवइ सरलचित्त ।
सो तुम्हहँ उवरि णिवद्धणेहु सचल्लहु तुम्हइँ तासु गेहु ।
त सुणिवि भणइ करकंडु राउ जइ आवइ सम्मुहुँ तुम्ह राउ ।
रयणाण विणिम्मियसुंदरासु ता जामि तुम्ह णिवमंदिरासु ।
त सुणिवि तेहिँ खणि णियणिवासु घरि जाइवि अक्खिय वत्त[1] तासु । 10
घत्ता—सो आवइ णरवइ तुज्झु घरि जइ तुम्हइँ लेणहँ जाहु तहो ।
त सुणिवि णराहिउ णीसरिउ गउ सम्मुहुँ सो चंपाहिवहो ॥६॥

७

Karakanda marries the Simhala princess

सो दिट्ठउ राएँ अइसुतेउ ण विग्गहवतउ मयरकेउ ।
अणुराएँ ता गुणसायरेण णिउ णयरे णराहिउ आयरेण ।
पइसतउ सो पुरि जणहिँ दिट्ठु गोपालसहिउ ण देउ विट्ठु ।
जुवईजणमणसताउ दिंतु करकंडु णराहिउ गेहु पत्तु ।
रइवेयहे णामेँ णियसुआहे । दक्खालिउ सो सुललियभुआहे । 5
सो वालएँ अवलोइउ जुवाणु ण हियएँ पइट्ठउ कुसुमवाणु ।
विहलघल काइँ वि णउ मुणेइ [1]सा पेक्खइ किं पि ण ण वि सुणेइ ।
ण वि जणणहो लज्जा ताहे जाय कंपतिहे पुलएँ खलिय वाय ।
पेक्खेविणु धूयहे सेयवाहु पारंभिउ राएँ खणे विवाहु ।
घत्ता—[2]कउ मडउ मोत्तियतोरणहिँ गुरुचउरिय हेमेँ णिम्मविय । 10
अइउच्चिय मणहर वेइ किय रयणविणिम्मिय णिम्मलिय ॥ ७ ॥

८

Karakanda returns with the bride by the sea

वेवाहु कियउ लहु ताहु के वि खेयर अहिलासहो जाहिँ जे वि ।
दाइज्जइँ दिण्णा तहे पयंड णिज्झरझरंतमयगिल्लगंड ।
वरतुरयथट्ट किंकिणिरवाल रयणेहिँ विणिम्मिय दिण्ण माल ।

---

६ १ N वात

७ १ प्रतिपु 'सो' २ N किउ ।

सुरक्षित हुआ कल्पवृक्ष हो। जो दलवान् (नये विकसित होते हुए) पत्तोंसे युक्त था, तथा जो समानरूपसे विस्तार लिये हुए था। करकण्डने उस वटवृक्षके दीर्घ और अति सुकोमल पत्तोंको १० देखकर अपना छोटा-सा गुलेल-धनुष ले उन सबको छेद डाला।

६—सिंहलनरेश-द्वारा करकण्डका स्वागत

जब करकण्डने बाणसे वटपत्रोंको वेध डाला, तब यह बात एक गुप्तचरने जाकर राजासे कही—हे नरपति, चारण मुनिवरने जिसकी भविष्यवाणी की थी, वह वर अब निश्चयसे आ गया है। मैं नहीं जानता हूँ कि वह वरुण है या चन्द्र, अथवा कोई नरेश्वर है, कि सुरेन्द्र। उसने राजपुत्रों-सहित वनमें खेलते हुए एक क्षणमें वटपत्रोंके समूहको वेध डाला है। तब राजाने अपने प्रधान पुरुषोंको भेजा। वे सयाने पुरुष तुरन्त करकण्डके शिविरको गये और चम्पाधिराजसे बोले— ५ हे सरलचित्त मित्र, तुम्हें हमारे नरपतिने बुलवाया है। उन्हें आपके ऊपर स्नेह हो गया है। अतएव आप उनके घर चलिए। यह सुनकर करकण्ड राजा बोले—यदि तुम्हारा राजा स्वयं मेरे सम्मुख आयेगा, तो मैं तुम्हारे राजाके रत्नोंसे निर्मित सुन्दर महलमें आऊँगा। यह सुनकर उन्होंने उसी क्षण घर जाकर अपने राजासे यह बात कही—हे राजन्, वे आपके घर तभी आयेंगे, जब आप स्वय उन्हें लेने जावें। यह सुनकर राजा निकल पड़ा और चम्पाधिपतिके १० सम्मुख पहुँचा।

७—रतिवेगाका प्रेमभाव व परिणय

सिंहलके राजाने अतितेजस्वी करकण्डको देखा, मानो वह शरीरवान् कामदेव ही हो। उस गुणसागर राजाने अनुरागसे आदरपूर्वक करकण्डका नगरमें प्रवेश कराया। नगरमें प्रवेश करते हुए करकण्डको लोगोंने ऐसे देखा जैसे मानो वह गोपालों-सहित विष्णुदेव (कृष्ण) ही हो। युवतीजनोंके मनको संताप पहुँचाता हुआ करकण्ड राजा महलमें आया। वहाँ उसे राजाने अपनी सुललित भुजाओंवाली रतिवेगा नामकी पुत्रीको दिखलाया। बालिकाके इस युवकका अवलोकन करते ही, मानो उसके हृदयमें कुसुम-(काम-) बाण प्रविष्ट हो गया। वह ऐसी विह्वल ५ हुई कि कुछ मानती ही नहीं थी, न कुछ देखती थी और न कुछ सुनती। उसे अपने पिताकी भी लज्जा न रही। वह कॉपने लगी तथा रोमाचसे उसकी वाणी लड़खड़ाने लगी। जब राजाने अपनी पुत्रीके (प्रेमभाव रूप) पसीनेके प्रवाहको देखा, तब उचित समयपर उसका विवाह प्रारम्भ कर दिया। मोतियोंके तोरणोंसे मण्डप सजाया गया; स्वर्णनिर्मित बड़ी-बड़ी चौरियाँ लटकायी गयीं; १० तथा अति उच्च, मनोहर, रत्ननिर्मित निर्मल वेदी बनायी गयी।

८—करकण्डकी जलयात्रा

शीघ्र ही उसका ऐसा विवाह किया गया कि खेचर भी उसकी अभिलाषा करने लगे। उसे दहेजमें धाराप्रवाह झरते मदसे गीले गण्डस्थलोंवाले प्रचण्ड हाथी, एवं किंकिणियोंकी ध्वनि करते हुए उत्तम घोड़ोंके समूह दिये, रत्नोंसे निर्मित मालाएँ दी, तथा अन्य भी जो कुछ नयनाभिराम होता

जं अवरु कि पि णयणाहिरामु तहे राएँ दिण्णउ [1]लेवि णामु।
एएहिँ समउ मणि तुट्ठएण जामायहो अप्पिय दुहिय तेण। 5
बहुरयणइँ दिण्णइँ तुरियएण पहिराविय राणा राणएण।
णरणाहेँ विसज्जिउ णिवपहाणु संजोइउ राएँ सलिलजाणु।
दुद्धारिणरिंदहो पलयकालु तहिँ जाणे चडिण्णउ धरणिवालु।
धयवडवमालु परिघुलिउ भाइ त पवणवसेँ जलमज्झे जाइ।
घत्ता—अवराइँ सहासइँ [2]छण्णवइँ णरणियरणिरंतरपूरियइँ। 10
णं अमरविमाणइँ धर सरहिँ जलगमणहो आसाऊरियइँ॥ ८॥

९

He encounters a sea monster.

जाम सिंधुमज्झि जाहिँ जाणयाइँ मंडिऊण ताडिऊण सज्जियाइँ।
ताव दिट्ठु राणएण मच्छु फारु णाइँ तेण सायरस्स लद्ध सारु[1]।
तेण रूवेँ णाइँ विण्हु कीलएइ सायरो व्व रायरिद्धि ण णिएइ।
जोयणाइँ सट्ठि अत्थि तुंगिमाइँ अद्धओ वि अद्धि आएँ होइ ताइँ।
सो वि सट्ठिसत्त पाय ढीहमाणु सायरं पि रुंधिऊण थक्किमाणु। 5
मंदरो व्व तोयमज्झे अप्पमाणु उच्छलंतु पक्खलंतु छज्जमाणु।
मंदु मंदु सुप्पयडु रंगमाणु रोसएण धाविऊण लग्गमाणु।
सो वि देक्खि राणयाहँ भग्गमाणु खंचियं पि तक्खणेण तोयजाणु।
घत्ता—भयभीयणरिंदहिँ दुत्थियहिँ सयलइँ जलजाणइँ उब्भियइँ।
णं काइँ वि दुट्ठएँ देवयएँ मंताण पहावेँ थंभियइँ॥ ९॥ 10

१०

Karakanda is carried away by a Vidyādharī

सो वि मच्छु पेक्खिऊण सुद्धभाउ छंडिऊण।
ताव तेण दुद्धरेण वद्धमाणमच्छरेण।
मल्लगंठि बंधिऊण खग्गघेणु कड्डिऊण।
त पि जाणु छंडिऊण रोसएण धाविऊण।
[1]राइणा तुरंतएण दिण्ण झंप कुद्धएण 5
उल्ललेवि ढुक्कु तित्थु थूलकाउ मच्छु जित्थु।
पोटमज्झे भाविऊण[2] सो वि मच्छु घाइऊण।
लूरियाइं वम्मयाइँ फाडियाइँ चम्मयाइँ।
जत्थ अत्थि सच्छणीरु [3]उच्छलंतु णट्ठ वीरु।
ताव[4] तम्मि खेयरीएँ णीउ राउ दुद्धरीएँ। 10
[5]सो वि णीउ पेक्खिऊण सुब्भडेहिँ चिंतिऊण।
दिण्ण झंप सायरम्मि दुक्खिएहिँ तक्खणम्मि।

---

८ १] लइवि २ S छणवइ। ९ १ S पारु,

१०. १] रायणा, S रायिणा २ N धाविऊण, ३ N में इससे पूर्व हासियेमें–'सायरो महागहीरु' ४ N में इससे पूर्व हासियेमें–'ताव तम्मि जुज्झदच्छु', ५ N में इससे पूर्व हासियेमें–'णीउ हेरि सुद्धियाइ मइगहीरु मुद्धियाइ'

है, वह सब राजाने नाम ले-लेकर दिया। मनमें संतुष्ट होकर उक्त समस्त वस्तुओंसहित अपनी पुत्रीको अपने जामाताको अर्पित किया। राजाने अन्य राजाओंको भी तुरन्त बहुत-से रत्न दिये और उनकी पहिरावन की। सिंहलके राजासे विदा होकर, नृप-प्रधान करकण्डने जलयानका सयोग ५ किया और वह दुष्ट शत्रु राजाओंका प्रलयकाल, धरणीपाल उस यानपर जा चढ़ा। ध्वज-पताकाओंसे फहराता हुआ वह यान बड़ा सुन्दर दिखायी दिया, और पवनके वेगसे जलके मध्य चलने लगा। अन्य भी छ्यानवे हज़ार नौकाएँ नरसमूहोंसे खूब भर गयीं, मानो देवोंके विमान अपनी जलगमनकी आशा पूरी करनेके लिए पृथ्वीपर चल रहे हों।

९—समुद्रमें महामत्स्यका प्रादुर्भाव

जब वे यान मण्डित और वितानोंसे सुसज्जित होकर समुद्रमें जा रहे थे, तब राजा करकण्डने एक महाकाय मत्स्य देखा; जैसे मानो उसने सागरका सार पा लिया हो; जैसे मानो उस रूपमें विष्णु क्रीडा कर रहे हों; अथवा जैसे मानो स्वयं सागर करकण्डकी राज्य-ऋद्धिको देख रहा हो। उस मत्स्यकी ऊँचाई ६० योजन एवं विस्तार इसके आधेका आधा अर्थात् १५ योजन तथा उसकी दीर्घताका मान ६७ पाद था। इस प्रकार वह सागर-भरको रूँधकर स्थित था। वह मन्दर पर्वतके ५ समान जलमें अप्रमाण रूपसे उछलता-कूदता शोभा दे रहा था। धीरे-धीरे चलते हुए वह सुप्रचण्ड मत्स्य रोषसे दौड़कर यानके पीछे लग गया। उसे दौड़ते हुए देखकर राजाने उसी क्षण जलयानको खिंचवाकर रुकवा लिया। अन्य राजाओंने भी भयभीत व व्याकुल होकर समस्त जलयानोंको खड़ा करवा लिया, मानो उन्हें किसी दुष्ट देवताने मन्त्रोंके प्रभावसे स्तम्भित कर दिया हो।

१०—मत्स्यसे युद्ध और करकण्डका अपहरण

उस मत्स्यको देखकर उस दुर्द्धर राजाने अपना शान्तभाव छोड़, क्रोध धारण किया; तथा मल्लग्रन्थि बाँधकर एवं तलवार खींचकर, यान छोड़ रोषसे दौड़कर तुरन्त समुद्रमें छलाँग मारा। वह लपकता हुआ वहाँ पहुँच गया, जहाँ वह स्थूलकाय मत्स्य था। उसने उसके पेटके मध्यमें प्रविष्ट होकर मत्स्यको मार डाला, उसके मर्मस्थल छेद डाले और चर्म फाड़ डाले। फिर वह वीर उछलता हुआ स्वच्छ जलमें आ गया। उसी समय एक दुर्द्धर खेचरी राजाको ले उड़ी। ५ राजाको हरा देख सुभटोंने चिन्ता की तथा दुःखी होकर तत्क्षण सागरमें गोता मारा। 'सागरका

घत्ता—हल्लोहलि हूयउ सयलु जलु अपरंपरि जाणइँ[6] संचलहिं ।
हा हा रउ उट्ठिउ करुणसरु तहो सोएँ णरवर सलवलहिं ॥ १० ॥

११

Lamentations of Ratıvegā

जा णरपंचाणणु विर्यासियआणणु जलि पडिउ ।
ता सयलहिं लोयहि पसरियसोयहि अड्डरिउ ॥
रइवेय सुभामिणि णं फणिकामिणि विमणभया ।
सव्वंगें कंपिय चित्ति चमक्किय मुच्छ गया ॥
कियचमरसुवाएँ सलिलसहाएँ गुणभरिया । 5
उट्ठाविय रमणिहिं मुणिमणदमणिहिं मणहरिया ॥
सा करयलकमलहिं सुललियसरलहिं उरु हणइ ।
उव्वाहुलणयणी गग्गिरवयणी पुण भणइ ॥
हा वइरिय वइवस पावमलीमस कि कियउ ।
मइँ आसि वरायउ रमणु परायउ किं हियउ ॥ 10
हा दइव परम्मुहु दुण्णय दुम्मुहु[1] तुहुँ हुयउ ।
हा सामि सलक्खण सुट्ठु वियक्खण कहिं गयउ ॥
महो उवरि भडारा णरवरसारा करुण करि ।
दुहजलहिं पडंती पलयहो जंती णाह धरि ॥
हउँ णारि वराइय आवइँ आइय को सरउँ । 15
परिछडिय तुम्हहिं जीवमि एवहिं किं मरउँ[2] ॥
इय सोयविसुद्धइँ लवियउ सुद्धइँ ज हियइँ ।
हउँ बोल्लिसु तइयहुँ मिलिहइ जइयहुँ मज्झु पइ ॥
घत्ता—अइसोउ करेविणु मतिवरु संवोहिवि परियणु दुम्मियउ ।
गउ जाणइँ लेविणु जलहितडे त परियणु तहि णिच्चलु कियउ ॥११॥ 20

१२

Ratıvega worships goddess Padmāvatı

आवासिय सेण्णा तित्थु जाव रइवेयएँ उज्जउ कियउ ताव ।
पुणु तुरिउ विलक्खीहूइयाइँ अणुसरिय देवि कोमलगिराइँ ।
उद्धरियउ मंडलु ताएँ रम्मु ण धम्मु जिणेदें हरियछम्मु ।
तहो मज्झि णिवेसिय दिव्व देवि पोमावइ णामें थिर करेवि ।
पुव्वाहिं मि दिसिहिं मि जइ थियाउ आहूयउ देविउ आइयाउ[1] । 5
[2]रत्तंदणकट्ठें जा घडीय ससिचंदणकुंकुमसमलहीय[3] ।
फलफुल्लणिवेज्जहिं पुज्ज कीय उववासइँ पढमउँ अणुसरीय ।
उवएसें लद्धउ बीयवंतु[4] णवकुंकुमकुसुमहिं जविउ मतु ।
घत्ता—आरत्तहिं दव्वहिं आलिहिवि आरत्तहिं वत्थहिं परिहणिय ।
आरत्तझाणु झाएविँ[5] पुणु णिज्झाइय देवअ थिरमणिय ॥ १२ ॥ 10

---

६. J जाणहिं
११. १ D दुण्णइ दुम्मुह २ J करउँ
१२. १ J N आढयाउ २ J रत्तूदिणकट्ठें, D रतदणुकट्ठें ३ J में 'समलहीय' से पक्ति ८के 'णवकुकुम' तक पाठ छूटा है । ४ N वीयमदु ५ N आरत्तमाण माएवि

समस्त जल खलभला उठा; यान परस्पर टकरा गये; हाय-हायका करुण स्वर उठ पड़ा, तथा उसके शोकमें सब मनुष्य सलबला उठे।

११—रतिवेगाका विलाप

जब वह प्रसन्नमुख नरसिंह जलमें पड़ गया, तब सब लोग भयभीत हो उठे और उनका शोक बढ़ गया। नागकन्याके समान सुन्दरी रतिवेगा विमनस्क हो उठी तथा सर्वांग कम्पित एवं चित्तमें चमत्कृत होकर मूर्च्छित हो गयी। तब उस गुणवती, मनोहर सुन्दरीको उसकी मुनियोंके मनको भी दमन करनेवाली रमणी सखियोंने खूब-चॅवरियोंकी हवा करके, एवं जलकी सहायतासे मूर्च्छासे उठाया। तब वह अपने सुललित सरल करकमलों-द्वारा छाती पीटने लगी; और ५ फिर डबडबायी आँखों तथा गद्गद स्वरसे विलाप करने लगी। हाय, पापमलिन बैरी यम, यह तूने क्या किया? मैंने जिसे अभी ही अपने रमणके रूपमें वरा था, उसे तू क्यों मुझसे छीन ले गया? हाय देव, तू क्यों ऐसा पराङ्मुख, दुर्जय और दुष्ट हो गया? हाय, मेरे सुलक्षण, सुविचक्षण स्वामी, तुम कहाँ चले गये? हे भट्टारक, हे नरश्रेष्ठ, मेरे ऊपर करुणा कीजिए। हे नाथ, दुःखसागरमें पड़ती हुई, प्रलयको जाती हुई मुझे बचाइए। मै एक दीन नारी हूँ। इस आपत्ति १० के आनेपर मै किसका स्मरण करूँ? तुम्हारे छोड़कर चले जानेपर अब मै जीऊँगी या यों ही मर जाऊँगी? इस प्रकार शोकविमूढ़ होकर उसने शुद्ध हृदयसे कहा (प्रतिज्ञा की) कि अब मैं तभी बोलूँगी जब मुझे मेरा पति मिल जायेगा। तब मन्त्रिवर अत्यन्त शोक मनाकर, तथा दुःखी परिजनोंको सम्बोधित करके, यानोको लेकर समुद्रतटपर गया और वहाँपर उसने समस्त परिजन समाजको ठहरा दिया।

१२—रतिवेगा-द्वारा पद्मावतीकी पूजा

जब वहाँपर सेनाका पडाव पड गया, तब रतिवेगाने धर्मोद्योग (व्रतसाधन) किया। उसने विह्वल होकर कोमल वाणीसे देवीका अनुसरण (आह्वान) किया। उसने रमणीक मण्डलका निर्माण किया, जैसे मानो जिनेन्द्रने निश्छल धर्मका उद्धार किया हो। उस मण्डलके बीच उसने दिव्यदेवी पद्मावतीको, नाम लेकर, स्थापित किया। पूर्व दिशामें जो देवियाँ स्थित है, वे उसके आह्वान करनेपर वहाँ आयीं। उसने रक्त चन्दनके काष्ठसे गढ़ी हुई पद्मावतीकी मूर्तिकी ५ शुभ्र चन्दन व कुंकुमसे अर्चना की; तथा फल-फूल व नैवेद्यसे पूजा की; एवं उपवासपूर्वक उसका अनुस्मरण किया। उसने उपदेश-द्वारा जो बीज-मन्त्र पाया था, उसका नये कुंकुम और पुष्पों-सहित जाप किया। लाल द्रव्योंसे लिखकर, लाल वस्त्रोंका परिधान करके, लाल (अग्नि आदिक) द्रव्यका ध्यान करके, फिर उसने स्थिर मनसे देवतामें अपना ध्यान लगाया।

१३

Goddess Padmavati appears.

समच्चिवि पूजिवि झायइ[1] जाव समागय देवय पोमिणि ताव ।
समंथरलील सकोमलअंगि कुणंतिय का वि अउव्विय भंगि
विणिम्मियरूवसमिद्धि खणेण सरीरइँ रत्तिय सुद्धमणेण ।
करेहिँ चऊहिँ करंति गुणाल सपोत्थयभिंग समुद्दमुणाल ।
सकुंडलकण्णफुरंतकवोल सणेउरकिंकिणिमेहलरोल । 5
फणीफणपंच सिरेण धरंति पसण्णिय णिम्मल का वि करंति ।
महीयलि पायसरोय थवंति सुहाविएँ वाणिएँ किं पि चवंति ।
दिसाहँ मुहम्मि पसारियधामु उरम्मि णिवेसियमोत्तियदामु ।
घत्ता—वरु देमि भणंती देवि खणे रइवेयहे अग्गइँ गुणभरिय ।
तुहुँ मग्गि किसोयरि जं हियइँ तउ कारणेँ धरणिहे अवयरिय ॥१३॥ 10

१४

The goddess grants a boon to Ratıvega who asks for information about her husband

जा देविहे दिट्ठउ मुहकमलु रइवेयहे जायउ असुजलु ।
महो देवि भडारिए दुरियमलु तउ दसणे णट्ठउ तं सयलु ।
पइँ देवि सहावेँ जो थुणइ सो दुक्खपरंपर णउ मुणइ ।
जो अणुदिणु झायइ तुज्झु मुहुँ तसु होहि तरंडउ देवि तुहुँ ।
महो दीणहे तुहुँ कारुण्णु करि दुहसायरे मइँ णिवडंति धरि । 5
हउँ किं पि ण मग्गम्मि देवि पइँ अब्भत्थिय तुहुँ वरु एक्कु मइँ ।
जइ सच्चउ भयवइ देहि वरु महो वयणु एक्कु तुहुँ देवि करु ।
रयणायरे महो सामिउ गयउ किं जीवइ अह किं सो मुयउ ।
घत्ता—ता कहइ सुरेसरि तुह रमणु जो जाणहो होंतउ परिपडिउ ।
कणयप्पहविज्जाहरसुअहे सो हियवइँ तक्खणे संचडिउ ॥ १४ ॥ 10

१५

Karakaṇḍa, says the goddess, had been taken to Tılakadvıpa where he had become the lord of all

ता मोहवसेँ कणयप्पहाए खणि तिलयदीउ सो णियउ ताए ।
दक्खालिउ जणणहो ताय पेक्खु मइँ सायरि लद्धउ दिव्वचक्खु ।
एहु सामि महारउ रिसिहि सिट्ठु जह लच्छिएँ लद्धउ देउ विट्ठु ।
अणुराउ मुणेवि विज्जाहिवेण वेवाहु कियउ तहे[1] उच्छवेण ।
करकंडइँ ता एक्कहिँ दिणम्मि हउ वइरिउ ससुरहो तक्खणम्मि । 5
जो सुअणु परायउ असइ भोज्जु उवयारु करइ किर कवणु चोज्जु
कणयप्पहवइरिउ हयउ जेण सो सामिउ होसइ किं परेण ।
इय मुणिवि केर विज्जाहरेहिँ पडिवण्णिय तुरिय कयायरेहिँ ।

---

१३ १ N मायइ.

१५ १ J तहिँ

१३—पद्मावती देवीका प्रकट होना

रतिवेगाने जब पूजा-अर्चा करके ध्यान लगाया, तब पद्मावती देवी वहाँ प्रकट हुई। वह कोमलांगी देवी धीरे-धीरे, लीलापूर्वक, एक अनिर्वचनीय, अपूर्व मुद्रा धारण किये हुए थी। उसने उस समय अत्यन्त सौन्दर्यमय रूप धारण किया था। वह शरीरसे रक्तवर्ण थी, व मनसे विशुद्ध। वह अपने चार हाथोंमें गुणयुक्त पुस्तक, भृंग (झारी), मुद्रांगुली तथा मृणाल लिये हुए थी। उसके कपोल कर्णकुण्डलोंसे चमक रहे थे, तथा उनके नूपुरों व कॉचीसे किंकिणियोंकी झकार ५ हो रही थी। वह अपने सिरपर पॉच नागफण धारण किये हुए थी, एव एक अपूर्व ही निर्मल प्रसन्नता फैला रही थी। वह पृथ्वीतलपर अपने चरण-कमलोंको रखती हुई, तथा सुहावनी वाणीमे कुछ कहती हुई आई। वह उरस्थलमें मोतियोंकी माला पहने हुए थी, जिसकी कान्ति समस्त दिशाओंमें फैल रही थी (यहाँ मौक्तिकदाम छन्दका प्रयोग है)। वह गुणोंसे भरी देवी क्षणमात्रमें रतिवेगाके आगे आ खड़ी हुई और बोली—"मै वरदान देती हूँ। हे कृशोदरि, जो १० कुछ तेरे हृदयमें हो, सो तू माँग ले। मै तेरे कारण ही धरणीपर उतरी हूँ।"

१४—रतिवेगाकी देवीसे वरदानकी प्रार्थना

जब देवीके मुखकमलको देखा, तब रतिवेगाकी ऑखोंमें अश्रु भर आये। (वह बोली—) हे भट्टारिके देवि, तेरे दर्शनसे मेरा समस्त पापमल नष्ट हो गया है। हे देवि, जो कोई स्वभावसे तेरी स्तुति करता है, वह दु ख-परम्पराका अनुभव नहीं करता। जो कोई प्रतिदिन तेरे मुखका ध्यान करता है, उसके लिए, हे देवि, तू (ससारसागरसे तारनेके लिए) नौका बन जाती है। मुझ दीनपर तू दया कर; और दु खसागरमें गिरती हुई मुझे बचा ले। हे देवि, मै तुझसे कुछ ५ नहीं मॉगती। केवल एक वरदानके लिए मेरी तुझसे प्रार्थना है। हे भगवति, यदि सचमुच ही तू मुझे वर देती है तो, हे देवि, तू मेरी एक बात कर—"मेरा स्वामी रत्नाकरमें चला गया है, वह जीवित है अथवा मृत्युको प्राप्त हो गया ?" (यह सुनकर) सुरेश्वरी बोली—"तेरा रमण जो यान परसे नीचे उतरा, वह तत्क्षण ही कनकप्रभा नामकी विद्याधर कन्याके हृदयपर चढ़ गया।"

१५—देवी-द्वारा करकण्डकी कुशल-वार्त्ता

तब मोहके वशीभूत होकर कनकप्रभा उसे उसी क्षण तिलकद्वीपको ले गयी, और उसे अपने पिताको दिखलाया—"देखिए तात। मैंने इस दिव्यचक्षु पुरुषको सागरमें पाया है। ऋषियोने कहा था कि यही मेरा स्वामी होगा, जैसे कि लक्ष्मीने विष्णुको (सागरमें) पाया था।" विद्याधरने उसके अनुरागको जानकर उत्सवसे उसका विवाह कर दिया। फिर करकण्डने एक दिन अपने श्वसुरके वैरीका शीघ्र ही नाश कर डाला। जो सज्जन पुरुष पराया भोजन करता है, वह ५ उसका उपकार करे, इसमे आश्चर्य ही क्या है ? "जो कोई कनकप्रभके वैरीको मारेगा वही तुम्हारा स्वामी होगा, अन्य किसीसे क्या ?" इस भविष्य वाणीको मानकर विद्याधरोंने आदरपूर्वक तुरन्त करकण्डकी सेवा स्वीकार कर ली। उन्होंने अनुरागसे अपने दोनों हाथ जोडकर और

सन्धि—८

१

The goddess illustrates her point by the story of Aridamana,

रइवेय भणइ हे देवि सुणु तुह वयणु सुहावउ भावियउ।
महो अक्खु पसाउ करेवि तुहुँ कि को वि गयउ णरु आइयउ॥

तं सुणिवि भडारी कहइ ताहे दुरिएण विलित्तउ मणु ण जाहे।
हे सुदरि णिसुणहि सरलचित्ते जिणणाहहो चलणहँ परमभत्ते।
हउँ अक्खमि णेहें तुज्झु किं पि अरिदमणणराहिवचरिउ तं पि। 5
एत्थत्थि अवंती णाम देसु ण तुट्टिवि पडियउ सग्गलेसु।
तहिँ णयणपियारी णयरि अत्थि उज्जेणि णाउ गयरविगभत्थि।
तहिं अत्थि पसिद्धउ पवरतेउ अरिदमणु णराहिउ गुणणिकेउ।
तहो विमला भामिणि णयणरम्म आसण्णभव्व परिगलियकम्म।
तहो अत्थि मंति जणजणियराउ वरदत्तु णराहिव[१]-दिण्णभाउ। 10

घत्ता—तहो मतिहे वडवा सुदरिय गय चरणहँ बाहिरे पुरवरहो।
सा रमिय तुरंतइ मयणभर पेक्खेविणु तुरयइँ गिरिवरहो॥ १॥

२

Aridamana's minister got a colt which was watched by a Vidyādhara in the form of a parrot

सा गया पट्टणं मंतिणा पेक्खिया सव्वसल्लक्खणा गब्भिणी लक्खिया।
तेण संरक्खिया मदिरे धारिया णेहवताईं खाणाईं सा चारिया।
सोहणो वायवेओ किसोरो तहे[१] जायओ वासरे सुदरे सोरहे[१]।
णीलवण्णो सउण्णो मुहे वंकुडो मज्झहीणो उरे पच्छले वित्थडो।
दीहफुक्कारहिंकारउद्दो धुरो तालुतंबोवमो लोयणा भंगुरो। 5
णण्हरोमावलीकण्णससग्गओ थोवएहिँ दिणेहिँ पवुड्ढिं[२] गओ।
मतिचित्तस्स अच्चंतु सो भाविओ सूरतावेण वाएण णे पोविओ।
भूमिगेहम्मि जा बद्धओ अच्छए सग्गिणीछदकीरो वि तं पेच्छए।

घत्ता—जउलगि गब्भि परिट्ठियउ गिरितुरयहो णदणु जयपवरु।
तउलगि पेक्खइ दिणि जि दिणे को वि खेयरु कीरसुरूवधरु॥२॥ 10

---

१ १ S] णराहिउ.

२ १] °हो २] पविड्ढी

सन्धि—८

१—वियोगियोंके पुनर्मिलनका उदाहरण

रतिवेगा बोली—"हे देवि, सुन। मैंने तेरा सुहावना वचन अपने ध्यानमें लिया। अब तू कृपा करके मुझे यह तो कह कि क्या कोई गया हुआ नर फिर वापस आया है?" यह सुनकर भट्टारिकाने, जिसका मन पापसे लिप्त नहीं था ऐसी उस रतिवेगासे कहा—"हे सरलचित्त, जिननाथके चरणोंकी परमभक्त, सुन्दरि, सुन। मैं तुझे स्नेहसे अरिदमन राजाका चरित्र सुनाती हूँ। यहाँ अवन्ति नामका देश है; मानो स्वर्गका एक टुकड़ा टूट कर आ पड़ा हो। वहाँ एक नयनोंको प्यारी उज्जैनी नामकी नगरी है, जहाँ सूर्यकी किरणें प्रवेश नहीं कर पातीं। वहाँ प्रसिद्ध, प्रवर तेजस्वी, गुणनिधान, अरिदमन नामका राजा था। उसकी विमला नामकी भामिनी थी, जो नयनरम्य, आसन्नभव्य व क्षीणकर्म (निष्पाप) थी। उसका मन्त्री लोगोंका स्नेहभाजन तथा राजाका विश्वासपात्र वरदत्त नामका था। इस मन्त्रीकी सुन्दर घोडी नगरके बाहर चरने गयी। कामसे व्याकुल उसे देखकर, तुरन्त ही पर्वतके एक तुरगने उसका रमण किया। ५ १०

२—राजमन्त्रीकी घोड़ी और उसका बछड़ा

घोडी पट्टणमें लौट आयी। मन्त्रीने देखा कि वह सर्वलक्षणसम्पन्न गर्भिणी हो गयी। अतएव उसने उसकी खूब रक्षा की, अपने घर ही रखा और चिकना घास-दाना चराया। फिर एक सुन्दर सुगन्धपूर्ण (शुभ) दिन उसके एक शोभनीय वायुवेग किशोर (बछेरा) उत्पन्न हुआ। वह नीलवर्ण, पुष्ट, मुखमें बाँकुडा, मध्यमें कृश तथा उरमें और पिछले भागमें विस्तीर्ण था। वह लम्बी फुकार करता तथा रौद्र हींस छोडता था, और धुर्य (खूब चलनेवाला—जोतने योग्य) था। उसका तालु ताम्रवर्ण था, और वह आँखोंसे चचल था। उसकी रोमावली सूक्ष्म थी, और कानोंका परस्पर ससर्ग हो जाता था। थोड़े ही दिनोंमें वह बड़ा हो गया। मन्त्रीके चित्तको वह अत्यन्त भाया। उसके तेजको सूर्यताप, तथा वेगको वायु भी नहीं पाते थे। वह जब भूमिगृह (घुडसाल)में बाँधा हुआ रहता था, तब एक सूआ उसे स्वच्छन्द भावसे देखा करता था। (इस कडवकमें सर्गिणी छन्दका उपयोग किया गया है)। जबतक वह विजयशाली पहाडी घोडेका पुत्र गर्भमें स्थित था, तब-तक कोई एक खेचर सूएका रूप धारण करके उसे दिन-प्रतिदिन देखा करता था। ५ १०

३

The parrot asks a cowherd to take it and sell to the king for 500 gold coins

खेयरु हूयउ कीरो पञ्चयमत्थयधीरो ।
भोयसएहिँ णभग्गो कंतहे णेहडँ लग्गो ।
अच्छइ जाव सुहेणं भुजइ भोय चिरेण ।
ताव सधम्मु सुसीलो मत्तयकुंजरलीलो ।
पीवरदीहरबाहो सुदरु गोहणणाहो । 5
तेत्थ वणम्मि पवण्णो चेट्ठइ[1] जाव णिसण्णो ।
दिट्ठउ ता णयणेहिँ कीरइँ सो सगुणेहिँ
उत्तउ कोमलवाएँ छंदइँ चित्तधयाएँ ।

घत्ता—तुहुँ गोवाल लएवि मइँ णेहि तुरंतउ पुरवरहो ।
कचणपचसएहिँ फुडु जाएवि देहि णरेसरहो ॥ ३ ॥ 10

४

On the way they see a merchant caught by a harlot who demanded money

सुणीऊण वाणी मुणीऊण णाणी ।
णएण विणीए मणे मण्णणीए ।
सुएणावि जुत्तो पुरं झंत्ति पत्तो ।
खणेँ[1] दिंतु दिट्टी तहिं दिट्ठ सिट्ठी ।
सुही कुट्टिणीएँ धरीओ गणीएँ । 5
भणीओ वलाएँ गिरा कोमलाएँ ।
तुम रायआणा म जाही अयाणा ।
तुमं जेट्ठउत्तो सुईणे विसुत्तो ।
मह पुत्तियाएँ घरे सुत्तियाएँ ।
सुछंदेँ विराएँ कया सोमराएँ । 10
तहे देहि[3] दव्व णिवारेहि गव्व ।

घत्ता—तहो कोलाहलु अइपवरु हट्टहेँ मज्झेण[2] पसरियउ ।
ण वि सक्कइ वारहो को वि णरु जामच्छइ वणिवरु धरियउ ॥४॥

५

The parrot settles the dispute by a wit

तो भणेइ चारु कीरु वच्छलेण वाय धीरु ।
भो कहेइ सेट्ठि मज्झु वारयामि जेण जुज्झु ।
ता कहेइ सेट्ठि तासु कारण पि कंदलासु ।
त सुणेवि सूयएण णाणसायरं गएण ।
उत्तु सेट्ठि अक्कयाहिँ देहि दव्वु सज्जयाहिँ । 5
सो सुणेवि दिव्ववाणि तासु जाय चित्ते काणि ।

३ १ D वट्टइ, N वेट्ठइ
४ १ D खगें उत्तमाणी २ D N मज्झि, ३ D देवि. ४ J मज्झि पसारियउ.

३—सुएके रूपमें खेचर

वह खेचर एक पर्वतके मस्तकपर एक धैर्यवान् सूआ हुआ। वह आकाशमें उड़ता तथा अपनी कान्ताके स्नेहमें लगकर सैकड़ों भोगों-सहित सुखसे रहता हुआ दीर्घ काल तक भोग भोगता रहा। तब एक धर्मवान्, सुशील, मत्तकुंजरके समान लीला करता हुआ, प्रबल और दीर्घ भुजाओंसे युक्त, एक सुन्दर गोधननाथ (ग्वाला) उस वनमें आया। वह जब वहाँ बैठा हुआ था, तब उस सूएने अपने सगुण नेत्रोंसे उसे देखा, और चित्तको हरण करनेवाली स्वच्छन्द कोमल- ५ वाणीसे कहा—"हे गोपाल, तू मुझे तुरन्त नगरमें ले चल, और पाँच-सौ सुवर्णमुद्राओंमें मुझे नरेश्वर के हाथ बेच दे।" (यहाँ चित्रध्वजा छन्द है।)

४—कुट्टिनीका सेठसे विवाद

यह वाणी सुनकर और समझकर वह ज्ञानी गोप, नीतिसे सुशिक्षित, तथा मनसे माननीय सूए-सहित झटपट नगरमें आया। वहाँ दृष्टि डालनेपर एक सेठ दिखायी दिया। उस सुहृद् सेठको कुट्टिनी गणिकाने पकड़ रखा था। वह अबला कोमल शब्दोंमें उससे कह रही थी—"तू राजा है, अज्ञानी मत बन। तेरा ज्येष्ठ पुत्र स्वप्नमें, अपने घरमें स्वच्छन्द भावसे विराग (स्नेहरहित) तथा शान्तभावसे युक्त सोती हुई मेरी पुत्रीके साथ सोया है। (यहाँ सोमराजी छन्द है) ५ अतएव तू उसे द्रव्य दे। अपना गर्व छोड़।" इस बातका भारी कोलाहल हाट (बाजार) के बीच फैल रहा था; और उस पकड़े गये वणिक्वरको कोई मनुष्य छुड़ानेमें समर्थ नहीं हो रहा था।

५—स्वप्नका स्वभाव दर्पण-प्रतिबिम्बवत्

तब वह सुन्दर धीर सूआ वात्सल्यभावसे बोला—"हे सेठ, मुझे बात तो बतला, जिससे मैं इस युद्धका निवारण कर सकूँ।" तब सेठने उस क्रन्दन (युद्धके कोलाहल) का कारण कहा। तब ज्ञानसागरको पहुँचे हुए (महाज्ञानी) सुएने सेठसे कहा—"इस सुसज्जित चाचीको द्रव्य दो।" — इस दिव्य वाणीको सुनकर सेठके चित्तमें लज्जा उत्पन्न हुई। किन्तु ज्योंही सेठ द्रव्य लाकर, सब कुट्टिनीको देने लगा, त्योंही नीतिमार्गके ज्ञायक सूएने कहा—"सेठ, एक आदर्श (दर्पण) भी

आणएवि जाव दव्वु कुट्टिणीहे देइ सव्वु ।
ताव उत्तु सूयएण णीइमग्गु जाणएण ।
आणि सेट्ठि आरिसो वि देमि दव्वु जेम को वि ।
आणिय च तं पि तेण सूयएण तक्खणेण 10
दप्पणस्स मज्झे बिंबु लेहि अक्क[1] एहु दव्वु ।
गूढचित्त जाणिया वि छंदिणा समाणिया वि ।
घत्ता—ता[2] बोल्लइ कुट्टिणि भग्ग सुय पडिबिंबु किं लेणहुँ[3] जाइ वले[4] ।
तं सुणिवि पडुत्तरु सा भणिय सुइणइँ किं गहणउ लहइ चले ॥५॥

६

The parrot reaches the palace.

हराविय कुट्टिणि जाम सुएण पयपइ सेट्ठि सुयस्स णएण ।
सुवण्णपरिग्गहु एहु सरेहु लएविणु भावइ त जि करेहु ।
सुणेविणु सूयइँ वुच्चइ तेम वणीसरु चित्ति चमक्कइ जेम ।
हिरण्णइँ अम्हइँ काइँ करेहुँ सुसज्जणलोयहँ चित्तु हरेहुँ ।
सुणेविणु कीरहँ भावविसुद्धि अहीरहँ दिण्णिय दाणपविद्धि । 5
अहीरु पउत्तउ सूयएँ एहि लएविणु रायदुवारहो णेहि ।
णिओ खणि रायदुवारहो सो वि हुओ घरु बुद्धिसमिद्धिहे जो वि ।
दुवारिउ उत्तउ कीरएँ मित्त सुमोत्तियदामपसारियचित्त ।
घत्ता—लइ अक्खइ वत्त महो तणिय णियरायहो अग्गइँ सरल तुहुँ ।
पेक्खेसमि णयणाणदयरु छणससहरतुल्लउ तासु मुहु ॥६॥ 10

७

It gives an account of itself to the king

पडिहारइँ रायहो कहिउ एव सुउ बाहिरे अच्छइ देवदेव ।
तं सुणिवि [1]णिवाविउ राणयेण सभासिउ सो पोमाणणेण ।
ता सूएँ उच्चाएवि पाउ अहिणदिउ आसीवाएँ राउ ।
भो णरवइ करिकरदीहबाहु चिरु जीवहि सुरसरि जाम वाहु ।
[2]मणि तुट्ठएँ राएँ कीरु वुत्तु किं आयउ को तुहुँ भणु णिरुत्तु । 5
पडिवज्जइ [3]जणवर णाहचारु तह कवडकहाणउ रयउ फारु ।
ता कहइ कीरु णरवइ पुरम्मि सुय पंचसयइ सेंबलितरुम्मि[4] ।
जावच्छहुँ ते मइँ भणिय वेल्लि लइ छिण्णहुँ [5]मुहु हय तेहिँ लल्लि ।
णउ छिण्णिय तेहिं जा हि सोवि आरुहिय विडोवरि गुरुय होवि[6] ।
गुजारुणणयणउ कसणवण्णु भिल्लाण णिवहु ता तहिँ पवण्णु । 10
घत्ता—तहिँ रुक्खे चडेविणु सुयघरइँ पासि समोडिय तेहिँ खणे ।
ता बद्धा अम्हइँ सयल सुअ मइँ चिंतिउ को वि उवाउ मणे ॥७॥

---

५ १ SJ सक्क २ J तो ३ J लेणह ४ JN वले ।
७. १ J अणाविउ २ S मणतुट्ठय ३ D जिणवर N में 'जिणवर' को सुधारकर 'जह णर°'
४ J सेंमलियरुम्मि ५ SJN महु ६ SJN मे यह पूरी पक्ति छूटी है ।

लाओ जिससे मैं इसे अपूर्व द्रव्य दूँ।" सेठ दर्पण भी ले आया। सूएने तत्क्षण दर्पणके बीच उस द्रव्यका बिम्ब प्रकट करके कुट्टिनीसे कहा—"चाची, ले इस द्रव्यको।" तब वह गूढ़चित्त व समझदार कुट्टिनी अपनी इच्छासे बोली—"रे भगोडे सुए, कहीं प्रतिबिम्ब भी लिया जाता है ?" यह सुनकर सूएने प्रत्युत्तर दिया—"हे चचले, कहीं स्वप्नमें देखी वस्तु भी ग्रहण की जा सकती है ?" (यहाँ समानिका छन्द है)। १०

६—सुआ राजद्वारपर पहुँचा

जब सूएने इस प्रकारसे कुट्टिनीको हरा दिया, तब सेठ न्यायपूर्वक सूएसे बोला—"इस सुवर्ण-सम्पत्तिको सरेखो (गिनो) और इसे लेकर जो भावे सो करो।" यह सुनकर सुएने ऐसी बात कही, जिससे वणीश्वर चित्तमें चमक उठा। वह बोला—"हिरण्यका मै क्या करूँगा ? मै तो सुसज्जन लोगोंका चित्त हरण करता हूँ।" सूएके विशुद्ध भावको सुनकर सेठने उस सुवर्णराशिका भारी दान उस अहीरको दे दिया। फिर सूएने अहीरसे कहा—"चलो, मुझे लेकर राजद्वारपर ५ पहुँचाओ।" तब जो सूआ बुद्धि-सम्पत्तिका घर हो रहा था, उसे लेकर ग्वाल एक क्षणमें राजद्वार पर पहुँचा। सूएने द्वारपालसे कहा—"सुन्दर मोतियोंकी मालापर अपना चित्त प्रसारित करनेवाले, हे सरल मित्र, लो, मेरी बात अपने राजाके आगे जाकर कहो। मै राजाके पूर्णचन्द्रमाके तुल्य, नयनानन्ददायी मुखको देखना चाहता हूँ।" (यहाँ मौक्तिकदाम छन्द है)

७—सुएकी कपट-कहानी

प्रतीहारने जाकर राजासे कहा—"हे देवदेव, बाहर एक सूआ आया है।" यह सुनकर उस कमलमुख राजाने उसे अपने पास बुलवाया और उससे सभाषण किया। तब सूएने अपना पैर उठाकर आशीर्वाद-द्वारा राजाका अभिनन्दन किया—"हे हस्तिशुण्डके समान दीर्घबाहु नरपति, चिरजीवी हो; जबतक गगाका प्रवाह चल रहा है।" मनमें सन्तुष्ट होकर राजाने सूएसे कहा—"तुम कौन हो, और यहाँ क्यों आये हो ? ठीक-ठीक बतलाओ।" तब उस नभचर पक्षीने यह बात ५ स्वीकार की, और एक बडी कपट-कहानी रची। फिर सूएने कहा—"हे नरपति, पहले एक सेमल वृक्षमें पॉच-सौ सूए रहते थे। मै भी वहीं रहता था। मैने उन सबसे कहा—लो, इस बेलको काटो। उन्होंने ललकसे उसपर बार-बार आघात किये। अभी वह बेल उनके द्वारा पूरी कट भी न पायी थी, क्योंकि वह बढ़कर उस वृक्षपर खूब चढ़ गयी थी, तभी गुजाके समान लाल ऑखों-वाला कृष्णवर्ण भिल्लोंका एक समूह वहाँ आ पहुँचा। उन्होंने क्षणमात्रमें वृक्षपर चढ़कर सूओंको १० उनके घरों (घोसलों) से निकालकर अपने जालमें समेट लिया। तब हम सब सूए फँस गये। तब अपने मनमें मैंने एक उपाय सोचा।

८

How it reached a hermitage and learnt the Śastras It then informs the king about the minister's beautiful horse

मइँ वुत्ता सयल वि सुय करेवि　　कवडेण वि अच्छहु खणु मरेवि ।
भिल्लेण चडेविणु सयल दिट्ठ　　तले घल्लिय मण्णेवि ते णिचिट्ठ[1] ।
ता उड्डिवि गय दसदिसिहिं ते वि　　हउँ तावसवाडउ गउ चलेवि ।
मइँ सयलइँ सत्थइँ जाणियाइँ　　पव्वयसिरि सोक्खइँ माणियाइँ ।
तहिँ दिट्ठउ गिरिवरतणउ आसु　　गउ वडवासगहो कामवासु । 5
अइसुंदरु घोडउ ताएँ जाउ　　धरणियले लग्गइ णाहिं पाउ ।
मइँ जाणिउ सो विज्जाहरेण　　तुह अक्खिय णेहपरव्वसेण ।
घरि अच्छइ मतिहे सो चरतु　　तं सुणिवि णरेसरु गउ तुरंतु ।
　घत्ता—घरु जाइवि तासु महंतयहिं पुणु भणियउ वयणु णरेसरइँ ।
　　महो कज्जु ण रयणहिँ माणिकहिँ तुह तुरयइँ पुज्जइँ मणहरइँ ॥८॥ 10

९

The horse takes the king and the parrot across the sea where they see a hundred maidens

णियहियवएँ दुक्खु वहंतएण　　सो अप्पिउ तेण महंतएण ।
गउ तुरउ लेवि णियमंदिरासु　　पल्लाणु विहिउ तहो वधुरासु ।
तहिं चडिउ णरेसरु सहुँ सुएण　　देवाविउ फेरउ दिढभुएण ।
कीरेण णिवारिउ देव घाउ　　मा पयडहि छडहि णियसहाउ ।
णरणाहेँ तुरयहो सुयछलेण　　कसताडणु किउ कोऊहलेण । 5
ता तुरउ तुरंतउ[1] णहयलेण　　गउ सायरु लंघिवि दूरएण ।
समरीणएँ राणएँ भणिउ कीरु　　कहिं लब्भइ वधव विमलणीरु
ता कीरें गयणगणु सरेवि　　अवलोइउ पाणिउ थिरु करेवि ।
आवेविणु कीरइँ भणिउ तासु　　लइ चलहि तुरिउ रयणायरासु ।
　घत्ता—जाएविणु सायरि कण्णसउ दिट्ठउ तेत्थु रमंतियउ । 10
　　सुय[2] वयणइँ ठाणे तहो तणइँ खणे रायइँ देउ समच्चियउ ॥९॥

१०

The king wins the heart of Ratnalekhā

ण्हाणच्चणु देवहँ[1] करिवि ताउ　　कण्णाण णिवहु णियघरु गयाउ ।
सूएण णराहिउ तक्खणेण　　अणुमग्गेँ णीयउ तहुँ तणेण ।
छोहारदीवसपत्तएण　　कण्णाण णिलउ राणएँ गएण ।
अवरोप्परु चित्तें मिलियएण　　ता तक्खणि भणियउ सूयएण ।
हे णरवइ तुहुँ एह रयणलेह　　लइ परिणहि कचणदिव्वदेह । 5
चिरु कहिय मुणिंदहिँ आरिसेहिँ　　परिणेवी एह तुम्हारिसेहिँ ।

---

८ १ D J N णिविट्ठ ।
९ १ N राउ २ D सुर°
१० १ N करइ २ J में यह चरण छूटा है

८—सूएने राजाको मन्त्रीके घोड़ेकी चाह उत्पन्न की

"मैंने सब सूओंसे कहा—क्षण-भरके लिए मर जानेका कपट (बहाना) बनाकर पड रहो। भीलने चढ़कर सबको देखा और उन्हें निश्चेष्ट जानकर नीचे डाल दिया। तब वे उड-उड़कर दशों दिशाओंमें चले गये। मैं चलकर एक तापसोंके बाडेमे पहुँचा। वहाँ मैंने सकल शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया, तथा एक पर्वतकी चोटीपर सुखपूर्वक रहने लगा। वहाँ मैंने एक पहाडी घोडेको देखा, जिसने कामवासनासे एक घोडीका सग किया। उससे उस घोडीने एक अति सुन्दर बछेरेको जन्म दिया, जिसका पृथ्वीपर पैर ही नहीं लगता। मुझ विद्याधरने यह जान लिया, और यह बात स्नेहके परवश होकर तुझे कह दी। वह घोडा मन्त्रीके घर चारा चर रहा है।" सूएकी यह बात सुनकर, राजा तुरन्त वहाँ गया। उस नरेश्वरने उस (मन्त्री) के घर जाकर उससे कहा—"मुझे तेरे रत्नों और माणिक्योंसे कोई काम नहीं, मेरे मनोरथ तो तेरे तुरगसे पूरे होंगे।"

९—घोड़ा राजाको ले उड़ा

उस महन्तने अपने हृदयमें दुःख अनुभव करते हुए वह घोडा राजाको अर्पित कर दिया। उसे लेकर राजा अपने महलको गया और उस सुन्दर घोडेपर पलाण खिंचवाया। नरेश्वर सूएके साथ उसपर चढा और उस दृढ़भुजावालेने उसको फेरा (चक्कर दिलाया)। सूएने राजाको रोका—"हे देव, इसे चाबुक नहीं मारना, नहीं तो यह अपना शान्तभाव छोड देगा।" राजाने कौतूहलवश सूएकी आँख बचाकर घोडेको एक कोडा मारा। तुरग तुरन्त ही आकाशतलमें उड़ने लगा और सागरको लाँघकर दूर चला गया। राजाने श्रान्त होकर सूएसे कहा—"हे बन्धु, स्वच्छ पानी कहाँ मिले?" तब सूएने आकाशमें उडकर स्थिरभावसे पानीका अवलोकन किया। फिर लौटकर सूएने राजासे कहा—"लो, तुरन्त रत्नाकरको चलिए।" सागरमें जाकर उन्होंने वहाँ सौ कन्याओंको रमण करते हुए देखा। उस स्थान पर राजाने सूएके वचनानुसार देवकी भले प्रकार अर्चना की।

१०—राजाकी रत्नमालासे भेंट

वह कन्याओका समूह भी देवोंका स्नान और अर्चना करके अपने घर गया। सूआ राजाको भी तत्क्षण उन्हींके पीछे-पीछे ले गया। छोहार द्वीपमें पहुँचकर राजा उन कन्याओंके घर पहुँचा। उनके चित्तोंको परस्पर मिलाते हुए, सूएने तत्क्षण राजासे कहा—"हे नरपति, तू इस कचनके समान दिव्यदेह रत्नलेखाका परिणय कर ले। बहुत पहले ही आर्य मुनीन्द्रोंने कह रखा है कि इसका परिणय तुम्हारे-जैसे पुरुष-द्वारा ही होगा।" यह सुनकर नरेन्द्रने उस कमलसमान

तं सुणिवि णरिंदें[3] सा भणीय अभोरुहदीहरलोयणीयँ[4] ।
हे सुंदरि सूयउ भणइ जाइँ पडिहासहिँ[5] तुहुँ वयणाइँ ताइँ ।
घत्ता—तं सुणिवि कुमारी पडिलवइ अणुराएँ वयणु पडिक्खलइ ।
मइँ केर तुहारी मणि धरिय सुयवयणु णरेसर कि चलइ ॥ १० ॥ 10

११

He sails with her for home and reaches a deserted island

तं वयणु सुहावउ सुणिवि[1] तेण सा परिणिय राणइँ तुरियएण ।
तहिँ णेहेँइँ[2] भोयसहास भुत्त ता एक्कहि दिणे पडिलवइ धुत्त ।
पयडंतिए णिब्भरु परमु[3] णेहु हे णरवइ पेक्खहुँ तुम्ह गेहु ।
तहे वयणु सुणेविणु सोहमाणु परसज्जिउ राएँ सलिलजाणु ।
तं भरियउ रयणहिँ मणहरेहिँ परिसोहिउ धयवडसुंदरेहिँ । 5
सुयतुरयएँ घरिणिएँ सहुँ णरिंदु तहिँ चडियउ रेहइ ण सुरिंदु ॥ ।
तं सलिलजाणु रयणायरम्मि वाएण गयउ दीवतरम्मि ।
उव्वसि परिलग्गउ गयदिणम्मि ता राएँ चिंतिउ णियमणम्मि ।
घत्ता—पुणु भणियउ कीरु णरेसरइँ किम रयणि गमेवी एत्थु सुहि ।
तं सुणिवि कीरु पडिलवइ णिव अइणिब्भरु होइवि मा सुयहि ॥११॥ 10

१२

Their bad luck on the island and the sea.

हयणारिकीरणिव थिरमणेहिँ किय तुरिय जाम चउहिँ मि जणेहिँ ।
णिवपहरएँ तुरियइँ हयसमाणु ता चोरहि हरियउ सलिलजाणु ।
रविउग्गमे णरवइ णियइ जाव ण[1] चि पेक्खइ वोहिथु तुरउ ताव ।
पुणु वत्त कहिय कीरहो णिवेण गउ वोहिथु ण जाणहुँ किं पहेणँ[2] ।
मणि खेउ वहंतएँ सूयएण पुणु भणिउ णराहिउ तुरियएण । 5
खंडु[3] कड्ढिवि बधहु तुरिउ तेव रयणायरु लीलएँ तरहु जेव ।
तं रइवि चडिण्णउ सरलराउ णियघरिणिहे सरिसउ सुयसहाउ ।
तहो[4] लहरिहिँ बंधइँ तोडियाइँ देसतर राएँ हिंडियाइँ ।
घत्ता—ता उड्डिवि सूयउ वडि गयउ णिउ णरवइ लहरिहिँ कोंकणहो ।
तहो घरिणि मणोहर विहिवसइँ णिय खंभायच्चहो पट्टणहो ॥ १२ ॥ 10

१३

Ratnalekhā at Khambhāyacca

तहि लंवझलंवा कुट्टणीएँ सा दिट्ठी ताइँ वियक्खणीएँ ।
घरि रयणलेह णेवावि ताएँ जलगंधु णिवारिउ सुललियाएँ ।
ता लंवझलंबएँ भणिय मुद्ध विणु गहणइँ वेस ण होइ सुद्ध ।
त णिसुणिवि जंपिउ सुंदराए इह जूवइँ जो मइँ जिणइ माए ।
सो सोवइ मइँ सहुँ भणिउ ताएँ ता जिणिया जूवें णर तियाएँ । 5

---

३ णरिंदइ भणिय सा वि ४ N °लोयणा वि ५ N पडिहासइ

११ १ N मुणियएण २ N तेहइ. ३ J N परमणेहु

१२ १ J में 'ण' छूटा है. २ N परेण ३ S खडि कड्ढेवि ४ J तहिं

दीर्घनयना कन्यासे कहा—"हे सुन्दरि, यह सूआ जो बातें कह रहा है, वे तू पसन्द करती है न?" यह सुनकर उस कुमारीने उत्तर दिया। अनुरागसे उसके वचन लडखडा रहे थे। वह बोली—"मैंने तो अपने मनमें आपकी सेवाका भाव धारण कर लिया है। हे नरेश्वर, सूएका वचन कैसे टल सकता है?"

११—राजाकी जलयात्रा

उसका ऐसा सुहावना वचन सुनकर राजाने तुरन्त ही उसका परिणय कर लिया और वहाँ स्नेहसे सहस्रों भोग भोगे। फिर एक दिन उस कुशल कन्याने परमस्नेह प्रकट करते हुए कहा—"हे नरपति, मै तुम्हारा घर देखना चाहती हूँ।" उसका वह शोभनीक वचन सुनकर राजाने एक सलिलयान (नौका) सुसज्जित कराया। उसे मनोहर रत्नोंसे भरा और सुन्दर ध्वजपटोंसे शोभायमान किया। सूए, घोड़े और गृहिणीके साथ उसपर चढ़कर नरेन्द्र ऐसा शोभायमान हुआ जैसे ५ सुरेन्द्र। वह सलिलयान रत्नाकरके वायुके बलसे चलता हुआ द्वीपान्तरमें पहुँचा। दिन अस्त होते वह यान एक ऊजड़ द्वीपसे जा लगा। तब राजाने अपने मनमें चिन्ता की और फिर सूएसे कहा—"हे मित्र, यहाँ रात्रि कैसे निकाली जायगी?" तब सूएने उत्तर दिया—"हे नृप, बहुत असावधान होकर मत सोइए।"

१२—नौका-भंग और पति-पत्नी वियोग

तब घोडा, नारी, सूआ और राजा—इन चारों जनोंने स्थिर मनसे चार पहरे नियत किये। राजाके पहरेमें चोर जल्दीसे घोडे-सहित सलिलयानको हर ले गये। रवि उदय होनेपर जब राजाने देखा, तब उसे अपनी नौका व घोड़ा दिखायी नहीं दिया। तब राजाने यह बात सूएसे कही—"न जाने नौका किस मार्गसे चली गई?" सूएने मनमें खेद धारण करते हुए तुरन्त राजासे कहा—"खड (लकडी) काटकर, तुरन्त उन्हें बाँधो, जिससे तुम सरलतासे रत्नाकरको तर सको।" ५ सरल स्वभावी राजा नौकाकी रचना करके अपनी गृहिणी तथा सूएके साथ उसपर चढ़ गया। किन्तु समुद्रकी लहरोंसे नौकाके बन्धन टूट गये और राजा देशान्तरमें भटक गया। तब सूआ उडकर एक वटवृक्षपर जा पहुँचा, राजाको समुद्रकी लहरोंने कोंकणमें जा डाला तथा उसकी मनोहर गृहिणी विधिवश खम्भायत पट्टणमें जा पडी।

१३—रत्नलेखा खंभायतकी कुट्टनीके घर

खम्भायतमें रत्नलेखाको लम्बझलम्बा नामकी विलक्षण कुट्टनीने देखा। वह उसे अपने घर लिवा ले गयी और उस सुललिताने उसकी जलकी गन्धका निवारण किया। फिर लम्बझलम्बाने उस भोली महिलासे कहा—"बिना ग्रहण (प्रेम-बन्ध) के वेश्या शुद्ध नहीं होती।" यह सुनकर उस सुन्दरीने कहा—"हे माता, जो कोई मुझे जूएमें जीत सकेगा, वही मेरे साथ सो सकता है।"

तहॅं दव्वु लेवि वेसहे विइण्णु पुणु टहिउ कूरु अंगणे पइण्णु ।
रयणायरवडे सूयहॅं णिकाउ त चुणिवि वलिवि पुणु तहिं गयाउ ।
सुयणामइँ पुच्छिय कहिं गयाय तुम्हइँ सुहि भोयणु लेवि आय ।
तहो कहिय वत्त तेहिँ मि सुएहि पुणु भणिय ते वि वयणुल्लएहिँ ।
घत्ता—मइँ लेविणु तुम्हइँ णेहु तहिं जहिं कूरु पइण्णउ वालियएँ । 10
ता णीयउ तेहिँ तुरतयहिं घरु वेसहिँ दिट्ठउ सो वि तएँ ॥ १३ ॥

१४

Her fame in the game of dice reaches Aridamana's ear

चुणंतइँ कीरइँ असुवमाल पमेल्लिय पेक्खिवि सामिणि वाल ।
चिराणउ सूयउ ताएँ मुणेवि अणाविउ सो सुयणामु भणेवि ।
अरे सुय भायर आवहि एत्थु तुहारउ सामिउ अच्छइ केत्थु ।
ण जाणउँ देवि कहिं गउ राउ पवड्ढिउ ताहे मणम्मि विराउ ।
णिवारिय सूयएँ देवि विसाउ कुणतहॅं णासइ सुद्धउ भाउ । 5
महारउ चित्तु कहेइ मयच्छि मिलेसइ सामिउ पावियलच्छि ।
सुणेविणु कीरहो वाणि सणिद्ध रमतिय अच्छइ भावविसुद्ध ।
पवड्ढिय कित्ति समुद्दपमाण सुमोत्तियदामइँ वद्ध जुवाण ।
घत्ता—अरिदमणहो केण वि इउ कहिउ पट्टणु खंभायच्चु जहिं ।
ण वि सारिहिं जूवइ को वि णरु ण वि सक्कइ जिणणहॅं वाल तहिं ॥१४॥ 10

१५

Renuion of Ratnalekhā and Aridamana

त सुणिवि णरेसरु थिरमणेण गउ खभाइचहो तक्खणेण ।
तहिं जाइवि टिंटहिं गउ तुरतु जूवारहॅं सयलहॅं मणु हरतु ।
तहॅं मज्झि णिविट्ठउ सो सहेइ छणइदहो लीला णं वहेइ ।
जीयाइँ णरिंदहॅं आयरेण सोवण्णहॅं सत्तसयाइँ तेण ।
धणु दिंतउ भडहॅं णग्गुडाहॅं गउ वेसहॅं घरु धणलपडाहॅं । 5
जूएण पसिद्धी कित्ति जाहे देवाविउ गहणउ तेण ताहे ।
अप्पुणु पुणु रयणिहिं गयउ तेत्थु सूयएँ सहुँ रमणि णिविट्ठ जेत्थु ।
सा भणिय तेण ण मयणदूउ लइ सुदरि खेल्लहिँ सारिजूउ ।
घत्ता—सा जित्ती तेण णराहिवइँ जा हूई मणे विहडप्फडिय ।
ता ताएँ वियाणिवि णियरमणु खणे अगें अगु समुब्भिडिय ॥१५॥ 10

१६

The goddess reassures Rativegā and goes away

जावच्छइ तिएँ सहुँ तेत्थु[1] राउ ता तुरय लेवि को वि टक्कु आउ ।
तहिं मज्झि[2] णिहालिउ राणएण किउ ऊहणु तें सहुँ[3] टक्कएण ।
वोल्लाविउ राएँ णामु लेवि ता घोडें जोइउ मुहु वलेवि ।

१४ १ N पविट्ठिउ

१६ १ J तित्थु २ S मज्झे ३ J में 'सहु' छूटा है ।

फिर उस महिलाने जूएमें अनेक पुरुषोंको जीत लिया और उनका द्रव्य लेकर उस वेश्याको दे दिया। फिर उसने दही और भात आँगनमें बिखरा दिया। समुद्रके वटवृक्षमें रहनेवाले सूओंका पुञ्ज उस दही-भातको चुनकर वापिस जब उसी वटवृक्षपर गया, तब उस राजाके सूएने उनसे पूछा—"तुम कहाँ गये थे, जहाँसे, हे मित्र, तुम यह भोजन लेकर आये ?" तब उन सूओंने उसे सब बात कही। तब उस सूएने पुनः उनसे बात कही—"तुम मुझे वहाँ ले चलो, जहाँ बालिकाने भात फैलाया है।" तब वे उसे तुरन्त वहाँ ले गये और उसने वह वेश्याका घर देखा।

१४—रत्नमालाके द्यूतकौशलकी ख्याति राजाके कानोंपर

उस सूएने भात चुनते हुए खूब आँसू बहाये। यह देखकर उसकी स्वामिनी बालाने अपना पुराना सूआ पहचान लिया और नाम लेकर उसे बुलाया—"अरे भाई सूए, यहाँ आओ। तुम्हारा स्वामी अब कहाँ है ?" सूएने उत्तर दिया—"नहीं जानता, देवि, कि राजा कहाँ गया ?" यह सुनकर उस सुन्दरीके मनमें विराग बढ़ा। सूएने उसे रोका—"हे देवि, विषाद करनेसे शुद्ध भाव नष्ट हो जाता है। हे मृगाक्षी। मेरा चित्त कहता है कि स्वामी, लक्ष्मी प्राप्त करके अवश्य मिलेगा।" सूएकी स्नेहपूर्ण वाणी सुनकर वह विशुद्धभावसे प्रसन्न रहने लगी। उसकी कीर्ति समुद्रप्रमाण बढ़ गयी। उसने सुन्दर मोतियोंकी मालाओंसे युवकोंको बाँध लिया। (यह मौक्तिकदाम छन्द है।) यह बात अरिदमन राजासे किसीने कही कि खम्भायत पट्टणमें कोई नर सारा-पासा खेलना नहीं जानता। कोई भी वहाँकी एक बालिकाको नहीं जीत पाता।

१५—राजा-रानीकी द्यूतक्रीडा और पहिचान

यह सुनकर राजा अरिदमन अपना मन स्थिर करके तत्क्षण खम्भायतको गया। वहाँ जाकर वह तुरन्त टेण्टा (जूआघर) में गया और वहाँ समस्त जुआड़ियोंके मनको हरण करने लगा। उनके बीच बैठा हुआ वह ऐसा शोभता था, मानो उसने पूर्णचन्द्रकी लीला धारण की हो। उस राजाने वहाँ आदरपूर्वक सात सौ सुवर्ण जीत डाले। फिर वह भाँडों और नगोडोंको धन बाँटता हुआ उस धन-लम्पटा वेश्याके घर गया। उसने जिसकी जूएमें कीर्त्ति प्रसिद्ध थी—उसको ग्रहण (आमन्त्रण) दिलवाया। फिर आप स्वयं रात्रिमें वहाँ गया, जहाँ सूएके साथ वह रमणी बैठी थी। उसने उससे कहा—"लो सुन्दरि, हम मदनदूतके समान सारिद्यूत खेलें।" राजाने उसे जीत लिया, जिससे वह सुन्दरी मनमें घबरा उठी। किन्तु जब उसने जान लिया कि वह उसीका पति है, तब उसी क्षण उसके अगसे अपने अगका आलिंगन किया।

१६—देवीका रतिवेगाको सम्बोधन—जैसे ये मिले तैसे तुझे तेरा पति भी मिलेगा

जब राजा अरिदमन रत्नलेखाके साथ वहाँ खम्भायतमें रह रहा था, तब कोई एक टक्क (पंजाब देशवासी) घोड़े लेकर वहाँ आया। राजाने उन घोड़ोंके बीच निहार कर देखा और उस टक्कके साथ मोल-भाव किया। राजाने नाम लेकर घोड़ेको बुलाया। तब घोड़ेने भी मुँह मोड़कर

अइदुब्बलु ऊहणु जो किओ वि सोवण्णु देवि तें किणिउ सो वि।
तियकीरणराहिवअस्सयाहँ मेलाविउ हूइउ दुत्थियाहँ। 5
भुंजंतइँ सोक्खइँ तहिँ ठियाइँ णियदेसहो पुणु तइय वि गयाइँ।
मइँ कहियउ हँलि तुह सो जि राउ रयणायरे पडियउ घरहो आउ।
जइ आयउ सो गुणगणमहंतु तुह मुद्धि मिलेसइ तुज्झु कंतु।
घत्ता—इउ कहिवि भडारो तहेँ सयलु सव्वगेँ णिरुवम कोमलिय।
सा गइय तुरंती णियणिलउ चदाणण देवहँ परिमिलिय ॥१६॥ 10

१७

Karakanda returns to Rativega

रइवेयएँ ता दुम्मणमणाएँ पकयरुहकोमलआणणाएँ।
जं देविएँ भणियउ वयणु किं पि अणुसरिउ खणद्धें ताएँ त पि।
धणु पवरु लएवि तुरंतियाइँ अहिणवमुणालवरगत्तियाइँ।
तं सयलु विहजिवि दुत्थियाहँ सुहभोयणु दिण्णउ भुक्खियाहँ।
जावच्छइ सा तहिँ रइ करति जिणणाहहो चलणइँ मणि सरति। 5
रयणावलिविहिभारें णमति मुत्तावलिमोत्तियदाम दिंति।
कुसुमजलिकुसुमहिँ विप्फुरंति पल्लोवमविहिपल्लवे चरंति।
चउसत्थियविहिसत्थेण जंति वसुहारविहाणहो मणु थवति।
ता एक्कहिँ दिणि कणयप्पहाएँ तहि आणिउ सो करकंडु ताएँ।
घत्ता—रइवेयइँ दिट्ठउ णियरमणु तहिँ हरिसइँ वड्ढिउ अंसुजलु। 10
ता विज्जु चमक्किय कसणतणु सिहिकतएँ णं जलहरु सजलु ॥१७॥

१८

Karakanda conquers the Southern kings

रइवेयएँ पुणु कणयप्पहाहेँ गुरु आयरु कीयउ सयलु ताहेँ।
परिओसु पवड्ढिउ परियणाहँ सामतमतिविंभियमणाहँ।
तहिँ अच्छिवि कित्तिय दिण सराउ संचल्लिउ ता करकंडु राउ।
ता दिविडदेसु महियलु भमंतु सपत्तउ तहिँ मच्छरु वहतु।
तहिँ चोडचेरपडियणिवाहँ केणावि खणद्धें कहिउ ताहँ। 5
अरि आयउ तुम्हहँ उवरि देव तिम किज्जइ दूरहु जाइ जेव।
तं सुणिवि खणद्धें ते मिलीय करकडहो जाएवि पुणु भिडीय।
करि करिहि भिडिय रह रहवराहँ हय तुरयहँ ता णर णरवराहँ।
रोसारुण दारुण अइभिडंति धयदंडछत्तसीसइँ पडंति।
अंतउ ललति णर पक्खलति जसलुद्ध महाभड पुणु मिलति। 10
कउ सगरु तेहिँ महंतु केव गयणगणि सुरवर डरिय जेव।
घत्ता—करकंडएँ धरिया ते वि रणे सिरमउड मलिय चरणेहिँ तहु।
मउडग्गहिँ देक्खिवि जिणपडिम करकडहो जायउ बहलु दुहु ॥१८॥

---

४ S हले. ५ J घरहिं,

१७. १ D रइवेए २ D पउरु

१८ १ DN सणद्धें

राजाकी ओर देखा। जो कुछ कमसे-कम मोल ठहरा, उतना सुवर्ण देकर राजाने घोडेको खरीद लिया। इस प्रकार दुरवस्थाको प्राप्त उन स्त्री, सूआ, राजा और अश्व, इनका फिर मिलाप हो ५ गया। वे सुख भोगते हुए वहाँ रहे; और फिर वे अपने देशको चले आये। पद्मावती देवीने रतिवेगासे कहा—"हे बालिके, मैने तुझे कह सुनाया कि किस प्रकार वह राजा समुद्रमें पडकर भी घर लौट आया। जिस प्रकार वह महागुणवान् राजा आ गया, उसी प्रकार, हे मुग्धे, तेरा कान्त भी तुझे मिल जायेगा।" रतिवेगाको इतना सब कहकर वह सर्वांगसे निरुपम, कोमल व चन्द्रानना भट्टारिका पद्मावती देवी, तुरन्त अपने निवास-स्थानको चली गयी और देवोंमें जा मिली। १०

१७—रतिवेगा और करकण्डका पुनर्मिलन

तब यहाँ कमलके समान कोमलमुखी रतिवेगाने उदास मन होते हुए भी, जो कुछ वचन देवीने कहा था, उसका क्षणार्द्धमें अनुसरण करना प्रारम्भ कर दिया। उस अभिनव मृणालके समान सुन्दरांगी बालिकाने तुरन्त प्रचुर धन लेकर समस्त दुःखी दरिद्र लोगोमे बाँट दिया और भूखे लोगोंको अच्छा भोजन कराया। इस प्रकार वह वहाँ भक्ति करती हुई, मनमें जिनेन्द्रके चरणोंका स्मरण करती हुई, रहने लगी। वह रत्नावली नामक उपवासविधिके भारसे झुक रही थी; ५ मुक्तावली रूपी मोतियोंकी माला धारण करती थी; कुसुमाञ्जली रूपी पुष्पोंसे चमकती थी; पल्योपम विधि-रूपी सार्थसे गमन करती थी, तथा वसुधारा नामक विधानमें अपना मन स्थापित करती थी। फिर एक दिन वह कनकप्रभा नामकी विद्याधर-कन्या करकण्डको वहाँ ले आयी। रतिवेगाने अपने पतिको देखा, तब हर्षसे उसकी आँखोंमें अश्रुजल भर आया। वह कृशांगी ऐसी चमक उठी जैसे कृष्णवर्ण सजल मेघ बिजलीसे चमक उठता है, अथवा मयूरी सजल मेघको १० देखकर नाच उठती है।

१८—करकण्डका द्रविड राजाओंसे युद्ध और उनकी पराजय

फिर रतिवेगाने कनकप्रभाका सब प्रकारसे बडा आदर किया। परिजनोंमें तथा विस्मित मन सामन्तों और मन्त्रियोंमें परितोष बढ़ा। वहीं कुछ दिन आनन्दपूर्वक रहकर करकण्ड राजा वहाँसे चल पडा। महीतलपर भ्रमण करते हुए, तथा मनमें मात्सर्य (क्रोध) भाव रखते हुए, वह द्रविड देशमें पहुँचा। वहाँ चोड, चेर व पाण्ड्य राजाओंसे किसीने क्षणार्द्धमे जाकर कहा—"हे देव, तुम्हारे ऊपर बैरी चढ़ आया है। ऐसा कीजिए जिससे वह दूरसे ही चला जाये।" यह ५ सुनकर वे राजा क्षणार्द्धमें परस्पर मिले और फिर जाकर करकण्डसे भिड़ गये। हाथी हाथियोंसे, रथ रथवरोंसे, हय तुरगोंसे तथा पुरुष पुरुषोंसे भिडने लगे। वे रोषसे लाल होकर दारुण रीतिसे युद्ध करने लगे। ध्वजा, दण्ड, छत्र तथा सिर कट-कटकर पडने लगे। योद्धा अन्तरगमें ललकते और प्रस्खलित होते। यशके लोभी महाभट पुन परस्पर मिलते। इस प्रकार उन द्रविड राजाओंने ऐसा महान् सग्राम किया कि जिससे गगनागनमें सुरवर भी डर उठे। करकण्डने उन राजाओंको १० रणमें पकड लिया और उनके सिरपरके मुकुटोंको अपने चरणोंसे रौदा। किन्तु मुकुटोंके अग्रभाग पर जिन-प्रतिमाको देखकर करकण्डको बहुत दुःख उत्पन्न हुआ।

१६

He reinstalls them and returns to Terapur

हा हा मइँ मूढइँ किं कियउ जिणबिंबु वि चरणेँ आहयउ ।
इह पावफलेँ दुग्गइणिवासु णउ जाणहुँ होसइ कहिँ मि वासु ।
मणि दुम्मिय मउलियलोयणेण चोडाहिव मुक्का ते वि तेण ।
ज सगरि मइँ तुम्हइँ खलीय ज चरणहिँ मउडइँ दरमलीय ।
त खमहु सयलु महो वधवासु पडिगाहहु देसु सपिंडवासु । 5
तं णिसुणिवि तेहिँ पडिवयणु उत्तु तुह सेव करेसहिँ अम्ह पुत्त ।
इय जपिवि ते चपाहिवासु पुणु सरिय खणद्धेँ अडविवासु ।
तणु तिणु व गणेविणु ललियगत्त तउ करिवि तेइँ सग्गग्गि पत्त ।

घत्ता—करकडु तहतउ णीसरिउ गउ समुहुँ तेरापट्टणहो ।
जहिँ सुदरि मयणावलि हरिय सपत्तउ त पएसु वणहो ॥१९॥ 10

२०

Karakanda regains Madanāvali and returns to campā

जावच्छइ सो तहिँ आयरेण मयणावलि अप्पिय खेयरेण ।
ता तेण तुरिउ विज्जाहिवेण तहो कहिउ भवतरु णियहिएण ।
अहि होतउ हउँ अण्णहिँ भवम्मि हिडतु पराइउ तुह घरम्मि ।
ता दिट्ठउ मइँ पजरठिओ वि पारावउ पाराविएँ जुओ वि ।
सो पाएँ गहिउ मइँ चडफडतु ता पत्तउ तहिँ तुहुँ परिभमतु । 5
छडाविउ सो पइँ तुरियएण णवकारु पइण्णउ करुणएण ।
सो खेयरु जायउ तहो फलेण हउँ णासिवि गउ तुज्झु वि छलेण ।
एक्कहिँ दिणि चप्पिउ हयखुरेण मुणि कण्णजाउ दिण्णउ वरेण ।
हउँ खेयरु जायउ फलइँ तेण तुहुँ एत्थु दिट्ठ सपत्तएण ।
चिररोसेँ हरिय मइँ घरिणि तुज्झु लइ अक्खिउ मइँ तुह एउ गुज्झु । 10
हउँ एवहिँ किंकरु तुह भरेण पुणु णमिय चरण सण्णयसिरेण ।
अवराहु कियउ जो मइँ वि देव सो खमहि ण छडमि तुज्झ सेव ।

घत्ता—समाणिवि दाणइँ सो खयरु गउ चपहिँ साहिवि महि णिवइ ।
सो रज्जु करतउ वहुय दिण तहिँ अच्छइ कणयामरणिलइँ ॥२०॥

इय करकडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयसे पचकल्लाणविहाणकप्पतरु-फलसपत्ते करकडपुहइसाहणो चपापुरिपवेसो णाम अट्ठमो परिच्छेउ समत्तो ।

॥ सधि ॥ ८ ॥

२० १ DN सविणय

१६—करकण्डका पश्चात्ताप व तेरापुरका आगमन

करकण्ड पश्चात्ताप करने लगा—"हाय हाय, मुझ मूढ़ने यह क्या किया ? जिनबिम्बको भी चरणसे आहत किया। इस पापके फलसे न जाने कौन-सी दुर्गतिमें मेरा निवास होगा ?" इस प्रकार मनमें दुःखी होकर तथा अपनी आँखें मींचकर उसने उन चोड राजाओंको छोड दिया और कहा—"जो मैंने संग्राममें तुम्हे पराजित किया, व जो अपने चरणोंसे तुम्हारे मुकुटोंको रौंदा, यह सब मुझे अपना बन्धु समझकर क्षमा करो, और अपने पैतृक-निवास देश (जन्मभूमि) को वापिस लो।" यह सुनकर उन द्रविड राजाओंने उत्तर दिया—"अब आपकी सेवा हमारे पुत्र करेंगे।" चम्पाधिपको ऐसा कहकर फिर उन्होंने क्षणार्द्धमें वनवासका अनुसरण किया। वे ललितगात्र नृप अपने शरीरको तृणके समान गिनकर तपस्या करके स्वर्गके अग्रभागको प्राप्त हुए। करकण्ड वहाँसे निकलकर तेरापट्टनके सम्मुख गया और वनके उस प्रदेशमें पहुँचा, जहाँ सुन्दरी मदनावली हरी गयी थी।

२०—मदनावलीकी पुनः प्राप्ति और चम्पापुरी-आगमन

वहाँ जब वह आदरपूर्वक रह रहा था, तब उस खेचरने मदनावलीको लाकर अर्पित किया। उस विद्याधरने तुरन्त ही अपने हृदयसे अपना भवान्तर कह सुनाया। मै पूर्व भवमें सर्प था। भ्रमण करता हुआ मैं तुम्हारे घरमें आ पहुँचा। वहाँ मैंने पिंजरेमे स्थित परेवीसे युक्त परेवेको देखा। मैंने उसका पैर पकड लिया। वह तडफड़ाने लगा। उसी समय तू घूमता हुआ वहाँ आ पहुँचा। तूने उसे तुरन्त छुडा लिया और करुणापूर्वक उसे णमोकार मन्त्र दिया। उसके फलसे वह परेवा खेचर हो गया। मैं तेरी आँख बचाकर वहाँसे भाग गया। एक दिन मैं एक घोडेके खुरसे कुचला गया। उस समय एक मुनिवरने मेरे कानमें णमोकार मन्त्रका जाप दिया। उसके फलसे मैं खेचर हो गया, और यहाँ आनेपर मैंने तुझे देखा। उस पुराने रोषके कारण मैने तेरी गृहिणीका हरण किया। ले, मैने तुझे यह गुप्त बात कह दी। अब मै पूर्णरूपसे तेरा किंकर हूँ। इतना कहकर उस खेचरने अपना सिर नवाकर करकण्डके चरणोंको नमस्कार किया। फिर बोला—"हे देव, मैंने जो अपराध किया, उसे क्षमा कीजिए। मै अब कभी तुम्हारी सेवा नहीं छोड़ूँगा।" करकण्ड नृपतिने उस खेचरका दानसे सम्मान करके व पृथ्वीको साधकर (वशीभूत करके) चम्पाको गमन किया। वहाँ वह राज्य करते हुए बहुत दिनों तक अपने कनकमय अमर प्रासादमें रहा।

इति मुनि-कनकामर-विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान-कल्पतरु-फलसम्पन्न करकण्डमहाराज-चरित्रमें करकण्डका पृथ्वीसाधन तथा चम्पापुरी-प्रवेश नामक अष्टम परिच्छेद समाप्त।

संधि—९

१

The forest guard reports the arrival of sage shilagupta

चंपाहिउ बुहयणवेढियउ सुहलीलइँ अच्छइ जाव तहिं ।
ता आयउ उज्जाणाहिवइ अत्थाणि णिविट्ठउ राउ जहिं ।।

सो पुच्छिउ करकंडएँ णिवेण — कहि आयउ तुहुँ कज्जेण केण[1] ।
सो कहइ णरेसर उववणम्मि — जो झायहिं सुमरहिं णियमणम्मि ।
जसु दसणे हरि उवसमु सरेइ — करिकुंभहो गाहु ण सो करेइ । 5
अवरुप्परु वइरइँ जे वहंति — तहो दसणे मद्दउ मणे लिहंति ।
जसु दसणे अणुवय के वि लिंति — जिणु छडिवि अण्णहिं मणु ण दिंति ।
केहिं मि मणि गहियइँ गुणवयाइँ — अवराइँ मि पुणु सिक्खावयाइँ ।
धम्मालउ सजमणिलउ भाइ — किं जिणवरु मुणिवेसेण णाइँ ।
तहिं आयउ मुणिवरु णाणजुत्तु — णामेण पसिद्धउ सीलगुत्तु । 10

घत्ता—करकडु सुणेविणु त वयणु अत्थाणहो उट्ठिउ तक्खणिण ।
गउ सत्तपयइँ मउलेवि कर सुमरतउ मुणिवरपय मणिण ।।१।।

२

People start on a visit to the sage.

ता आणंदभेरि[1] तुरंतएण — देवाविय तुट्ठइँ राणएण ।
तहे णंद[2] सुणेविणु लद्धभोय[2] — परिमिलिय खणद्धें भवियलोय[3] ।
क वि माणिणि चल्लिय ललियदेह — मुणिचरणसरोयहँ वद्धणेह ।
क वि णेउरसद्दे रणझणति — सचल्लिय मुणिगुण[4] णं थुणंति ।
क वि रमणु ण जंतउ परिगणेइ — मुणिदंसणु हियवएँ सइँ मुणेइ । 5
क वि अक्खयधूव भरेवि थालु — अइरहसइँ चल्लिय लेवि बालु ।
क वि परिमलु वहलु वहंति जाइ — विज्जाहरि ण महियलि विहाइ ।

घत्ता—काइ वि छणससहरआणणिय करे कमल करंती सचलिय ।
आणदिय भेरिहे सुणिवि सरु लहु भवियण सयल वि तहिं मिलिय ।।२।।

३

On his way Karakanda sees a miserable woman.

जिणिंदधम्मरत्तओ — मुणिंदपायभत्तओ ।
सुवण्णकतिदित्तओ — सरोयपत्तणेत्तओ

१. १ J जेण
२ १ DJ णदियं २ DN सद्द. ३ DN णयरलोय ४ N मुणिवरगुण थुणति.

सन्धि—९

१—चम्पाके उपवनमें शीलगुप्त मुनिका आगमन

बुधजनोंसे वेष्टित चम्पाधिप जब सुख व लीलापूर्वक वहाँ रह रहा था, तब जहाँ सभामें राजा बैठा था वहाँ उद्यानका अधिपति आया। करकण्ड राजाने उससे पूछा—"तू किस कार्यसे आया है, सो कह।" उसने कहा—"हे नरेश्वर, जिसका लोग अपने मनमें ध्यान और स्मरण करते है, जिसके दर्शनसे सिंह भी उपशान्त हो जाता है, और हाथीके मस्तकका आग्रह नहीं करता; जिसके दर्शनसे परस्पर वैर धारण करनेवाले प्राणी भी अपने मनमें मार्दव भाव ले लेते है; जिसके ५ दर्शनसे कोई अणुव्रत ले लेते है और जिनेन्द्रको छोडकर अन्य किसीमें मन नहीं देते; कोई गुणव्रत ग्रहण कर लेते है और पुन अन्य शिक्षाव्रत ले लेते है; जैसे धर्मालय ही हों, अथवा सयमके घर, या मानो मुनिके वेशमें जिनवर ही हों—ऐसे ज्ञानयुक्त शीलगुप्त नामके प्रसिद्ध मुनिवर उपवनमें आये है।" यह वचन सुनकर करकण्ड अपने सिंहासनसे तत्क्षण उठ खडा हुआ तथा हाथ जोडकर व मनमें मुनिवरके पदोंका स्मरण करते हुए सात पग आगे बढा। १०

२—नर-नारियोंका मुनि-दर्शनके लिए उत्साह

फिर तुरन्त ही राजाने सन्तुष्ट होकर आनन्दभेरी दिलवायी। उस भेरीका नाद सुनकर सौभाग्यशाली भव्य लोग क्षणार्द्धमें आ मिले। कोई ललितदेह मानिनी मुनिके चरण-कमलोंमें स्नेह बाँधकर चल पडी। कोई नूपुरके शब्दोंसे झुन-झुन ध्वनि करती हुई चली, मानो मुनिके गुणोंका स्तवन कर रही हो। कोई अपने साथ चलते हुए रमणकी ओर ध्यान न देकर स्वय हृदयसे मुनिके दर्शन-की अभिलाषा कर रही थी। कोई अक्षत व धूपसे थाल भरकर, बालकको ले, बडे वेगसे चल ५ पडी। कोई खूब सुगन्ध उडाती हुई जा रही थी, मानो विद्याधरी महीतलपर शोभित हो रही हो। कोई पूर्णचन्द्रमुखी हाथमें कमल लेकर चल पडी। इस प्रकार आनन्दभेरीका स्वर सुनकर सभी भव्यजन शीघ्र वहाँ आ मिले।

३—शोक-व्याकुल स्त्रीका दृश्य

जिनेन्द्रधर्ममें अनुरक्त, मुनीन्द्रके चरणोंका भक्त, स्वर्ण समान कान्तिवान्, कमलपत्रके समान नेत्रवान्, प्रलम्ब व पीनभुजशाली, सब शास्त्रोंका ज्ञाता एव विशुद्ध व सुसन्धित-गात्र राजा कर-

पलंबपीणहत्थओ विबुद्धसव्वसत्थओ ।
विसुद्धसंधिगत्तओ पणेण जाव पत्तओ ।
तहिँ पि ताव दिट्ठिया भणंति हा पमूढिया । 5
पुरंधि का वि दुक्खिया हणंति दो वि कुक्खिया ।
रुवति अंसुवाहुलं जणाण दुक्खसंकुलं ।
कुणंति चित्तु आउलं धरंति वेसु वाउलं ।
घुलंति जा वि मुच्छए पडंति भूपएसए ।
सुणेवि तं णरेसरो सुवारुणिद्धणीसरो । 10

घत्ता—करकंडइँ पुच्छिउ को वि णरु एह णारि वराई किं रुवइ ।
विलवंती हियवइँ दुहु करइ अप्पाणउ विहलंघल मुअइ ॥ ३ ॥

४

He learns the cause of her troubles and becomes disgusted with the ways of the world.

ता अक्खिय रायहो वत्त तेण दुक्खाउर हूई एह जेण ।
त कारणु णिसुणहि सामिसाल भुजतिहे भोयइँ सयलकाल ।
उप्पण्णउ णदणु विहिवसेण सो णीयउ आयहे वइवसेण ।
तेँ रुवइ सदुक्खउ महिल एह अप्पाणउ घल्लइ बद्धणेह ।
परिमेल्लइ पासु ण णदणासु वीसरइ ण सो पुणु णियमणासु । 5
तं सुणिवि वयणु रायाहिराउ संसारहो उवरि विरत्तभाउ ।
धी धी असुहावउ मच्चलोउ दुहकारणु मणुवहँ अंगभोउ ।
रयणायरतुल्लउ जेत्थु दुक्खु महुविंदुसमाणउ भोयसुक्खु ।

घत्ता—हा माणउ दुक्खइँ दड्ढतणु विरसु रसंतउ जहिँ मरइ ।
भणु णिग्घिणु विसयासत्तमणु सो छडिवि को तहिँ रइ करइ ॥४॥ 10

५

Transitory nature of worldly existence

कम्मेण परिट्ठिउ जो उवरे जमरायएँ सो णिउ णिययपुरे ।
जो बालउ बालहिँ लालियउ सो विहिणा णियपुरि चालियउ ।
णवजोव्वणि चडियउ जो पवरु जमु जाइ लएविणु सो जि णरु ।
जो वूढउ वाहिसएहिँ कलिउ जमदूयहिँ सो पुणु परिमलिउ ।
बलहद्दएँ सहु हरि अतुलबलु सो विहिणा णीयउ करिवि छलु । 5
छक्खंड वसुधर जेहिँ जिया चक्केसर ते कालेण णिया ।
विज्जाहर किंणर जे खयरा बलवता जममुहेँ पडिय सुरा ।
फणिणाहइँ सरिसउ अमरवइ जमु लितउ कवणु वि णउ मुअइ ।

घत्ता—णउ सोत्तिउ बभणु परिहरइ णउ छडइ तवसिउ तवि ठियउ ।
धणवंतु ण छुट्टइ ण वि णिहणु जह काणणे जलणु समुट्ठियउ ॥५॥ 10

---

४ १ N सव्वलोउ.

कण्ड जब बाजारमें पहुँचा, तब उसने वहाँ देखा कि एक कोई दुःखी पुरवासिनी मूढ़भावसे हाय-हाय कर रही है; अपनी कुक्षिको दोनों ओर कूट रही है; खूब आँसू बहा-बहाकर रो रही है; लोगोंके चित्तको दुःखसे संकुलित और व्याकुल कर रही है; बावला भेष धारण किये है, मूर्च्छासे ५ डोल रही है; व भूमिपर गिर-गिर पड़ती है। उस लोगोंपर प्रभाव डालनेवाले मदिरा-पानसे उन्मत्त ध्वनिके समान स्वरको सुनकर करकण्डने किसी मनुष्यसे पूछा—"यह बेचारी नारी क्यों रोती है; और क्यों विलाप करती हुई हृदयमें दुःख करती, एवं अपने-आप विह्वल हो-होकर मर रही है ?"

४—करकण्डका वैराग्यभाव

तब उस मनुष्यने राजासे बात कही—"जिस कारणसे वह ऐसी दुःखातुर हुई है, उस कारणको, हे स्वामिसार, सुनिए। सदाकाल भोग भोगते हुए इसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु विधिवशात् उसे इसके पाससे यमराज छुड़ा ले गया। इसीसे यह महिला दुःखी होकर रोती है, और स्नेहसे बँधकर आत्मोत्सर्ग कर रही है। वह अपने पुत्रका साथ नहीं छोड़ती और न उसे अपने मनसे भुलाती है।" उस वचनको सुनकर राजाधिराज करकण्ड, संसारके ऊपर विरक्त-भाव ५ होकर कहने लगे—"धिक्-धिक्, यह मर्त्यलोक बड़ा असुहावना है। शरीरका भोग ही मानवके दुःखका कारण है। यहाँ समुद्रके तुल्य महान् दुःख है, तथा भोगोंका सुख मधुबिन्दुके समान अत्यल्प। हाय, जहाँ मानव दुःखसे दग्धशरीर होकर बुरी तरह कराहता हुआ मरता है, ऐसे संसारमें निर्लज्ज व विषयासक्त मनुष्यको छोड़, कहो और कौन प्रीति कर सकता है ?"

५—अनित्य-भावना

कर्मवश जो उदरमें आकर बैठा, उसे यमराज अपने पुरमें ले गया। जिस बालकको लाला-पाला, उसे विधिने अपने नगरको चला दिया। जो नवयौवनमें चढ़ा, उस प्रवर मनुष्यको भी यम लेकर चल देता है। जो बूढ़ा होकर सैकड़ों व्याधियोंसे पीड़ित है, वह तो फिर यमदूतों-द्वारा परिमर्दित होनेवाला ही है। बलभद्रके साथ अतुल बलशाली नारायणको भी विधि छल करके ले भागा। जिन चक्रवर्तियोंने छह खण्ड वसुन्धराको जीता, उन्हें भी काल ले उड़ा। जो विद्याधर, ५ किन्नर, खेचर, सुर व देव हुए, वे बलवान् होते हुए भी यमके मुखमें जा पड़े। नागेन्द्रके सदृश अमरेन्द्रको भी यम ले जाता है; वह किसीको छोड़ता नहीं। न वह श्रोत्रिय ब्राह्मणको बचने देता, और न तपमें स्थित तपस्वीको छोड़ता। उससे न धनवान् छूटता और न निर्धन। जैसे मानो काननमें दावानल भभक उठा हो (ऐसी संसारकी अनित्य दशा है)।

पलंवपीणहत्थओ विवुद्धसव्वसत्थओ ।
विसुद्धसंविगत्तओ पणेण जाव पत्तओ ।
तहिं पि ताव दिट्ठिया भणंति हा पमूढिया । 5
पुरंधि का वि दुक्खिया हणंति दो वि कुक्खिया ।
रुवति असुवाहुलं जणाण दुक्खसंकुल ।
कुणंति चित्तु आउलं धरंति वेसु वाउलं ।
घुलति जा वि मुच्छए पडंति भूपएसए ।
सुणेवि त णरेसरो सुवाणिढ्ढणीसरो । 10

घत्ता—करकंडइँ पुच्छिउ को वि णरु एह णारि वराई किं रुवइ ।
विलवंती हियवइँ दुहु करइ अप्पाणउ विहलंघल मुअइ ॥ ३ ॥

४

He learns the cause of her troubles and becomes disgusted with the ways of the world

ता अक्खिय रायहो वत्त तेण दुक्खाउर हूई एह जेण ।
तं कारणु णिसुणहि सामिसाल भुंजतिहे भोयइँ सयलकाल ।
उप्पण्णउ णंदणु विहिवसेण सो णीयउ आयहे वइवसेण ।
तें रुवइ सदुक्खउ महिल एह अप्पाणउ घल्लइ वद्धणेह ।
परिमेल्लइ पासु ण णदणासु वीसरइ ण सो पुणु णियमणासु । 5
त सुणिवि वयणु रायाहिराउ ससारहो उवरि विरत्तभाउ ।
धी धी असुहावउ मच्चलोउ[1] दुहकारणु मणुवहँ अगभोउ ।
रयणायरतुल्लउ जेत्थु दुक्खु महुविंदुसमाणउ भोयसुक्खु ।

घत्ता—हा माणउ दुक्खइँ दड्ढतणु विरसु रसतउ जहिँ मरइ ।
भणु णिग्घिणु विसयासत्तमणु सो छडिवि को तहिँ रइ करइ ॥४॥ 10

५

Transitory nature of worldly existence

कम्मेण परिट्ठिउ जो उवरे जमरायएँ सो णिउ णिययपुरे ।
जो वालउ वालहिँ लालियउ सो विहिणा णियपुरि चालियउ ।
णवजोव्वणि चडियउ जो पवरु जमु जाइ लएविणु सो जि णरु ।
जो वूढउ वाहिसएहिँ कलिउ जमदूयहिँ सो पुणु परिमलिउ ।
बलहद्दएँ सहु हरि अतुलवलु सो विहिणा णीयउ करिवि छलु । 5
छक्खड वसुधर जेहिँ जिया चक्केसर ते कालेण णिया ।
विज्जाहर किंणर जे खयरा बलवंता जममुहे पडिय सुरा ।
फणिणाहइँ सरिसउ अमरवइ जमु लितउ कवणु वि णउ मुअइ ।

घत्ता—णउ सोत्तिउ बंभणु परिहरइ णउ छडइ तवसिउ तवि ठियउ ।
धणवंतु ण छुट्टइ ण वि णिहणु जह काणणे जलणु समुट्ठियउ ॥५॥ 10

---

४ १ N सव्वलोउ.

कण्ड जब बाजारमें पहुँचा, तब उसने वहाँ देखा कि एक कोई दुःखी पुरवासिनी मूढ़भावसे हाय-हाय कर रही है; अपनी कुक्षिको दोनों ओर कूट रही है; खूब आँसू बहा-बहाकर रो रही है; लोगोंके चित्तको दुःखसे सकुलित और व्याकुल कर रही है; बावला भेष धारण किये है; मूर्च्छासे ५ डोल रही है; व भूमिपर गिर-गिर पडती है। उस लोगोपर प्रभाव डालनेवाले मदिरा-पानसे उन्मत्त ध्वनिके समान स्वरको सुनकर करकण्डने किसी मनुष्यसे पूछा—"यह बेचारी नारी क्यो रोती है; और क्यों विलाप करती हुई हृदयमें दुःख करती, एव अपने-आप विह्वल हो-होकर मर रही है ?"

४—करकण्डका वैराग्यभाव

तब उस मनुष्यने राजासे बात कही—"जिस कारणसे वह ऐसी दुःखातुर हुई है, उस कारणको, हे स्वामिसार, सुनिए। सदाकाल भोग भोगते हुए इसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु विधिवशात् उसे इसके पाससे यमराज छुडा ले गया। इसीसे यह महिला दुःखी होकर रोती है, और स्नेहसे बँधकर आत्मोत्सर्ग कर रही है। वह अपने पुत्रका साथ नहीं छोडती और न उसे अपने मनसे भुलाती है।" उस वचनको सुनकर राजाधिराज करकण्ड, ससारके ऊपर विरक्त-भाव ५ होकर कहने लगे—"धिक्-धिक्, यह मर्त्यलोक बडा असुहावना है। शरीरका भोग ही मानवके दुःखका कारण है। यहाँ समुद्रके तुल्य महान् दुःख है, तथा भोगोंका सुख मधुबिन्दुके समान अत्यल्प। हाय, जहाँ मानव दुःखसे दग्धशरीर होकर बुरी तरह कराहता हुआ मरता है, ऐसे ससारमें निर्लज्ज व विषयासक्त मनुष्यको छोड, कहो और कौन प्रीति कर सकता है ?"

५—अनित्य-भावना

कर्मवश जो उदरमें आकर बैठा, उसे यमराज अपने पुरमें ले गया। जिस बालकको लाला-पाला, उसे विधिने अपने नगरको चला दिया। जो नवयौवनमें चढ़ा, उस प्रवर मनुष्यको भी यम लेकर चल देता है। जो बूढा होकर सैकड़ों व्याधियोंसे पीडित है, वह तो फिर यमदूतों-द्वारा परिमर्दित होनेवाला ही है। बलभद्रके साथ अतुल बलशाली नारायणको भी विधि छल करके ले भागा। जिन चक्रवर्तियोंने छह खण्ड वसुन्धराको जीता, उन्हें भी काल ले उडा। जो विद्याधर, ५ किन्नर, खेचर, सुर व देव हुए, वे बलवान् होते हुए भी यमके मुखमें जा पड़े। नागेन्द्रके सदृश अमरेन्द्रको भी यम ले जाता है; वह किसीको छोड़ता नहीं। न वह श्रोत्रिय ब्राह्मणको बचने देता, और न तपमें स्थित तपस्वीको छोडता। उससे न धनवान् छूटता और न निर्धन। जैसे मानो काननमें दावानल भभक उठा हो (ऐसी ससारकी अनित्य दशा है)।

६

Fickleness of worldly pleasures

दइवेण विणिम्मिउ देहु ज पि लायण्णउ मणुवहँ थिरु ण त पि ।
णवजोव्वणु मणहरु जं चडेइ देवहिँ वि ण जाणिउ कहि पडेइ ।
जे अवर सरीरहिँ गुण वसति ण वि जाणहुँ केण पहेण जति ।
ते कायहो जइ गुण अचल होंतिं ससारहँ विरइ ण मुणि करंति ।
करिकण्ण जेम थिर कहिँ ण थाइ[2] पेक्खतहँ सिरि णिण्णासु जाइ । 5
जह सूयउ करयलि थिउ गलेइ तह णारि विरत्ती खणि चलेइ ।
भूणयणवयणगइ कुडिल जाहँ को सरल करेवइँ सक्कु ताहँ ।
मेल्लंती ण गणइ सयण इट्ठ सा दुज्जण-मेत्ति व चल णिकिट्ठ ।
घत्ता—णिज्झायइ जो अणुवेक्ख चल वइरायभावसंपत्तउ[3] ।
सो सुरहरमडणु होइ णरु सुललियमणहरगत्तउ ॥६॥ 10

७

Helplessness of the mortals

रयणीए[1] परिसमणु सगामे सुरदमणु
आवइएँ[2] पत्ताइँ हिययम्मि सुत्ताइँ ।
तहो कि पि णउ फुरइ उट्ठेइ वइसरइ ।
अह विवरे पइसरउ सुरलोउ अणुसरउ ।
सुरगिरिहिँ आरुहउ पजरहिँ तणु छुहउ । 5
वधवहि मित्तेहिँ करधरियकुंतेहिँ ।
पुत्तेहिँ सुत्थियउ मतेहिँ रक्खियउ ।
भडणियरपरियरिउ णउ तेहिँ पुणु धरिउ ।
वलएउ चक्कहरु सुरणाहु णहे खयरु ।
जमु वरुणु धरधरणु ण वि होइ कु वि सरणु । 10
घत्ता—असरणअणुवेक्खउ जो वि पुणु अणुदिणु भावइ णियमणे ।
सो सुरणारिहिं ललियतणु भोयवतु भुजियइ खणे ॥ ७ ॥

८

Troubles of life

ससारे भमतहँ कवणु सोक्खु असुहावउ पावइ विविहदुक्खु ।
[1]णरयालइँ णाणाणारएहिँ चिरकियहिँ णिहम्मइ वइरएहिँ ।
हियएँ ण वि चिंतहुँ सकियाइँ तहिँ भुत्तइँ पवरइँ दुक्कियाइँ ।
अवरुप्परु जाइविरुद्धएहिँ तिरियाण मज्झे उप्पण्णएहिँ ।
मुहवधणछेयणताडणाइँ पावियइँ तेहिँ तणुफाडणाइँ । 5
मणुयत्तणे माणउ परिमलतु परिझिज्जइ[2] णियमणे सलवलतु ।
सुरलोएँ पवण्णउ णट्ठवुद्धि मणि झिज्जइ देक्खिवि परहो रिद्धि

---

६. १ N णु २ DN याइ ३ SJ सपण्णउ
७ १ J रमणीए २ DN सत्ताइ
८ १ S पायालए २ N परिमिज्जइ

६—अनित्य-भावना (चालू)

दैवने जिस देहका निर्माण किया है, मानवका वह लावण्य भी स्थिर नहीं है। जो मनोहर नवयौवनपर चढ़ता है, उसे भी देव न जाने कहाँ जा पटकते है। शरीरमे जो और गुण निवास करते है, वे सब भी न जाने किस मार्गसे निकल जाते है। यदि वे कायके गुण अचल होते, तो मुनि ससारसे विरक्ति नहीं करते। गजकर्णके समान लक्ष्मी कहीं स्थिर नहीं ठहरती; देखते ही देखते वह विनष्ट हो जाती है। जिस प्रकार पारा हथेलीपर रखते ही गल जाता है, उसी प्रकार नारी विरक्त होकर एक क्षणमे चली जाती है। जिसकी भौहे, नयन, वचन व गति सब कुटिल है, उस नारीको कौन सरल बना सकता है? जो छोडते समय न स्वजनोंको गिनती और न इष्ट, वह नारी दुर्जन-मैत्रीके समान चचल और निकृष्ट होती है। जो वैराग्य-भावको प्राप्त होकर इस अनित्य-अनुप्रेक्षाका ध्यान करता है, वह नर सुललित और मनोहर गात्र होकर देवोंके विमानका आभूषण बनता है। ५ १०

७—अशरण-भावना

रात्रिमे विश्राम लेता और संग्राममें देवोंका दमन करता। किन्तु जब आपत्ति आ पडती है और हृदय सो जाता है, तब उसकी कोई चेष्टा नहीं रहती। न वह उठता है, और न बैठता। चाहे गुफामें जा छिपो, चाहे सुरलोकका अनुसरण करो, या सुरगिरिपर जा चढो, अथवा पिंजडेमें अपने शरीरको डाल रखो। चाहे बन्धु और मित्र हाथोंमें भाले लिये खडे रहें। पुत्र बचाते रहे और मन्त्र-रक्षा करते रहें, या योद्धाओंका समूह घेरे रहे। किन्तु ये सब किसीको मृत्युसे नहीं बचा सकते। बलदेव, चक्रधारी नारायण, सुरेन्द्र, आकाशगामी खेचर, यम, वरुण, शेषनाग—कोई शरण नहीं हो सकता। जो कोई उस अशरण-अनुप्रेक्षाकी प्रतिदिन अपने मनमें भावना करता है, उसके शरीरका सुरनारियाँ लालन करतीं और यथासमय उस सौभाग्यशालीके साथ भोग भोगती हैं। ५

८—संसार-भावना

ससारमें भ्रमण करते हुए जीवको कौन-सा सुख होता है? वह नाना प्रकारके असुहावने दु खोको ही पाता है। नरक-लोकमें उसे उसके पूर्वके वैरी नारकी मारते है। वहाँ ऐसे बडे-बडे पाप भोगने पड़ते हैं, जो हृदयसे सोचे भी नहीं जा सकते। परस्पर जाति-विरोधी तिर्यंचोंके बीच उत्पन्न होकर, उनके द्वारा मुखबन्धन, छेदन, ताड़न व अगफाडनके दु ख प्राप्त होते है। मनुष्यभवमें मान धारण करता हुआ अपने मनमें सलबलाता और परिक्षीण होता रहता है। सुरलोकमें पहुँचकर यह नष्ट-बुद्धि जीव दूसरोकी ऋद्धि देखकर मनमें खीझता रहता है। जिस ५

णंडणारि[3] जेम रूवइँ करेइ तिम जीउ कलेवर सइँ धरेइ ।

घत्ता—संसारहँ उवरि णिहालणउ किउ जेण णरेण कयायरेण ।

भणु काइँ ण लद्धउ तेण जइ पवररयणरयणायरेण ॥ ८ ॥ 10

९

Sole responsibility of each individual

जीवहो सुसहाउ ण अत्थि को वि णरयम्मि पडंतउ धरइ जो वि ।

सुहिसज्जणणंदणइट्ठभाय ण वि जीवहो जंतहो ए सहाय ।

णिय जणणि जणणु रोवंतयाइँ जीवेँ सहुँ ताइँ ण पउ गयाइँ ।

धणु ण चलइ गेहहो एक्कु पाउ एक्कल्लउ [1]भुंजइ धम्मु पाउ ।

तणु [2]जलणि जलंतइँ परिवडेइ एक्कल्लउ वइवसघरि चडेइ । 5

जहिँ णयणणिमेसु ण सुहु हवेइ एक्कल्लउ तहि दुहु अणुहवेइ ।

अहिणउलसीहवणयरहँ मज्झे उप्पज्जइ एक्कु वि जिउ असज्झे ।

सुरखेयरकिंणरसुहयगाम तहिँ भुंजइ एक्कु वि जियइ जाम ।

घत्ता—इह अणुवेक्खा[3] जो अणुसरइ सीलें मंडिवि णिययतणु ।

सासयपए सो सुहणिलए एक्कल्लउ सोहइ मुक्कतणु ॥ ९ ॥ 10

१०

Senses and qualities are alien to Self

इउ भासइ मुणि गुणगण वहंतु जीवहो परिभिण्णउ त कहंतु ।

परिपोसिउ उसहंसएहि ज पि भिण्णउ सरीरु जीवाउ त पि ।

लोयणइँ सुतारइँ दीहराइँ जीवहो परिभिण्णइँ सुहयराइँ ।

जीहा तरुपल्लवसण्णिहा वि जीवहो दूरेण वि सा थिया वि ।

तणुफंसगंधकण्णहँ समिद्धि जीवहो अइभिण्णी रूवरिद्धि । 5

जे अवर वि गुण कायहो मिलंति ते जीवहो भिण्णा सचलंति ।

जे कायहो थूला वहुय के वि अइसुहुमा जीवहो दूरे ते वि ।

कोहाइचउक्कु वि पुण्णपाव ते जीवहो भिण्णा कम्मभाव ।

घत्ता—एह अणुवेक्खा थिर करिवि णियमणि झायइ जो जि णरु ।

सो परमप्पउ णिम्मलउ देहविवज्जिउ होइ वरु ॥ १० ॥ 10

११

Impure nature of the physical body

एहु देहहो भणु गुणु को विहाइ कउ मंडणु असुइ सहावेँ[1] जाइ ।

जे णयण तरल विब्भमगया वि ते दूसाणिवहहिँ दूसिया वि ।

भणु णासारंधहो का विसुद्धि जहिँ गलइ सिंभु पयडउ असुद्धि ।

गुणअमिउ अहरे जणु किं कलेइ जहिँ लालासारणि परिघुलेइ ।

गुणु दीसइ कवणु उरोरुहाहँ परिपूरिय पूयएँ वणणिहाहँ । 5

---

३ D णरणारि S णरु णारि

९ १ J में यहाँसे लेकर पंक्ति ६ के 'एक्कल्लउ' तकका पाठ छूट गया है । २ D N S जलणु

३ J अणुपेक्खा

११ १ N सहाव

प्रकार नट-नारी नाना रूप धारण करती है, उसी प्रकार यह जीव स्वय नाना कलेवर धारण किया करता है। जिस मनुष्यने भले प्रकार ससारके ऊपर अवलोकन किया, और महान् रत्नत्रय रूपी रत्न प्राप्त कर लिये उसे कहो, इस जगमें क्या नहीं मिला ?

९—एकत्व-भावना

जीवका ऐसा कोई सुसहायक नहीं है, जो उसे नरकमें गिरनेसे बचा ले। सुहृद्, स्वजन, नन्दन व इष्ट भ्राता, ये जीवके जाते समय सहायक नहीं होते। स्वय अपनी जननी या जनक, रोते हुए भी, जीवके साथ एक पैर भी नहीं जाते। धन भी एक पैर घरके बाहर साथ नहीं चलता। जीव अकेला ही धर्म व पापका फल भोगता है। शरीर जलती अग्निमें गिरकर भस्म हो जाता है। जीव अकेला ही यमके घरको चढता है। वहाँ नयन-निमेष (पल) मात्र भी सुख नहीं होता। वहाँ जीव अकेला ही दु खका अनुभव करता है। असाध्य (दु खपूर्ण) अहि, नकुल, सिंह आदि वनचरोंके बीच अकेला जीव ही जाकर उत्पन्न होता है। सुरो, खेचरो व किन्नरोंके सुन्दर ग्राममें भी जीव अकेला ही जबतक जीता है, भोग भोगता है। जो कोई अपने शरीरको शीलसे मण्डित कर इस एकत्व अनुप्रेक्षाका अनुसरण करता है, वह शरीरसे मुक्त होकर सुखके निलय शाश्वत पदमें अद्वितीय रूपसे शोभायमान होता है।

१०—अन्यत्व-भावना

गुणगणोंके धारी मुनिने फिर भाषण किया और जीवसे जो सर्वथा भिन्न है, उसे बतलाया। जो सैकडों औषधोंसे परिपोषित किया जाता है, वह शरीर भी जीवसे भिन्न है। बडे-बडे दीर्घ सुखकारी लोचन भी जीवसे परिभिन्न है। वृक्षके पल्लव समान चचल यह जिह्वा भी जीवसे दूर ही स्थित है। शरीरके स्पर्श, गन्ध व कानोंके गुण तथा रूपऋद्धि, जीवसे अतिभिन्न है। और भी जो गुण कायमें आ मिलते है, वे सब जीवसे भिन्न होकर चले जाते है। जो भी कायके बहुतसे स्थूल व अतिसूक्ष्म गुण है, वे भी जीवसे दूर ही है। क्रोधादिक चारों कषाय व पुण्य और पाप, ये सब कर्मभाव जीवसे भिन्न है। जो मनुष्य इस अनुप्रेक्षाको स्थिर करके अपने मनमें ध्याता है, वह देहसे विवर्जित, निर्मल और उत्तम परमात्मा हो जाता है।

११—अशुचि-भावना

इस देहमें कहो कौन-सा गुण दिखायी देता है ? जो स्वभावत अशुचि है उसका मण्डन क्या ? जो तरल और विभ्रमपूर्ण नेत्र है, वे दूषण-समूहोंसे दूषित है। कहो, नासिका-रन्ध्र में क्या विशुद्धि है, जहाँ स्पष्ट ही अशुद्ध श्लेष्म बहता रहता है ? अधरमें लोग क्यों अमृतगुण की कल्पना करते है, जब कि वहाँ लारका प्रवाह घूमता रहता है ? स्तनोंमें कौन-सा गुण दिखायी देता है, जब कि वे पीबसे भरे हुए फोडोंके सदृश है ? सघन मासके बढे हुए, दूषित पिण्डोसे

घणमंसपवड्ढियपिंडयाहँ [2]को करइ रई तहँ दूसियाहँ ।
कडिमंडलु भणियउ[3] किं बुहेहिँ परिसवइ असुद्धउ विहि मुहेहिँ ।
वसरुहिरमसहड्डइं जेत्थु भणु सुद्धिहे कारणु कवणु तेत्थु ।
जइ भिंतरु वाहिरु विहि करंतु भणु जणवउ को तहिँ रइ सरंतु ।
घत्ता—उप्पण्णउ सुक्कइँ सोणियइँ असुइसहावउ जो जणु झायइ । 10
एह अणुवेक्खा णित्तुलिय त पुणु सिद्धिहे मग्गएँ लायइ ॥ ११ ॥

१२

How Karmas are contacted

रयणायरे जलसंघाउ जेव कम्माण णिवहु आसवइ तेव ।
जह सल्लु पणट्ठउ चुवएण आणियइ कम्मु तह जीवएण ।
सद्दसणेण परिचत्तएण समिलइ कम्मु मिच्छत्तएण ।
वज्जरइ जिणेसरु गलियकम्मु अविरइपरिणामें मिलइ कम्मु ।
कम्मासउ कोहेँ माणएण तह डंभइँ लोहइँ कीयएण । 5
मणमारणु सोलउ जइ हवेइ कम्मासववइरि ण संभवेइ ।
हिंसालउ वयणु वि जो सरेइ तहो कम्मु मिलंतउ को धरेइ ।
जो हिंसइँ काउ समायरेइ सो कम्मइँ सहुँ ता रइ करेइ ।
घत्ता—वंधहो कारणु करेवि तणु अणुवेक्ख जो झायइ पुणु हियए ।
सो धण्णउ सासयसोक्खरसु अविरामएँ सो णरु तहिं पियए ॥ १२ ॥ 10

१३

How the inflow of Karmas is checked

जो समत्तु धीरें[1]चित्तु उद्धरेइ सो वि दुट्ठ मिच्छदिट्ठि सवरेइ ।
जो खमाएँ सुद्धियाएँ वावरेइ कोहवारि दुक्खकारि सो हरेइ ।
मद्दवेण जो चरेइ सुद्धएण[2] माणखभु तासु जाइ णिच्छएण ।
अज्जवम्मि चित्तु देइ जो महतु [3]सो हवेइ वचणाविसो णिहतु ।
कायपिंडे सुदरे वि जो णिरीहु सो णिरुत्तु पक्खलेइ लोहसीहु । 5
धम्मे सतु भाउ[4] देवि जो सरेवि त मणो वि मक्कडो वि सो धरेवि ।
पूययाएँ पूयएइ वीयराउ तक्खणेण सो हणेइ दुट्ठराउ ।
वम्मसव्वु भावसुद्धि झाणजोइ जो करेइ सो धरेइ कोउलाइ[5] ।
घत्ता—खमदमसहियउ गुणणिलउ एयउ जो पयडिउ संवरइ ।
अणुहुजिवि सोक्खइँ सग्गे पुणु सो सिद्धिहे सम्मुहुँ सचरइ ॥ १३ ॥ 10

१४

How Karmas are got rid of

बिहिँ भेयहिँ णिज्जर खवियणेहें[1] सविवायावायहिँ मुणहिँ एह ।
[2]चिरकालें संचिउ कम्मु फारु उप्पायइ[3] भुंजइ वहुपयारु ।

---

२ J D N में यह चरण छूटा है. ३ S भणिउ ४ S हट्टाइ

१३ १ SJ धीरु॰ २ S में 'सुद्धएण' से पूर्व 'भाएण' जुडा है ३ S सोह देइ ४ S भारु ५ DN केउलोइ

१४ १ N ॰देह २ N में इससे पूर्व हांसियेमें जोडी गयी पक्ति है—तिरियह हवेइ अविवाइ फारु । सभवइ णरह सववाइ सारु । ३ J सो पायइ

हरण नहीं करता, एवं जो पर-स्त्रीका दूरसे ही त्याग करता है। इस प्रकार जो सर्व आदरपूर्वक सातों ही व्यसनोंका विषवृक्षके समान परिहरण करता है, वह निरन्तर सुखोंका अनुभव करता है एवं दुःखरूपी निशाचरका भक्ष्य नहीं बनता।

२२—अणुव्रत व गुणव्रत

हे राजन्! व्रतहीन पुरुषका कोई आदर नहीं करता, किन्तु व्रतवान् रंक भी पूज्य होता है। वे व्रत संक्षेपमें दो प्रकारके कहे गये है। एक गृहस्थव्रत (अणुव्रत) और दूसरे मुनिव्रत (महाव्रत)। अणुव्रत स्थूल होनेके कारण कहे गये है। वे ही व्रत अतिसूक्ष्म रूपमें महाव्रत कहलाते है। जो त्रसजीवोंकी रक्षा करता है, वह मानव पहला (अहिंसा) व्रत धारण करता है। जो स्थूलरूपसे झूठ वचन नहीं बोलता, वह ज्ञानी दूसरा (अमृषा) अणुव्रत धारण करता है। ५ जो चोरी करके द्रव्य ग्रहण नहीं करता, वह तीसरा (अचौर्य) अणुव्रत पालता है। जो परायी नारी को माता गिनता है, वह, हे राजन्, चौथा (ब्रह्मचर्य) अणुव्रत धारण करता है। जो परिग्रहमें परिमाण करता है, (मर्यादा रखता है) वह, हे नरपति, पाँचवाँ (अपरिग्रह) अणुव्रत धारण करता है। जो कोई निशिभोजन त्यागके साथ दिशागमनका विराम (मर्यादा) रखता है, तथा पशुओंको पाशमें फँसाना या बाँध कर रखना छोड़ देता है, एवं भोगों व उपभोगोंको स्वल्प कर लेता है, १० वह देवोंके विमानमें लीलापूर्वक सुख भोगता है।

२३—शिक्षा

जो कोई जीवोंको समताभावसे देखता है, जो हृदयसे सयमकी परिभावना करता है, जो आर्त और रौद्र ध्यानोंका परिहरण करता है, वह उत्तम मनुष्य सामायिक धर्मका धारी है। जो एक मासमें चार दुःखहारी उपवास करता है, अर्थात् दो अष्टमी और दो चतुर्दशीके, जो श्रेष्ठ नर चतुर्विध दान देता है, जो जीवोंपर दया करता है एवं ज्ञानदान देता है, जो व्याधियों-की औषध करता है, वह निश्चयसे स्वर्ग प्राप्त करता है। जो भोजनके समय भक्तिपूर्वक खान- ५ पान रूप पात्रदान देता है तथा करुणापूर्वक दीन, दुखी व भूखोंको भोजन देता है, एवं जो सुहृदय व्यक्ति अन्तकालमें स्थिर मनसे सल्लेखना-द्वारा प्राण विसर्जित करता है (वह सच्चा गृहस्थ है)। इस प्रकार जो इन दुर्द्धर अणुव्रतों, गुणव्रतों व शिक्षाव्रतोंका पालन करता है, वह मुक्तिरूपी वधूके मुखका अभिलाषी सुखोंकी परम्पराको प्राप्त करेगा।

२४—महाव्रतोंका स्वरूप

हे नरेश्वर, गृहस्थ धर्म इस प्रकारका होता है, ऐसा चिरन्तन परम योगियोंने कहा है। अब, हे राजन्, उन पाँच मुनिव्रतोंको सुनो—जहाँ एक क्षण-मात्रके लिए भी माया (मनकी वक्रता)-का प्रवेश नहीं होता। जो त्रस और स्थावर जीवोंकी रक्षा करता है, वह असंख्य लाख भोगोंको भोगता है। जो अनुरागके कारण झूठ वचन नहीं बोलता, वह अपने वचनसे बृहस्पतिको भी जीत लेता है। जो पराये धनका कदापि अपहरण नहीं करता, वह इन्द्रको भी चिन्तित कर देता ५ है। जो नौ प्रकार ब्रह्मचर्यका पालन करता है, वह असीम मोक्ष-सुखको प्राप्त करता है। जो दो प्रकार (अन्तरग व बहिरग) परिग्रहका परिहरण करता है, वह संसाररूपी महासमुद्रको पार

मूलगुणइँ जो णरवइ धरेइ आलिंगणु तहो सिववहु करेइ।
उत्तरगुण जेत्तिय मुणिवराहँ णिव पारु ण पावइ को वि ताहँ।
विहिँ भेयहिँ जं थिउ सवणरम्मु तं णरवइ मइँ तुह कहिउ धम्मु। 10

घत्ता—एयाइँ वयइँ पच वि णिवइ परिपालइ सत्तिएँ जो वि णरु।
कणयामरसिवमाणिणि वरइ सो हवइ णिरुत्तउ ताहे वरु॥ २४॥

इय करकडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयसे पचकल्लाणविहाणकप्पतरु-फलसपत्ते करकडधम्मायण्णणो णाम णवमो परिच्छेउ समत्तो।

॥ सधि ॥ ९ ॥

कर लेता है। हे नरपति, जो मूलगुणोंको धारण करता है, उसका शिवरूपी वधू आलिंगन करती है। मुनिवरोंके जितने उत्तरगुण है, हे राजन्, उनका कोई पार नहीं पा सकता। हे नरपति, जो श्रवणरम्य धर्म दो प्रकारसे व्यवस्थित है (गृहस्थ धर्म और मुनि धर्म) वह मैंने तुम्हे समझा दिया। हे नृपति, जो मनुष्य इन पाँचों व्रतोंको अपनी शक्ति-भर पालन करता है, वह कनक व अमररूप मुक्ति-मानिनीका वरण करता है और वह निश्चय ही उसका वर बनता है। १०

इति मुनि कनकामर-विरचित भव्यजनकर्णावतंस पंचकल्याणविधानकल्पतरुफल-सम्पन्न करकण्ड-महाराजचरित्रमें करकण्ड-धर्मश्रवण नामक नौवाँ परिच्छेद समाप्त।

संधि—१०

१

Karakanda's questions and the sage's reply

आयण्णिवि तं चंपाहिवेण पुणु भणिउ मुणीसरु णयसिरेण ।
महो अक्खहि करुणइँ मुणिपवर जं पुच्छउँ[1] हउँ तुच्छें सरेण ।
जइ अगु सलोणउ हुयउ महु करे कडु कीस तं कहहि लहु ।
अइवल्लहु महु जणणिहे रमणु विच्छोयउ कें कम्मेण भणु ।
कें कम्में सा करिणा हरिया महो घरिणि काइँ खयरेण णिया । 5
तं सुणिवि पयासइ तासु मुणि जं भणमि णरेसर तं णिसुणि ।
एत्थम्मि भरहे वेयड्ढगिरि तहो दाहिणदिसिहिँ समिद्धसिरि ।
रहणेउरु चक्कवालु णयरु तहिँ णीलु णराहिउ हुउ खयरु ।
णिद्धाडिउ सो दाइयहिँ तहो गउ णासिवि तेरापट्टणहो ।
उवसाहिय मेइणि तहिँ ठियइ जिणघरइँ अणेयइँ तें कियइं । 10
धणमित्तु णाउ तहिँ अत्थि वणि जो सेवइ अणुदिणु सयलगुणि ।
सम्मत्तरयणरयणायरहो घरे धणवइ गेहिणि अत्थि तहो
घत्ता—जं वुच्चइ तं सयलु वि करइ गुणवंतउ ताहे वि हरइ मणु ।
धणयत्तु अत्थि गोवालु वरु सीलेण विहूसिउ जासु तणु ॥ १ ॥

२

Cowherd Dhanadatta of Terapur once plucked a lotus

सो एक्कहिँ दिणि णिसि मोक्कलेवि गउ दाहिणदिसि महिसिहुँ लएवि ।
तहिँ दिट्ठु सरोवरु तेण रम्मु वरकमलहिँ फुल्लिउ णाइँ धम्मु ।
कमलायरु रेहइ अइसुतारु ण धरहिँ समागउ णहु सुतारु ।
पोमिणिदलउप्परि पुंडरीय णं हरियधरहिँ णिवपुंडरीय ।
रेहंति अह व वियसियसुराय हरिभायणे णं मणि पोमराय । 5
तहो मज्झि परिट्ठिउ एक्कु पोमु उडुगणहि सुसोहिउ णाइँ सोमु ।
तं देक्खिवि तहो मणि फुरिउ राउ सरि पइठउ लेणहिँ साणुराउ ।
जलि पइसिवि लइयउ पोमु तेण णं खुडिउ सरोवरसिरु खणेण ।
घत्ता—तं लेविणु जा सो णीसरइ हरिसुक्कंठियणिययतणु ।
परिफुल्लियपोमहो संगएण तें वियसिउ णिम्मलु तासु मणु ॥ २ ॥ 10

१. १ S] पुच्छिउ मइ २ यहांसे चौथे कडवककी तृतीय पंक्ति तक पाठसहित N का ७५वां पत्र अप्राप्य है ।

संधि—१०

१—करकण्डका मुनिराजसे प्रश्न

चम्पाधिप करकण्डने उक्त प्रकार धर्मश्रवण करके, सिर नवाकर, मुनीश्वरसे फिर कहा—"हे मुनिराज, अब करुणा करके मुझे वह बतलाइए, जो मैं अपने तुच्छ शब्दोंमे पूछता हूँ। यदि मेरा यह अंग ऐसा सलोना (सुन्दर) हुआ, तो मेरे हाथपर यह कण्डु (खुजलीका दाग) कैसे हुआ ? यह शीघ्र कहिए। जब मेरी माताका पति अत्यन्त प्यारा था, तब कहिए उनका वियोग किस कर्मसे हुआ ? किस कर्मके कारण उसका हाथीने अपहरण किया ? तथा वह खेचर मेरी ५ गृहिणीको क्यों ले गया ?" यह सुनकर मुनि करकण्डको बतलाने लगे—हे नरेश्वर, मै जो कहता हूँ, उसे सुनो। इसी भरत क्षेत्रमें विजयार्द्धपर्वत है। उसकी दक्षिण दिशामें लक्ष्मी-सम्पन्न रथनूपुर-चक्रवाल नामका नगर है। वहाँ नील नामका खेचर राजा हुआ। वह अपने वैरियोंसे पीड़ित हुआ वहाँसे भागकर तेरापट्टनमें पहुँचा। वहाँ रहते हुए उसने पृथ्वीको वशीभूत किया और अनेक जिनमन्दिर बनवाये। उसी नगरमें धनमित्र नामका वणिक् रहता था, जो प्रतिदिन समस्त १० गुणी जनोंकी सेवा करता था। सम्यक्त्वरूपी रत्नके रत्नाकर उस वणिक्के घरमें उसकी धनवती नामकी गृहिणी थी। उसके धनदत्त नामका एक अच्छा ग्वाला था जिसका तन शीलसे विभूषित था। वह जो कुछ उसका स्वामी कहता था, वह सब करता था; और ऐसा गुणवान् था कि अपनी स्वामिनीके मनको भी हरण करता था।

२—धनदत्त गोपने क   तोड़ा

वह ग्वाला एक दिन रात्रि व्यतीत होनेपर भैंसोंको ले, दक्षिण दिशामें गया। वहाँ उसने एक रम्य सरोवर देखा। वह उत्तम कमलोंसे ऐसा फूला हुआ था, जैसे (भव्य जनोंसे) धर्म। वह अति विशाल कमल सरोवर ऐसा सुन्दर दिखायी देता था, जैसे मानो आकाश अपने सुन्दर तारामण्डल-सहित पृथ्वीपर आ गया हो। कमलपत्रोंके ऊपर पुण्डरीक ऐसे शोभायमान थे, जैसे हरी-भरी पृथ्वीपर बड़े-बड़े राजा। अथवा, वे विकसित लाल कमल ऐसे शोभायमान थे, जैसे ५ पद्मरागमणि हरे पात्रमें रखे हों। उस सरोवरके मध्यमें एक पद्म स्थित था, जैसे मानो तारा-गणोंसे सुशोभित चन्द्र हो। उसे देखकर गोपके मनमें चाह उत्पन्न हुई, और वह अनुरागसे उसे लेनेके लिए सरोवरमें प्रविष्ट हुआ। जलमें प्रवेश करके उसने उस कमलको तोड लिया, मानो एक क्षणमें ही सरोवरका सिर काट लिया गया हो। उसे लेकर अपने तनमें हर्षसे उत्कण्ठित होता हुआ जब वह सरोवरसे निकला, तब उस खूब फूले हुए पद्मके प्राप्त होनेसे उसका निर्मल १० मन खूब प्रसन्न हुआ।

३

A Sura charged him to present the flower to the greatest person on pain of death

तं सररुहु लेविणु चलिउ जाम सुरु आयउ णायकुमारु ताम ।
गोवालु भणिउ तेँ सुरवरेण सरु रक्खिउ मइँ इउ आयरेण ।
जं फुल्लु ण लेणहँ लहइ को वि णउ खेयरु विसहरु सुरवरो वि ।
तं लइयउ सुंदर पइँ णरेण मइँ भणियउ तुहुँ सव्वायरेण ।
ता एहु करेजहि मज्झु वाय जो वड्डउ तिहुवणे[१] णमियपाय । 5
जसु दंसणि तुरियउ दुरियणासु इउ कुसुमु चडावहि चरणि तासु ।
जो मज्झु वयणु ण करेहि मित्त तो णिच्छउ मारमि सुद्धचित्तं[२] ।
फणिदेवेँ भणियउ वयणु जं पि धणयत्तु गयउ मण्णेवि त पि ।
घत्ता—तेँ चिंतिउ वड्डउ सेट्ठि महु जो पणविउ सयलहि णरवरहिँ ।
एँ फुल्लेँ अचमि पाय तहो ज रक्खिउ देवहिँ विसहरहिँ ॥ ३ ॥ 10

४

The cowherd in search of the greatest man

तं सुणिवि[१] गयउ सेट्ठिहे समीउ तहो पुरउ परिट्ठिउ सो विणीउ ।
ता पुच्छिउ सेट्ठिहि महो पुरो वि किं थक्कउ तुहुँ पजलियरो[२] वि ।
धणयत्तु भणइ भो सेट्ठि ताय एँ पोमेँ पुज्जमि तुज्झु पाय ।
कहि कारणु पुच्छिउ सो कहेइ सरे लयउ पोमु मइँ सुरु भणेइ ।
जो वड्डउ तिहुवणि पुज्जि सो वि णउ पुज्जहि जइ मारेमि तो वि । 5
इउ सुणिवि ताय चिंततु आउ लइ अप्पहिँ पुज्जमि तुज्झु पाउ ।
तुहुँ वड्डउ जणवयवंदणिज्जु फुल्लेण वि एणेँ पुज्जणिज्जु ।
त सुणिवि सेट्ठि पभणेइ पुत्त महो णरवइ वड्डउ चारुचित्त ।
वणि लेवि गयउ सो णिवघरम्मि णिउ दिट्ठउ ता जिणमंदिरम्मि ।
पुव्वुत्तउ सयलु वि कहिवि तासु तुहुँ वड्डउ पणवइ लोउ जासु । 10
घत्ता—तेँ आयइँ पुज्जहुँ पाय तुहुँ फुल्लेण सरोवरलद्धइण ।
तं सुणिवि णरेसरु पडिलवइ महो वड्डउ मुणिवरु णिच्छइण ॥ ४ ॥

५

He worshipped the Jina with the flower with his hands and feet unwashed Hence he was reborn as Karakaṇḍa

गय सव्व पुरउ ते मुणिवरासु तं फुल्लु चडावहुँ जसहरासु ।
तुहुँ वड्डउ मुणिवर वीयराय परिपुज्जहुँ पोमेँ तुज्झु पाय ।
हउँ वड्डउ होमि ण मुणि भणेइ सव्वहँ गरुआरउ जणु गणेइ ।
देवाण देउ जिणवरु पसिद्धु अरिकम्म हणेविणु जो विसुद्धु ।
जो णाणसमिद्धउ सिद्धिपत्तु सो पुज्जहि तुहुँ अणुरायरत्तु[१] । 5

---

३ १ J तिहुअणि २ S J सुद्धचित्त

४ १ S N सुणेवि २ N पजलि धरेवि

५ १ S अणुराए तुरतु

३—देवका गोपको आदेश

उस कमलको लेकर ज्योंही वह चला, तभी वहाँ नागकुमार नामका देव आ पहुँचा। उस देवने ग्वालेसे कहा—"मै बडे आदरसे इस सरोवरकी रक्षा करता हूँ। जिस फूलको लेनेमें न कोई खेचर समर्थ है, न नाग और न देव, उसे, हे सुन्दर, तूने नर होते हुए भी ले लिया है। अब मैं सर्व आदरपूर्वक तुझसे कहता हूँ, मेरी यह बात मान। जो कोई त्रिभुवनमें सबसे बडा हो, जिसके चरणोंको सब कोई नमस्कार करता हो, तथा जिसके दर्शनसे तुरन्त पापका नाश होता हो, उसीके चरणोंमें इस पुष्पको चढ़ाना। यदि तू मेरे वचनको नहीं मानेगा, तो हे शुद्धचित्त मित्र, मै तुझे निश्चय ही मार डालूँगा।" नागकुमार देवने यह जो वचन कहा, उसे मानकर धनदत्त वहाँसे चला आया। उसने विचार किया—मेरा सेठ ही सबसे बडा है, जिसे सभी बडे-बडे नर प्रणाम करते है; इसलिए जिस फूलकी रक्षा आगे देवोंने की है, उससे उसी (सेठ) के चरणों-की पूजा करूँ।

४—त्रैलोक्यमें सबसे बड़ा कौन ?

ऐसा विचारकर, गोप सेठके समीप गया और उसके सम्मुख विनीत भावसे खड़ा हो गया। तब सेठने पूछा—"तू मेरे आगे हाथ जोड़े क्यों खड़ा है ?" धनदत्त बोला—"हे तात सेठ, मैं इस कमलसे तुम्हारे चरणोंकी पूजा करूँगा।" सेठने पूछा—इसका कारण तो बतला ?" उसने कहा—"जब मैंने सरोवरसे इस कमलको लिया, तब देवने मुझसे कहा कि जो त्रिभुवनमें बड़ा हो, उसकी पूजा करना। 'यदि तू पूजा नहीं करेगा, तो मैं तुझे मार डालूँगा। यह सुनकर, हे तात, मैं चिन्तन करता हुआ आया हूँ; मैं अपनेसे तुम्हारे चरणोंकी पूजा करता हूँ। तुम बड़े हो और जनपद-द्वारा वन्दनीय हो। अतएव इस फूलसे आप ही पूजनीय है।" यह सुनकर, सेठ बोला—"हे सुन्दर चित्तवान् पुत्र, मुझसे तो नरपति बड़ा है।" तब वह वणिक् उसे लेकर राजाके घर गया। उन्हें राजाकी भेंट जिनमन्दिरमें हुई। उससे पूर्वोक्त समस्त वृत्तान्त कहकर वह बोला—"तुम बड़े हो, जिसे लोग प्रणाम करते है। इसीलिए हम इस सरोवरसे प्राप्त फूलसे तुम्हारे चरणोंकी पूजा करने आये हैं" यह सुनकर नरेश्वर बोला—"मुझसे तो मुनिवर निश्चय ही बडे हैं।"

५—गोपकी जिनेन्द्र-पूजा और करकण्डके रूपमें पुनर्जन्म

तब वे सब यशोधर मुनिराजके आगे फूल चढ़ानेको गये और बोले—"हे वीतराग मुनिवर, तुम बडे हो, अतएव इस पद्मसे हम तुम्हारे पैर पूजेंगे। तब मुनि बोले—"मै बड़ा नहीं हूँ। लोग सबसे बडा तो देवोंके देव जिनेन्द्रको मानते हैं, जो प्रसिद्ध हैं और जो कर्मरूपी शत्रुओंका विनाश कर विशुद्ध हुए है, जो ज्ञानसे उद्दीपित है और सिद्धि प्राप्त कर चुके है। तू भक्तिपूर्वक उसी जिनेन्द्र देवकी पूजा कर।" मुनिकी यह वाणी सुनकर, धनदत्तने बिना हाथ-पाँव धोये ही उस

धणदत्तु सुणेविणु तासु वाणि धोवंतउ ण वि पुणु चरणपाणि।
जिणु अचिउ तें पोमें वरेण चिरु मेरुहिँ णाइँ पुरंदरेण।
तहो लोयहिँ साहुक्कारु दिण्णु भत्तीभरेण मणु जासु भिण्णु।
तहो एक्कहो फुल्लहो फलइँ सो वि चंपाहिवणदणु तुहुँ हुओ वि।
जिणमहिम विसुद्धिएँ जो करेइ सिवकामिणि करयलि सो धरेइ। 10

घत्ता—कद्दमइँ विलित्तहिँ पयकरहिँ ज अचिउ जिणवरु जयतिलउ।
तें कङ्क तुह पए करे हुयउ इउ अक्खिउ मइँ तुह सुहणिलउ ॥ ५ ॥

६

Past life of Karakaṇḍa's parents Nāgadatta and his faithless wife.

भो णरवइ गुणगणहरियसहा[1] सुणि एवहिँ जणणहो तणिय कहा[2]।
इह भरहे अत्थि सावत्थिपुरि[3] जहिँ रमइँ णिरारिउ चिरु खयरि।
तहिँ अत्थि पसिद्धउ महुरझुणि सिरिणायदत्तु णामेण वणि।
तहो णायदत्त णामें घरिणि चिंताणलउब्भव सा अरणि।
तहो पासु वणीसरु णउ मुअइ णउ रयणिदिवसु कत्थइँ सुवइ। 5
तें वणिणा जो परिपालियउ कामिणिकरपल्लवलालियउ।
वणिणदणु णरवइ रूढिगउ णियगुणहिँ विणीयउ तहिँ भयउ।
सो एक्कहिँ दिणि बंभणहो सुओ कुंजरकरदीहरपीणभुओ।

घत्ता—फणिदत्तइँ सो बंभणसुयउ अवलोयउ पंकयणेत्तियएँ।
अणुराउ पवड्ढिउ तहो उवरि मणि चिंत्तिउ सुललियगत्तियएँ ॥६॥ 10

७

Her love advances out of wedlock

सा जोवइ पुणु पुणु सो कुमारु पच्चक्खु णाइँ ससरीरु मारु।
णवकणयवण्ण सिसुहरिणणेत्त ता हूई खणे विवरीयचित्त।
सव्वंगमयणसरसल्लियाहे हिययम्मि ण भावइ किं पि ताहे।
कर विहुणइ रोमंचउ वहेइ तहो पयडी रोमावलि वहेइ[1]।
थण दावइ छोडइ णीविबंधु भणु किं किं ण करइ मयणअधु। 5
कुसुमाउहसरणियरेण जित्त णउ संकइ कासु वि [2]चलियचित्त।
परलोयकज्जे उज्जुवमणाहँ णउ गुरुवणलोयहँ सज्जणाहँ।
णउ वीहिय[3] पुत्तहो बधवासु णउ मायहे लज्जइ पियम्मासु।

घत्ता—जो सयलगुणायरु णिउणमइ विणयभावसजुत्तउ।
कोमलवयणपउत्तियहिँ सो किं ताएँ ण उत्तउ ॥ ७ ॥ 10

---

६. १] सह २] कह ३ N वासत्थि. ४ SJ चालियउ ५ JS में यह चरण नही है व N में हासिये पर दिया है।

७ १ S हवेइ, N कहेइ २ SJ चलइ ३ N थीहिय

उत्तम पद्मसे जिन भगवान्‌की पूजा की, जैसे पूर्वमें इन्द्रने मेरुपर जाकर की थी। लोगोंने उसे साधुवाद दिया, क्योंकि उसका मन भक्तिके भारसे भर रहा था। उसी एक फूलके फलसे वह धनदत्तका जीव तू चम्पाधिराजके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ है। जो कोई विशुद्धिपूर्वक जिन भगवान्‌की पूजा करता है, वह शिवकामिनीको अपने हाथसे पकड लेता है। क्योंकि तूने कीचड-से विलिप्त हाथ-पैरोंसे जगतिलक जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की थी, इसीलिए तेरे हाथ और पैरमें १० यह कण्डु (खुजलीका दाग) हुआ है। मैंने तुझे सुखकारी बात बतला दी।"

६—करकण्डके माता-पिताका पूर्व जन्म

अपने गुणगणोंसे सभाके मनको हरण करनेवाले हे नरपति, अब अपने पिताके सम्बन्धकी कथा सुन। इसी भरतक्षेत्रमें श्रावस्ती नामकी नगरी है, जहाँ नित्य ही खेचरियाँ रमण करती है। उस नगरमें एक प्रसिद्ध मधुरभाषी श्री नागदत्त नामका वणिक् रहता था। उसकी नागदत्ता नामकी गृहिणी थी, जो चिन्ता रूपी अग्निको उत्पन्न करनेके लिए अरणि रूप थी। वह वणिक् उसका पास नहीं छोड़ता था, और न रात-दिन कहीं सो पाता था। उस वणिक्‌ने जिसका ५ परिपालन किया था, तथा कामिनी स्त्रियोंके करपल्लवों-द्वारा लालन कराया था, वह वणिक् पुत्र, हे राजन्, बडा हुआ तथा अपने गुणोंसे विनयशील निकला। कुञ्जरकी सूँड समान विशाल व स्थूल भुजशाली उस ब्राह्मण पुत्रको एक दिन कमलनेत्री नागदत्ताने देखा, जिससे उसके ऊपर उसका अनुराग बढ़ा। उस कोमलगात्री सेठानीने अपने मनमें उसका चिन्तन किया।

७—नागदत्ताकी पतिपालित ब्राह्मण कुमारपर प्रेमासक्ति

वह पुनःपुनः उस कुमारको देखने लगी, जैसे मानो वह प्रत्यक्ष शरीरवान् कामदेव हो। फिर वह नये सुवर्ण सदृश वर्णवाली, बाल-मृगनयनी एक क्षणमें विपरीत चित्त हो गयी। उसका सर्वांग मदनके बाणसे ऐसा विद्ध हुआ कि उसे अपने हृदयमें कुछ भाता ही नहीं था। वह हाथ मलती और रोमाञ्चित होती, एव उसे अपनी रोमावली प्रकट करके दिखलाती। कभी स्तन दिखलाती और कभी नीवीबन्ध छोड़ती। कहो कामान्ध मनुष्य क्या-क्या नहीं करता? कामदेवके वाणसमूह ५ से पराजित होकर वह चलायमान चित्त हुई किसीकी शका ही नहीं करती थी। न तो वह परलोक कार्यमें उद्यतमन गुरुजनों व सज्जनोंकी लाज करती, न पुत्र व बन्धुजनोंका भय खाती और न माता व प्रियतमकी लाज करती। जो कुमार सकल गुणोंकी खान, निपुणमति एव विनय-भावसे सयुक्त था, उससे उसने कोमल वचन-प्रोक्तियों-द्वारा क्या-क्या नहीं कहा?

८

The Brahmin boy resists, but ultimately succumbs

तं सुणिवि वयणु कयउच्छवेहिँ ता पिहिय सवण करपल्लवेहिँ ।
विप्फारिवि लोयण सिरु धुणेवि सो जंपइ दुट्ठिय सा मुणेवि ।
हा माए माए किं चवहि एत्थु विहलंघल कय मज्जेण जेत्थु ।
हउँ णंदणु तुहुँ महो तणिय माय वोल्लंति हियएँ तुह कवण छाय ।
गयणयलु व लीला जो वहंतु परियाणहि किं ण वि कुलु महंतु । 5
सम्माणदाणसम्माणियाए इउ साहसु किमु पइँ कियउ माए ।
जणणयणसवणआणंदभूय किं माए बुद्धि विवरीय हूय ।
तं हणिवि वयणु करें धरिवि ताएँ सो णिच्चलु किउ [1]मयभिभलाएँ ।
घत्ता—हरिहरवम्हपुरंदरहँ देवाहँ वि तिय खणे मणु हरइ ।
जो माणउ पडियउ ताहे पिडि मइहीणु वरायउ किं करइ ॥८॥ 10

९

Her faithlessness discovered by her husband who retires for penance and is reborn as Dhāḍivāhana

सब्भावें कामुउ सयलु जणु तिय झायइ हियवएँ एयमणु ।
जइ अणुमइ पावइ तहो तणिय ता भणहि णारि किं अवगणिय ।
तहे सगइँ जासु ण चलइ मइ सो लहइ णरेसर सिद्धगइ ।
ता एत्तहिँ रवि अत्थइरि गउ वहुपहरहि ण सूरु वि [1]सुयउ ।
वहुवण्णिय सज्झा सरइ णहु रत्तवर सा णं [2]गयणवहु । 5
तमु पसरिउ वहलउ जाव तहिं [3]पुण्णाय महायणु चलइ जहिं ।
फणियत्तएँ मयणइँ मोहियएँ परिचिंतिवि अंधारउ हियएँ ।
सो बम्हणु पुणु अवरुडियउ अहरुल्लउ छुडु तहे खंडियउ ।
ता ससहरु उइयउ तहिं जि खणे असईयणे दुहु पयडंतु मणे ।
ता वणिणा दिट्ठउ तहो चरिउ वणवासु तुरंतइँ अणुसरिउ । 10
तउ चरिवि णिसंगउ सग्गि गउ तहिँ सोक्खइँ भुंजिवि पुणु वि चुउ ।
पुरि चंपहिँ णिववसुपालसुओ वसुमइहे गब्भे दिवसेहिँ हुओ ।
घत्ता—जो जणवयवल्लहु जयतिलउ सिरिधाडीवाहणु पीणभुओ ।
परिझाइवि महिहरुँ पंचगुरु सग्गग्गि परिट्ठिउ अमरु हुओ ॥९॥

१०

The Brahmin reborn an elephant and the faithless wife a family woman again

सो बम्हणु परयारहो फलेण ससारि भमाडिउ तें खणेण ।
दुहु भुंजिवि अडविहिँ दुप्पवेसे उप्पण्णउ कुंभि कलिंगदेसे ।
सो केण वि कम्में णिम्मिओ वि चंपाहिवणिवकरिवरु हुओ वि ।

---

८ १ D मइ

९ १ S] मुयउ २ N मयणवहु. ३ N सुण्णाय महीयणु ('सुण्णाय' पर टिप्पण है 'दुश्चारिणी')
४ SJD महीहर, N महाहर

८—कुमारकी विनयशीलता और नागदत्ताकी मदोन्मत्तता

उसका वह वचन सुनकर ब्राह्मणकुमारने अपने कर-पल्लवोको ऊपर उठाकर कान मूँद लिये तथा ऑखें फाडकर और सिर हिलाकर एव उसे दुष्ट-प्रकृति जानकर, वह कुमार बोला—"हे मॉ, हे मॉ, यह तू क्या कहती है? क्या तू मदिरा पीकर उन्मत्त हुई है? मै तेरा पुत्र हूँ, और तू मेरी माता। हृदयसे ऐसी बात बोलते हुए तेरी कौन-सी शोभा है? अरी, गगनतलके समान निर्मलता धारण किये हुए, क्या अपने महान् कुलको तू नहीं जानती? सम्मान और दान- ५ से सम्मानित होते हुए भी, हे मॉ! तूने यह साहस कैसे किया? लोगोंकी ऑखों और कानोंको आनन्द देनेवाली तेरी बुद्धि, हे मॉ, ऐसी विपरीत क्यों हो गयी?" कुमारके इन वचनोकी उपेक्षा करके और उसे हाथसे पकड कर उस मदोन्मत्त स्त्रीने उसे निश्चल कर दिया। स्त्री एक क्षणमें हरि,हर, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवोंके भी मनको हरण कर लेती है, फिर जो इसके पिण्डमें पडा, वह बेचारा मतिहीन मानव क्या कर सकता है? १०

९—नागदत्ता और ब्राह्मणकुमारका पाप तथा वणिक्का वैराग्य

स्वभावसे सब लोग कामुक है और एकाग्र मनसे अपने हृदयमें स्त्रीका ध्यान करते है, फिर यदि कोई उसकी अनुमति पा जाये, तो कहो क्या वह नारीकी अवहेलना करेगा? स्त्रीके सगसे जिसकी मति चलायमान न हुई, वह पुरुष, हे राजन्, सिद्धगतिको प्राप्त करता है। फिर इतने हीमें सूर्य अस्ताचलपर पहुँच गया, मानों बहुत प्रहरों (प्रहारो) से सूर (शूर) भी सो गया। नाना वर्णयुक्त सन्ध्या आकाशमें छा गयी, मानो वह रक्ताम्बर धारिणी मदन वधू (रति) ५ ही हो। जब वहॉ खूब अन्धकार फैल गया, तब दुराचारिणी स्त्रियॉ महाजनोंके पीछे पडने लगीं। नागदत्ताने कामसे मोहित हो व अन्धकार हो गया ऐसा हृदयसे विचार करके, उस ब्राह्मणकुमारका आलिंगन किया। उसने भी उसके अधरको दन्तक्षत किया। इतनेमें ही असती स्त्रियोंके मनमें दुख उत्पन्न करता हुआ चन्द्र उदित हो गया। चन्द्रके प्रकाशमें वणिक्ने अपनी स्त्रीका चरित्र देख लिया, जिससे उसने तुरन्त वनवासका अनुसरण किया। वह राग-रहित तपस्या १० करके स्वर्ग और वहॉ सुख भोगकर, पुन॰ च्युत होकर वसुमतीके गर्भमें आया व दिवस (समय) व्यतीत होनेपर चम्पापुरीमें राजा वसुपालका पुत्र हुआ। जो वह जनपदवल्लभ, जगतिलक, पीन-भुजशाली, धाडीवाहन हुआ वही (पश्चात्) पर्वतपर पचगुरुका ध्यान करके स्वर्गके अग्रभागमें परिस्थित होकर अमर हो गया।

१०—ब्राह्मणकुमारका हाथीके रूपमें पुनर्जन्म

वह ब्राह्मण परदार गमनके फलसे ससारमें निरन्तर भ्रमण करने लगा। वह दु'ख भोगकर कलिंगदेशमें एक दुर्गम अटवीमें हाथी उत्पन्न हुआ। वह अपने किसी कर्मके वशीभूत होकर

परपुरिसु रमेप्पिणु णायदत्त ससारमहण्णवदुहइँ पत्त ।
एत्थत्थि भरहे पुरि तामलित्ति जोयंतु ण सुरवइ लहइ तत्ति । 5
वसुमित्तु ताहे वणि अत्थि साहु सो णायदत्तघरिणिएँ सणाहु ।
एक्कहिँ दिणि सुहइँ रमंतयाहँ दुइ धूयउ जायउ तम्मि ताहँ ।
पहिलारी णामेँ धणमई वि पुणु दुइजी णामेँ धणसिरी वि ।
घत्ता—णालंदणयरि धणदत्तु वणि धणमित्ता गेहिणि तहो सुयउ ।
धणपालु णाउ वंदियणिउ धणवइकतु पढमहिँ हुयउ ॥१०॥ 10

११

She loses her husband and takes to religious ways

कउसविणयरि वसुपालु सेट्ठि वसुमइ तहो गेहिणि जणियतुट्ठि ।
वसुदत्तु पुत्तु तहो हुउ जियारि जिणपायपोमअणुरायकारि ।
तहो दिण्णी धणसिरि गुणकरंडि जयणाहहो ईमहो णाइँ चंडि ।
तहुँ लीलइँ सुहइँ रमंतयाहँ वहु दिणइँ गयइँ भुंजियसुहाहँ ।
ता एक्कहिँ दिणि णिट्ठुरकरेहिं वसुमित्तु णियउ जमकिंकरेहिं । 5
वइराएँ ता कउसवियाहे गय णायदत्त घरु णियसुयाहे ।
धणसिरियएँ कुवलयणेत्तियाएँ वयहीण जणणि जाणतियाएँ ।
जिणमंदिरु णीय तुरंतियाएँ मुणिचरणसरोरुहभत्तियाएँ ।
देवाविय णिसिभोयणविरत्ति मा भुंजहि भोयणु माए रत्ति ।
तं[1] सुणिवि जणणि पडिलवइ पुत्ति वयणियमहो केरी दिव्वजुत्ति । 10
मुणिचरण णवेप्पिणु णयसिरेण सा लेवि महासइ णियमणेण ।
घत्ता—ससारहो तारणु रोयहरु गुणणियरकरणु जाणतियएँ ।
ज किं पि पयासिउ णिसिविरमु त लइयउ धणसिरिजणणियएँ ॥११॥

१२

She was reborn as the daughter of king Vasupāla who threw her in the Jumna

ता णायदत्त एक्कहिँ दिणम्मि गय धणवइगेहहो सा खणम्मि ।
तहिँ दिवह वहुय अच्छंतियाहे गुरुदुहियएँ णिसिवउ भग्गु ताहे ।
जहे तहे वउ भग्गउ एक्कवार तह तिण्णिवार भग्गउ सुतार ।
पुणु चउथियवारहे णायदत्त धणसिरिहे गेहु गय विमलचित्त ।
ता णायदत्त जमदूवएहिँ कालेँ सा णीय तुरंतएहिँ । 5
कउसविए वसुपालहो णिवासु मणभामिणि वसुमइ अत्थि तासु ।
पुणु णायदत्त तहो तणिय धूव उप्पण्णिय सा अइसइसरूव ।
तहे तणए जम्मे वसुमइ वि माए बहुवाहिँ गहिय करतणुचिपाए ।
तेँ राएँ छुहिवि मंजूसियाहे लइ घल्लिय पुणु जउणापवाहे ।
घत्ता—सा जउणहे सोहइ कसणजले रयणेहिँ विणिम्मिय उज्जलिया 10
णं णाइणिमत्थएँ अमलमणि णियथाणहो होंती सचलिया ॥१२॥

---

११ १ N में इससे पूर्व हासियेमें जोडा गया है—ण वि जणणी तहि यामतियाए

चम्पानरेशका हाथी बन गया। उधर नागदत्ता परपुरुषका रमण करके ससार रूपी महासमुद्रके दुःखोंको प्राप्त हुई। इसी भरतक्षेत्रमें ताम्रलिप्ति नामकी पुरी है जिसे देखते हुए सुरपति भी तृप्ति नहीं पाता। वहाँ वसुमित्र नामका एक साधु वणिक् था और वही नागदत्ता गृहिणीका पति हुआ। ५ सुखसे रमण करते हुए उनके एक दिन दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। पहलीका नाम धनमती और दूसरीका नाम धनश्री हुआ। नालन्दा नगरीमें धनदत्त नामका वणिक् और उसकी धनमित्रा नामकी गृहिणी थी। उनका पुत्र धनपाल नामका था, जिसकी वन्दीजन प्रशसा करते थे। वही पहली कन्या धनमतीका पति हुआ।

११—नागदत्ताका पुनर्जन्म

कौशाम्बी नगरीमें वसुपाल सेठ रहता था। उसकी वसुमती नामकी सन्तोषदायिनी गृहिणी हुई। उसके शत्रुओंको जीतनेवाला तथा जिनेन्द्रके चरणकमलोंका अनुरागी वसुदत्त नामका पुत्र हुआ। उसीको गुणोंकी पिटारी धनश्री विवाहमें दी गयी, जैसे जगके नाथ शिवको चण्डिका। उनके लीलापूर्वक सुखसे रमण करते व सुख भोगते हुए बहुत दिन निकल गये। फिर एक दिन निष्ठुर हाथोंवाले यमके किंकरों-द्वारा वसुमित्रका हरण हो गया तब वैराग्यभावसे नागदत्ता ५ कौशाम्बी छोड़ अपनी पुत्रीके घर आ गयी। कुवलयनेत्री धनश्री अपनी माताको व्रतहीन जानकर तुरन्त जिनमन्दिरमें ले गयी और उस मुनियोंके चरणकमलोंकी भक्तिनीने उसे रात्रिभोजन त्यागका व्रत करा दिया और कहा—"हे माता, अब रात्रिको भोजन मत करना।" यह सुनकर माता बोली—"हे पुत्रि! व्रत नियमकी युक्ति दिव्य है।" फिर उस महासतीने सिर झुकाकर मुनिके चरणोंमें नमस्कार करके अपने मनसे व्रत ले लिया। इस प्रकार धनश्रीकी माताने निशिभोजन त्याग व्रतको १० ससारका तारक, रोगहारी, एवं गुणसमूहकारी जानकर, जैसा उसका स्वरूप मुनिने प्रकाशित किया, उस प्रकार ग्रहण कर लिया।

१२—नागदत्ता कौशाम्बीकी राजपुत्रीके रूपमें

तत्पश्चात् एक दिन नागदत्ता धनमतीके घर गयी। वहाँ बहुत दिन रहनेपर, बड़े दुखित मनसे उसका निशिव्रत भग हो गया। जिस प्रकार उसका व्रत एक बार भग हुआ उसी प्रकार वह बढ़कर तीन बार भंग हुआ। फिर चौथी बार नागदत्ता शुद्ध मनसे धनश्रीके घर गई। तत्पश्चात् शीघ्र ही यथाकाल नागदत्ताको यमके दूत ले गये। कौशाम्बीमें राजा वसुपालकी प्रिय भामिनी वसुमती थी, उसीकी नागदत्ता अतिशय सुरूपवती पुत्री उत्पन्न हुई। उसके जन्म समय ५ वसुमती माता अपने कर्मोंके विपाकसे बहुत व्याधियोंसे ग्रसित हो गयी। तब राजाने पुत्रीको एक पेटीमें बन्द किया और उसे लेकर यमुनाके प्रवाहमें छोड़ दिया। वह रत्नोंसे विनिर्मित उज्ज्वल मञ्जूषा यमुनाके काले जलमें, नागिनीके मस्तकपर निर्मल मणिके समान शोभायमान होती हुई अपने स्थानसे बह चली।

१३

She turns out to be Padmāvatī, Karakaṇḍa's mother.

कट्ठाण विणिम्मिय अवर जा वि तह मज्झ छुद्ध [1]गुप्पचिय सा वि ।
णिच्छेदिय सुंदर जा घडीय सा वूढमाण गंगहिँ पडीय ।
उल्लोलहिँ कत्थइँ पडिखलंति भमणम्मि पडिय कत्थइँ चलंति ।
अइउज्जुव कत्थइँ परिवहेइ जलजाणु णाइँ सायरे सहेइ ।
सा दिवसहिँ कुसुमउरम्मि पत्त तहिँ मालिणि अच्छइ कुसुमदत्त । 5
गय गंगहे सा पउ अणुसरंति मजूस दिट्ठ ता ताएँ जंति ।
सा कड्ढेवि णियघरु गइय लेवि अइतुट्ठपहिट्ठइँ थियइँ वे वि ।
उग्घाडिवि जोयहिँ सा वि जाव सुय दिट्ठी मणिक[2]वलइँ ताव ।
सा दिवहहिँ पुणु जोव्वणे चडीय तुह जणणहो पुणु दिट्ठिहे पडीय ।
पोमावइ णामेँ जणपसिद्ध तणुछायसलोणी अइसणिद्ध 10
सा परिणिय जणणइँ तुह तणेण तहे गब्भे परिट्ठिउ तुहुँ खणेण ।
घत्ता—तहिँ अवसरे सा करिवरि चडिवि परिभमियउ पट्टणु ताइँ फिर ।
चिरमोहु वहतइँ कुजरेण सा णीय तुरिय भयवेविर ॥१३॥

१४

Previous births of Madanāvalī and the Khecara who had temporarily abducted her

सा छुट्टिय दुक्खेँ कह व तासु उज्जाणहो गय भीसावणासु ।
मालियइँ केण णियघरहो णीय तहो घरिणिएँ ता कलि खणिण कीय ।
दुक्खाउर पेयवणम्मि पत्त तहिँ जायउ तुहुँ मइँ कहिय वत्त ।
सुणि एवहिँ मयणावलिहे वत्त जीवाण होइ विसमिय भ[1]विति ।
पारावयकुले जा लद्धजम्म पाराविय सा हुय णयणरम्म । 5
दहिऊरु कूरु पजरे चरति जा रमणइँ सहुँ अच्छइ रमंति ।
तावायउ विसहरु परिभमतु भीसाणणु ण पत्तउ कयतु ।
तेँ पायहिँ धरियइँ बे वि ताइँ पइँ करुणइँ [2]धाविय रक्खियाइँ ।
णवयारइँ सा उप्पण्ण एह तव उवरि णरेसर बद्धणेह ।
घत्ता—पारावउ अहि खेयर वि हुय णवयारइँ लद्धइँ मुणिवरहो । 10
अहिखयरइँ रोसेँ तुह वहुय णिय हरिवि तुरतइँ णियघरहो ॥१४॥

१५

Padmāvatī comes and requests the sage for religious instruction.

ज पुच्छिउ णरवइ किं पि पइँ त अक्खिउ णियसत्तीए मइँ ।
त सुणिवि णरेसरु विंभियउ तवचरणु मणेण विचिंतियउ ।
पोमावइ एत्तहिँ आय तहिँ मुणि धम्मु पयासइ ललिउ जहिँ ।
पुणु वदिवि भत्तिएँ णयसिरेण बोल्लाविवि[1] णंदणु कलसरेण ।

---

१३ १ J रुप्पविय २ DN कचणइ
१४ १ SJ विभत्ति २ J धाइय
१५ १ N बोल्लाविअ

१३—जलप्रवाहमें मञ्जूषा और पद्मावतीका वृत्तान्त

वह मञ्जूषा काष्ठकी बनी हुई एक दूसरी पिटारीमें सुरक्षित रूपसे रखी गयी थी और निच्छिद्र व सुन्दर रूपसे गढी गयी थी। वह जमुनाके प्रवाहमें बहती हुई गंगामें जा पड़ी। कहीं वह जल कल्लोलों-द्वारा डगमगाती, कहीं भँवरमें पडकर घूमती और कहीं अतिसरल प्रवाहमें बहती हुई ऐसी शोभायमान हुई जैसे सागरमें जलयान। कुछ दिनोंमें वह कुसुमपुरमें पहुँची। वहाँ कुसुमदत्ता नामकी मालिनी रहती थी। वह पानी भरने गगाको गयी। तब उसने　५ बहती हुई पिटारीको देखा। उसे जलसे निकालकर वह अपने घरले आयी। उसे देख पति-पत्नी दोनों बडे सन्तुष्ट और प्रहृष्ट हुए। मञ्जूषाको उघाडकर जब उन्होने देखा तब उन्हें मणिकम्बलमें लिपटी हुई कन्या दिखायी दी। तत्पश्चात् कुछ दिनोंमें वह यौवनको प्राप्त हुई और फिर तेरे पिताकी दृष्टिमें पडी। उस पद्मावती नामकी जन-प्रसिद्ध, शरीर-कान्तिसे सलोनी, अति स्निग्ध युवतीको तेरे पिताने विवाह लिया। यथासमय तू उसके गर्भमें आया। उस अवसरपर उसने　१० महान् हाथीपर चढ़कर पट्टणका परिभ्रमण किया। तब वह कुञ्जर पुराना मोह धारण करता हुआ, उस भयसे काँपती हुई रानीको तुरन्त ले भागा।

१४—मदनावली और उसका हरण करनेवाले खेचरका पूर्व जन्म

पद्मावती किसी प्रकार उस हाथीसे छूटी और एक भीषण उद्यानमें जा पहुँची। वहाँसे एक माली उसे अपने घर लिवा ले गया। शीघ्र ही उसकी गृहिणीने उससे कलह की। तब दुःखातुर होकर वह श्मशानमें पहुँची और वहाँ तेरा जन्म हुआ। इस प्रकार मैंने तुझे बात कह दी। अब मदनावलीकी बात सुन। जीवोंकी भवितव्यता विषम होती है। जिसने पारावतके कुलमें जन्म लिया था, वह परेवी बडी नयन-रम्य हुई। दही-भात खाती हुई जब वह पिंजरेमें अपने　५ रमणके साथ क्रीडा कर रही थी, तब वहाँ भ्रमण करता हुआ एक सर्प आया जो यमके समान भयानक था। उसने उन दोनोंके पैर पकड़ लिये। तब तूने करुणासे दौड़कर उनकी रक्षा की। तेरे दिये हुए नमोकार मन्त्रके प्रभावसे वह इस मदनावलीके रूपमें उत्पन्न हुई और इसीसे वह, हे नरेश्वर, तेरे ऊपर इतना स्नेह रखती है। वह परेवा भी खेचर हुआ, तथा वह सर्प भी मुनिवरके द्वारा दिये हुए नमोकारके प्रभावसे विद्याधर हुआ। वही सर्पका जीव खेचर रोषके　१० कारण तेरी वधूको हरकर तुरन्त अपने घर ले गया।

१५—पद्मावतीका आगमन व मुनिराजसे प्रश्न

हे नरपति, जो कुछ तूने पूछा, वह मैंने तुझे अपनी शक्तिके अनुसार कह दिया। यह सुनकर करकण्ड राजा विस्मित हुआ और अपने मनमें तपश्चरणका विचार करने लगा। इतनेमें ही वहाँ पद्मावती आ पहुँची, जहाँ मुनि ललित धर्मको प्रकाशित कर रहे थे। उसने सिर झुकाकर भक्तिसे मुनिराजकी वन्दना की तथा मधुर स्वरमें अपने पुत्रसे सभाषण किया। फिर उसने ज्ञान-

ता पुच्छिउ मुणिवरु णाणदेहु थीवेउ णिहम्मइ जेण एहु । 5
को वि अम्हहँ सामिय भणु विहाणु दुहणरयणिवासहो गुरुपिहाणु[2] ।
संसारमहण्णवसंकियाहँ उवभोयणिवहसुह छंडियाहँ ।
करुणेण जईसरु दुक्खियाहँ सुहसपडविहि अक्खेइ[3] ताहँ ।
घत्ता—पडिवइँ आइ करेवि तहि उववासइँ पुत्ति सया करहि ।
हियइच्छिय सो सुहु अणुहवइ सुरसेज्जहिँ लीलए रइ करइ ॥१५॥ 10

१६

Efficacy of fasts

पडिवइँ उपवासिएँ पढमु सग्गु वीयाइँ दुइज्जउ देववग्गु ।
तइयाइँ तइज्जएँ सग्गि वासु चउथीएँ तुरीयइँ सुहणिवासु ।
पचमि तह पंचमि सुक्खु देइ सग्गम्मि छट्टि छट्ठीएँ णेइ ।
सत्तमउ सग्गु सत्तमिएँ जाइ अट्ठमएँ सग्गे अट्ठमिएँ भाइ ।
पुणु णवमिएँ णवमउ देवलोउ परिपावइ दहमिए दहमे भोउ । 5
एयारसि एयारहमि सग्गे दोवालसि वारहमम्मि वग्गे ।
तेरहमउ तेरसि पायडेइ चउदहमउ चउदसि सघडेइ ।
पण्णरसमु पुण्णिम दक्खलेइ सोलहमउ तासु जु उज्जवेइ ।
घत्ता—अह पाणाहारइँ जो करइ जिणपुज्ज करेविणु मणहरिय ।
सोवाणहि एयहिँ खणे चडिवि सिवकामिणि णिच्छउ तेँ सरिय ॥१६॥ 10

१७

Completion of a fast

जो विहाणु चारुचित्त उज्जमेइ भावजुत्त ।
सण्हएण[1] रत्तएण दित्तएण वत्थएण ।
सोक्खवीहिँ अचएवि कुंभु अग्गए थएवि ।
सो वि वत्थकोरएण पगुरेवि सुदरेण ।
अप्पिऊण सव्वएहिँ पूजिऊण केणएहिँ । 5
तेत्थु पोथउ द्धरेवि तूरएण जागरेवि ।
चारु पत्ति दाणु देवि पोत्थयाइँ पूजएवि ।
ण्हाविऊण देवदेउ - आयरेहु तुम्ह एउ ।
घत्ता—चदोवा सोलह जिणभवणे धय देविणु किंकिणिरवमुहलं[2] ।
एहो वयहो उवासइँ मणहरहो पावेसहि वछिय[3] सुह सयलं[4] ॥१७॥ 10

१८

The story of Sumitrā who was reborn a boy

पुणु ताएँ पपुच्छिउ मुणिवरिंदु [1]पयकमलहिँ पाडिउ जेँ सुरिंदु ।
हो मुणिवर कहि इउ कियउ केण को पत्तउ एयहो वयफलेण ।
तं सुणिवि मुणीसरु भणइ एव मणि ससउ फिट्टइ ताहे जेव ।
उज्जेणीरायहो पुत्तियाएँ मणि गहिउ सुमित्तएँ धुत्तियाएँ

---

२ S णिवहु.

१७ १ DJ णण्हएण २ SJN मुहलु. ३ प्रतिषु 'वछहि' ४ SJN सयलु

१८ १ J पय पाडिय कमलहिं

शरीरी मुनिवरसे पूछा "हे स्वामी ! मुझे कोई ऐसा विधान बतलाइए, जिससे इस स्त्रीवेदका विनाश हो, तथा दुःखों व नरक-निवासका दृढ़तासे निवारण हो।" तब उस ससाररूपी महासमुद्रसे शंकित उपभोग-समूहोंके सुखोंको छोड़नेवाली व दुःखी पद्मावतीको, यतीश्वरने करुणापूर्वक, सुख-रूपी सम्पत्ति प्राप्त करनेकी विधि बतलायी। वे बोले "हे पुत्रि, प्रतिपदासे प्रारम्भ करके लगातार पूर्णिमा तक उपवास कर ! जो कोई ऐसा करता है, वह मनोवाञ्छित सुखोंका अनुभव करता तथा सुरशय्यापर लीलापूर्वक क्रीडा करता है।"　५　१०

१६—उपवासोंका फल

प्रतिपदाको उपवास करनेसे प्रथम स्वर्ग मिलता है, तथा द्वितीयाके उपवाससे दूसरा स्वर्ग। तृतीयाके उपवाससे तृतीय स्वर्गमें वास होता है, और चतुर्थीसे चतुर्थ स्वर्गमें सुखपूर्वक निवास होता है। पञ्चमीसे पञ्चममें सुख मिलता है, और छठेसे षष्ठीमें गमन होता है। सप्तमीसे जीव सप्तम स्वर्गमें जाता है, और अष्टमीसे आठवें स्वर्गमें शोभायमान होता है। फिर नवमीसे नवम देवलोक मिलता है, और दशमीसे दशवेंमें भोग प्राप्त होता है। एकादशीसे ग्यारहवें स्वर्गमें, तथा द्वादशीसे बारहवें स्वर्गमें, जन्म होता है। त्रयोदशी तेरहवाँ स्वर्ग प्राप्त कराती है, और चतुर्दशी चौदहवेंसे मेल कराती है। पूर्णिमाका उपवास पन्द्रहवें स्वर्गके दर्शन कराता है, तथा उपवासोंका उद्यापन करनेवालेको सोलहवाँ स्वर्ग प्राप्त होता है। इस प्रकार उपवास-विधि पूर्ण करके तथा मनोहर जिनपूजा करके जो कोई आहार-पान ग्रहण करता है, वह इन्हीं सीढ़ियोंसे शीघ्र चढ़कर निश्चय ही शिवकामिनीका अनुसरण करता है।　५　१०

१७—उपवासके उद्यापनका विधान

प्रसन्नचित्त व भावयुक्त होकर उपवासका उद्यापन करना चाहिए जिसका विधान निम्न-प्रकार है—एक सूक्ष्म व चमकदार लालवस्त्रसे आच्छादित करके तथा सूखे व्रीहि (चावल) से अर्चा करके आगे कुम्भ रखे, और उसे भी सुन्दर कोरे वस्त्रसे लपेट दे। फिर सर्वमगल द्रव्य अर्पित करके पूजा करे। वहाँ पोथी भी स्थापित करे। प्रातःकाल शीघ्र जागकर, पात्रको भले प्रकारका दान दे, पोथियोंकी पूजा करे, एव जिनेन्द्र देवका अभिषेक करे। इस विधिका तुम भी आदर करो। जिन-मन्दिरको सोलह चन्दोवा तथा घण्टियोंकी ध्वनियोंसे झनझनाती हुई सोलह ध्वजाएँ अर्पित करे। (मुनिराज पद्मावतीसे कहते है कि) इस मनोहर व्रतके उपवाससे तू अपने मनोवाञ्छित समस्त सुख पा सकेगी।　५

१८—उपवासके फलका दृष्टान्त

फिर पद्मावतीने, सुरेन्द्रको अपने चरणकमलोंमें झुकानेवाले उन मुनिवरेन्द्रसे पूछा—"हे मुनिवर, इस व्रतको कहाँ किसने किया, और उसके फलसे क्या पाया ?" यह सुनकर मुनीश्वरने ऐसी बात कही, जिससे उसके मनका सशय मिट जाये। उज्जयिनीके राजाकी पुत्री चतुर सुमित्राने मनसे इस व्रतको ग्रहण किया, किन्तु पहला उपवास करनेके पश्चात् ही उसकी मृत्यु हो गयी।

उववासें पहिल्लएँ सा मुया वि घरे विप्पहो उज्जेणिहि हुया वि । 5
दुइघडियहिँ पालिवि इउ विहाणु थीवेउ हणेविणु दुहणिहाणु ।
गब्भम्मि हुयउ तहो जणणणासु जणणीएँ कियउ सुहु सयलु तासु ।
एक्कहिँ दिणि कलहु करतियाएँ णीसारिउ णंदणु जणणियाएँ ।
घत्ता—गउ रूसिवि बाहिरि पट्टणहो सो रयणिहिँ जुण्णएँ मढे वसिउ ।
तहि आयउ विज्जाहरिणियर ते देक्खिवि सो मणि उल्लसिउ ॥१८॥ 10

१९

Good fortune of the boy.

तहो अचले लग्गउ सो खणेण सव्वाउ पणट्ठउ तहो भएण ।
तहो कप्पले चडियउ त जि वीरु पुणु वलिवि समागउ घरहो वीरु ।
आणंदु कियउ जणणीएँ तासु त लेविणु गय घर वणिवरासु ।
त लयउ वणीसें देवि दव्वु तें अप्पिउ रायहो असु भव्वु ।
सो पुच्छिउ राएँ अवरु अत्थि जइ आणहि ता तुह देमि हत्थि । 5
तें कहियउ णंदणु वभणासु सो वीयउ आणइ देव तासु ।
सो पेसिउ राएँ दव्वु देवि कारोहणे गउ बम्हणु वलेवि ।
टेवंती[1] कत्ती णिवकरेण तहि दिट्ठी रक्खसि ताव तेण ।
घत्ता—जाणेविणु रक्खसि वम्हणइँ सिरि लउडउ लीयउ तहे[2] तणउ ।
कर जोडिवि रक्खसि वम्हणहो भयकपिर अग्गइँ तहो भणइ ॥१९॥10

२०

The king's minister becomes jealous of the boy and devises means to get rid of him.

अवराहइँ किं पि ण मइँ कियाइँ तुहुँ कुवियउ अम्हहँ उवरि काइँ ।
वोलतउ वभणु तहे ण भाइ एउ लउडउ रक्खससयइँ खाइ ।
णिद्दुरियणयण भयकपियाइँ तहो चलणहो लग्गि तुरंतियाइँ ।
मा मारहि सामिय सवरेहि त करमि सव्वु ज तुहुँ भणेहि ।
तें ताहे कराविउ रूउ रम्मु ता तेण णीय अप्पणउ हम्मु । 5
सा कप्पडु मग्गिवि वभणेण तें अप्पिउ रायहो तक्खणेण ।
त पेक्खिवि तुट्ठउ राउ तासु अइ दिण्णउ पवरु पसाउ तासु ।
सो देक्खिवि भट्टु महतएण तहो पाणणासु चिंतिउ मणेण ।
घत्ता—तें मतिएँ जाइवि खणे भणिय तहो रायहो राणी वल्लहिया ।
आणावहि वग्घिहे दुद्ध तुहुँ ता ताएँ वि सेज्जा खणे गहिया ॥२०॥ 10

२१

One device fails, another is tried

एह वत्त सुणेविणु राणियाहे गउ राणउ तुरियउ पासु ताहे ।
त कहियउ ताएँ णरेसरासु तें दिण्णउ पेसणु दियवरासु ।
घरि जाइवि रक्खसि तें दिएण किय वग्घि सकठी[1] तुरियएण ।

---

१९ १ J देवंती, DN येवती २ D णतए

२१ १ N सकटी.

तब वह उज्जयिनीमें ही एक विप्रके घर उत्पन्न हुई। उसने इस विधानको केवल दो घडी पालन किया था जिससे ही उसके दुःखका निधान स्त्रीवेद नष्ट हो गया। उसके गर्भमें आते ही पिताकी मृत्यु हो गयी। तब उसकी माताने ही उसके समस्त सुखकी व्यवस्था की। एक दिन कलह करके माताने अपने पुत्रको घरसे निकाल दिया। वह रुष्ट होकर नगरके बाहर चला गया और रात्रिको एक जीर्ण मठमें बस रहा। वहाँ एक विद्याधरियोंका समूह आया, जिन्हें देखकर वह अपने मनमें उल्लासित हुआ।

१६—ब्राह्मणपुत्रको विद्याधरीका दिव्य वस्त्र मिला

वह ब्राह्मणपुत्र एक विद्याधरीके आँचलसे जा लगा (अँचलको पकड लिया)। उसके भयसे सब विद्याधरियाँ वहाँसे भाग गयीं। किन्तु वह चीर उसके हाथ चढ़ गया। वह वीर लौटकर अपने घर आया। उसकी माताने आनन्द मनाया और उस चीरको लेकर वह वणिक्वरके घर गयी। वणिक्वरने द्रव्य देकर उसे ले लिया और उसने उस भव्य वस्त्रको राजाको अर्पित किया। राजाने उससे पूछा—"क्या तेरे पास और भी ऐसा वस्त्र है? यदि ले आवे तो मै तुझे एक हाथी दूँगा?" बनियाने उस ब्राह्मणपुत्रका नाम बतलाकर कहा—"हे देव, वही आपको ऐसा दूसरा वस्त्र लाकर दे सकता है।" राजाने द्रव्य देकर उस ब्राह्मणपुत्रको भेजा। और वह लौटकर फिर वनमें गया। वहाँ उसने अपने हाथसे एक कटारीको रेतते हुए (पैनी बनाते हुए) एक राक्षसीको देखा। ब्राह्मणने उसे राक्षसी जानकर उसके सिरपर अपना डण्डा उठाया, तब राक्षसी भयसे काँपती हुई हाथ जोड़कर उस ब्राह्मणके आगे खड़ी होकर बोली—

२०—ब्राह्मण-द्वारा राक्षसीका वशीकरण

"मैंने तेरा कोई अपराध नहीं किया; तू मेरे ऊपर क्यों कुपित हुआ है?" ब्राह्मण बोला—"मेरा यह डण्डा सैकडों राक्षसोंको खानेवाला है।" यह बात उस राक्षसीको भायी नहीं। वह अकचकाई आँखोंसे एव भयसे काँपती हुई तुरन्त ही उसके चरणोंसे लग गयी और बोली—"हे स्वामि, मुझे मत मारिए। अपने डण्डेको रोकिए। जो कुछ आप कहेंगे, मै वह सब करूँगी"। तब वह ब्राह्मणकुमार उसे सुन्दर रूप धारण कराकर अपने घर ले आया। उससे वह कपडा माँगकर ब्राह्मणने तत्क्षण राजाको अर्पित कर दिया। उस वस्त्रको देखकर राजा उसपर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपना प्रचुर प्रसाद प्रदान किया। प्रधानमन्त्रीने उस भट्टको (राजाका कृपापात्र बना) देखकर, अपने मनमें उसे मार डालनेका विचार किया। उस मन्त्रीने उसी क्षण जाकर उस राजाकी वल्लभा रानीसे कहा कि "तू उससे व्याघ्रीका दूध मँगवा।" रानीने तुरन्त कोपशय्या ग्रहण कर ली।

२१—मन्त्रीका षड्यन्त्र और रानीका हठ

रानीके कोपशय्या ग्रहण करनेकी बात सुनकर, तुरन्त ही राजा उसके पास गया। उसने नरेश्वरसे वह अपने मनकी बात कही। राजाने उस द्विजवरको आज्ञा दी। द्विजने घर जाकर, उसी राक्षसीको तुरन्त एक रोमाञ्चित व्याघ्री बना लिया और उसे राजाके घर ले जाकर तत्क्षण

घरि णीय णरिंदहो वम्हणेण सा अप्पिय वग्गिणि तक्खणेण ।
तहे दंसणे जणवउ सयलु णट्ठु इह[2] मंति दुहइ तुह देव सुट्ठु । 5
भयभीयएँ मंतिएँ भणिउ राउ णिव कज्जु ण दुद्धइँ एह जाउ ।
तहिँ मतिएँ मतु करतएण पुणु राणिय भणिय तुरतएण ।
वोल्लतउ जलु आणावि देवि एहु णावइ तिम करि गउ वलेवि ।

घत्ता—ता भणिउ ताएँ णिव सुणहि तुहुँ वोल्लतउ लइ आणेवि जलु ।
तं सुणिवि दिएसरु तेँ भणिउ [3]एहु पेसणकेरउ तुज्झु छलु ॥२१॥ 10

२२

The Brahmin dies with austerities and is reborn as Arjuna Padmavati accepts the vow

तेँ रक्खसि आणिय जलु करेवि वोलाविउ णिवअग्गएँ धरेवि ।
त भणइ महंतउ राणिया वि हउँ भक्खउँ णरवइ दुइ जणा वि ।
इउ सुणिवि णरिंदहो चोज्जु जाउ त सयलु दिएसरु पुच्छियाउ ।
तेँ कहियउ मंतिहे तणउ कम्मु णीसारिउ राएँ सो अहम्मु ।
तेँ राएँ वम्हणु कियउ मंति तहो णयरहो लोयहो होइ सति । 5
ता एक्कहिँ दिणि भट्टो वि चारु तउ करिवि गयउ सो सग्गदारु ।
उप्पण्णउ अज्जुणु होवि सोइ फलु एहउ पुत्ति विहाणे होइ ।
तं गहियउ ताइँ तुरंतियाएँ पुणु कियउ जिणेसरभत्तियाएँ ।

घत्ता—तहो वयहो फलेण वि दुद्धरइँ थोलिंगु हणेविणु मणहरिय ।
सण्णासु करेविणु पुणु मुइय सा तुरिउ सग्गु[1] खणे अणुसरिय ॥२२॥ 10

२३

Karakaṇḍa transfers the kingdom to Vasupāla and retires for austerities.

ताव त्तहिँ करकंडहो णिवासु त सुणिवि पवड्ढिउ दुक्खु तासु ।
जिणचरणलग्गु दुक्खाउ भीउ ससारहो उवरि विरत्तु थीउ ।
दुहजम्मणमरणपरपराएँ चिरु कवलिउ हउँ दुक्कियघराएँ ।
ता भणिउ भडारउ करुणभाउ जिणपडिमहो लग्गउ मज्झु पाउ ।
तहो दोसहो महो पच्छित्तु देहि इउ दुरिउ खणद्धेँ खयहो णेहि । 5
मोक्खि भडारा तउ करेमि कोहाइमहाभड जह हरेमि ।
पडिवण्णउ मुणिणा करुणएण वसुपालहो देविणु रज्जु तेण ।
ससारमहादुहखिण्णएण तवयरणु लयउ करकण्डएण ।
उप्पाडिय कुतल कुडिलवंत णं कम्मभुवंगम सलवलंत ।
तिणसमउ गणिवि अंतेउराइँ परिहरियइँ अगहो अवराइँ । 10

घत्ता—जा तेण वि लइयउ तवचरणु सामंतमतिमहि परिहरिवि ।
ता पुरवरि अक्खिय वत्त खणे दुहभरियइँ केण वि पइसरिवि ॥२३॥

---

२ J अह ३ J अहु

२२. १ N खग्गि

उस व्याघ्रीको अर्पित कर दिया। उसके दर्शनमात्रसे सब लोग भाग उठे। ब्राह्मणने राजासे कहा—"हे देव, इसे आपका मन्त्री दुहेगा।" तब मन्त्रीने भयभीत होकर राजासे कहा—"हे राजन्, इसके दूधसे अपनेको कोई काम नहीं, इसको जाने दीजिए।" मन्त्रीने मन्त्र (षड्यन्त्र) करके पुनः तुरन्त रानीसे कहा—"हे देवि, इससे बोलता हुआ जल मँगाइए। ऐसा कीजिए जिससे जाकर, यह फिर लौटकर न आवे।" रानीने राजासे कहा—"हे राजन् सुनिए, आप बोलनेवाला जल मँगाइए।" यह सुनकर उसने द्विजेश्वरसे कहा—"इस कामको पूरा करना तुम्हारे ही कौशलसे सम्भव है।"

२२—पद्मावतीका व्रतपूर्वक स्वर्गवास

वह द्विज उस राक्षसीको जल बनाकर ले आया और राजाके आगे रखकर उसे बुलवा दिया। जल बोला—"हे नरपति, मै इस महन्त (मन्त्री) और रानी दोनों जनोंको, खा जाऊँगा।" यह सुनकर नरेन्द्रको आश्चर्य हुआ और उसने उस द्विजेश्वरसे सब बात पूछी। उसने मन्त्रीकी करतूत कह सुनायी। उसपर राजाने उस अधर्मीको निकाल भगाया। फिर राजाने उसी ब्राह्मण-को मन्त्री किया जिससे उस नगरके लोगोंको शान्ति हुई। तत्पश्चात् एक दिन वह सुन्दर ब्राह्मण तप करके स्वर्गके द्वारपर जा पहुँचा। वहाँसे वह अर्जुन होकर उत्पन्न हुआ। (मुनिराज पद्मावतीसे कहते है)—"हे पुत्रि, इस विधानका ऐसा फल होता है।" तब उस जिनेश्वरकी भक्त पद्मावतीने तुरन्त ही वह व्रत ग्रहण कर लिया और उसे पूरा किया। उस दुर्द्धरव्रतके फलसे स्त्रीलिङ्गका हनन करके वह मनोहर पद्मावती संन्यासपूर्वक मृत्युको प्राप्त हुई और क्षणमात्रमें चतुर्थ स्वर्गमें पहुँच गयी।

२३—करकण्डका वैराग्य

यहाँ जब करकण्ड राजाने यह बात सुनी तब उसे बहुत दुःख बढ़ा। वह दुःखसे भयभीत होकर, तथा ससारके ऊपर विरक्तभाव धारण कर जिनेन्द्रके चरणोंमें लग गया। उसने सोचा मैं चिरकालसे पापके घर दुःख, जन्म और मरणकी परम्पराका लक्ष्य बन रहा हूँ। फिर उसने करुण-स्वभावी भट्टारक मुनिसे कहा—"हे मुनिराज, मेरे पाँवसे जिन-प्रतिमाका स्पर्श हो गया है; उस दोषका मुझे प्रायश्चित्त दीजिए और इस पापको तुरन्त ही क्षय कीजिए। मुझे, हे भट्टारक, अनुमति दीजिए कि मैं तप करूँ, जिससे क्रोधादिक महाभटोंको पराजित कर सकूँ।" करुण मुनिने राजाको अनुमति दे दी। तब करकण्डने वसुपालको राज्य देकर व ससार रूपी महा-दुःखसे खिन्न होकर तपश्चरण ग्रहण कर लिया। उसने अपने घुँघराले केशोंको उखाड डाला, मानो सलबलाते हुए कर्मरूपी भुजगोंको उखाड फेंका हो। तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंको तृण समान गिनकर उसने अपने शरीरके वस्त्रोंका भी परिहरण कर दिया। इस प्रकार जब उसने अपने सामन्तों, मन्त्रियों तथा पृथ्वीका त्यागकर, तपश्चरण ले लिया, तब किसीने दुःखसे पूर्ण होकर व नगरीमें प्रवेश करके यह बात उसी क्षण कही।

२४

All his queens also take to religious austerities

ता उट्ठिय तुरियउ सवरेवि मयणावलि माला परिहरेवि ।
रइवेय पधाइय उरु हणंति कप्पूरकरंडउ[1] तिणु गणति ।
कुसुमावलि कुसुमइं विक्खिरंति[2] रयणावलि रयणइँ णउ धरंति ।
मणि छंडिवि चलिय अणगलेह खणे मंदेह हुय चंदलेह ।
सव्वाउ पधायउ बहुवडाउ मुणिअग्गएँ हुउ णिवलपडाउ । 5
णिउ देक्खिवि ता उवसमु गयाउ कर मउलिवि सव्वउ तहिं थियाउ ।
परिपुच्छिउ मुणिवरु देहि तिक्खु[3] वउ सामिय अम्हहँ चरहु दिक्खु[4] ।
मोक्कल्लिउ मुणिणा ताव तेहिँ वउ लइयउ वम्महु हयउ जेहिँ ।
घत्ता—तउ घोरु करेविणु दुद्धरउ सव्वाउ गयउ सुरपुरवरहो ।
करकंडु सरंतउ जिणु हियइँ विहरंतउ गउ देसतरहो ॥२४॥ 10

२५

Efficacy of Panca-kalyana-vidhana.

पुणु तेण भोयणिव्विण्णएण संसारमहण्णवखिण्णएण ।
अण्णाणु पणासइ जें थिएण मणु णिच्चलु थक्कइ जें किएण ।
बलएव णरायण णर सवम्म जें हवहिँ महाबल मणुयजम्म ।
देविंद फणिंद णरिंद राय जें कियएँ होहिँ जिण वीयराय ।
कल्लाणइँ सयलइँ जें घडति वरकेवलदसणे जें चडंति । 5
जें कामएव मणहरण होंति गुणणिहिलसमुद्दहो पारु जति ।
मलरहिउ सदंसणु जें वहति णिव्वाणविलासिणि लहु लहंति ।
दुहणरयणिवासहो जं पिहाणु जें लद्धएँ केवलु लहइ णाणु ।
[1]घत्ता—णामेण पसिद्धउ भुवणयले पणकल्लाणविहाणु णिरुत्तउ ।
केवलणाणिहिँ महरिसिहिँ सव्वविहाणहँ तिलउ पउत्तउ ॥२५॥ 10

२६

Manner of performing the Panca-kalyana

ज कियउ आसि चक्केसरेण सण्णयसिरेण ।
जिणण्हवण पंच घियदहियएहिँ पयघडसएहिँ ।
अच्छंतइँ दिणयरे करिवि तिण्णि रयणीहिँ दोण्णि ।
जयरयणकरावलितूरएहिँ महिपूरएहिँ ।
गब्भावयारु कल्लाणु तेण सुपसण्णएण । 5
कसणम्मि पक्खे भद्दवइँ मासे पडिवएँ पयासे ।
उववासिउ चारुचरित्तएण सिद्धिहे कएण ।
किय किरिया रयणिहिँ सिद्धभत्ति चारित्तभत्ति ।
तह पच्छएँ किय तें सत्थभत्ति णासियभवित्ति ।
पुणु दिण्णउ काओसग्गु चारु बिहिँ सयहिँ फारु । 10

---

२४ १ N तिणि गुणति २ D विक्खरति ३ DJN तित्थु ४ DJN दित्थु

२५. १ D का ६०वाँ पत्र यहाँसे २८ वें कडवककी ४ थी पक्ति तक पाठसहित अप्राप्य है ।

२४—राजवधुओंकी जिनदीक्षा

तब तुरन्त ही मदनावली सँभलकर, व मालाका परिहरण कर तुरन्त उठ खडी हुई। रति-वेगा कर्पूरकी पिटारीको तृण समान गिनती हुई व छाती पीटती हुई दौड पडी। कुसुमावली अपने कुसुमोंको बिखेरने लगी और रत्नावली रत्नोंका परिहार करने लगी। अनगलेखा मणियोंको छोड-कर चल पडी और चन्द्रलेखा एक क्षणमें मन्ददेह हो उठी। इस प्रकार नृपमें आसक्त वे सभी वधुएँ दौडीं और मुनिराजके आगे जा खडी हुईं। नृपको देखकर वे उपशम भावको प्राप्त हो गयीं और वे सब वहाँ हाथ मलती रह गयीं। उन्होंने भी मुनिवरसे पूछा—"हे स्वामी, हमें भी दीक्षा दीजिए। हम भी तीक्ष्ण व्रत करेंगी।" मुनिने अनुमति दे दी और कामदेवको विनष्ट करने-वाली उन सबने व्रत ले लिया। फिर घोर और दुर्द्धर तप करके वे सभी सुरलोक गयीं। इधर करकण्ड हृदयसे जिनेन्द्रका स्मरण करते हुए देशान्तरमें विहार करने लगे। ५

२५—पञ्चकल्याण व्रतका माहात्म्य

फिर भोगोंसे निर्विण्ण तथा ससाररूपी महासमुद्रसे खिन्न हुए करकण्डने वह प्रधान व्रत धारण किया, जिसके सद्भावमें अज्ञान नष्ट होता है व जिसके करनेसे मन निश्चल होता है। जिसके प्रभावसे मनुष्य जन्ममें भी बलदेव, नारायण व प्रतिनारायण-जैसे धर्मशील महाबली नर होते है। जिसके करनेसे देवेन्द्र, फणीन्द्र, नरेन्द्र, राजा व वीतराग जिनेन्द्र बनते है। जिससे समस्त कल्याण घटित होते है, और जिससे उत्तम केवलदर्शनकी प्राप्ति होती है। जिससे मनोहर कामदेव होते हैं, तथा समस्त गुणरूपी समुद्रके पार जाते है। जिससे मलरहित सम्यग्दर्शनका पालन होता है व शीघ्र ही निर्वाणरूपी विलासिनीका लाभ मिलता है। जो दु खरूप नरक-निवास-का अवरोधक है, तथा जिसके लाभसे केवलज्ञान भी प्राप्त होता है। वह व्रत भुवनतलमें निश्चय ही पञ्चकल्याण विधान नामसे प्रसिद्ध है, जिसे केवलज्ञानी महाऋषियोंने सब विधानोंका तिलक कहा है। ५ १०

२६—पञ्चकल्याणका क्रिया-विधान

इस व्रतको चक्रवर्तीने सिर झुकाकर (निम्न प्रकारसे) किया था। जिन-भगवान्का अभिषेक घृत और दधिसहित जलके सैकड़ों घडोंसे पाँच बार किया, तीन बार दिनमें और दो बार रात्रिमें। उस समय ऐसी जयध्वनि, करतलध्वनि और तूर्यध्वनि की गयी कि जिससे पृथ्वीतल भर गया। फिर सुप्रसन्न मनसे भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी प्रतिपदा को गर्भावतार कल्याणक मनाया। उस दिन सिद्धिके लिए शुद्ध चरित्रपूर्वक उपवास रखा और रात्रिमें क्रिया करके सिद्ध-भक्ति तथा चारित्र-भक्ति व तत्पश्चात् भविष्यके भवोंको नाश करनेवाली शास्त्र-भक्ति की। फिर दो-सौ जापों- ५

२४

All his queens also take to religious austerities

ता उट्ठिय वुरियउ सवरेवि मयणावलि माला परिहरेवि ।
रइवेय पधाइय उरु हणंति कप्पूरकरंडउ [1] तिणु गणति ।
कुसुमावलि कुसुमइं विक्खिरति [2] रयणावलि रयणइँ णउ धरति ।
मणि छडिवि चलिय अणगलेह खणे मंढदेह हुय चढलेह ।
सव्वाउ पधायउ वहुवडाउ मुणिअग्गएँ हुउ णिवलपडाउ । 5
णिउ देक्खिवि ता उवसमु गयाउ कर मउलिवि सव्वउ तहिं थियाउ ।
परिपुच्छिउ मुणिवरु देहि तिक्खु [3] वउ सामिय अम्हहँ चरहु दिक्खु [4] ।
मोक्कल्लिउ मुणिणा ताव तेहिँ वउ लइयउ वम्महु हयउ जेहिँ ।
घत्ता—तउ घोरु करेविणु दुद्धरउ सव्वाउ गयउ सुरपुरवरहो ।
करकडु सरतउ जिणु हियइँ विहरतउ गउ देसतरहो ॥२४॥ 10

२५

Efficacy of Panca-kalyāna-vidhāna.

पुणु तेण भोयणिव्विण्णएण ससारमहण्णवखिण्णएण ।
अण्णाणु पणासइ जेँ थिएण मणु णिच्चलु थक्कइ जेँ किएण ।
वलएव णरायण णर सधम्म जेँ हवहिँ महावल मणुयजम्म ।
देविंद फणिंद णरिंद राय जेँ कियएँ होहिँ जिण वीयराय ।
कल्लाणइँ सयलइँ जेँ घडति वरकेवलदसणे जेँ चडंति । 5
जेँ कामएव मणहरण होंति गुणणिहिलसमुद्दहो पारु जति ।
मलरहिउ सदसणु जेँ वहंति णिव्वाणविलासिणि लहु लहति ।
दुहणरयणिवासहो ज पिहाणु जेँ लद्धएँ केवलु लहइ णाणु ।
[1] घत्ता—णामेण पसिद्धउ भुवणयले पणकल्लाणविहाणु णिरुत्तउ ।
केवलणाणिहिँ महरिसिहिँ सव्वविहाणहँ तिलउ पउत्तउ ॥२५॥ 10

२६

Manner of performing the Panca-kalyana

ज कियउ आसि चक्केसरेण सण्णयसिरेण ।
जिणण्हवण पच घियदहियएहिँ पयघडसएहिँ ।
अच्छतइँ दिणयरे करिवि तिण्णि रयणीहिँ दोण्णि ।
जयरयणकरावलितूरएहिँ महिपूरएहिँ ।
गब्भावयारु कल्लाणु तेण सुपसण्णएण । 5
कसणम्मि पक्खे भद्दवइँ मासे पडिवएँ पयासे ।
उववासिउ चारुचरित्तएण सिद्धिहे कएण ।
किय किरिया रयणिहिँ सिद्धभत्ति चारित्तभत्ति ।
तह पच्छएँ किय तेँ सत्थभत्ति णासियभवित्ति ।
पुणु दिण्णउ काओसग्गु चारु विहिँ सयहिँ फारु । 10

---

२४ १ N तिणि गुणति २ D विक्खरति ३ DJN तित्थु ४ DJN दित्थु
२५ १ D का ६०वाँ पत्र यहाँसे २८ वें कडवकको ४ थी पक्ति तक पाठसहित अप्राप्य है ।

२४—राजवधुओंकी जिनदीक्षा

तब तुरन्त ही मदनावली सँभलकर, व मालाका परिहरण कर तुरन्त उठ खड़ी हुई। रति-वेगा कर्पूरकी पिटारीको तृण समान गिनती हुई व छाती पीटती हुई दौड़ पड़ी। कुसुमावली अपने कुसुमोंको बिखेरने लगी और रत्नावली रत्नोंका परिहार करने लगी। अनंगलेखा मणियोंको छोड़-कर चल पड़ी और चन्द्रलेखा एक क्षणमें मन्ददेह हो उठी। इस प्रकार नृपमें आसक्त वे सभी वधुएँ दौड़ीं और मुनिराजके आगे जा खड़ी हुईं। नृपको देखकर वे उपशम भावको प्राप्त हो ५ गयीं और वे सब वहाँ हाथ मलती रह गयीं। उन्होंने भी मुनिवरसे पूछा—"हे स्वामी, हमें भी दीक्षा दीजिए। हम भी तीक्ष्ण व्रत करेंगी।" मुनिने अनुमति दे दी और कामदेवको विनष्ट करने-वाली उन सबने व्रत ले लिया। फिर घोर और दुर्द्धर तप करके वे सभी सुरलोक गयीं। इधर करकण्ड हृदयसे जिनेन्द्रका स्मरण करते हुए देशान्तरमें विहार करने लगे।

२५—पञ्चकल्याण व्रतका माहात्म्य

फिर भोगोंसे निर्विण्ण तथा संसाररूपी महासमुद्रसे खिन्न हुए करकण्डने वह प्रधान व्रत धारण किया, जिसके सद्भावमें अज्ञान नष्ट होता है व जिसके करनेसे मन निश्चल होता है। जिसके प्रभावसे मनुष्य जन्ममें भी बलदेव, नारायण व प्रतिनारायण-जैसे धर्मशील महाबली नर होते हैं। जिसके करनेसे देवेन्द्र, फणीन्द्र, नरेन्द्र, राजा व वीतराग जिनेन्द्र बनते हैं। जिससे समस्त कल्याण घटित होते हैं, और जिससे उत्तम केवलदर्शनकी प्राप्ति होती है। जिससे मनोहर ५ कामदेव होते हैं, तथा समस्त गुणरूपी समुद्रके पार जाते हैं। जिससे मलरहित सम्यग्दर्शनका पालन होता है व शीघ्र ही निर्वाणरूपी विलासिनीका लाभ मिलता है। जो दुःखरूप नरक-निवास-का अवरोधक है, तथा जिसके लाभसे केवलज्ञान भी प्राप्त होता है। वह व्रत भुवनतलमें निश्चय ही पञ्चकल्याण विधान नामसे प्रसिद्ध है, जिसे केवलज्ञानी महाऋषियोंने सब विधानोंका तिलक कहा है। १०

२६—पञ्चकल्याणका क्रिया-विधान

इस व्रतको चक्रवर्तीने सिर झुकाकर (निम्न प्रकारसे) किया था। जिन-भगवान्‌का अभिषेक घृत और दधिसहित जलके सैकड़ों घड़ोंसे पाँच बार किया, तीन बार दिनमें और दो बार रात्रिमें। उस समय ऐसी जयध्वनि, करतलध्वनि और तूर्यध्वनि की गयी कि जिससे पृथ्वीतल भर गया। फिर सुप्रसन्न मनसे भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी प्रतिपदा को गर्भावतार कल्याणक मनाया। उस दिन सिद्धिके लिए शुद्ध चरित्रपूर्वक उपवास रखा और रात्रिमें क्रिया करके सिद्ध-भक्ति तथा ५ चारित्र-भक्ति व तत्पश्चात् भविष्यके भवोंको नाश करनेवाली शास्त्र-भक्ति की। फिर दो-सौ जापों-

तह पंचमि दिणि जम्मावयारु वउ कियउ सारु ।
पुव्वुत्तिय किरिया मणहरीय किय गुणभरीय ।
उववासु करेविणु अट्ठमीहिँ दुहणिट्ठवीहिँ ।
णिक्खवण जोयभत्तीसमेय किय किरिय सेय ।
पुणु दहमिहिँ किरिया केवलीय सा तेण कीय । 15
पुव्वुत्तिय सुयभत्तिएँ समाणु सुहसयलठाणु ।
चउद्दसि उववासिवि आयरेण गुणसायरेण ।
विउसग्गहि अट्ठहिँ विप्फुरति गुणगण धरति ।
पचमकल्लाणहो अणुसरीय सा किय किरीय ।
अंतिमउ जाउ किउ विहुसएहिँ अट्ठुत्तरेहि ।

घत्ता—त तेण वि कीयउ वयतिलउ हियएँ वहंतइँ परमरसु ।
जो अवरु वि कीरइ णिउणु जणु सो महिहिँ भमाडइ णिययजसु ॥२६॥

२७

Karakanda attains the highest heaven

तउ घोरु करेविणु सो गुणालु णाणातरुमूलहिँ किउ तियालु ।
तोडेविणु माया माणु मोहु णीसारिउ दूरहो तेण लोहु ।
पचिंदियज ता सवरेवि मणवयणसरीरइँ तणु करेवि ।
पालेविणु सजमु दुविहु सो वि परमप्पउ हियवएँ परिकलेवि ।
झाणाणले जालिवि कम्मरुक्खु सिविणे वि ण दीसइ जित्थु दुक्खु । 5
तिणणिवहसमाणइँ कंचणाइँ सम भाविवि वासी चदणाइँ ।
परिहरियइँ कामुक्कोयणाइँ णासग्गे णिवेसिवि लोयणाइँ ।
णिज्झुंजिवि अप्पउ परमणाणि कलरहियएँ णिम्मलणहसमाणि ।

घत्ता—णियरूउ लहेविणु सो णियइ फेडिवि कम्मणिबंधणइ ।
सव्वत्थसिद्धि सपत्तु खणे कणयामरमुणिवरवयफलइ ॥२७॥ 10

२८

Author's eulogy

चिरु दियवरवसुप्पण्णएण चदारिसिगोत्ते विमलएण ।
वइरायइँ हुयइँ दियंबरेण सुपसिद्धणामकणयामरेण ।
बुहमगलएवहो सीसएण उप्पाइयजणमणतोसएण ।
आसाइणयरि[1] संपत्तएण जिणचरणसरोरुहभत्तएण
अच्छतइँ तहिँ मइँ चरिउ एहु धर पयडिउ भवियणविणउ णेहु । 5
मइँ सत्थविहीणइँ भणिउ किं पि सोहेविणु पयडउ विबुहु त पि ।
परकज्जकरणउज्जुयमणाहँ अप्पाणउ पयडिउ सज्जणाहँ ।
कर जोडिवि मग्गिउ इउ करंतु महो दीणहो ते सयलु वि[2] खमंतु ।

घत्ता—जो पढइ सुणइ मणि चिंतवइ जणवएं पयडइ इउ चरिउ ।
सो णरु भुवणहो मडणउ लहइ सकित्तणु गुणभरिउ ॥२८॥ 10

---

२८ १ SJ आसाइय २ N का पाठ यहाँ समाप्त होता है, क्योंकि उसका अगला ८८वाँ पत्र अप्राप्य है ।

सहित शुद्ध व उत्तम कायोत्सर्ग किया। तत्पश्चात् पञ्चमीके दिन सारभूत जन्मावतार व्रत किया। उस दिन भी पूर्वोक्त गुणोंसे भरी हुई मनोहर क्रिया की। फिर दु:ख-विनाशी अष्टमीको उपवास करके योगभक्ति सहित श्रेयस्कर निष्क्रमण (तप) कल्याणक क्रिया की। फिर उसने दशमीके दिन केवलज्ञान कल्याणक क्रिया की, जिसमें पूर्वोक्त क्रियाके अतिरिक्त समस्त सुखोंके स्थानरूप १० श्रुतभक्ति भी की। फिर चतुर्दशीके दिन उस गुणसागरने आदरपूर्वक उपवास करके आठ व्युत्सर्गोंसे स्फुरायमान, गुणगणोंका धारक, पंचम निर्वाण कल्याणक क्रिया की तथा दो-सौ आठ बार अन्तिम जाप किया। इसी प्रकार करकण्डने भी हृदयमें परम आनन्द मनाते हुए उस श्रेष्ठ व्रतको किया। और भी जो कोई निपुण जन इस व्रतको करता है वह पृथ्वी-भरमें अपना यश फैलाता है।

२७—करकण्डका तप और ध्यान एवं सर्वार्थसिद्धि-गमन

करकण्डने घोर व गुणालय व्रत किया। उसने नाना वृक्षोंके मूलमें त्रिकाल तप किया। उसने माया, मान, मोह व लोभको तोडकर दूर निकाल फेंका। फिर उसने चलायमान पाँचो इन्द्रियोंका संवरण करके, मन, वचन और कायको क्षीण करके, दोनों प्रकार संयम पालते हुए, हृदयमें परमात्म-ध्यान करते हुए, कर्मरूपी वृक्षको ध्यानाग्निमें ऐसा जला दिया कि जिससे स्वप्नमें भी दु:खका दर्शन न हो। उसने कांचनको तृणसमूह सदृश समझा एवं कीचड़ और चन्दनको ५ एक समान गिना। उसने कामोद्दीपनका परिहार किया और नेत्रोंको नासाग्रपर निवेशित करके, निर्मल आकाशके सदृश मलरहित परमज्ञानमें अपनेको योजित करके, अपना आत्मस्वरूप प्राप्तकर, एवं कर्मबन्धनोंको काटकर, कनकामर मुनिवर-द्वारा उपदिष्ट व्रतके फलसे वह क्षणमात्रमें सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुआ।

२८—कविका आत्म निवेदन

पहले द्विजवर (ब्राह्मण) वंशमें उत्पन्न, विमल चन्द्रर्षि गोत्री, वैराग्यके कारण दिगम्बर हुए, सुप्रसिद्ध नामधारी कनकामर, बुधमंगलदेवके शिष्य, लोगोंके मनको सन्तोषदायक, जिनेन्द्रके चरणकमलोंके भक्त, मैने आसाई नगरीमें पहुँचकर, वहाँ रहते हुए भव्यजनोंके विनयपूर्वक व स्नेह-वश इस चरित्रको धरातलपर प्रकट किया। मुझ शास्त्रविहीनने जो कुछ कहा है, उसे विद्वान् शोधकर प्रकट करें। मैने तो परोपकारमें उद्यत-मन सज्जनोंको आत्मभाव प्रकट किया है और ऐसा करते हुए मैंने हाथ जोडकर माँगा है कि वे मुझ दीनके समस्त दोषोंको क्षमा करें। जो कोई इस ५ चरित्रको पढेगा, सुनेगा, मनमें चिन्तन करेगा अथवा जनपदमें प्रकट करेगा, वह नर भुवनका मण्डन होता हुआ गुणोंसे भरा आत्मकीर्तन प्राप्त करेगा।

२९

The author eulogizes his patron

जो णवजोव्वणे दिवसहिँ चडियउ अमरविमाणहो ण सुरु पडियउ ।
कणयवण्णु अइमणहरगत्तउ जसु विजवालु णराहिउ रत्तउ ।
धम्ममहातरु सिंचिय अप्पुणु जो विजवालहो णं सुहदप्पणु ।
जो अरि णिहणइ दुस्सह लीलइँ जसु मणु रंजिउ कुंजरकीलइँ ।
बंधवइट्ठमित्तजणरोहणु [1]णिवभूवालहो जो मणमोहणु । 5
दीणाणाहहो जो दुहभजणु कण्णणरिंदहो आसयरंजणु ।
जो बोलंतउ णिवसह खोहइ[2] जो ववहारइँ णरवइ मोहइ ।
जो गुरुसगरि अइसयधीरउ जो जणपयडु ण कायरहीरउ ।
जो चामीयरकंकणवरिसणु जो वदीयणु सहलउ करिसणु ।
जो जिणपायसरोयहँ महुयरु जो सव्वंगु वि णयणहँ सुदरु । 10
जो कामिणिहिँ मणम्मि ण मुच्चइ जो जणसीलतरंगिणि उच्चइ ।
किंत्ति भमंतिय कह व ण थक्कइ जसु गुण लिंती सरसइ सकइ ।
तहो सुय आहुल रल्हो राहुल मुणिकणयामरपयउव्वाहुल ।

घत्ता—तहो अणुराएँ इउ चरिउ मइँ जणवइँ पयडिउ मणहरउ ।
तेँ बंधवपुत्तकलत्तसहु चिरु णंदहु जा रविससि हरइं ॥२९॥ 15

इय करकंडमहारायचरिए मुणिकणयामरविरइए भव्वयणकण्णावयसे पचकल्लाणविहाणकप्पतरु-
फलसपत्ते करकंडसव्वत्थसिद्धिलाहो णाम दहमो परिच्छेउ समत्तो ।

॥ संधि ॥ १० ॥

---

२९ १ J णिय. २ D णिव सखोहइ.

२६—कविके प्रोत्साहक

जो दिवस बीतनेपर नवयौवनको प्राप्त हुआ, जैसे मानो अमर विमानसे सुर आ पड़ा हो। जो कनकवर्ण व अतिमनोहर-गात्र था और जिसमें विजयपाल नराधिप अनुरक्त था। जो अपने धर्मरूपी महावृक्षको सींचते हुए विजयपालका मानो मुखदर्पण था। जो दुस्सह वैरियोंका लीलामात्रसे विनाश करता था और जिसका मनोरञ्जन कुञ्जर-क्रीडासे होता था। जो बान्धवों, इष्टों व मित्रजनोंका उन्नतिकारी था और नृपभूपाल (या निजभूपाल) का मनमोहक था। जो दीन और अनाथोंका दुःखभंजक था और कर्णनरेन्द्रका हृदयरञ्जक था। जो बोलने मात्रसे राज-सभामें क्षोभ उत्पन्न करता था, एवं व्यवहारसे जो नरपतिको मोह लेता था। जो बृहत् संग्राममें अतिशय धैर्यशाली था और जो लोगोंमें प्रसिद्ध था कि वह कायर बुद्धिमें रत नहीं। जो सुवर्ण और धान्यकी वर्षा करनेवाला था (बड़ा दानी था)। जो जिनेन्द्रके चरणकमलोंका मधुकर था। जो नयनोंको सर्वांग सुन्दर दिखायी देता था। जो कामिनियोंके मनसे दूर नहीं होता था। जिसे लोग शीलतरंगिणी कहते थे। जिसकी कीर्त्ति भ्रमण करती हुई कभी थकती नहीं थी और जिसके गुणोंका वर्णन करते सरस्वती भी शंकित होती थी। उसके तीन पुत्र थे—आहुल, रल्हु और राहुल, जो मुनि कनकामरके चरणकमलोंके भ्रमर थे। उसीके अनुरागसे मैंने इस मनोहर चरित्रको जनपदमें प्रकट किया। अतएव वह अपने बान्धवों, पुत्रों व कलत्र सहित, तबतक चिरकाल आनन्द करे, जबतक सूर्य और चन्द्र स्थिर है।

इति मुनि-कनकामर-विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधानरूप कल्पतरुफल-सम्पन्न करकण्ड महाराज-चरित्रमें करकण्डका सर्वार्थसिद्धि-लाभ नामक दसवाँ परिच्छेद समाप्त।

॥ संधि १० ॥

Tr sl ti f K rak ṇḍ c riu

CHAPTER I

1 I recall to mind the feet of the most gracious *Jina*, the destroyer of Cupid, dweller of the city of salvation, the sun that removes the darkness of sin, who rests in the highest abode and is absolved from death Victory, oh God, the giver of the matchless happiness of salvation, and served by the rulers of gods, serpents and men Victory, oh seer of the other end of the ocean of knowledge, who has brought the most deserving to the path of salvation Victory, oh charm for overpowering the snake of *Karma*, the root of all incantations, the allayer of the ghost, the mind Victory, oh sole asylum of people lying in the four forms of life, and remover of the mass of miseries of the good men who are warless Victory, oh royal swan of the lake of restraint, praised by the swanlike wise men Victory, oh ample water to the fire of wrath, dispeller of darkness and holder of supreme knowledge Victory, oh dweller of the heart of eternal bliss, waited upon by a hundred *Indras*, and abode of happiness Victory, oh sun (lit -friend of the lotuses) to the lotuses in the form of the deserving, having lovable virtues, and the rich ocean of the nector of self Victory, oh God, the stainless, destroyer of the fear of worldly existence, ornament of the great mansion, the world May the desired fruit be of the man who bows to your feet or recalls them to mind

2 Bearing in mind *Saraswati* of divine speech, as well as the feet of the learned *Maṅgaladeva*, I narrate the life of king *Karakanda* pleasing to the ears of men, sweet, graceful, endowed with the gem of prosperous acts, well-known and brimmed with multitudinous excellences Though the wicked are exceedingly perverse, though the people are tasteless and sullied in their mind, though I know no grammar or metre, and am dull in crossing the ocean of scriptures, though graceful speech does in no way flow forth, though I fight shy of the learned, though I did not sit at the feet of poets and though I sullied my fame by the company of the stupid, still, whatever fruit has accrued to me by recalling to my heart *Siddhasena*, worthy *Samantabhadra*, *Akalamkadeva* the ocean of the water of scriptures, *Jayadeva*, the large-minded *Svayambhu* and the honourable *Puspadanta*, the abode of the goddess of speech, and by paying my respects to them, from that I express the theme of my heart full of interest and devoid of unpleasantness Here there is no simulation

3 In this *Jambudvipa*, the foremost of the continents, the lamp of the islands, marked by the *Jambu* tree, girt up with the surrounding brinv ocean and measuring a hundred thousand *Yojanas*, there is the vast and prosperous *Bharata* country shining with the rivers *Ganga* and *Sindhu*, the depositary of the jewels of the earth consisting of six parts and beautiful like

the mine of gems (i e the ocean) Here is the pleasant *Anga* country as if the lady earth had put on a divine apparel, where lotuses have blossomed in lakes like eyes on the face of the earth, where the divine-bodied *Yakshas* having their affection fixed on the beauty of the farmers' wives, do not move off, where fields of paddy are protected by girls by enchanting the flocks of deer with their music, where travellers rid themselves of the fatigue by feasting upon grapes and sleep happily on earth-lotuses and where the row of lotuses in the waters of canals looks extremely beautiful as if the earth were smiling In that pleasant country, full of corn and gold, there is the attractive city by name *Campa* lovely to the eyes of people, the best on the surface of the earth and abounding in all excellences

4 It is surrounded by a moat full of water like the earth looking beautiful with the ocean With lofty and white towers it is, as it were, touching the sky with hundreds of arms, where lofty Jina-temples look beautiful as if they were pure, unbroken heaps of merit, where silk-banners are shaking on every house as if white serpents were gliding in the sky, which is resplendent with the rays of five-coloured gems as if a handful of flowers had been offered by Cupid, which is beautiful with picture-houses like fascinating aerial cars of gods and which looks beautiful with streaks of saffron as if declaring itself to be the battle-field of Cupid There are red lotuses on earth as if it declares to be holding hundreds of fruits By the divine virtue of the Jina *Vasupujya*, the lustful persons were not overpowered by love There ruled king *Dhadivahana* who shattered his enemies and was an elephant to the tree of arrogance, who was endowed with fine arts and virtues, was devoted to his superiors and had crossed the ocean of learning

5 He bore the yoke of the great car of virtue and was a shelter to the helpless, the poor and the miserable By his fame the surface of the earth was whitened, by his largess all people were pleased Gods sing his virtues and the enemies do not move about being terror-stricken The goddess of speech adorns his lotus-like mouth, the goddess of wealth resides in his spacious bosom His hand stretches forth to give wealth*, but never wields the arrow for the destruction of the living Being struck with his commands the deer become maimed and do not roam about on earth He was full-faced to the good, but terrible, with knitted eyebrows, to the wicked His mind was dyed in the colour of virtue and was never, for a moment, dipped in sin His heart was deep like ocean, steady like *Meru* and broad like the sky To him his attendants were loyal being pleased by his virtues He became an ornament of the world

6 One day *Dhadivahana* made an excursion to *Kusumapura* There the king saw a beautiful girl brought up by a gardener Seeing her so attractive, the good king became stricken with love which aroused his passion Being afflicted by the heat of the fire of separation, the king inquired of a certain man "Tell me, oh friend, whose daughter she is, a veritable fruited

*There is a pun on the word 'dhanu meaning wealth or bow

branch of the tree of Cupid" The man then told the facts to the king that the beautiful person was the daughter of the gardener The gardener *Kusumadatta* was then summoned and the stoutly built man was asked hesitatingly "Is she your daughter or of somebody else, kindly tell me" He told the king, the moon on earth "My wife Kusumadattā found her in a box in the very deep current of the Ganges"

7 The very moment, the gardener, bearing the responsibility of virtue took the box and speedily showed it to the king (saying) "Oh lord, served by men, she was placed in this It is not known, sir, whose daughter the girl was" The king, who had reached the ocean of knowledge, examined it and found in it a golden finger-ring imprinted Then he read the beautiful letters "This girl is the daughter of a king, She was born the very mansion of Cupid, the daughter Padmāvatī of *Vasupala* the king of *Kausambi*, of spreading glory" Knowing this the king, who had already felt attached, instantly married her who could shake off his woe

8 Then the king, having given good wealth to the gardener and being accompanied by her who was endowed with a lustrous body, feeling satisfied, came to his palace with great rejoicings There the two lovely ones indulged in sports with satisfaction One night, the wife, in sleep, saw a monstrous, rutting elephant with its trunk raised up Getting up, she reported to the king "Look, my lord, I have seen, during night, a desirable elephant approaching" Hearing those words and considering it as an omen, the king told her its bearing "There will be a son born to you, an ornament of the family, a delight to the mind of the people and destroyer of the wicked"

9 While she lived in the company of her lord, in the course of the happy days, it so happened that an unprecedented lustre became manifest on her body The bright cheeks became pale The pearl-necklace, having its brilliance set at nought by the majesty of the breasts, no more adorned her bosom, but in turning round it made the mouths (nips) of those breasts dark like collyrium as a wicked person becomes prideless towards the best of the qualified when his head is bent down in a combat The three folds vanished in a moment with shame as if through the fear of the child Her gait became slow due to the burden of the belly, and weariness increased along with sloth and yawning Thus (the child) quickened developing these good symptoms of pregnancy over the body of the mother A pearl garland was then tastefully strung which surpassed the lustre of the sun and the moon* Seeing the queen, pre-eminent in the world, like this, the king made rejoicings At this occasion, on one bright day, a longing arose in her mind

10 Afflicted by it the resolute and sportive lady would not talk or indulge in any pastime "How should I fulfil the longing of my heart?" She fell on the ground at the very moment Seeing her, the good king inquired "what is the cause of your affliction? What ailments are there in

*The line is more significant in its applied sense i e the passage is composed in the mauktikadama metre

your body on account of which you do not make a reply, oh courageous lady ?" Then, putting up with her trouble, she made an answer to the gracious king who had satisfied the gods "What is the good of my telling it to you, oh king, why my ample body has shrunk in half a moment I have a longing, oh lord of men, which is never attainable by men In drizzling rains, dressing myself as a man and mounting on the mightiest elephant in your company, oh lord of men, I would go round the city including the principal gateway This is in my heart If it is not accomplished, then I die even now "

11 "Is it this desire that you have in your heart, oh darling" said the king smilingly, "I thought it was some cause, proceeding from me, that was giving you trouble How great have you counted it, oh charming lady, do not wear out your body in vain " Then the resolute lady says "During summer, when terrible forest-conflagrations rise up, where can a cloud be, my lord ? It is not possible, oh illustrious one " Then the king, considering it in his mind, thought of the deity *Megha-kumara* The latter came because of his long attachment, having assumed the form of a cloud When the sky became overecast by him, it began to drizzle Then the king said to the lady who was easy at heart "Look at the dark cloud, quickly put on your dress, suitable for sport, and make your heart courageous, oh madam "

12 Then the king got ready a fat, brilliant elephant, and having ordered trumpets to be blown and auspicious songs to be sung and having decorated it and presented it before his wife, the gracious king got her mounted on its back The lord of men, in company of her, shone forth on it as if he was the lord of the gods Then sweet wind, blended with sandal, began to blow and the mass of clouds gently sent forth a spray of water Then the memory came and the *Vindhyas* flashed forth in its mind, so the vicious elephant, excited at heart, ran off to Kalinjara. People ran after it but it could not be overtaken and it passed out of the town

13 When the elephant was flying, heading for the forest, the queen, being terrified at, said to her husband—"My lord, oh lord, get down, do not die for my sake In your survival the kingdom will survive, in your presence righteous deeds will prevail, in your life all people will live, in your existence the pleasures of life will exist Return to the city, oh king, let the elephant take me away " Hearing that, the king caught hold of a tree and jumping off, came back instantly to the city with anxiety In the meanwhile the irresistible elephant took her away further The elephant, as it went on, came to a lake where it entered into deep water Then that wife of the king, resembling a heavenly damsel, jumped into the water with a trick

14 Bearing deep sorrow in heart, the highly virtuous lady, leaving the lake, went into the forest There she saw a garden with decaying trees, beast-less and sapless like salvation devoid of passion and feeling There, as she rested under a tree, the pleasure-garden blossomed up and became fruitful Then some one reported the wonderful happening to the gardener incharge, in *Dantipur* "Listen, oh gardener, to my words, an unprecedented brilliance

is visible to-day in the forest The *Bakula* the *Campaka* and the mangoes have blossomed and all creeper-bowers have become green Even the good trees that bear fruit in different seasons are bending with their crop of fruits Swarms of bees, greedy of the fragrance, are humming, as if the forest-beauty 10 is chanting pure notes Has spring arrived in that forest so that it appears so beautiful to my mind ?" Hearing that, the forest-guard went there in a moment where the spring had manifested itself Then, seeing that forest so lovely, the man was thrilled with joy for a moment and then he argued in his mind "Surely this has not blossomed through our good luck" 15

15 The forest-guard wandered through the forest, he looked for the cause of the affluence of the forest Then wind, mixed with fragrance, blew as if the richness of the forest was declaring its nature The guard went by the smell, by the way the wind was coming He saw the heavenly damsel under a tree as if the forest-deity was shining forth in all her grace He then 5 thinks "She is not an ordinary woman, of divine body, she is extra-ordinary in appearance" He then called her out addressing her as his daughter and raised her up by catching hold of the palm of her hand, "Why are you waiting here, sour at heart, oh daughter, come quick to my home" Hearing his words, delightful to the ears, the lady walked up to his house While she 10 lived in the gardener's house, *Kusumadatta* thought in her heart, "This woman, seen by him there, is extra-ordinary Is she a *Kinnari* or a *Vidyadhari* (classess of demigods) ? She is lovely to the eyes, the best of women, fair coloured like *Campaka*, and brimmed with virtues

16 The richness of her personal beauty is very splendid The sun and the moon are, as it were, moving in the form of her nails Longing for her beautiful body the plaintain tree is following her legs Thinking its trunk no good the lord of elephants has, as it were, resorted to the high peak of *Meru* The mountain of the gods (*Sumeru*) thought it to be harder and so has 5 followed the tender-bodied at her hips The ampleness of her hips is attractive as if Cupid has made it so, thinking it to be his home The depth of the navel has, as it were, been given to her by the ocean calling her his daughter, Her large, protruding breasts, with scratches, look like the frontal globes of an elephant with fresh wounds How can I describe the shapeliness of her 10 creeperlike arms accompanied by the beauty of the leaf-like hands The line of teeth is resplendent as if imitating the pomegranate seeds Not tolerating the elevation of the nose, the lip has assumed redness The pupils in the white and dark eyes look beautiful as if big bees were sitting on Ketaki leaves The well curved line of eye-brows appears like the bow-stick taken up by 15 Cupid The forehead, in its great elegance, appears like the half-moon sticking and shining there The hair, with bee-black locks, shake like darkness gathered there for fear of the face-moon If by her beauty, matching Cupid, my husband becomes perturbed in mind, then, with a quarrel, he would certainly leave me and honour her" 20

17 Thus, feeling jealous, she turned her out giving her a bad name The latter, leaving her attachment, walked out of the house the very moment

Proceeding on with great trouble, she saw the cemetery where kites were sitting on the pieces of the bodies of thieves and adulterers pierced with spikes, which was thick with the blood of the persons torn, where the 5 animals, greedy of flesh, had commenced a dance, where the bellies of beasts were split by bears with restless tongues, which was haunted by demons rapturously feasting on flesh, which was crowded with hundreds of thousands of birds sporting and hovering, and beset with multitudes of creatures being consumed in the flames of fire, where masses of hair on the heads were 10 fluttering in the air and where strips of rags, tied to each post, were shaking, which was sickening to people on account of the smell of human bodies and which at one place was overspread with skulls of the fractured In that dreadful crematory, the terminus of corporeal existence, was born to her an excellent son, like gold or god in appearance, endowed with good signs 15 and delighter of the eyes and minds of people

Here ends in the life of the great king *Karakanda* composed by Sage *Kanakamara* which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire giving tree of the five auspicious rites, the first chapter, describing the birth of Karakanda

SECTION 1

CHAPTER II

1 On the bright day the child was born, there occurred many auspicious signs as if the sun had dawned, and the faces of the directions had visbily brightened up By his birth her misery was forgotten, as if the desire-giving tree had sprung up in the forest, as if the lords of the mountains had shot forth tearing the earth, as if the full moon had risen in the sky of 5 its family No sooner did she take up the born child than she saw a *Matanga* (a man of the lowest caste) in front of her He was of a dark complexion and his eyes were red He came close to the child and took it up in his hand like a golden jar lifted up by an excellent elephant Lying in his hand it exhibited the beauty of the jewel shining on the crest of the 10 serpent-king When he started for home, taking it away, she raised a cry "Oh sinful vagabond, whence have you come to take away my son Not one calamity was crossed over when another, greater than the first, has cropped up" Then the *Khecara*, in the garb of a *Matanga*, with folded

hands, said to *Padmavati* "Do not weep, my lovely sister, listen to my account 15

2 Here in this *Bharata* country is the famous and immeasurable *Vijayardha*, the foremost of the mountains It touches the eastern and the western seas, thus looking very beautiful like the beam of a balance It is the meeting place of the *Suras*, the *Kinnaras* and the *Khecaras* established entirely by *Tara* On its southern range is a town where various travellers go about 5 in conveyances It is known by the name of *Vidyutprabha* It is prosperous and famous for its excellent qualities There was the renowned king *Vidyutprabha* profusely endowed with multitudinous lores (*Vidyas*) His wife was the good Vidyullata like *Gauri* of *Mahesa* assuming beauty as desired Of her was born a son, an abode of virtues, who became known on earth as 10 Baladeva, I am he *Hemamala* became my wife ever devoted with affection to me In her company I went through air to the southern side for amusement The *Vindhya* mountain stood before me between *Andhra* and *Kalinga*

3 Moving and jolting with jingling bells, surpassing in splendour a multitude of suns, my divine car went on through the sky till it would proceed no further Seeing it standing still, through wrath, I drew forth my long, sharp sword I stood looking in all directions for a moment, my pleasure was gone and I became dispirited in an instant When I looked downwards, I saw 5 the great sage, *Suvrata*, whose fame had grown and who was praised by people He had his eyes fixed on his nose His arm was extra-long like (the trunk of) a mighty elephant, a visible, irresistible stick for the chastisement of the senses He was unshakable like the *Meru*, pure, all-knowing and absorbed in formless, steadfast meditation Seeing him, angry as I was, oh sister, 10 I look the sword in my hand and wrathfully got up to kill him where he stood meditating

4 "He frustrated my purpose as I was going" thinking so, I disturbed him Getting angry he then pronounced a curse on me "Oh vagabond, you will no more possess your lores By that curse the lores were gone instantly I then thought in my mind, oh sister, "This sage is not ordinary, in half a moment it happens as he says" Thinking so I clung to his 5 feet (saying) "Oh holy sage, why have you destroyed my lores I am your servant, oh lord of lords, I would never leave your service even in the next birth Pacify this fire of wrath, my lord, let it not prevail in this forest of grasslike body for ever" By these words the best of the sages became pacified like the lord of serpents by the might of incantations Knowing the sage to be 10 pleased at heart, I bowed to his lotus-like feet and said, "Oh gracious sage, kindly tell me when the pleasant lores shall be mine again ?"

5 Hearing that, the best sage possessing the highest knowledge, made a divine speech in front of me—"Oh *Khecara*, of the handsome king of *Campa*, the gracious Dhadivahana, the wife *Padmavati* would be carried away by a vicious elephant She would then be found by a gardener who would instantly take her to *Dantipura* Being turned out by his wife, with a 5 quarrel, she would come here and a son of exceeding lustre would be born to

her, and you, an abode of virtues, shall bring him up He shall obtain the kingship of that extensive city and at that time the lores shall be yours again" Bearing this in mind, I have been residing at this crematory I shall keep him till he attains majority With this idea I have caught hold of your son Do not weep, make your heart easy As has been earned in the previous birth so you have to experience these days, oh highly virtuous lady !"

6 Considering what was said in his speech by the master of lores *Padmavati*, gave him her son rather painfully (saying) "You shall keep him with wise consideration" "I shall do all that you say, sister I shall bring him up graceful in all his person" Saying this to her, that *Khecara* went to his home taking the small baby with him Giving it over to his wife he spoke these words—"Take it, oh Hemamala, it is your son" She took him instantly and kept him addressing him as son In the meanwhile, Padmavati, afflicted in her mind, went at the very moment, to the town nearby Residing there, she took religious practices from an *Arjika* (a Jaina nun) who was devoted to peace Seeing there the emaciated but exalted and noble sage, *Samadhigupta* by name, she instantly took a vow by the side of the great sage, thus relieving herself of all vexations

7 Through her attachment for the son, she would frequently secure balls of molasses and sugar and send them to the house of the *Khecara* who was bringing up her son, the terror of his enemies, Seeing a big scar on his hand he gave him the name 'Karakanda', which became wellknown all over the earth He, the abode of all fine arts, was growing up day by day like the moon with its digits gradually shining forth At this juncture, there arrived the great sages *Yasobhadra* and *Virabhadra* the ocean of scriptures They were lean with the unbearable weight of penances and were accompanied by the excellent fourfold order Some of them were absorbed in meditation and were very learned, while others had their bodies covered over with a mass of dirt When they arrived at the dreadful crematory, one of them saw a miracle there A bamboo-clump had grown from the eyes on the face of a human skull He then asked "Tell me the cause of this, oh great sage, how has all this happened ?"

8 Hearing those words the matter was revealed by *Yasobhadra* to the younger ascetic "These three mighty bamboos shall become the staffs of banner, goading hook and umbrella In whose so-ever hands these bamboos would fall, he shall obtain the entire earth" This was heard by a Brahmana *Sanmati*, who was standing close to the sage At the close of the day he counselled in his own heart "The words of the sage would never go false" So, one day he got all the three bamboos cut quickly But when he was going home with them, *Karakanda* came up to him and wrested them from the Brahmana The Brahmana, through fear allowed him to have them, not being able to withstand his might But being disappointed he said "Whenever you obtain the kingdom, make me your minister, oh beautiful friend" *Karakanda* acceded to all that was said by the lovely Brahmana, and himself went home with those bamboos and reported the matter to his guardian in sweet tones

9 For Karakanda, the affection of the *Khecara* increased very much. He was taught, along with politics, grammar, logic, hundreds of dramas, poetic compositions abounding in various sentiments, Vatsayana (erotics) mathematics, the nine sentiments, the *Mantras* and all the *Tantras*, the art of winning the hearts of people and of making good machines, good use of swords, disks, spears and daggers, the science of bows, missiles and strong javelins, wrestling, acrobatic feats, jumping, turning and rolling of the body, and the cutting of various kinds of fruits, flowers and leaves. He was made to know all these pleasent arts and he also acquired dexterity in playing upon drums, tabors, lutes and flutes. Thus, every art that was renowned in the world was taught by the *Khecara* to him who had a good liking. When any man is vexed by desire, tell me what wonders he may not perform.

10 Feeling very grateful at heart, the *Khecara* then says to Karakanda "Make company with a master of *Vidyas*. Go to his house and follow him up regularly." Karakanda says "what is, oh father, the use of that master of *Vidyas*?" Then the *Khecara* says "Listen, oh innocent-minded. There were two friends living in the city of *Kanyakubja*, a merchant and a Brahmana, endowed with *Vidya*. The good men went to the *Coda* country desirous of wealth. Having acquired some money, they turned back for home. On the way, they met the father-in-law of the Brahmana. The father-in-law saw them and immediately took them home. Being honoured as they lived there, a sounding-drum went round. Hearing the harsh, unmusical drum they instantly inquired of the father-in-law "For what purpose is this being beaten so harshly in public, oh maternal uncle?"

11 He said "Here, the beautiful daughter of the king has forcibly been eloped by a *Rakshasa*. No body can rescue the poor one, companies of people and kings have been overcome by the *Rakshasa*. He lives in a deserted town beyond the river. No one can breathe there for his fear, (The king) is looking for a new-comer preeminent in *Vidya*, for this purpose this (proclamation) goes round daily." Hearing those words, with smiling faces, they held up the drum as it was being sounded. Immediately, the drum-man returned and reported to the king— "Two men have arrived here, my lord, like pure praiseworthy heaps of virtue. They assert, Your Majesty, with confidence in their mind "We would do all that the king would say." Then the king went and brought the two persons to his palace with honour, and immediately despatched them to the vicinity of that invincible *Rakshasa*.

12 They both went to the abode of the *Rakshasa* whom no body else would approach. There they saw the maiden with large breasts, a river of beauty, of golden hue. Then they saw the tawny-haired *Rakshasa*. By the repetition of the incantations he lost his malignity. Incapable of bearing the power of the incantations he said "I, *Pavana-vega*, am your servant." Knowing the *Rakshasa* to be subdued, they went into the

presence of the king along with the maiden Accompanied by the *Rakshasa* and the maiden they were seen by people coming The people said, "Today peace has been establishgd here when such conjurers arrived " "Seeing them, the king became pleased at heart and gave them ample wealth Addressing the maid as sister, they restored her to the king and then they, with stout and long arms like elephant-trunks, went joyfully to their own town "

13 "Whoever made company with a man of *Vidyas* obtains happiness and wealth Therefore, the company of the man of *Vidyas* should be courted so that it may be unbreakable Do not make friends with a man devoid of learning, for, he would change his mind in time of calamity " What fault has been seen in a man devoid of *Vidya*, the *Khecara*, with pleasure, narrated thus—

"Two friends, belonging to the town of *Benares*, went to another country, ignorant as they were Having acquired wealth, while returning, they encountered a *Rakshasa* on their way Seeing him they fled away terror-stricken like the sinful, swerved from austerities The fools did not know anything in their mind They were overtaken by him as they fled Then, being arrested, the two friends were released by another traveller after an open fight with him Thus, they subsisted by the help of a stranger "

14 "Similarly, never form company with the mean, oh courageous handsome hero Whoever fell in the company of the mean, reaped a woeful doom Listen, I tell you the story of the mean, know this moral in your heart, oh lucky one There was a merchant by name *Sudarsana* He was casually told by a mean king "If you can recite a verse without joining the lips, I would grant you lands without encumbrance " Then the merchant recited a verse of some beauty without allowing his lips to touch each othgr "The earth, set ablaze in the whole forest by the flames of fire of the enemies' might, has been restored to pacification by being sprinkled over with a current of water in the form of the sharp edge of the sword " The king, being pleased, gave lands to the good merchant, though with reluctance Then one day, the good merchant, the ocean of virtues, satisfied the miserables (by his largess) But then the crooked merchant formed connections with a slave girl who soon became pregnant and entertained all sorts of longings

15 Then, instantly, she told the merchant "You must carry out this one word of mine Give me the flesh of this peacock of the king so that I might live without doubt " Then the foremost of the merchants went out and found the place of the peacock, in front of him He hid the peacock and going to her house, gave her another creature She instantly blessed the merchant and ate it calling it a peacock Then, not finding the peacock in the whole town the king ordered a proclamation with a drum Hearing that, the slave girl narrated the whole account of the peacock to the king The king became very angry with the merchant and handed him over to the executioners for slaying Thus, having experienced the fruit of the association with the mean, the merchant, through fear, quickly went home and instantly restored to the mean king that trifle of a peacock

16 Now listen, oh son, to the story of the noble by which wonderful prosperity is achieved Being aware in mind of the company of the mean, one man courted the company of a noble man In the town of Benares, there was a delightful king, Arabinda by name Being content at heart, he once went out ahunting He fell into a waterless tract and became afflicted with hunger and thirst A merchant, however, gave him three fruits very represhing (as if) made of nector The king became pleased with the merchant and showed his favour to him on reaching home Realising his great service, he appointed him to the office of ministership Both of them lived there with affection, lustrous like the sun and the moon, the virtuous abode of numerous gems of good qualities like ocean in depth

17 Then, one day, the great minister, abducting the son of the king and removing his ornaments, went to the delightful house of a harlot There the merchant presented those invaluable ornaments, pleasant to the eyes of people, to her He then told the harlot whose face was like moon at the advent of the autumn 'I have killed the son of the king' All this he told her whose love was unshakable Hearing that, she said affectionately, 'Do not make this known to any body' In the meanwhile, not finding his son, the king ordered a proclamation with the beating of a drum in the town—"Whoever would give information about the king's son, would be rewarded lands along with money" Then some rash fellow instantly said in the presence of the king 'I have noticed your son, oh lord, he has been murdered by the new minister'

18 Hearing those words the lord of the earth, possessing shapely arms, became pleased with the minister (and said) 'I have paid off the debt of one fruit out of the three to the noble-minded, I should be excused for the other two that remain still outstanding' In a moment, the lord of the earth became pleased Having known the affection of the king, the minister restored the son who had a heavenly body, (saying) 'You are a great friend of mine, oh lord of men, I had simply tested your mind, my lord' Hearing the words of the minister, the king conferred great favour upon him Whichever person keeps company of the great, obtains fortune after the desire of his heart I have narrated to you this story of the noble, bear it in mind, my son, as a channel of virtues" Karakanda was taught by the *Khecara* all the arts by the wisdom of his heart "Whoever person would conduct according to this moral, would certainly rule over the entire globe"

19 Hearing that speech of the *Khecara, Karakanda* would not leave his side When out of home for play, *Karakanda* would not leave that crematory While he was amusing playfully like this, one day, in *Dantipura*, there occurred the death of the king who had shattered the enemies that were roaming about, who had destroyed the forest-fire of immorality, passion and fear, and whose orders people dared not transgress Cries of woe arose all over the great town, a very great calamity befell the people who said,

"There is no prince who, being pre-eminent, might rule here" At this time an idea flashed forth in the mind of the minister and he looked at a great elephant with beautiful tusks Having worshipped the rutting elephant, the wise one entrusted to him a brimful jar having presumed in his mind that he would empty it over one who may be destined to rule 10

20 The best of the twice-born recited the *Samas* with proper accent and groups of gods were assembled by the excellent (minister) The drum resounded along with the conch, the tabor, the *Kahala* and the trumpet that filled the earth The mighty elephant started from the palace like a paramour from the house of a harlot, shaking its trunk and moving its ears, with eyes rolling, and white in appearance Holding the brimful jar with its trunk, like the moon following up the peak of a mountain, passing from house to house in the town and still maintaining all its dignity, the elephant, having wandered through the town sportively, went far outside in its wanderings In the midst of the crematory the elephant quickly perceived the prince, an extraordinary Cupid Bending its head, the elephant emptied the beautiful jar over his head Observing that, the people beat their foreheads and raised loud cries of sorrow (saying) "What has this elephant done ? It has placed the jar on a low born " 5 10

21 So thinking, the feudatories and the ministers would neither walk forward nor look up While they stood thus perplexed in mind, the *Vidyas* that had vanished by the curse of the sage, returned to the *Khecara* at the very moment Then, thrilled with joy, the gracious *Khecara* told the people "He is not the son of a *Matanga*, he is the son of a king and has a splendid body Do not hesitate because he would go and move in the first rank, you put your hand on the forepart of the elephant's trunk " Then he gave in to the hand of Karakanda the *Vidya* which people look for in battle Having done all this, the *Khecara*, by the power of his *Vidyas*, went to his home by the aerial path The proclamation of victory spread through the sky, the immortals made celebrations, and men, like gold and gods in appearance, placed Karakanda on the throne 5 10

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the second chapter, describing the acquisition of the throne by Karakanda

SECTION II

CHAPTER III

1 Then the new king was thus addressed by the ministers "Get, oh gracious one, on the back of the elephant, come quick and bear the burden of the kingdom of Dantipur" Then Karakanda got on the mighty elephant whose temples were wet with an incessant flow of ichor He exhibited a very charming grace, as if the lord of gods was adorning the back of *Airavata* He proceeded alongwith the prominent persons, being fanned by the moving chowries, being entertained with music by excellent women who were mistresses of sport, elegance and pleasure, being eulogised by bards who threw in to shade the notes of a cuckoo, being attended by the citizens who had set their minds upon him on account of their attachment for noble qualities and being praised by the well-disposed who had bent their foot-steps for the world to come Being served by other people also, the charming hero went into the town along with all the persons That repository of virtues was seen entering by the women of the city, like the son of Dasharatha, the store-house of lustre, by the heavenly women in *Ayodhya*

2 There in the town, the beautiful women that would overpower the minds of sages absorbed in meditation, felt perturbed One woman pushed on speedily feeling agitated, while another stood at the door being dumbfounded Another ran being greedy of the affection of the new king, unmindful of her dress got loose Some one applied collyrium profusely to her lips and lac paste to her eyes One followed the manner of the dressless and another took her baby upside down on her hips One young woman put the anklet on her wrist and bore the garland on her waist leaving the head Another simple woman would not let off a cat thinking it to be her baby Yet another ran up full of the new king in her mind, but fell on the ground overtaken by the illusion of love, while one, rich in pride but overladen with love, with hard and ample breasts, fawn-eyed, bright and lustrous like heated gold, walked straight towards Karakanda

3 With his heart delighted by the acquisition of the new kingdom, Karakanda, entering the town riding on an elephant, arrived sportively at the palace He saw the high, royal mansion, very attractive like a Himalayan peak With arches of pearl-strings, it was, as if, smiling with its close, bright teeth It was jingling with small bells and flourishing with banners as if a lovely woman was dancing with the strokes of her palms It was inlaid with gold, gems and jewels as if a celestial car had dropped from heaven There the pure-hearted new king entered being preceded by the elder people pure in mind Then came out a woman with an auspicious golden jar in her hand The auspicious rites were performed with excellent lamps and he was hailed with words of victory by hundreds of women With his coronation performed

with golden jars, he was made to enter the palace He, the mine of all virtues and store of good character, endowed with the feeling of modesty, lived in the town and carried on the government, attended by the feudatories and ministers 15

4 While ruling there, he ordered to be brought immediately those bamboos which were kept on account of the prophecy, and they were turned in to the staffs of his banner, goading hook and umbrella He then called the good Brahmana who was waiting there on account of hope, and made him his minister Then, one day, while roaming through the town for sport, 5 Karakanda saw a man of graceful features who had arrived, in his wanderings, into a foreign country He also saw in his hand a wonderful portrait which attracted the minds of the people King Karakanda asked him "Give me the portrait, I shall see it with all my heart" He handed over to the king the portrait to which people had been attracted through affection Karakanda 10 saw the grand portrait five-coloured and shining with manifold qualities There he saw the seemly beauty painted as if the arrow of Cupid was lodged into his heart Hot and long sighs proceeded from his lotus-like face and he felt a burning fever that made him uneasy Karakanda saw the most excellent portrait and stood bewildered for a moment By his horripilation he told the 15 man about the separation, by it the new king closed his eyes with a depressed heart

5 The man, holding the portrait, knew the heart of the king "Probably, he will be the husband of the maid" Thinking so, he said, "Oh brother, give me my portrait so that I may go, oh king" But the latter, feeling excited, would not leave it With sighs, the king then said, "My friend, tell me confidently for what purpose you are wandering about with this 5 portrait ?" Hearing that, he, obeying the words, gave to the king an account of the portrait "There is, my lord, the *Saurastra* country which fully imitates the world of the gods There is the town called *Girinagara* pleasant to the eyes of the *Suras*, *Khecaras* and men There rules king *Ajavarma*, the splitter of the heads of his enemies, with his wife *Ajitangi* From the latter, the 10 attractive king got a daughter named *Madanavali*, a basket of beauty, of sweet voice, pleasant to the eyes of good men and a store-house of lustre

6 Madanavali, one day, went to the pleasure–garden in the company of her friends There she saw some *Khecaras* pleasant to the eyes and mind of men, riding on swings and singing pleasing songs about *Karakanda* to the accompaniment of a low-tuned lute Listening to the heart-winning songs, she fell on the ground, shaking her body Perplexed, unconscious, 5 emaciated in body like the digit of the moon in the dark fortnight, and trembling like a plaintain tree struck by the wind, she was brought home, along with sorrow, by her comrades She was then asked meekly by her friends agreeable in nature and removers of the mental agonies of men, "Why have you become distressed, friend, tell us, oh dear sister !" Through her affec- 10

tion for her companions, the young girl, in her simplicity, told them about the fire of separation "That song which the *Khecaras* sang with reference to *Karakanda* was heard by me My heart got excited by it and then all the four quarters became full of uneasiness

7 I have told you, friend, the circumstances, satisfy me if you can, before my life which is being consumed in the flames of separation, dies out, oh friend" ! Then with sorrow, the latter reported the matter, in brief, to the king "*Madanavali* has become lovesick by listening to the songs about Karakanda " Hearing that about the maid, the king got the portrait of the deer-eyed one painted, and handed it over to me, oh lord of men, adorned with victory and the moon in the sky of your family I then came to your town with the portrait, oh vanquisher of irresistible foes and endowed with the spirit of a warrior. Whoever becomes struck with attachment at its sight, he is going to become her husband, oh lord of men ! I have told it all to you, oh king, agree to it now Let the maid with eyes like a lotus-leaf and face like the moon, hold your palm of the hand in her tender hand "

8 Listening to the words of the man who was holding the picture, the king agreed to it all The excellent king, the moon in the sky of his family, sent suitable persons from his side On an auspicious day, well attended, they returned, bringing with them *Madanavali* The market places were decorated, arches were flung at every house and a wristlet was fastened on to him Various kinds of musical instruments were sounded and sentimental songs were sung Highly emotional dances were performed and lines of horses and elephants were drawn up The veil on the face of both the persons was opened up like the mass of affection of their hearts They were made to go round the butterfed fire, seven times, by the priests who recited the sacred formulae The bridegroom offered his hand to the bride and performed the sacred rites by his right hand A close 'union of the stars' took place, so that the affection may not be split even in the next birth The union of the hearts had taken place before hand, the formalities were gone through merely for the satisfaction of the people Thus, on an auspicious day, the courtiers performed the marriage of the two whose hearts were steeped in love The marriage of the king took place seeing which even the *Suras* and the *Khecaras* became excited and feeling discontented with their own pleasures, became envious of his fortune in their minds

9 On that occasion, his mother *Padmavati* also came hurrying to see her son King *Karakanda* saw her and bowed to her feelingly Being delighted by the marriage of her son, she instantly pronounced her blessings "Live long, my son, the lord of the earth, as long as the current of the *Jumna* and the *Ganges* lasts " With obeisance and respect, she was brought in with the words "This day is very auspicious to me " She was honoured with sweet words and was made to dress herself in bright clothes Pronouncing her blessing, she soon went out like the brilliant fame of Karakanda In the meanwhile, the gatekeeper, arousing affection in the hearts of men, came into the presence of Karakanda Placing his lotus hands on his lotus-head, the

gatekeeper said in a loud voice "The good ambassador from the king of *Campa* is waiting at the porch, oh lord !"

10 Hearing those words, Karakanda instantly ordered the gate-keeper to go quickly and bring in his presence the ambassador of the king of *Campa* Hearing the words of the king, the gate-keeper brought him in instantly Seeing him, the king honoured the ambassador with presents and a seat, (and asked) "Oh ambassador, tell me about the welfare of the king of *Campa*, all of whose dominions are well settled " The ambassador said "Happy is he, oh king, who has persons like you for friends Being ever served by lords of men, he remembers you, oh lord of lords As coolness is not separate from water, so are you to the king of *Campa*, undoubtedly Accept, oh king Karakanda, the excellent service of the lord of *Campa* Thus getting united, may you both enjoy all the pleasures and the earth

11 "Without service, oh friend, even a cubit of earth can not be obtained for enjoyment If you do not accept his service, then doom will somehow make room for itself " Hearing those words, Karakanda, becoming wrathful in his heart, and stretching his red eyes towards his forehead, as if the sun and the moon stood in the sky, (said) "Go away, you ambassador, go where your master is, do not stay here even for a moment Tell the king of *Campa*, in brief that I was quickly coming to him If he has the warrior's pride for battle, let him ofter me battle immediately " Hearing this, the ambassador went where *Dhadivahana* was (and reported) "The king of *Dantipura* has said, my lord, that he would not bow to you, but would rather fight with you on the battle field This is what the courageous one has said "

12 Hearing those words, the king of *Campa* made his preparation seriously setting his mind upon it In the meanwhile, the king of *Dantipura* caused the earth to shake along with the *Mandara* mountain The destroyer of the lives of his foes caused dust to rise up in all the ten directions by his marching The sky was covered up and the sun began to fluctuate by the hurry In wrath, he ordered a quick march He came to the region of the *Ganges* and saw the river *Ganges* as he proceeded It looked beautiful with its white and zigzag stream as if the wife of the white serpent was moving As it flowed from a distance it looked very pretty like the glory of the great mountain *Himalaya* By means of the people bathing on both its sides and offering water to the sun with their hands holding *darbha* grass and raised up, the river was, as it were, under these guises, declaring, "I am pure and go my own way, do not get angry with me, my lord !" Having observed the river, the king named *Karakanda* went to the town of his father, the abode of numerous excellences He who caused fear to the great gods and the *Khecaras* by means of the arrows discharged from his bow, besieged the town on all the four sides with his irresistible elephants, horses and commanders of men

13 When the siege was laid by the king the people of the town became immediately pertubed A certain person informed the king "Oh lord

of men who has subdued all the forces of the enemy, the very fire to the forest of the opponent's army, who has satisfied the desires of the panegyrists and good men, elephants having formidable trunks are groaning, excellent 5 horses with curved mouths are neighing, chariots are moving with a rumbling noise and fluttering with shining banners, the lustre of the swords surpasses the rays of the sun, hooked spears are quivering, lances are shining with daggers and are speadily active like wind Thus the forces of the enemy, very mighty and irresistible like lion, have made an attack on you" Hearing that, 10 the lotus-face of the lord of men came to resemble a red lotus He bit his lips, his eyes had frowning eyebrows, the fire of wrath increased and delight was at an end

14 He then got up His servants, dreadful even to the gods in battle, ran up Horses, swift like wind, and elephants, were got ready Excellent chariots moved on with rattling wheels Some rushed forth bearing lances, uttering various notes of challenge, while other excellent persons regardful of the honours received from their master and loyal to the lotus-feet 5 of the king, praiseworthy and irresistible in battle, advanced bow-in-hand and delighted at heart Some marched forth trembling with rage and others shining with drawn swords Some were thrilled with horripilation, others put on their bodies their armours Some, being steeped in the sentiment of the battle-field, went by the path pleasing to the heavenly damsels * The king 10 of *Campa* marched out of the town attended by horses, elephants and excellent chariots Tell me, by whom with formidable, mighty and stout arms, was he not followed ?

15 The trumpets were blown that filled the entire earth All musical instruments are sounding, the armies are preparing At the command, they draw up in ranks and fall upon the forces of the enemy Lances are breaking, elephants are thundering They gallop with speed, they cling to the tusks of elephants Bodies break, skulls crack, headless trunks run about 5 and rush into the enemy's lines, entrails get dislocated and drop out along with blood, bones are twisted and necks are being broken Cowardly people fled away, others fought the enemy at close quarters, while yet others, drawing up their swords, stood firmly engaged in fight

16 Then, with anger, the lord of *Campa*, riding in a chariot, rushed forth like the lord of gods He quickly went into the ranks of the enemy's forces and encountered king *Karakanda* There was then an uproar in both the armies which covered the sky with showers of arrows *Karakanda* who had long arms like the trunk of *Airavata*, through wrath, suddenly flung a 5 *sakti* (a kind of missile) at the king of *Campa* The chariot with the banner-ensign was, in a moment, shattered and then the charioteer was quickly laid low by him Angrily, the king of *Campa* discharged his arrows very quickly When the arrows were shot by the king of *Campa* the forces of *Karakanda* took to their heels in a moment *Karakanda* saw his army routed and extreme 10

* This also indicates that the metre of the *Kadavaka* is *Sragvini*,

gatekeeper said in a loud voice "The good ambassador from the king of *Campa* is waiting at the porch, oh lord !"

10 Hearing those words, Karakanda instantly ordered the gate-keeper to go quickly and bring in his presence the ambassador of the king of *Campa* Hearing the words of the king, the gate-keeper brought him in instantly Seeing him, the king honoured the ambassador with presents and a seat, (and asked) "Oh ambassador, tell me about the wel- 5 fare of the king of *Campa*, all of whose dominions are well settled " The ambassador said "Happy is he, oh king, who has persons like you for friends Being ever served by lords of men, he remembers you, oh lord of lords As coolness is not separate from water, so are you to the king of *Campa*, undoubtedly Accept, oh king Karakanda, the excellent service of 10 the lord of *Campa* Thus getting united, may you both enjoy all the pleasures and the earth

11 "Without service, oh friend, even a cubit of earth can not be obtained for enjoyment If you do not accept his service, then doom will somehow make room for itself " Hearing those words, Karakanda, becoming wrathful in his heart, and stretching his red eyes towards his forehead, as if the sun and the moon stood in the sky, (said) "Go away, you ambassador, 5 go where your master is, do not stay here even for a moment Tell the king of *Campa*, in brief that I was quickly coming to him If he has the warrior's pride for battle, let him offer me battle immediately " Hearing this, the ambassador went where *Dhadivahana* was (and reported) "The king of *Dantipura* has said, my lord, that he would not bow to you, but would rather 10 fight with you on the battle field This is what the courageous one has said "

12 Hearing those words, the king of *Campa* made his preparation seriously setting his mind upon it In the meanwhile, the king of *Dantipura* caused the earth to shake along with the *Mandara* mountain The destroyer of the lives of his foes caused dust to rise up in all the ten directions by his marching The sky was covered up and the sun began to fluctuate by the 5 hurry In wrath, he ordered a quick march He came to the region of the *Ganges* and saw the river *Ganges* as he proceeded It looked beautiful with its white and zigzag stream as if the wife of the white serpent was moving As it flowed from a distance it looked very pretty like the glory of the great mountain *Himalaya* By means of the people bathing on both its sides and 10 offering water to the sun with their hands holding *darbha* grass and raised up, the river was, as it were, under these guises, declaring, "I am pure and go my own way, do not get angry with me, my lord !" Having observed the river, the king named *Karakanda* went to the town of his father, the abode of numerous excellences He who caused fear to the great gods and the 15 *Khecaras* by means of the arrows discharged from his bow, besieged the town on all the four sides with his irresistible elephants, horses and commanders of men

13 When the siege was laid by the king the people of the town became immediately pertubed. A certain person informed the king "Oh lord

of men who has subdued all the forces of the enemy, the very fire to the forest of the opponent's army, who has satisfied the desires of the panegyrists and good men, elephants having formidable trunks are groaning, excellent horses with curved mouths are neighing, chariots are moving with a rumbling noise and fluttering with shining banners, the lustre of the swords surpasses the rays of the sun, hooked spears are quivering, lances are shining with daggers and are speadily active like wind Thus the forces of the enemy, very mighty and irresistible like lion, have made an attack on you " Hearing that, the lotus-face of the lord of men came to resemble a red lotus He bit his lips, his eyes had frowning eyebrows, the fire of wrath increased and delight was at an end

14 He then got up His servants, dreadful even to the gods in battle, ran up Horses, swift like wind, and elephants, were got ready Excellent chariots moved on with rattling wheels Some rushed forth bearing lances, uttering various notes of challenge, while other excellent persons regardful of the honours received from their master and loyal to the lotus-feet of the king, praiseworthy and irresistible in battle, advanced bow-in-hand and delighted at heart Some marched forth trembling with rage and others shining with drawn swords Some were thrilled with horripilation, others put on their bodies their armours Some, being steeped in the sentiment of the battle-field, went by the path pleasing to the heavenly damsels * The king of *Campa* marched out of the town attended by horses, elephants and excellent chariots Tell me, by whom with formidable, mighty and stout arms, was he not followed ?

15 The trumpets were blown that filled the entire earth All musical instruments are sounding, the armies are preparing At the command, they draw up in ranks and fall upon the forces of the enemy Lances are breaking, elephants are thundering They gallop with speed, they cling to the tusks of elephants Bodies break, skulls crack, headless trunks run about and rush into the enemy's lines, entrails get dislocated and drop out along with blood, bones are twisted and necks are being broken Cowardly people fled away, others fought the enemy at close quarters, while yet others, drawing up their swords, stood firmly engaged in fight

16 Then, with anger, the lord of *Campa*, riding in a chariot, rushed forth like the lord of gods He quickly went into the ranks of the enemy's forces and encountered king *Karakanda* There was then an uproar in both the armies which covered the sky with showers of arrows *Karakanda* who had long arms like the trunk of *Airavata*, through wrath, suddenly flung a *sakti* (a kind of missile) at the king of *Campa* The chariot with the banner-ensign was, in a moment, shattered and then the charioteer was quickly laid low by him Angrily, the king of *Campa* discharged his arrows very quickly When the arrows were shot by the king of *Campa* the forces of *Karakanda* took to their heels in a moment *Karakanda* saw his army routed and extreme

* This also indicates that the metre of the *Kadavaka* is *Sragvini*

anger flashed forth in his mind So, he immediately commissioned the *Vidya* which was given to him by the *Khecara*

17 Then with irresistible anger, he discharged the *Vidya* In an instant, the bold *Vidya* was seen rushing forth quickly, producing hushing and humming sounds, matching the wind in speed, acting like a demoness, touching the sky with its brilliance, crushing the temples of the elephants and shattering the chariots against one another Whoever were seen on the battle-field, fled away at her sight, Some were made to fall into a swoon while others were forced to fight Some were split with strokes and others were deprived of their lives Then the king of *Campa*, getting enraged, quickly grasped the sword in his hand and in half a moment, shook off the power and energy of the *Vidya* which was devouring hundreds of men

18 *Karakanda* saw his *Vidya* gone, and getting rageful, he took the bow in his hand He put the string on the bow seeing which people became alarmed At this time, the gods in heaven who follow virtues, became perturbed By the terrific and dreadful twang, the globe of the earth tottered and its very base (Kurma) crashed, the surface of the earth was ruffled and the biggest mountain was shaken, the abode of sharks (i e the ocean) became unsteady the god presiding over the earth *(Dharanindra)* trembled, the god of the aerial beings whirled and the king of gods was thrilled Hearing that twang of the bowstring, chariots broke, the mightiest elephants fled away, the arrogance of the king of *Campa* melted off and the *Khecaras*, being horror-striken, could not move

19 Then the hearts of the gods were rent and the enemy's forces stood dumbfounded through terror He took the shooting position, the pride of the king of *Campa* was broken, the bow was got ready in a moment and the string was bathed in the water of perspiration *Karakanda* fixed the mighty arrow to his bow and the king of *Campa* discharged another When that arrow also went fruitless, *Padmavati* arrived on the battle-field She was seen by the king and was saluted with the bending of the head from a distance "Oh, mother, mother, why have you come to this uucontrolled battle in the midst of the multitudes of warriors ?" She replied "Hold back your bow, my son, this *Dhadivahana* is your father " "Tell me, noble mother how this king, the home of virtues, is my father ?" Then she instantly told him "Listen, oh powerful lord of the earth, my son—

20 I was the wife in the home of the king of the town of *Campa*, subduing the hearts of people When you came into my womb, a calamity befell me I was taken away to the outskirts of the town of *Dantipura* by an uncontrollable elephant There you were born at the dreadful crematory I was delighted to see you " Hearing those words, king *Karakanda*, for a moment, stood bewildered Having said this to her son, she fearlessly went with quickness to her husband She was seen by the king of *Campa* like the river *Ganges* by the ocean Though he recognised her to be *Padmavati*, still,

through his good nature, he saluted her Since she bore the weight of the vow, the king praised his wife She was questioned by the king as to how she escaped from that elephant The latter told him immediately "Oh king I got free from the elephant on the bank of a lake 10

21 Close to it in the crematory was born this son, the ornament of the family He was brought up by a certain *Khecara* and I took a vow then and there through heaviness (of heart) Then the king of *Dantipura* died and he was made the king Know this who is fighting against you, to be the same, you have been vexed by the monster wrath Do not be silly, give up this tenacity, oh king, this king is your own son" Hearing those words, the king of *Campa* became pleased at heart instantly "Blessed am I who has such a son long-armed and steadfast in battle" Leaving aside his bow with the arrow dropped,t he great king went near *Karakanda* Then *Dhadivahana* advancing instantly, embraced his son as prince *Pradyumna*, the repository of lustre, was embraced by *Damodara* going to the battle field 5 10

22 *Karakanda* then addressed his father "I declared a war on you, do not mind this mischief of mine, oh lord, forgive it all, my sire" On hearing those words, the king of *Campa* felt instantly thrilled at heart He took him to the capital along with all other kings and conducted him in with celebrations That town looked so beautiful with *Karakanda* that the city of gods fought shy of it People, taking jewels, came affectionately to the palace for offering their felicitations Then the royal fillet was fastened on *Karakanda* who was a millstone to recalcitrant kings For his part, the king soon adorned his body with the beautiful ornament of penance Having practised very difficult, passion-killing austerities that had the power to break the tie of the eight *Karmas*, he, abandoning his body and cutting off the knot of the heart, became attached to the neck of the damsel salvation *Dhadivahana* of goldly and godly appearance and abode of virtues, went to the house of salvation, while *Karakanda* lived on in the town looking after the government and winning the hearts of proud women 5 10 15

Here ends in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara* which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites the third chapter, describing the arrival of Karakanda in the town of Campa

SECTION III

CHAPTER IV

1 Having consolidated all his dominions *Karakanda* questioned *Mativara* of pure intellect "Tell me your opinion, oh *Mativara*, is there any man who, being insolent, does not bend to me even now?" Then *Mativara* said "Oh lord of lords, the whole earth serves you But in the *Dravida* country there are kings who, being bold and haughty in their heart, do not bow to any one The kings of the prosperous *Cola Pandya* and *Cera* do not accept your service, oh lord!" Hearing this, the king of *Campa* instantly despatched an ambassador to them He went and told the *Cola* and other kings "Pay homage to the feet of *Karakanda*" But they rebuked the ambassador saying "We do not bend to any one except the *Jina*" He returned and told *Karakanda* "In brief, they will not serve you" Hearing those words, king *Karakanda* took a vow "If I do not place my foot upon their heads then I shall have no concern with any wordly possessions such as territories, children and the pleasures of the senses" Taking this vow, *Karakanda* immediately ordered a march in wrath The king of *Campa* marched against them Mounting an elephant he passed out of the town accompanied by the fourfold army, thus exhibiting the grace of the lord of gods"

2 As he marched, the earth was rent by the hoofs of the horses and smoky dust rose to the sky and enveloped the directions as if a veil was cast on the faces of the quarter-elephants The earth trempled, the mightiest mountains shook and the lords of gods in the sky fled away quivering Bending his way to the South, he came to *Terapura* On its southern side in the great forest, he encamped his fourfold army In a moment, the lions and the *Pulin*das were disturbed Five-coloured tents were pitched up as if the houses of gods had alightad on earth The elephant-drivers took the elephants to a watery place and the excited donkeys ran after their mates The officers of the king unfurled the banners as if the earth began to dance with her hands up While kind *Karakanda* was halting in camp there with all his mighty forces, the guileless door-keeper came in to his presence and paid his salute from a distance

3 Your Majesty, there is in *Terapura* a king who is known over the globe of the earth by the name of *Siva* He has come here to visit you, shall he come in or shall he go back?" Hearing these words of him, *Karakanda* ordered the gate-keeper "Allow admission to the king of *Tera* in half a moment, you yourself go and bring him in" The king was brought in by the gate-keeper and was honoured by *Karakanda* After doing the formalities the latter asked "You are ever happy, I hope, oh lord of men?" He replied "I am happy in as much as I have been sprinkled over by the water of your kindness" By his words the affection of *Karakanda* was roused for him He then favoured him immensely and pleased him by presents and by

speech *Siva* was then asked by *Karakanda* "My brother ! tell me, particularly about some striking wonder that you may have observed during your excursions "

4 Hearing those words, *Siva* the king of *Terapura* told *Karakanda* "My lord, to the west of this place, close by, there is a cave attractive to the eyes, which is supported by a thousand pillars Above the cave, on the great hill, like a crest-gem on the crown of its head, there is a large and beautiful ant-hill whose extent no body has found out A white elephant comes there with water and lotuses and worships it This the elephant has been doing for a long time This is all that I have to say, my good master ! Hearing this, king *Karakanda*, accompanied by *Siva*, went towards the hill That hill which was beautiful like the breast of the lady earth and which was, verily, the house of sport for gods, was seen by *Karakanda* in an instant like *Kailasa* by the emperor *Bharata*

5 Here, lions wander about having torn the frontal globes of elephants, and drop the pearls from their paws At places, lions are indulging in roars and elephants do not shed the rut Here, antelopes always graze and at places monkeys hoop At places are wandering boars with terrible tusks, offering a front even to lions Proceeding for some distance over the hill, *Karakaṇḍa* saw the cave as if *Indra* had found his celestial car King *Karakanda* entered it (saying) "Blessed is he, lucky and deceitless, who has built this cave of a thousand pillars" He, then, saw the Jina free from attachment, and began to sing a hymn with devotion "Be Victorious, oh destroyer of the four forms of existence, remover of impurities Be victorious, oh thunderbolt to the mighty mountain of pride You are my shelter, oh lord, stainless, oh sun to vanquish the darkness of ignorance "

6 Having worshipped Lord Jina, both the kings quickly mounted over the hill They looked in all directions and the kings became happy in their mind While they stood in the forest looking around, the very instant the good elephant arrived The lord of the elephants came into the lake to get lotuses, like a mountain going to the sea It moved on with the sound of its fanning ears and giving out rut flowing from the temples, having beautiful, tawny eyes, admirable by its tusks, having a prominent backbone like a stringed bow, driving away the swarms of bees and filling the faces of the directions with water from its trunk, plucking lotuses by hundreds with its trunk and bearing a string of good pearls on its head* The elephant took the lotuses, quickly filled its trunk with water and circumambulating the ant-hill he bathed it and worshipped it devoutly

7 The devout elephant went away having worshipped the ant-hill Then king *Karakanda* went to the lake He saw the lake full of water producing confidence in him as he approached it, and uttering 'come', as it were, through the chattering of the birds, holding jars of water in the form

* Here is again a reference to the *Mauktikadama* metre of the Kadavaka

his chisel by the artisan As the hard strokes fell, sparks of fire were emitted like the marks of the fire of wrath that was about to burst forth Then, from the mouth of that protuberance rushed forth a profuse and strong current of water First it came out bubbling, as if the earth was vomitting through fear 5 Coming out, it shone forth like the wife of the lord of serpents come up tearing the earth Meeting the earth, it looked beautiful like the gurgling *Ganges* Spreading about, it instantly filled with water the whole of the beautiful cave like a pool of nector with the liquid of different kinds of juice, or, as if, the essence of religion stood in the form of water, and as if the hill 10 had made its mind manifest "I am gentle and attractive to the heart and as if, getting pleased, it gave to the king the store of nector in a nut-shell

15 Seeing that, they, becoming fearful in their minds moved off from the place The king went over the mound and stayed there care-worn and depressed Like the lord of the mountains by a stroke of the thunderbolt, or the lord of gods with his army fled away, or an elephant torn by the nails of a lion, did the king stand there misery-stricken He trembled, whirled, 5 shook, constantly rubbed his hands in grief, beat his brow breathed heavily and said again and again in hoarse voice "Alas ! what have I done this, wicked and mischievous as I am ? Alas ! I shall acquire sin as fruit of this Alas ! due to what action of mine have I been so misled ?" The king stood there covering his face with his hand (and saying) 'Who was worshipped by 10 hosts of immortals, of adorable might and the home of righteousness, that same god, the most prominent in the world, alas, alas, where have I brought and abandoned through my sin ?'

16 As the king, rent by sorrow, stood there in distress, some blessed Sura arrived from the sky Abode of virtues, destroyer of sorrows, removing depression and creating interest, endowed with a crown, with heart set on *Jina* greatly lustrous, flying through the sky, beautiful in form, following up the best of the mountains, a *Bhujanga* prince alighted on earth and bowing 5 with a nod and speaking pure, perfect in all his limbs, came up there He was seen by the king as delighted in mind, delighter of the king, delighter of men He said "Oh lord of men ! give up your grief, do not leave off the undertaking through sorrow Whatever I had thought in my mind, you have done, and much more shall you do 10

17 Oh lord of men ! I have been living here for long, and am able to check this current of water If I get enraged, I would knock down the cluster of stars, break the hood of the serpent at the bottom of the earth, crush the eminent mountains and stop the gods advancing in battle Even a god cannot move about through fear of me, what to say of any man who may be perverse ? 5 I have been staying here as the guard of the image A great adverse period of time is going to come Being expected for a very long time, oh sincere hearted, you have come now, my friend I have guarded it for such a long time, good sir, sixty thousand years have come and gone You have done well, oh gracious one, that you have installed the great god in the water-cave 10

Bringing the *Jina* inlaid with jewels, you have placed him in this splendid, golden and immortal cave You have accomplished this I am now free to trip it over the globe of the earth merrily

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara* which is an ornament to the ears of the holy, and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites the fourth chapter describing the discovery of the Jina image by *Karakanda*

SECTION IV

CHAPTER V

1 *Karakanda* asked that immortal "Tell me, who caused this cave to be constructed and who made this exquisitely jewelled image which has pleased my mind ?" Hearing that, *Vayuvega*, the Naga prince, told instantly what the king had asked "In this *Jambudvipa* and *Bharat* country, there is the beautiful, measureless *Vijayardha* where *Khecaras* rejoice and elephants trumpet It has two high peaks that stretch up to the ocean Their circumference is twice twentyfive *Yojanas* Their height is twentyfive *Yojanas* At a height of ten *Yojanas*, there is the excellent Southern Range which is inhabited by the *Vidyadharas*, and seeing which even the *Suras* feel covetous 5

2 There is a town abounding in *Khecaras*, by name *Rathanupura* the circular There were two *Khecara* brothers by name *Nila* and *Mahanila* As they lived there ruling, they both were pressed by the enemies Their *Vidyas* were done away with, and they were cast out of the town This was during the period of *Tirthamkara Parsva* when the din of the *Suras*, *Khecaras* and *Kinnaras* rebounded Being sorely troubled at heart, the brothers, traversing the earth, came to *Teranagara* Staying there, they established a good kingdom and acquired all the territory One day, they heard from a sage, the sin-destroying story of *Parsva Jinendra* Hearing it charming and refreshing (lit misery-removing) they were thrilled with delight and became steadfast in religion, with compassion With concentrated mind they devoutly thought of the *Jina* 5 10

3 Out of devotion, this cave was constructed by the *Khecara* brothers They built it with a thousand pillars and made the inside so beautiful For the *Jina* images made of gems, they built this shrine with gems and jewels Constantly bathing and worshipping, they lived for a long time, following the Jina There developed, day by day, the pleasing and multifarious power of the *Khecaras* This mountain was surrounded by *Khecaras*, like the great mountain *Meru* by the excellent *Suras* Observing that beauty, the lords of the *Sura* groups stood thoroughly wonder-struck At this time, oh ye sincere minded, there arrived the great friends of Nila In the Northern Range of that *Vijayardha* there is the lovely town *Gaganatala* dear to the *Suras*, 5 10

Khecaras, and *Kinnaras,* as if the city of gods had come and stood there

4 There dwelt two *Khecara* brothers who had a deep affection for each other Pleasant like the moon, and immensely powerful like the sun, they were called *Amitavega* and *Suvega* Pure in conduct and unconquerable in battle, they had their bodies adorned by the jewel of Right Faith On one holy day, the mighty ones started for worship Advancing south wards towards *Lanka,* in the *Malaya* country they saw the great and auspicious *Pudi* mountain where the lord of gods would come for amusement They descended upon it as if the lords of gods had alighted from heaven Seeing there a temple of the twenty-four Jinas, white with lime and touching the sky, they went there to see those who had far driven away Cupid

5 With pure thoughts, the king of Lanka, born in the family of *Ravana,* renowned by the name of *Suraprbaha,* husband of *Srisena* while on a pleasure trip, one day, arrived at the *Pudi* mountain As he wandered in the Malaya country, he saw that most beautiful site, like *Bharata* on the *Kailasa* He got the twenty-four images made, out of devotion, and also the temple of the twenty-four *Jinas* the givers of happiness, bright being made of gems and jewels, and destroying sin in the minds of their devotees He who was ever adored by the *Suras,* was worshipped and meditated upon with reverence They gave pleasure to the eyes of those who looked upon them, removed the dirt of sin of those who meditated upon them, stopped in an instant the worldly cycle of existence and gave all that one might desire

6 They who had removed the great darkness of wrong belief, saw the images of the *Jinas* With body, speech and pure mind, they eulogized the excellent god, the unblemished *Jinendra* "There is not, in the three worlds, as much speech as would suffice to praise adequately the omniscient Oh Ye, who has fathomed the mystery of the three worlds, bow to you, lord of victory, unfathomable, immeasurable Bow, oh god, the great master of Cupid, bow, oh lord, formless, stainless Bow, oh passion-less destroyer of the enemy of infatuation, bow, oh lord of men who has done away with the desire for pleasures Bow, oh partless, absorbed in final beatitude, bow oh conqueror of Cupid, wrapt in meditation Bow, oh remover of *Karmas* by pure meditation in a moment, I bow, with my mind, to your feet Victory, oh *Jina* the sun of omniscience destroying utterly the darkness of wrong faith" Thus having adored, worshipped and eulogized, the *Khecaras* looked at each other

7 Seeing the images so beautiful they felt a great liking in their mind They then said 'In *Vijayardha* which has become the sporting ground of the *Suras,* we shall devoutly make images after these patterns" Thinking so, with great devotion, they seized with both hands, this image of *Parsva Jina,* made up of many jewels Lifting it up, they started off In the sky it shone forth as if the digit of the moon was moving along, as if the lightning was flashing forth They went northwards as if escaping the god of death With their devotion aroused in the *Jina* the two brothers, of muscular bodies, arrived here Leaving the jewel-made image on the excellent mountain, they, the

storehouses of virtues, who had removed the shadow of worldly fear, went in front of the cave 10

8 There, having finished their devout adoration, both of them came back to their own image Having reached there, when they attempted to take it up, the image would not move from its place, as if it was arrested by some *Khecara*, as if it had stopped there finding the place so beautiful Finding it immovable, they felt afflicted with sorrow in their mind at the moment "Out 5 of enthusiasm for the next world, alas, what have we done this, sinful as we are ? The image of the *Jina* that we removed from its place, is going to be the symptom of our falling into hell Out of the two places, not one could be secured " Pure knowledge developed in them Having made a box, they fear-stricken, put it into it having dug the ground Leaving it there, they, reduced 10 in their bodies, went hastily to the temple of a thousand summits, having adored which, they saw sage *Yasodhara* who had conquered his *mind* and was absorbed in meditation

9 Having adored him, they asked the ascetic Oh excellent sage ! listen to us, pure-minded as you are While wandering about, we obtained a *Jina* image which possessed multifold powers While proceeding with it to our own town, we placed it on this mountain-peak But when, after worshipping in the cave, we went back to fetch it, it would not move from the place What 5 shall we do ? Shall we live or shall we die, oh lord ?" Hearing that, the great sage told them "This shall be a great sacred place Your brother, in his next birth, shall obtain the Right Faith of manifold virtues " Hearing this, both the brothers, in half a moment, devoutly betook themselves to penances *Amitavega*, having multitudinous *Vidyas*, abandoning his handsome body, went 10 to heaven, having practised penances, and there became a pleasing god

10 In the mean while, the younger brother, honoured amongst people, took, for a period of twelve years, in the presence of his preceptor and in a great hurry, the famous vow of eating on alternate days Then one day, he felt very uneasy under the pressure of the twenty-two penitential hardships Being afflicted by hunger and thirst, what he did was that he thought of going to 5 another village Going there, he ate and drank water, but declared to the people that he had kept a fast In another village, the next day, he declared a fast openly to the people In this manner, he lived on for many days deceiving people by sweet words Fraudulently did *Suvega* practise penance and having died, he became an elephant in the forest Whoever observes religion with 10 hypocrisy controlling his body after the manner of a crane, he, the hoarse yelling vagabond, foolish-minded, obtains the greatest miseries

11 Then *Amitavega* who had become an immortal, dwelling in heaven, thought in his mind "Where could my younger brother be born ?" Then by clairvoyance it became known to him Out of kindness for him, he started swiftly, and in a moment came to the forest in which the elephant dwelt Assuming the garb of an ascetic he approached the elephant, and in 5 very sweet words he spoke to the elephant "Oh listen *Suvega*, you have had troubles of many kinds You practised penance with hypocrisy which has false

belief for its root By that powerful sin you have become an elephant" Hearing those words of his, the elephant came to the feet of the sage, recollecting his previous life, turning his eyes up to his head, rolling with distress and trumpetting loudly The god then knew the heart of the elephant and spoke soft words "Do not abandon the gem of Right Faith by means of which you would obtain pure knowledge "

12 Then were given to him the *Anuvratas* and the *Gunavratas* as well as the *Sikshavratas* that give happiness to people, the highly meritorious abstention from taking food in the night, and the avoidance of the five *Udumbaras* for all time The fruit of worship was also preached to the excellent elephant which was trembling on account of the dangers experienced in past lives Then he was informed about the beautiful image which they had long ago placed in the anthill Whatever was preached by the excellent *Sura*, all that was accepted by the good elephant Having so preached, the *Sura* went home, and the elephant is living here in the forest " On another day, having taken water and lotuses, as it returned to the anthill it did not see there the passionless *Jina* Having dropped the water and the lotuses, the good elephant betook himself to the Right Faith with determination, and with complete renunciation having concentrated himself upon Lord *Jina* with pure thoughts, that *Khecara*, the elephant, became a *Sura* in the third heaven

13 "Oh king, whatever you inquired of me, I have told it all to you You have done well after the wish of my heart that you renewed the cave, oh lord of men ! So now, you do this, make another cave above this cave " Having said so carefully to the king, the good *Sura* sportively went home Above the cave was built by *Karakanda* another cave, an excellent abode for *Jinavara* Above it, again, he caused to be built a small cave exceedingly beautiful and removing lust How beautiful the three caves looked ? They matched the mansions of the lord of *Suras* The king, having made those *Jina* temples and having himself worshiped the beautiful ones, being exceedingly delighted at heart, went to his camp As king *Karakanda*, the destroyer of his enemies, stood in his camp, there came an elephant with strong and stout trunk and profusely rutting, in order to drink water in that lake

14 As it stood on the bank of the lake, the smell of the army reached it Raising up its trunk and shaking its head, the elephant, turning round its face, saw the army Seeing it, the great elephant became hostile and ran up greedy of the smell of ichor, taking its trunk in its mouth, trumpetting and crushing the earth by the weight of its steps Seeing it so determined, the people made up their mind to arrest it They got up and instantly fell upon the elephant But they all fled away for fear of the strokes of the elephant Then the king ran, sword in hand, and the fighting elephant was checked As he was going to strike it with his arms, the elephant became invisible When the elephant disappeared, he became startled in his eyes for a moment The elephant disappeared under his very eyes The king

stood astonished in his mind.

15. When the king returned to his camp, he did not find *Madanavalī*. He looked into the four directions absent-minded, and pitiably wandered about the land. Then the king became apprehensive with his pride gone. "Where has my wife gone, gracious in all her limbs? How could *Madanavalī* who was the delight of my heart, become so perverse now?" Then good servants were sent out by the king: "Look for your mistress in the directions." Having looked in the directions, they came back crying, with their hands stretched upwards. Then the king, seeing them crying, instantly shed tears from his eyes. "Oh virtuous lady! speak to me about the tie of love pleasing to the ear (or, according to the alternative reading, oh tree! you are the friend of birds, tell me about the beautiful lady, the object of my love). Oh innocent lady, by whom have you been taken away? Are you hiding yourself somewhere? Oh elephant, were you the messenger of Death? Why did you become angrily perverse to me?" Then a certain *Vidyadhara* who had crossed the ocean of learning and was fair-looking, bearing in his heart old attachment, presented himself before him.

16. The good *Khecara* called out: "Oh king! why are you weeping bitterly? Why do you cause your body to decay for the sake of a woman? Woman is the house of a volume of woes to people. Woman brings about residence in hell, why should one live with a woman? She causes fever in a throbbing mind, who would follow her the cause of misery? The creeper of worldly existence grows by her company. A woman brings troubles to the person of man. Powerful persons are rendered powerless by her, wretched are they who serve a woman." Hearing such words and heaving a sigh, he looked about, uttering '*Madanavalī*!' Then he saw the *Khecara* and became downcast through shame in a moment. He was addressed over and over again by the *Khecara*: "Why are you here, bereft of your attendants?" With tender expressions was the king, who was distracted in mind, consoled.

17. Hearing that speech, the heroic *Karakanda*, courageous in battle, became comforted in mind. He asked the *Khecara*: "Where did you acquire such charming, sweet speech, inspiring religion? Did you serve some great sage free from all faults, who had left joy and sorrow far behind? My eyes have become attached to your sight, seeing you, they do not go elsewhere. Are you some relative of mine of another birth, delightful like the moon in the sky of family? I ask you hesitatingly, are you some god? Tell me definitely?" Hearing those words, the courageous and deeply wise *Khecara* said to the king: "Formerly, being born in the species of a dove, I became an object of amusement to your eyes. Once, as I stood in the cage dallying with my mate, a serpent, hissing sharply, advanced towards me.

18. Seeing me, it caught hold of my leg. Then you, gentle by nature, ran up in order to save me, kindly, from the serpent. I was delivered by you from it. From its terror, I became senseless, you kindly gave me the *Navakara*. As a result of that, I was born a son to a *Vidyadhara*, an abode of multitudinous virtues. Seeing you fighting against the elephant

belief for its root By that powerful sin you have become an elephant" Hearing those words of his, the elephant came to the feet of the sage, recollecting his previous life, turning his eyes up to his head, rolling with distress and trumpetting loudly The god then knew the heart of the elephant and spoke soft words "Do not abandon the gem of Right Faith by means of which you would obtain pure knowledge "

12 Then were given to him the *Anuvratas* and the *Gunavratas* as well as the *Sikshavratas* that give happiness to people, the highly meritorious abstention from taking food in the night, and the avoidance of the five *Udumbaras* for all time The fruit of worship was also preached to the excellent elephant which was trembling on account of the dangers experienced in past lives Then he was informed about the beautiful image which they had long ago placed in the anthill Whatever was preached by the excellent *Sura*, all that was accepted by the good elephant Having so preached, the *Sura* went home, and the elephant is living here in the forest " On another day, having taken water and lotuses, as it returned to the anthill it did not see there the passionless *Jina* Having dropped the water and the lotuses, the good elephant betook himself to the Right Faith with determination, and with complete renunciation having concentrated himself upon Lord *Jina* with pure thoughts, that *Khecara*, the elephant, became a *Sura* in the third heaven

13 "Oh king, whatever you inquired of me, I have told it all to you You have done well after the wish of my heart that you renewed the cave, oh lord of men ! So now, you do this, make another cave above this cave " Having said so carefully to the king, the good *Sura* sportively went home Above the cave was built by *Karakanda* another cave, an excellent abode for *Jinavara* Above it, again, he caused to be built a small cave exceedingly beautiful and removing lust How beautiful the three caves looked ? They matched the mansions of the lord of *Suras* The king, having made those *Jina* temples and having himself worshiped the beautiful ones, being exceedingly delighted at heart, went to his camp As king *Karakanda*, the destroyer of his enemies, stood in his camp, there came an elephant with strong and stout trunk and profusely rutting, in order to drink water in that lake

14 As it stood on the bank of the lake, the smell of the army reached it Raising up its trunk and shaking its head, the elephant, turning round its face, saw the army Seeing it, the great elephant became hostile and ran up greedy of the smell of ichor, taking its trunk in its mouth, trumpetting and crushing the earth by the weight of its steps Seeing it so determined, the people made up their mind to arrest it They got up and instantly fell upon the elephant But they all fled away for fear of the strokes of the elephant Then the king ran, sword in hand, and the fighting elephant was checked As he was going to strike it with his arms, the elephant became invisible When the elephant disappeared, he became startled in his eyes for a moment The elephant disappeared under his very eyes The king

stood astonished in his mind

15 When the king returned to his camp, he did not find *Madanavalı* He looked into the four directions absent-minded, and pitiably wandered about the land Then the king became apprehensive with his pride gone "Where has my wife gone, gracious in all her limbs ? How could *Madanavalı* who was the delight of my heart, become so perverse now ?" Then good servants were sent out by the king "Look for your mistress in the directions" Having looked in the directions, they came back crying, with their hands stretched upwards Then the king, seeing them crying, instantly shed tears from his eyes "Oh virtuous lady ! speak to me about the tie of love pleasing to the ear (or, according to the alternative reading, oh tree ! you are the friend of birds, tell me about the beautiful lady, the object of my love) Oh innocent lady, by whom have you been taken away ? Are you hiding yourself somewhere ? Oh elephant, were you the messenger of Death ? Why did you become angrily perverse to me ?" Then a certain *Vidyadhara* who had crossed the ocean of learning and was fair-looking, bearing in his heart old attachment, presented himself before him

16 The good *Khecara* called out "Oh king ! why are you weeping bitterly ? Why do you cause your body to decay for the sake of a woman ? Woman is the house of a volume of woes to people Woman brings about residence in hell, why should one live with a woman ? She causes fever in a throbbing mind, who would foelow her the cause of misery ? The creeper of worldly existence grows by her company A woman brings troubles to the person of man Powerful persons are rendered powerless by her, wretched are they who serve a woman" Hearing such words and heaving a sigh, he looked about, uttering '*Madanavalı !*' Then he saw the *Khecara* and became downcast through shame in a moment He was addressed over and over again by the *Khecara* "Why are you here, bereft of your attendants ?" With tender expressions was the king, who was distracted in mind, consoled

17 Hearing that speech, the heroic *Karakanda*, courageous in battle, became comforted in mind He asked the *Khecara* "Where did you acquire such charming, sweet speech, inspiring religion ? Did you serve some great sage free from all faults, who had left joy and sorrow far behind ? My eyes have become attached to your sight, seeing you, they do not go elsewhere Are you some relative of mine of another birth, delightful like the moon in the sky of family ? I ask you hesitatingly, are you some god ? Tell me definitely ?" Hearing those words, the courageous and deeply wise *Khecara* said to the king "Formerly, being born in the species of a dove, I became an object of amusement to your eyes Once, as I stood in the cage dallying with my mate, a serpent, hissing sharply, advanced towards me

18 Seeing me, it caught hold of my leg Then you, gentle by nature, ran up in order to save me, kindly, from the serpent I was delivered by you from it From its terror, I became senseless, you kindly gave me the *Navakara* As a result of that, I was born a son to a *Vidyadhara*, an abode of multitudinous virtues Seeing you fighting against the elephant

at great risk, I recognised you Bearing (in mind) your great obligation, as I was playing with *Vidyadhara* princes, I came here hastily, thinking that I shall certainly be of some help to you That serpent, on account of the *Navakara* given by a sage, had soon become a *Khecara* On that occasion, that *Khecara* felt humiliated, so he has now carried away your beautiful wife *Madanavali* of large breasts, under the disguise of an elephant

19 Seeing you weeping, with your face turned up, beating the chest with the hand and crying, 'Oh darling, oh darling', I have come here Do not weep, abandon the grief of your mind When you will return, having defeated the great and the mighty, and having conquered the earth, then this *Khecara*, realising that you were illustrious in virtues, would bow to you as his master and you will then regain your wife whose face is like the full moon " Listening to his sweet speech, *Karakanda*, of long arms, said in return, "Oh graceful and virtuous *Khecara*, can women that have been abducted, ever return ?" Then the *Khecara* said in sweet tones "What of the rest, I tell you how the beloved of *Naravahanadatta*, pure and endowed with golden and imperishable excellences, was soon reunited to him accompanied by numerous *Vidyas*

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire giving tree of the five auspicious rites, the fifth chapter, called listening about *Nila* and *Mahanila*

SECTION V

CHAPTER VI

1 Being asked by *Karakanda*, he narrated the story of *Naravahanadatta* "You listen, with one mind, to what gave delight even to the assembly of the execellent *Suras* Here, in *Bharata*, in the country of the *Vatsas*, there is the praiseworthy town of *Kausambi* There was the king *Vatsaraja* who, day after day, had a pure attachment for religion His wife was *Suvina* who remembered the feet of the excellent *Jina* in her heart He got a son *Naravahana* great in excellent virtues and pre-eminent in fame He was the residence of all arts, and possessed a great splendour By his beauty he ridiculed Cupid Seeing him intelligent, his father, the king, soon coronated him, and himself, taking to ascetic-life, spread his fame in the three worlds Having performed hard austerities which banished Cupid, he reached the portals of the damsel Salvation Feeling depressed by the bereavement of his father, *Naravahanadatta* would not feel amused any where Having his lotus face wet with the water of tears, he wandered about distressed with his face turned up

2 The unbounded fortune of royalty, bestowed upon *Naravahanadatta*, gave him no pleasure Bearing in his heart the grief of his father, the handsome one did not like any bodily enjoyments Being struck with sorrow for his father in mind, the king, one day, casually came to the *Kalinjara* mountain pleasant to the hearts of *Suras*, *Khecaras*, and good men Agreeable to the eyes of *Vidyadharas* and *Kinnaras*, he entered a pleasant flower-garden There he saw a great ascetic who created love for piety in the minds of people, inspired mutual confidence in born enemies, attracted even the minds of persons holding false beliefs, meditated upon the words of the supreme self, and had banished far away all defilement and anger He instantly set his mind upon the lotus-feet of the sage and then adored, with great devotion, the teacher who had made all people bow to his feet

3 " Oh foremost of the excellent sages, who has caused the lords of serpents, gods and men to fall at his feet, have compassion on me, and tell me the pure essence of religion by which I might cross over the cycle of existence " Then the worshipful one who was free from attachment and had firmly set his affection on the way to salvation, said "What is the good of talking much ? Bear in your heart the excellent *Jina* Have always a charitable disposition, oh king, and make your mind absolutely pure Having the five small vows on the top of his head, and bearing the heavenly *Siksha vratas* and *Guna vratas*, whoever gives the fourfold alms namely medicine, food, safety and knowledge, obtains, oh king, ample fortune abounding in all the fruits after the wish of his heart Whoever, oh king, avoids eating by night and takes food observing silence, lives sportively in the heavenly mansions waited upon by hosts of nymphs

4 Laughing, by your comeliness, at the lords of men and gods, you should not feel sorrowful in your mind, oh king By sorrow a great *Karma* is contracted and one does not obtain human birth By enmity come a heart-attracting, affectionate wife dear to the eyes, pleasant children and dear brothers All these come by one's enemical desires Not being able to trouble in one birth, they entertain a desire, with a feeling of humiliation, "May I be born in the next birth so that I might cause pain to him" Listen, oh king, with steady mind, the story that was of old revealed by numerons sages There is the famous and delightful-to-the-eyes city of *Mathura* where there are mansions decorated with pictures executed in precious stones There were two Brahmana brothers like elephants, named *Madhava* and *Madhusudana* They bore great enmity in their minds and would not tolerate the manifold virtues of each other As days passed by, the riches of *Madhava* soon turned their face away from him He could not even secure clothes for his wife and all his strength and power had also melted away

5 One day, his wife, in her misery, thought out some thing (and said) "Oh my dearest, listen to my words Let us instantly go to *Madhusudana* He will certainly provide food for us both, hungry and poverty-stricken as we are " Hearing her words, *Madhava* made a reply in faltering tones "Setting aside the grandeur of self-respect, how shall I enter the house of another who is so disagreeable to me ? Better to eat morsels of poison and die, than to be a

servant in the house of a wicked person" Then *Madhava* was again addressed by his wife "What is the good of this voluminous grandeur of self respect ?" Hearing her words, *Madhava* went to the house of the good *Madhusudana* Seeing *Madhava* come to his house with his wife, misery-stricken and distressed 10 in mind, *Madhusudana*, with folded hands and one mind, stood before him

6 Modestly bending his head, *Madhusudana* spoke to them "Oh my parents ! what anxiety have you ? I eat the food given by you How is not a gentleman, kind and very honourable, adorable in this world ?" But they, bearing jealousy in their heart, could not put up with his fortune One day, *Madhava*, out of wrath, made a sudden exit for *Prayaga* There he saw an 5 emaciated ascetic and stood at his feet for a moment With his permission, *Madhava*, cruel at heart, took to austerities He wasted his body by abstinence and soon died with the desire "I should be born a dear son to *Madhusudana*, the *Brahmana* of the town of Mathura, and having given him much pleasure, I should afterwards die" 10

7 That *Madhava* was, in course of time, born in the beautiful house of *Madhusudana* Favourite of all people and repository of all arts, he, while yet young, became pre-eminent amongst the people Then, one day, the young son of the Brahmana was suddenly carried away by the messengers of Death *Madhusudana*, following the body of his son, fell on the earth beating his head 5 He would not leave his neck, but would go to death, He would not stop even for a moment in his lamentations He would not be consoled by any consolations, poor soul, he had so set his feelings upon his son The Brahmana, out of sorrow for his son, went to *Prayaga* for dieing with his mind set on him When about to die, being scorched by the flames of grief, he was held back by a 10 certain *Khecara* The latter gave him an account of *Madhava* who had died by entertaining a desire as a reward for his austerities He was born your dear son in the town of *Mathura*, oh *Madhusudana* !"

8 Hearing the words of the *Vidyadhara*, he returned home abandoning sorrow By sorrow have been bothered lords of men and gods Therefore, do not give place to sorrow, oh king " Then, getting an opportunity, a *Khecara* who was there, inquired of the king, "Oh lord of men of super-human personality ! how have the vast dominions been acquired by you ?" Then 5 the king told the *Khecara* whose head was adorned with a diadem of gems and jewels, "In youth I was strong-bodied What proud woman would not have love for me ? Enemies trembled at my name and resorted to jungles being terror-struck in mind As I lived with my people, my wife was carried away by a *Khecara* In her separation, I felt despondent and distressed and could 10 not be amused in any way (I thought) shall I leave the country or, going some where, shall I die ?

9 Thus brooding in all sorts, I left my home and came to the bank of the Ganges liked by hosts of *Suras* Near *Paithan* I saw the excellent *Jina*, the abode of happiness and destroyer of sorrow Having bowed to the *Jina* I rested there where the shaft of the flower-weaponed would not enter As I closed my eyes with heaviness of sleep, I heard a sound "Why do you sleep, 5

oh prince, with indifferent mind ? You are soon to meet your wife " Then love flashed forth on my face and I went out of the *Jina* temple I looked in the four directions for the love of my heart but the beautiful one could not be seen As I went out of the garden, I saw a certain beautiful woman with her lotus-face resting on her lovely hand and scratching the ground with her finger With tender expressions I inquired of her all about it

10, "Why are you in this forest, oh beautiful lady ? What are you thinking about in your mind with steadfast eyes ?" Oh *Khagendra*, the hot sun for the lotus of knowledge, she then revealed to me (as follows) "In the southern part of the *Vidyadhara* mountain there is a town *Jayanti* at the top of the *Sindhu* There lives *Dhumaketu* the supreme lord of the Vidyas, He has in his home *Sunanda* for his wife Of the two who love each other, I was born a daughter One day, I came down here for sport in company of my friends I played with my beautiful companions who indulged in all sorts of games After the play, as we stood at ease, there arrived the *Khecara Madanamara* Seeing him I was shaken like a plaintain tree struck by the wind My companion, knowing my heart, approached the friend of the youth

11 He was asked by the highly virtuous *Nirmalamati* "Tell me who he is " He said "Here, in the beautiful *Vijayardha*, in the pleasant *Utpalakhedi*, lives the Khecara *Padma-deva* He is his son *Madanavega* In the Northern Vijayardha lives *Pavana-vega* the house of all virtues and son of *Manovega* He was going there out of affection for him when he has been seen by you " Then inquiring about my high family and taking away my loving heart, both the *Khecaras*, having told her so, went away But *Madanamara* came back again Through shyness, I found no words in my mouth I felt abashed even to talk to him Then instantly my companion said to him "Oh handsome one, live with your beloved " Then taking the beautiful pearl-garland off his neck with his own hand, as he put it on my neck, a companion came to call me

12 Then I was taken home by *Ketumati* Distracted in mind I remained sorrowfully at home When once more I came back by the same way, I did not see *Madanamara* His (pang of) separation was narrated to me by a *Vidyadhari* the dispeller of woes "Talking, over and over again, incoherent words, wandering distressed with his face turned up, afflicted with the fire of separation and remembering you, he soon clung himself to an ascetic-girl Instantly feeling disconcerted, she turned *Madanamara* into a parrot Her companion, being stirred by piety and feeling compassionate, told her 'Be pleased, oh goddess ! Do it so that he may sport with his wife' Then the highly virtuous lady said "On the day on which *Naravahanadatta* marries the beautiful and renowned person named *Rati-vibhrama*,

13 On that day, oh friend, he would become a tender-bodied, handsome man again " Oh handsome one, this is what she told me Knowing this I took my residence in the forest " Hearing this, as I stood there, *Lilavati* arrived there She held in her hand a portrait which infatuated the minds of

servant in the house of a wicked person" Then *Madhava* was again addressed by his wife "What is the good of this voluminous grandeur of self respect ?" Hearing her words, *Madhava* went to the house of the good *Madhusudana* Seeing *Madhava* come to his house with his wife, misery-stricken and distressed 10 in mind, *Madhusudana*, with folded hands and one mind, stood before him

6 Modestly bending his head, *Madhusudana* spoke to them "Oh my parents ! what anxiety have you ? I eat the food given by you How is not a gentleman, kind and very honourable, adorable in this world ?" But they, bearing jealousy in their heart, could not put up with his fortune One day, *Madhava*, out of wrath, made a sudden exit for *Prayaga* There he saw an 5 emaciated ascetic and stood at his feet for a moment With his permission, *Madhava*, cruel at heart, took to austerities He wasted his body by abstinence and soon died with the desire "I should be born a dear son to *Madhusudana*, the *Brahmana* of the town of Mathura, and having given him much pleasure, I should afterwards die" 10

7 That *Madhava* was, in course of time, born in the beautiful house of *Madhusudana* Favourite of all people and repository of all arts, he, while yet young, became pre-eminent amongst the people Then, one day, the young son of the Brahmana was suddenly carried away by the messengers of Death *Madhusudana*, following the body of his son, fell on the earth beating his head 5 He would not leave his neck, but would go to death, He would not stop even for a moment in his lamentations He would not be consoled by any consolations, poor soul, he had so set his feelings upon his son The Brahmana, out of sorrow for his son, went to *Prayaga* for dieing with his mind set on him When about to die, being scorched by the flames of grief, he was held back by a 10 certain *Khecara* The latter gave him an account of *Madhava* who had died by entertaining a desire as a reward for his austerities He was born your dear son in the town of *Mathura*, oh *Madhusudana* !"

8 Hearing the words of the *Vidyadhara*, he returned home abandoning sorrow By sorrow have been bothered lords of men and gods Therefore, do not give place to sorrow, oh king " Then, getting an opportunity, a *Khecara* who was there, inquired of the king, "Oh lord of men of super-human personality ! how have the vast dominions been acquired by you ?" Then 5 the king told the *Khecara* whose head was adorned with a diadem of gems and jewels, "In youth I was strong-bodied What proud woman would not have love for me ? Enemies trembled at my name and resorted to jungles being terror-struck in mind As I lived with my people, my wife was carried away by a *Khecara* In her separation, I felt despondent and distressed and could 10 not be amused in any way (I thought) shall I leave the country or, going some where, shall I die ?

9 Thus brooding in all sorts, I left my home and came to the bank of the Ganges liked by hosts of *Suras* Near *Paithan* I saw the excellent *Jina*, the abode of happiness and destroyer of sorrow Having bowed to the *Jina* I rested there where the shaft of the flower-weaponed would not enter As I closed my eyes with heaviness of sleep, I heard a sound "Why do you sleep, 5

oh prince, with indifferent mind ? You are soon to meet your wife " Then love flashed forth on my face and I went out of the *Jina* temple I looked in the four directions for the love of my heart but the beautiful one could not be seen As I went out of the garden, I saw a certain beautiful woman with her lotus-face resting on her lovely hand and scratching the ground with her finger 10
With tender expressions I inquired of her all about it

10, "Why are you in this forest, oh beautiful lady ? What are you thinking about in your mind with steadfast eyes ?" Oh *Khagendra*, the hot sun for the lotus of knowledge, she then revealed to me (as follows) "In the southern part of the *Vidyadhara* mountain there is a town *Jayanti* at the top of the *Sindhu* There lives *Dhumaketu* the supreme lord of 5
the Vidyas, He has in his home *Sunanda* for his wife Of the two who love each other, I was born a daughter One day, I came down here for sport in company of my friends I played with my beantiful companions who indulged in all sorts of games After the play, as we stood at ease, there arrived the *Khecara Madanamara* Seeing him I was shaken like a plaintain 10
tree struck by the wind My companion, knowing my heart, approached the friend of the youth

11 He was asked by the highly virtuous *Nirmalamati* "Tell me who he is " He said "Here, in the beautiful *Vijayardha*, in the pleasant *Utpala-khedi*, lives the Khecara *Padma-deva* He is his son *Madanavega* In the Northern Vijayardha lives *Pavana-vega* the house of all virtues and son of *Manovega* He was going there out of affection for him when he has been seen 5
by you " Then inquiring about my high family and taking away my loving heart, both the *Khecaras*, having told her so, went away But *Madanamara* came back again Through shyness, I found no words in my mouth I felt abashed even to talk to him Then instantly my companion said to him "Oh handsome one, live with your beloved " Then taking the beautiful pearl- 10
garland off his neck with his own hand, as he put it on my neck, a companion came to call me

12 Then I was taken home by *Ketumati* Distracted in mind I re-mained sorrowfully at home When once more I came back by the same way, I did not see *Madanamara* His (pang of) separation was narrated to me by a *Vidyadhari* the dispeller of woes "Talking, over and over again, incoherent words, wandering distressed with his face turned up, afflicted with the fire 5
of separation and remembering you, he soon clung himself to an ascetic-girl Instantly feeling disconcerted, she turned *Madanamara* into a parrot Her companion, being stirred by piety and feeling compassionate, told her 'Be pleased, oh goddess ! Do it so that he may sport with his wife' Then the highly virtuous lady said "On the day on which *Naravahanadatta* marries 10
the beautiful and renowned person named *Rati-vibhrama*,

13 On that day, oh friend, he would become a tender-bodied, hand-some man again " Oh handsome one, this is what she told me Knowing this I took my residence in the forest " Hearing this, as I stood there, *Lilavati* arrived there She held in her hand a portrait which infatuated the minds of

on-lookers I readily inquired of her "For what purpose have you come here ?" Then she told me "Listen, oh great hero, dear to all people, good looking and firm like *Meru* ! On the southern side of *Sindhu* in *Vijayardha* where blows the wind excellently fragrant on account of the *Suras* and the *Khecaras*, there is the town of *Kanakapura* a mine of jewels and delightful to the eyes There rules king *Hamsaratha* served by hosts of *Vidyadharas* He is accompanied by *Vimaladevi* as a charming swan is by a female swan

14 He has brought, by abduction, some woman who has no liking for him She lives in his palace observing religion, a basket of love and delightful to the eyes She would not talk to any body With concentrated mind, she drew the picture of her husband While she was feeling happy in her mind looking at it, the good *Khecari Vegavati* arrived there *Madanamanjusa* was questioned by her "Who has been drawn by you in this picture ? Tell me, oh mother ! Is he a *Khecara*, a *Kinnara*, a god or a man, or is he Cupid with his shaft fixed to the bowstring ?" To *Vegavati* she told the truth "He is *Naravahana* my beloved husband " When she looked at it taking the portrait, she fell to the ground shaking her body Knowing her to be *Vegavati*, *Kanakavati* cracked a joke with her "She did not use to like any suitor, but has now fallen to the earth at the mere sight of a figure "

15 Then *Kanakamati* took the portrait in her lap in order to see the praise-worthy picture As she thought about it in her mind, she also, in a moment, fell upon the ground Some how with difficulty, she came to her senses and the shapely-armed one was asked by her friends "Why did you go into a swoon, oh friend ? Tell us the pangs of your heart " She said "Oh sister, here is this picture on the board It has baffled my mind Is he a god or is he Cupid, oh mother ? Just think of his name ?" By the two distracted in their minds in his separation, I have been sent What a wandering sage had once declared they considered in their minds "Whoever lucky one would marry *Rativibhrama*, would become our husband " She was then immediately caused to be painted on a canvas in beautiful colours I have come here taking that portait " When, taking that portrait in my hand, I observed the beautiful form, my heart was stunned, oh *Khecari*, and could not think of any thing

16 Then I was taken there in the midst of those friends by the pure-minded *Lilavati* Reaching there, I married *Rativibhrama* with great cedlebrations as king Along with *Vegavati* I also married *Kanakamati* as also *Lilavati* Another five hundred (maidens) also I married there where the very Cupid was residing My beautiful wife who had been carried away by that *Khecara*, also joined me I subdued hundreds of *Khecaras*, and struck terror in the hearts of my enemies The earth, right up to the ocean, where-in stood thickly populated big villages, came under my control Then all the country-people were called together, oh *Deva* served by men, and the coronation was performed This was the account given to the *Khecara* as you asked it all of

me People were establishd with lasting gifts of gold and I worshipped the pair of feet of the *Jina*

Here ends, in the life of the great king *Karakanda* composed by Sage *Kanakamara* which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the sixth chapter called listening to the story of *Naravahanadatta*

SECTION VI

CHAPTER VII

1 My good friend *Karakanda*, I tell you, Make a start immediately A good and auspicious omen (forebodes) that you will obtain the happiness of wife along with many acquisitions "Tell me, oh courageous *Khecara* warrior, as a result of what omen shall I obtain a wife ?" The *Khecara* told him "See the sage in front of you, the divine-eyed one is sure to give you the 5 fruit" "Tell me who has obtained the fruit of the omen" Then the *Khecara* told him who had obtained the fruit A certain Brahmana, hungry and decaying in body, started from his country, leaving his home He saw an ascetic in the forest and great satisfaction entered his mind Holding in mind the auspicious omen, he began to dance, stretching up his arms A certain prince 10 sporting in hunting soon reached there He saw the Brahmana joyfully dancing alone in the forest "Oh respectable Brahmana, I ask you why are you dancing freely in the forest ? Have you obtained some thing beautiful, or have gone mad, my brother ?"

2 The Brahmana then told him "Oh simple-hearted, I am not seized by the wind, my friend By the passing of one devoid of ornaments and clothes and enjoying the great relish of bliss, I have obtained the auspicious omen here where the mighty lion dwells As a result of this, I shall gain royal fortune and enjoy the green-bowelled earth" Then the prince quickly said to 5 the Brahmana "Oh master, I am your pupil Give to me this omen, my respected sir, and take my ornaments and this divine-bodied horse" Taking the horse along with the ornaments, the Brahmana went home, giving to him the omen The prince, tender-bodied like fresh lotus-fibre, went forth full of joy Then the Jina-tutelary-goddess, abandoning the body that she had put on formerly by means of her *Vidya*, took up another by which the mind of the on- 10 lookers may be attracted

3 The fawn-eyed one came before him like the loving wife of *Raghava* "I am your attendant, oh prince, being the destroyer of your enemies" Along with her he went into the thicket inaccessible to men, *Khecaras*, *Kinnaras* and *Suras* There they saw an old well, but no terror entered their heart In it they saw a serpent fighting with a frog Seeing them 5 fighting, he, with unkind hand, counting his body as straw, instantly cut off a piece of flesh with his sword and threw it between them Knowing his

courage, both of them came before him becoming men One of them was in the form of a cowherd and another boy Adorned by the three persons, that prince looked as if some god had come down from heaven 10

4 They were seen by some king who honoured them with felicitous words Seeing the woman a box of beauty, he felt as if a destructive pestilence had set into his heart Becoming desirous of that woman, he thought of murdering him (the prince) The king took the prince for hunting There was a dry well in a secluded place Having pushed the prince down into it, 5 the king came face to face with the woman Being bitten by a serpent he died and the prince was then taken out by the frog The royal fillet was then tied to the prince and a host of horses was presented to him by all He enjoyed the royal fortune sportively He then asked that *Cakora*-eyed lady "Oh beautiful one ! tell me who you are " Being honoured with overflowing affection, she 10 told him the old story and went to her home the very moment

5 Oh handsome one, ocean of virtues, you have listened to this story of an omen told by me " Saying so, the Khecara went to his own home called *Satyalaksmipura* Then one day, *Karakanda* ordered a quick march King Karakanda, the foremost amongst men, halting on the way (or along with the princes), reached the *Simhala* island where young ruddy geese attracted 5 the mind, where *Suras, Khecaras* and *Kinnaras* indulged in sports, where women walked with the grace of an elephant and rendered ineffective the beauty of *Rati* by their own beauty, and where, seeing the luxury of the people the gods lost the memory of the heavenly world He encamped outside the city The apprehension of an enemy arose in that locality Leaving his camp 10 the immeasurable *Karakanda*, with his companions, went out for sport There the king saw an extensive bunyan tree, big, full of hundreds of birds like the *Kalpa* tree protected by gods and laden with thick leaves Seeing the large and very soft leaves of that Bunyan tree, *Karakanda*, taking up small balls and shooting them with his bow, pierced all the leaves 15

6 As the Bunyan leaves were pierced with an arrow, the matter was reported by a messenger to the king "Who had been foretold by the excellent wandering sage, that suitor has come, oh king, with a retinue I know not whether he is *Varuna* or the moon, a king or the lord of gods Sporting in the forest in the company of princes, he, in a moment, pierced all the Bunyan 5 leaves" Then the king sent prominent persons who, being elderly, struggled their way to his military camp The *Campa* king was told by them "Oh friend, frank-minded, the king is calling you He has his affection fixed on you You come to his house " Hearing this, king Karakanda said "If your king comes before me, then I go to your king's palace, beautiful being finished with jewels" 10 Hearing that, they returned home immediately and reported the matter to their king "He would come to your home, Oh king, if you go forth to receive him" Hearing it the king went forth and presented himself before the king of *Campa*

7 The king saw him of great lustre, as if he was Cupid incarnate, With attachment, the ocean of virtues took the king into the town with

honour While entering, he was seen by people like god *Visnu* accompanied by cowherds Causing affection in the minds of young women, king *Karakanda* reached the palace He was shown to his daughter named *Rativega* of tender arms The youth was seen by the maiden as if the flower-shaft had entered her heart In her distraction she could not mind any thing She did not see nor hear any thing She did not fight shy of her father She trembled and her words faltered by the thrill Seeing the flow of perspiration of his daughter the king instantly began the marriage A pandal was erected with arches of pearls, big chowries were made of gold and a very high, beautiful and bright altar executed with jewels, was made

8 Soon her marriage was performed so that even the *Khecaras* felt enamoured Big dowries were bestowed on her Elephants with their temples wet with rut flowing incessantly, multitudes of excellent horses jingling with bells and garlands made of jewels, were given Whatever else is pleasant to the eyes was given to her by the king calling out her name With all these, being pleased in mind, he bestowed his daughter upon the son-in-law Many jewels were soon given and the princes were dressed by the king The foremost king was then sent off by the lord of men The king got ready a boat The doomsday of all vicious kings and protector of the earth got into the boat It shone forth shaking with the fluttering banners It sailed in water by the help of the wind Thousands of other smaller boats were filled entirely with crowds of people They moved like the celestial cars on earth, fulfilling the desire of moving in water

9 As the boats sailed in water furnished with decorations and tents, the king saw a large fish as if he had come upon the essence of the sea, as if *Visnu* was sporting in that form, as if the sea was seeing the royal fortune In height it was sixty *Yojanas* and in breadth half of this Sixty-seven feet long, it stood covering the ocean Like the *Mandara* in water, immeasurable it shone forth jumping up and dipping in Moving on slowly (at first), the monster came up running through wrath Seeing it running the kings instantly stopped the boats The kings being terror-stricken, stopped all the boats, as if they were rendered motionless by the power of an incantation by some wicked deity

10 Seeing that fish and setting aside his equanimity, irresistible and hostile, fastening the wrestling tie and drawing out the sword, leaving the boat and rushing forth with rage, the king in an instant furiously made a jump, and swimming, reached where the monster-bodied fish was Placing himself inside its belly and killing the fish he cut off its protective parts and split its skin Swimming on to clear water the hero became invisible The king was taken away by an irresistible *Khecara* woman Seeing him carried away and having thought about it, the good warriors instantly made a jump into the sea feeling distressed The whole water was ruffled, the boats clashed against each other, piteous cries of woe went forth and all people were perturbed with sorrow on account of him

11 When the lion amongst men, of blooming face fell in water, all people, with pervading sorrow, were very much alarmed The good wife *Ratiwega*, resembling a *Naga* woman, feeling disconsolate, trembled in all her body, was stunned at heart and fell senseless By the sweet fanning of the chowries and with the help of water the virtuous and charming lady was made to rise up by lovely young women who could tame the mind of sages She beat her bosom with tender and shapely, lotus-like hands and then with anxious eyes and faltering speech said, "Oh hostile fate, sullied with sin, what have you done ? Why have you snatched away another's husband who had been made by me my own ? Oh adverse ill-luck, you have been unjust and evil-faced Oh my lord, graceful and happily wise, where have you gone ? Have pity on me, oh my master, the best of the best men I am falling in the ocean of grief and heading towards doom, oh lord, save me I am your wedded wife Now fallen in misery, whom shall I look to ? Being bereft of you shall I now live or die ?" Thus did the virtuous lady, overwhelmed with grief, lament in her heart "I shall now speak only when I meet my husband

The excellent minister, feeling highly grieved but consoling all his people who were heavy at heart, went ashore with all his men there

12 When the army was encamped there, *Ratiwega* celebrated her vow Then feeling uneasy, she soon invoked the goddess in soft tones She drew forth a beautiful circle like guileless faith propounded by *Jinendra* In the middle of it she installed firmly the divine goddess named *Padmavati* The goddess residing in the eastern quarter came as she was invoked The goddess was made of red sandal-wood besmeared with camphor sandal and saffron, worshipped with fruits, flowers and eatables and honoured with a fast on the first day The incantation with the seed, which she obtained by teaching, was muttered along with an offering of fresh saffron and flowers Drawing with red materials, wearing red garments she, having concentrated herself with devotion, thought of the goddess with a firm mind

13 When thought of with worship and honour, the goddess *Padmavati* came up with slow, graceful and tender limbs, and putting on an indescribable, unprecedented look, being endowed with a richness of beauty, red in person and pure at heart, bearing in her four hands the meritorious book along with the gourd and the signet ring along with the lotus-fibre Her cheeks were shining with the earrings and she wore anklets, bells and a girdle She held over her head the fivefold hood of a serpent and looked joyful and pure exercising a mysterious influence Placing her lotus-like feet on the ground, speaking something in charming speech, shedding lustre in all directions and wearing on her bosom a pearl necklace, the virtuous goddess stood in front of *Ratiwega* in an instant saying "I grant you a boon Ask for what may be in your heart, oh lady of slender belly ! For your sake I have descended upon the earth "

14 When she saw the lotus-face of the goddess, *Ratiwega* began to shed tears "Oh worshipful goddess, all the dirt of my sins has vanished at oyur sight Whoever spontaneously belauds you, does not experience a succe-

ssion of woes Whoever thinks of your face day after day, him you serve as a boat, oh goddess! Have mercy upon me helpless Save me from falling in the ocean of calamity, I do not ask for anything, oh goddess! I only implore you for one boon If you really confer a boon on me, oh goddess, reply to one question of mine My husband has gone into the ocean, is he alive or is he dead?" Then the goddess of the gods says "Your husband who fell from the boat, occupied, the very moment, the heart of *Kanakaprabha* the daughter of a *Vidyadhara*',

15 Under the influence of infatuation, he was instantly taken to *Tilakadvipa* by that *Kanakaprabha* She showed him to her father "See, father, I have obtained this divine-eyed one in the sea He has been ordained to be my lord by the sages, even as *Lakshmi* obtained god *Visnu*" Knowing her love the *Vidyadhara* married her with festivities Then one day *Karakanda* killed, in a moment, an enemy of his father-in-law A gentle man who eats the food of another, does a good turn to him What wonder is here indeed? 'Whoever killed the enemy of *Kanakaprabha* shall become our master, what else!' Thinking so, his service was immediately accepted by the *Vidyadharas* with a show of respect Loyally folding their pair of hands and bending the head they followed him carefully No *Vidyadhara* was there who did not hold his service

16 Your husband has performed great feats Who can describe them, oh sister? He married *Anangalekha* the very streak of the bowman Cupid Then he married sportively *Chandralekha* the veritable sister of Cupid, of divine body He also married *Kusumavali* of agreeable conduct and mind as well as *Ratnavali* resplendent like gold He married yet other seven hundred maidens, I tell you the truth So, banishing sorrow, you observe piety You would be united to *Karakanda* with the fraud vanished Very quickly, taking ample wealth, constantly make holy gifts" Hearing this, *Rativega* said "Does one who has gone into the ocean return?" The worshipful one makes a reply to her "Why do you entertain a doubt in what I say You cherish, day after day, the excellent *Jina* endowed with the immortal lustre of gold"

Here ends in the life of the great king *Karakanda* composed by Sage *Kanakamara* which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire giving tree of the five auspicious rites the seventh chapter, describing the acquisition of the hand of a *Vidyadhari* by *Karakanda*

SECTION VII

———

threw them down thinking them to be life-less Then they flew away in all the ten directions I turned my way to a hermitage I learnt all the sciences and enjoyed life on the peak of the mountain There I saw the horse of the mountain mating with the mare in heat A very beautiful colt has been born of them Its feet would not touch the earth-surface I knew it, being a *Vidyadhara* and have told it to you being overpowered by affection It is now grazing in the house of the minister " Hearing this the king immediately went there Reaching the house of the minister, the king said to him "I have no purpose for gems and jewels, my desires will be satisfied by your horse "

9 Bearing sorrow at heart, the minister gave it to him Taking the horse, he went to his palace and put the saddle on the beautiful one The king mounted it along with the parrot The long-armed one took it on a round The parrot warned "Oh lord, do not give any stroke, it will lose its temper " Unnoticed by the parrot, the king gave a whip-stroke out of curiosity Instantly, the horse flew through the sky and went far beyond the sea The king, feeling fatigued, asked the parrot "Where can clean water be obtained, friend ?" Then the parrot, going into the sky, carefully looked for water Returning, the parrot told him "Come quick to the sea " Going there, he saw a hundred maidens sporting in the sea By the words of the parrot the king worshipped the god of that place

10 After finishing their bath and worship of the gods, the party of maidens returned home At that time the parrot took the king after them Reaching the *Chohara* island and coming to the house of the maidens, bringing about the union of the hearts, the parrot said at that moment "Oh king, you marry instantly this *Ratnalekha* of golden and divine body It has long been foretold by divine sages that she would be married by a person like you " Hearing that, the king told her of lotus-like large eyes, "Oh beautiful maid, do you grasp the words that the parrot is saying ?" Hearing that, the maid said, her words faltering on account of love, "I have accepted your service in my mind How can the words of the parrot go false, oh lord of men ?"

11 Hearing those pleasing words, the king married her immediately In love, they enjoyed a thousand pleasures Then, one day, the wife said, showing excessive love "Oh lord of men, I would see your home " Hearing her pleasant words, the king prepared a boat He filled it with attractive gems and decorated it with beautiful flags Mounted on it with the parrot, the horse and his wife, the lord of men shone forth like the god of gods That boat was drifted on by the wind to another island in the sea When it touched a deserted island on another day, the king felt anxious in his mind He then spoke to the parrot "How is the night to be passed here, oh friend ?" Hearing that the parrot replied "Oh king, do not sleep very forgetfully "

12 The horse, the woman, the parrot and the king, all the four, with firm mind, established four watches During the watch of the king, the boat, along with the horse, was quickly carried away by thieves At sunrise when the king sees, he does not find the boat and the horse Then the king reported the fact to the parrot "I know not which way the boat

has gone" Bearing sorrow in mind, the parrot then told the king immediately "Cut logs of wood and tie them up soon so that you might easily cross the sea" Making that, the innocent king mounted upon it along with his wife and accompanied by the parrot The ties of it were broken by the waves and the king wandered from land to land Then the parrot flew to a bunyan tree, the king was carried by the waves to *Kokana* while his beautiful wife, by dictates of fate, was carried to the town of *Khambhayacca* 10

13 There she was seen by a clever bawd *Lambajhalamba* She took *Ratnalekha* home and the tender one removed her watery smell Then the innocent one was told by *Lambajhalamba* "Harlots do not become perfect without ornaments" Hearing that, the beautiful one said "Whoever would win me here in gambling, oh mother, shall sleep with me" This she said 5 Then men were defeated by the woman in gambling Taking their wealth she gave it to the bawd and then put curds and boiled rice in the courtyard The flock of parrots residing in the bunyan tree of the sea pecked at it and returned Then that parrot inquired of them "Where had you gone whence you have returned with food, oh friends?" To him the parrots told every- 10 thing They were then again asked by him "Take me to that place where boiled rice has been offered by the young woman" Then he was immediately taken by them to the house of the harlot where he was seen by her

14 The parrot, as it pecked, shed profuse tears, seeing its young mistress She, knowing it to be the old parrot, called it to her, pronouncing its name "Oh parrot, my brother, come here Where is your master living?" "I know not, mistress, where the king has gone" Disappointment grew in her mind She was dissuaded by the parrot "Oh mistress, purity of 5 heart is destroyed in those who give way to sorrow My mind says, oh fawn-eyed lady, the master shall meet us having acquired prosperity" Listening to the affectionate words of the parrot, she felt consoled with pure feelings Her fame advanced like the sea Young men were wrapped in good pearl garlands * Some-body told *Aridamana* "In the town of *Khambhayacca* no 10 man can play the game of dice, none can defeat the girl there"

15 Listening to that with concentrated mind, the king immediately went to *Khambhayacca* Reaching there, he quickly went to the gambling house attracting the mind of all the gamblers Sitting in their midst he shone as if bearing the beauty of the full moon With honour, he won seven hundred gold from the kings Giving wealth to jesters and loafers, he went 5 to the house of the harlot greedy of riches He sent a challenge to her whose fame in gambling had gone wide He then himself went there at night, where the young woman was sitting with the parrot He told her "Let us play the game of dice which is a harbinger of love, oh beautiful one!" By the king she was defeated and she became perplexed Then knowing him to be her 10 husband she embraced him limb to limb

---

* The line is more significant in suggesting that the *Kadavaka* is composed in *Mauktikadama* metre

16 As the king lived there with her, a *Takka* came with horses The king looked amongst them and made bargain with the *Takka* The king called out by name and the horse looked at him turning its face Whatever minimum price was settled, he gave the gold and bought it Of the woman, the parrot, the king and the horse, the miserables, the union took place 5
Enjoying pleasures, they lived there, and then all the three (four ?) went to their own country I have told you, friend, how that king, fallen into the sea, came back home As he, great in multitudinous virtues, came back, even so your husband, oh innocent one shall be united to you " Having told all this to her, the worshipful goddess, matchlessly tender in all her body, 10
went immediately to her home, and, having her face like the moon, joined the gods

17 Then *Rativega*, depressed at heart, with face tender like lotus, followed instantly all that the goddess had recommended Taking ample wealth, she, with body excellent like the fresh lotus-fibre, instantly divided it all amongst the poor, and gave good food to the hunger-stricken As she lived there with devotion, meditating in mind upon the feet of Lord Jina, bending 5
with the weight of the observance of *Ratnavali* fast, bearing the pearl-garland in the form of the *Muktavali* fast, shining with the flowers of the *Kusumanjali* observing the powerful *Palyopama* fast, going by the *Shastras* in the form of the fast of the four scriptures, and steadying her mind upon the ritual of the *Vasuhara*, one day, *Kanakaprabha* brought *Karakanda* there Rativega 10
saw her husband, her tears grew through joy and the slenderbodied one flashed forth like lightning as if a cloud laden with water (had been seen) by the female peacock

18 *Rativega* then accorded all great honour to *Kanakaprabha* Satisfaction grew amongst all the attendants and amongst the feudatories and ministers who were astonished in their mind Having lived there for some days with joy, king Karakanda started off Touring upon the land, he came to the *Dravida* country, bearing hostility There, somebody reported, in an instant, to 5
the *Coda*, the *Cera* and the *Pandya* kings "An enemy has come upon you, oh lord Let it be so arranged that he may go away from a distance " Hearing that they met in half a moment and going to Karakanda, fought with him Elephants fell upon elephants, chariots upon chariots, horses upon horses and men upon men Red with rage, they engaged in a fierce combat Banner-posts, 10
umbrellas and heads fell down Entrails shook, men stumbled and great warriors, greedy of fame, met They put up such a great fight that even the gods in heaven were terrified Karakanda caught them on the battlefield and rubbed their crests with his feet But seeing *Jina* images on their crowns, Karakanda felt very remorseful 15

19 "Alas, alas ! what have I, a fool, done ? I struck even a *Jina*-image with my foot As a result of this sin, I know not in what evil form of life I shall have to live " Disturbed at heart, with eyes closed, he released the *Coda* kings "That I vanquished you in battle, that I rubbed your crests with feet, forgive it all, my friends ! Reoccupy your hereditary kingdoms " Hearing 5

that, they made a reply "Our sons will serve you" Saying so to the *Campa* king they instantly made their residence in the forest Counting their bodies as straw, the tender-limbed, having performed penances, attained the highest heaven *Karvkanda* marched out thence towards, the city of *Tera* He reached that region of the forest where the beautiful lady *Madanavali* was abducted 10

20 As he lived there honourably, the *Khecara* restored *Madanavali* to him The *Vidyadhara* then quickly narrated feelingly the events of past life "I was a serpent in my previous birth Wandering about, I crept into your house Then I saw, in the cage, the pigeon accompanied by its mate I caught it by the leg, struggling You then arrived there casually walking 5 It was released by you instantly and was kindly given the *Navakara* It became a *Khecara* as a result of it I glided away from there, escaping you One day, I was crushed under the hoof of a horse A sage recited the sacred formula in my ear As a result of that, I became a *Khecara*, I saw you, having come here On account of the old quarrel, I took away your wife 10 I have told you this secret of mine I am now fully your servant" He then bowed to his feet with bent head, "Whatever crime I have committed, oh lord ! forgive it, I shall not leave your service" Having honoured the *Khecara* with a gift, the king went to *Campa*, conquering the earth He lived there, ruling the kingdom for many days, in the golden, divine palace 15

Here ends in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites the eighth chapter describing the conquest of the earth by *Karakanda* and his entry into *Campapuri*

SECTION VIII

CHAPTER IX

1 As the king of *Campa*, surrounded by wise people, lived there in happy enjoyment, the keeper of the garden came into the council-hall where the king was sitting He was asked by king *Karakanda*, "Tell me for what purpose you have come" He said, "oh lord of men, whom people meditate upon and remember in their mind, at whose sight a lion resorts to peace 5 and would not pounce upon the frontal globes of the elephant, at whose sight those that bear mutual enmity assume tenderness in their mind, at whose sight some take *Anuvratas* and do not devote their mind to any body leaving the *Jina*, by some have been taken in their mind the *Gunavratas* and by

others the *Siksha vratas*, who appears to be the abode of righteousness and 10
home of restraint as if he were the excellent *Jina* in the guise of an ascetic,
such a good sage endowed with knowledge and fame, by the name of *Silagupta*,
has arrived in the garden" Hearing these words, *Karakanda* got up from
the throne the very moment and advanced seven steps, folding his hands and
recollecting in mind the feet of the excellent sage 15

2 Then the drum of joy was immediately ordered to be beaten by
the king who was pleased Hearing its sound, the faithful persons who were
enjoying happiness, met together in half a moment Some proud, tender-
bodied woman started with her affection fixed upon the lotus-feet of the sage
Some one walked forth producing a jingling sound by her anklets as if she 5
was singing the virtues of the sage Some one did not care for her husband
going (by her side) but thought in her heart of the sight of the sage Some
one, filling a plate with rice and frank-incense, walked with great haste
carrying her child Some one walked along giving out profuse scent as if a
Vidyadhari was shining forth on the surface of the earth A certain lady, 10
with face like the full moon, walked along, bearing lotuses in her hand
Being delighted to hear the sound of the drum, all faithful persons met there
together very soon

3 Attached to the *Jinendra Dharma*, devoted to the feet of the
great sage, splendid like the lustre of gold, having eyes like a lotus-leaf and
arms long and stout, knowing all the *Sastras*, having a body with faultless
joints, as he passed by the market, he saw there a miserable woman crying
"Alas, I am confounded", beating both the sides of her belly, weeping with 5
profuse tears, causing grief to people, making the mind bewildered, bearing
the dress of a mad person, rolling in a swoon and falling upon the ground
The king heard that sound like the roar of the sea *Karakanda* asked a certain
man ? "Why does this poor woman cry producing pain in the heart by her
lamentations and herself dying by delirium ?" 10

4 Then he told the facts to the king, "On account of which she
became so miserable, listen to that cause, my good lord ! As she enjoyed
incessant pleasures, a son was luckily born to her But it was snatched away
from her by Death For this, the woman laments woefully and throws herself
through affection She does not leave the side of her son She does not forget 5
him in mind Hearing these words, the king of kings entertained feelings of
detachment from the world "Fie, fie upon this ugly mortal world The
personal enjoyments of men are the causes of their woe Like the ocean is
the extent of misery here, while the happiness of enjoyments is only compa-
rable to a drop of honey Alas where man dies with scorched body and 10
crying hoarse, who, except a shameless voluptuary, would feel attachment
there ?

5 Who is conceived in the womb through *Karma*, he is removed
by the god of death to his own abode The child which is fondled by a
young woman, is marched off to his own town by Fate Who attains fresh
youth, him also the powerful god of death walks away with The old man

who is caught by a hundred diseases, is also mis-handled by the messengers of Death Along with *Balabhadra* even *Hari* of matchless prowess, was stealthily taken away by Fate Who conquered the earth divided into six parts, those emperors were led off by time The *Vidyadharas*, the *Kinnaras* the *Khecaras* and the mighty *Suras* have all fallen into the mouth of Death The lord of the immortals as well as the lord of the serpents, none are spared by Death in taking its toll It does not forego a learned Brahmana, nor leave an ascetic devoted to penances Neither the rich nor the poor escapes as when a conflagration is ablaze in the forest 5 10

6 Whatever body fate creates, the beauty of man is not stable there The charming youth that grows, is cast out, no body knows where, by destiny Whatever other qualities dwell in the body, it is not known which way they go If the qualities of the body were stable, sages would not practise detachment from the world Not stopping anywhere like the ears of an elephant fortune vanishes under one's very eyes As mercury held in the palm of the hand, oozes down, so a woman being dis-affected soon walks away Whose eyebrows, eyes, words and gait are all crooked, who can make her upright ? She does not mind deserting her kinsmen and friends, she is fickle and mean like the friendship of the wicked Whoever meditates upon this idea of fickleness entertaining a feeling of detachment, becomes the ornament of the house of gods, having a very graceful and charming body 5 10

7 Resting at night and subduing the *Suras* in battle, when the calamity comes and the heart goes to sleep, nothing in him throbs, rises or sits Let him enter a cave, follow heaven, climb the heavenly mountain, place his body in a cage, be fully guarded by his kinsmen, friends and children wielding lances in their hands, be protected by *Mantras* and be attended by a host of warriors, still he would not be saved by them all *Baladeva*, the wielder of the disk, the leader ef the gods, the *Khecara* in the sky, *Yama*, *Varuna*, the supporter of the earth, none can afford shelter Whoever contemplates in his mind, day after day, this idea of helplessness, graceful in body and enjoying pleasures, is soon courted by the heavenly women 5 10

8 What happiness is there for one revolving in the cycle of existence ? He gets various unpleasant woes In hell he is tormented by many hellish beings with whom he contracted enmity of yore There, he experiences great afflictions which can not be imagined by the mind Being born amongst lower animals opposed to each other by birth, they have to undergo the gagging, piercing, beating, splitting of the body and the like Even in humanity, a man being suppressed, pines uneasily in his heart Born in the world of gods, he, being inconsiderate, feels woeful in his mind at the sight of others' prosperity As the dancing girl assumes various forms, even so life takes various bodies Whichever person studiously throws his sight on the world, tell me, what he did not obtain in the world being himself the mine of all high-class gems ? 5 10

9 There is no good helpmate of the soul, who could save it from falling into hell Friends, relatives, sons and dear brothers, these render no help to the departing soul One's mother and father weep but do not go even

others the *Siksha vratas,* who appears to be the abode of righteousness and 10
home of restraint as if he were the excellent *Jina* in the guise of an ascetic,
such a good sage endowed with knowledge and fame, by the name of *Silagupta,*
has arrived in the garden " Hearing these words, *Karakanda* got up from
the throne the very moment and advanced seven steps, folding his hands and
recollecting in mind the feet of the excellent sage 15

2 Then the drum of joy was immediately ordered to be beaten by
the king who was pleased Hearing its sound, the faithful persons who were
enjoying happiness, met together in half a moment Some proud, tender-
bodied woman started with her affection fixed upon the lotus-feet of the sage
Some one walked forth producing a jingling sound by her anklets as if she 5
was singing the virtues of the sage Some one did not care for her husband
going (by her side) but thought in her heart of the sight of the sage Some
one, filling a plate with rice and frank-incense, walked with great haste
carrying her child Some one walked along giving out profuse scent as if a
Vidyadhari was shining forth on the surface of the earth A certain lady, 10
with face like the full moon, walked along, bearing lotuses in her hand
Being delighted to hear the sound of the drum, all faithful persons met there
together very soon

3 Attached to the *Jinendra Dharma,* devoted to the feet of the
great sage, splendid like the lustre of gold, having eyes like a lotus-leaf and
arms long and stout, knowing all the *Sastras,* having a body with faultless
joints, as he passed by the market, he saw there a miserable woman crying
"Alas, I am confounded", beating both the sides of her belly, weeping with 5
profuse tears, causing grief to people, making the mind bewildered, bearing
the dress of a mad person, rolling in a swoon and falling upon the ground
The king heard that sound like the roar of the sea *Karakanda* asked a certain
man 1 "Why does this poor woman cry producing pain in the heart by her
lamentations and herself dyng by delirium ?" 10

4 Then he told the facts to the king, "On account of which she
became so miserable, listen to that cause, my good lord ! As she enjoyed
incessant pleasures, a son was luckily born to her But it was snatched away
from her by Death For this, the woman laments woefully and throws herself
through affection She does not leave the side of her son She does not forget 5
him in mind Hearing these words, the king of kings entertained feelings of
detachment from the world "Fie, fie upon this ugly mortal world The
personal enjoyments of men are the causes of their woe Like the ocean is
the extent of misery here, while the happiness of enjoyments is only compa-
rable to a drop of honey Alas where man dies with scorched body and 10
crying hoarse, who, except a shameless voluptuary, would feel attachment
there ?

5 Who is conceived in the womb through *Karma,* he is removed
by the god of death to his own abode The child which is fondled by a
young woman, is marched off to his own town by Fate Who attains fresh
youth, him also the powerful god of death walks away with The old man

who is caught by a hundred diseases, is also mis-handled by the messengers of Death Along with *Balabhadra* even *Hari* of matchless prowess, was stealthily taken away by Fate Who conquered the earth divided into six parts, those emperors were led off by time The *Vidyadharas*, the *Kinnaras* the *Khecaras* and the mighty *Suras* have all fallen into the mouth of Death The lord of the immortals as well as the lord of the serpents, none are spared by Death in taking its toll It does not forego a learned Brahmana, nor leave an ascetic devoted to penances Neither the rich nor the poor escapes as when a conflagration is ablaze in the forest

6 Whatever body fate creates, the beauty of man is not stable there The charming youth that grows, is cast out, no body knows where, by destiny Whatever other qualities dwell in the body, it is not known which way they go If the qualities of the body were stable, sages would not practise detachment from the world Not stopping anywhere like the ears of an elephant fortune vanishes under one's very eyes As mercury held in the palm of the hand, oozes down, so a woman being dis-affected soon walks away Whose eyebrows, eyes, words and gait are all crooked, who can make her upright ? She does not mind deserting her kinsmen and friends, she is fickle and mean like the friendship of the wicked Whoever meditates upon this idea of fickleness entertaining a feeling of detachment, becomes the ornament of the house of gods, having a very graceful and charming body

7 Resting at night and subduing the *Suras* in battle, when the calamity comes and the heart goes to sleep, nothing in him throbs, rises or sits Let him enter a cave, follow heaven, climb the heavenly mountain, place his body in a cage, be fully guarded by his kinsmen, friends and children wielding lances in their hands, be protected by *Mantras* and be attended by a host of warriors, still he would not be saved by them all *Baladeva*, the wielder of the disk, the leader ef the gods, the *Khecara* in the sky, *Yama*, *Varuna*, the supporter of the earth, none can afford shelter Whoever contemplates in his mind, day after day, this idea of helplessness, graceful in body and enjoying pleasures, is soon courted by the heavenly women

8 What happiness is there for one revolving in the cycle of existence ? He gets various unpleasant woes In hell he is tormented by many hellish beings with whom he contracted enmity of yore There, he experiences great afflictions which can not be imagined by the mind Being born amongst lower animals opposed to each other by birth, they have to undergo the gagging, piercing, beating, splitting of the body and the like Even in humanity, a man being suppressed, pines uneasily in his heart Born in the world of gods, he, being inconsiderate, feels woeful in his mind at the sight of others' prosperity As the dancing girl assumes various forms, even so life takes various bodies Whichever person studiously throws his sight on the world, tell me, what he did not obtain in the world being himself the mine of all high-class gems ?

9 There is no good helpmate of the soul, who could save it from falling into hell Friends, relatives, sons and dear brothers, these render no help to the departing soul One's mother and father weep but do not go even

a foot-step with the soul Wealth does not go out of the house even a step, it alone experiences the fruit of piety and sin The body falls in blazing fire, it alone mounts to the home of death Where no happiness is found even for the twinkling of an eye, there single-handed it suffers misery Amongst serpents, ichneumons, lions and dwellers of the forest, the soul alone is born helplessly In the beautiful towns of the *Suras, Khecaras* and *Kinnaras* it alone enjoys life as long as it lives Whoever follows this view adorning his body with goodness, shines forth alone and free of the body, at the place of eternity which is the abode of happiness

10 This is what the sage holding numerous virtues, declares He declares it all alien to the soul What is nourished with hundreds of drugs, even that body is separate from the soul Eyes with beautiful pupils, large and pleasing, are no part of the soul The tongue resembling the leaf of a tree, also stands apart from the soul The richness of the body, touch, smell and ears, and the excellence of beauty, is all quite separate from the soul The other qualities that are found in the body, all of them, go detached from the soul The excessive fatness and fineness of the body are far removed from the soul The four, anger and others, as well as virtue and vice, which are *Karmic* entities, are alien to the self Which ever person meditates in his mind upon this idea with firmness, attains the highest status and becomes bright, absolved from body and excellent

11. Tell me what quality shines forth in this body which has been given the ornament of impurity by nature? The fickle eyes that become sportive, are defiled by lots of evils Tell me what purity is there in the cavity of the nose whose excreta is visibly impure How do people imagine innumerable qualities in the lip which is flooded with a current of saliva? What merit is seen in the breasts which, like wounds, are full of pus? They are grown up balls of thick flesh, who would feel an attachment for them which are so defiled? What do wise people say about the middle zone? It sheds impurities at two points Where fat, blood, flesh and bones are assembled, tell me, what cause of purity is there? Tell me what man in the world would feel attachment for it, if he observes inner and outer purity? Whichever person would think of this as impure by nature being produced by semen and blood, him this matchless idea would bring on to the path of salvation

12 As water is collected in the ocean, even so a multitude of *Karmas* flows in The soul contracts *Karmas* as an invisible point of iron is caught by a magnet By the loss of the right faith, *Karmas* are contracted owing to the false belief The guileless lord *Jina* declares that *Karma* comes in as a result of non-abstinence The inflow of the *Karmas* takes place by falling into anger, pride, deceit and greed If one forms the habit of controlling the mind, the enemy *Karma* can not be born If one indulges in violent speech, who can prevent the *Karmas* meeting him? Whoever uses his body for violence, makes love with *Karmas* Having given rise to a slight cause for *Karmas*, *if one contemplates in his heart upon this idea, he is blessed, that* man, without delay, relishes the juice of eternal bliss

13 Whoever, being firm-minded, holds up right faith, checks the wicked false-sight Whoever conducts himself with pure forgiveness, gets rid of the water of anger, the cause of misery Whoever conducts himself with pure gentleness, his pillar of pride surely goes oft Whichever noble person sets his mind on straight-forwardness, becomes an antidote to the poison of fraud Whoever is indifferent even towards a beautiful body, certainly vanquishes the lion of greed Whichever good man shall follow religion with his heart, shall arrest the monkey mind Whoever worships the passionless (Jina) with adoration, immediately destroys wicked desires Whoever observes all the forms of religion, keeps pure at heart and practises meditation and concentration, escapes scandals Whoever, being endowed with forgiveness and self-restraint and being an abode of virtues, visibly checks these (evil tendencies), he, having enjoyed the pleasures of heaven, bends his way towards perfection

14 *Nirjara*, which destroys attachment, is considered to be of two kinds, fruitful and fruitless The multifold *Karmas* that are collected in the past and are created now, have to be borne in experience Who emaciates his body by the rays of the sun during summer, passes the rainy season under a tree and bears the frost on his head during winter, he confidently gets rid of the *Karmas* Who bears the unbearable weight of penance, reduces his body to straw by fasts and checks irrelevent talk, he shatters all the *Karmas* Who controls his mind from wandering outside, that man destroys the *Karma* in his mind immediately Who regulates his meals according to the waning and waxing of the moon, who prefers sour gruel for food, who adopts various forms of physical austerities, who bears the twenty-two trials and who foregoes the two kinds of worldly possessions, that man performs fruitless *Nirjara* Whose *Karmas* exhaust by themselves, in his case [the] *Nirjara* is fruitful Whichever person, being pure in mind, shatters his *Karma* by mind speech and body, having enjoyed happiness amongst gods, does surely make his, abode in salvation

15 This universe is divided into three parts It is fourteen chains (*rajju*) in height The first (part) is the abode of hell in the shape of an overturned, shallow cup The second is the abode of animals, which is immeasurable, and is like a bell It is the animal world Where the] immortals have no self-restraint but have enjoyments, that is the world of the immortals resembling a drum Above it is the well-known region of perfection where misery is not to be found even for the twinkling of an eye It is described by the many highly qualified sages as held fast by three circles of winds As the sun is poised in the sky, even so, this world is not supported by any thing The sky is inactive, what else ? Even so, no person has created the world Having observed the five great vows, who applies his mind to this idea of the universe, that man, blessed and lucky, enjoys numerous heavenly pleasures

16 May there arise devotion to the lotus-like feet of lord *Jina* May I be born in the family of the faithful endowed with right faith, knowledge and conduct In every life, may the five vows of the two kinds be mine May

the beautiful teachings of *Jina* by means of which the essence of existence is known, be available to me May I have devotion for the ocean-like sages who hold peace, restraint, religious practices and observances in high esteem May I have devotion for the beautiful tenfold piety which brings about the happiness of salvation May the fourteen 'search-lights' that remove old age, birth and death, flash forth in my mind May the fourteen 'states of qualities' be clear to me and may the qualities of the perfected be firmly fixed in my mind Who brought into his heart, soon, this idea, having followed it with wisdom, he profusely adorned, in half an instant, the face of the lady salvation

17 *Dharma* is characterised by the ten qualities Fruitful is the birth of him who observes it By *dharma* horses are obtained and excellent *chowries* are sportively waved over him By *dharma* one would sport in celestial cars and move about in chariots, on elephants or by other conveyances By *dharma* one would get ample riches which is the essence of the jewels obtainable from the great ocean–the world By *dharma* various enjoyments become available and people do not transgress his orders By *dharma* the goddess of speech stays at the tongue and one obtains the beautiful desires of his heart, Oh brother ! By *dharma* seven-storeyed buildings and excellent gems giving various pleasures (are obtained) By *dharma* the gods worship the excellent *Jinas*, by *dharma* all may become great gods or lords of men By *dharma* an accomplished woman, the doom of the infatuated young men, becomes yours By *dharma* are born *Damodaras*, the excellent *Jinas*, *Prati–Kesavas*, *Sankaras*, and the *Suras* in heaven By *dharma* all those good fortunes are born as also *Haladharas* and *Cakradharas*

18 Reflecting upon these ideas in his mind and making himself averse to sensual pleasures, counting a host of women as straw and speaking words pleasant to the ears, steadying the fickle mind, he (i e the king) reached the pleasure–garden He saw the extensive pleasure–garden resounding with the noise of the *Kinnaras* and *Khecaras* In that garden he saw the repository of goodness, who was a shower for suppressing the fire of anger and the like, whose body was resplendent with the rays of knowledge, who was a dart in the heart of the huntsman Cupid, a wrestler to vanquish the warrior–infatuation, the residence of the tenfold *dharma*, the fire to consume the fuel of antagonistic philosophies, who was attached to the face of the lady in the form of severe penance, and was free from the shackles of *Karma*, who was destructive to birth and death, the home of the twofold austerities, and who was the excellent forehead mark on the face of the lady salvation

19 At his sight, he was thrilled in all his limbs like lotuses at the touch of the sun-rays Having gone round thrice and bowing to his lotus–like feet, he sang a hymn "Be victorious, oh hot sun to destroy the darkness ! You have brought the lords of gods, men and serpents to your feet Be victorious, oh thunderbolt to the great mountain of pride, be victorious, oh incomparable, full tank of salvation Be victorious, oh axe to cut the tree of delusion, be victorious, oh boatsman in the ocean of the four forms of life

You remove the sin of those who bow even from a distance, as the sun is, by nature, the dispeller of darkness Whoever recalls you to mind every day, soon attains to the town of salvation" Having adored the lotus-feet of the excellent sage, he sat down in front of the home of penances He then said, "Oh master, reveal to me the highest religion which is free from deception Tell me that, kindly, oh master, by practising which the multitude of woes be destroyed, the incomparable happiness of salvation may increase and which may give a right lead to well-meaning, faithful people

20 Hearing those words of him the sage who had shaken off Cupid spoke He told him the excellent *dharma* which leads to good birth, "The tree of religion, oh king is divided into two parts Being sprinkled over with the water of holy observances, it grows steadily Having obtained a human birth, one should, with pure heart, worship the Jina and hold the feet of sages in his mind He should read the scriptures and observe the forms of restraint He should pass the days in bearing the useful burden of rules and austerities He should bestow the four kinds of charity upon the three kinds of deserving, holy recipients either going to the temple of the *Jina* and bringing him with devotion or receiving him in the home as he happens to come to the house during his tour at the proper time If a sage arrives at his house at noon being devoted to the sages with pure mind, he should say 'Stay' and receive him Then offering him a wooden seat he should wash his lotus-feet and honour even that water (used for washing) He should then worship him with sandal rice, flowers, eatables, lamp, frank-incense and nuts He should adore his feet with a handful of water Whichever person conducts himself by the six professional duties and whose body is covered with the six religious duties, he ridding himself of the inauspicious humours, applies his mind to the *Jina* image

21 Why talk much, oh best of men ! Whoever holds right faith in his heart, the right faith which comes from the belief in the excellent Jina and which is spoiled by a false belief, the right faith which comes from a confidence in the realities and the remedying of the faults of doubt and the like, whoever, again, abstains from liquor, flesh, honey, butter, bunyan, fig, *pilli*, *khumri*, *phenphari* and *umbari*, and the five *udumbaris*, whoever neither gambles nor drinks wine and has no desire for flesh, who shuns harlots charming to the eyes, and does not indulge in the sinful hunting, who does never steal other's wealth and avoids, from a distance, the women of others, who eschews the seven vices with all consideration like a large poison-tree, he enjoys unbroken happiness and is not feasted upon by the demon-misery

22 Nobody becomes great, oh king, without religious observances, with sacred vows, even a poor man becomes respectable These are summarised into two classes-vows for the householders and those for ascetics The *anuvratas* are said to be less rigorous while the same, observed very minutely, become *Mahavratas* Who protects the lives of the mobile animals, that man holds the first vow Who does not speak false in a broad sense, that wise man

wields the second vow Who does not acquire wealth by stealing, he observes the third vow Who regards the wife of another as mother, he maintains the fourth vow, oh king Who sets a limit to his worldly prossessions, he, oh king, keeps the fifth vow Who abstains from eating at night as well as going into 10
the directions (beyond a set limit) and shuns tying cattle with ropes, he, lessening the volume of his enjoyments and pleasures, easily gets delight in the heavenly home

23 Who looks upon all creatures with equanimity, who reflects upon the religious observances in his heart, and who eschews distressful and violent feelings, that good man maintains the customary vow Who observes the four grief-removing fasts in a month on the two eighth and fourteenth days, whichever good man gives alms of the four kinds, who bestows upon creatures com- 5
passion as well as knowledge and who affords medical treatment to the diseased, he surely follows heaven Who at the meal-time, gives to the deserving, food and drink with affection, or gives food to the poor and hungry through compassion, and who, at last, gives up his breath in penance with a steady mind, who observes all these difficult *Anuvratas*, *Gunavratas* and *Siksa-* 10
vratas, he, being covetous of the face of the bride eternity, shall obtain a succession of happiness

24 The religion of the householders is like this, oh king ! This is what the great sages of yore have declared Listen, oh king, to the five vows of the ascetics where not a single fault is admissible Who gives protection to the mobile and the immobile creatures, he enjoys pleasures by innumerable *lakhs* Who does not tell a false story even for amusement, he out-wits the 5
preceptor of gods in oratory Who never misappropriates the wealth of others, he makes the mind of the lord of gods anxious Who observes the ninefold celibacy, he attains the boundless happiness of salvation Who avoids the two-fold worldly possessions, he crosses the great ocean of metempsychosis Whoever holds the basic qualities, oh king, is embraced by the bride salvation 10
The secondary qualities of the sages are so many that no one is able to survey them, oh king I have told you, oh lord of men, the *dharma*, pleasant to the ears, which stands two-fold Whichever person observes, according to his ability, these five vows, oh king, courts the golden and immortal, proud maid salvation, and he without doubt, becomes her lord

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites the ninth chapter called the listening to a religious discourse by *Karakanda*

SECTION IX

———

CHAPTER X

1 Hearing that, the lord of *Campa* again asked the sage with bending head "Tell me, kindly, oh best of sages, what I ask you in a meek tone If my body was so lovely, why this scab on my hand ? Tell me quickly The husband of my mother was so much attached to her , by what *Karma* the separation took place, tell me ? By what *Karma* she was carried away by the elephant ? 5
Why my wife was abducted by the *Khecara* ?" Hearing that, the sage revealed to him "Listen to what I say, oh king ! Here, in the *Bharata* country, is the *Vaitadhya* mountain On the southern side of it is the prosperous town of *Rathanepura* the circular There, the *Khecara Nila* was the king He was hard pressed by his coparceners, so he fled away to *Tera-pattana* Residing there, he 10
acquired a territory and built several *Jina* temples There was a merchant named *Dhanamitra* who daily waited upon all learned men A mine for the jewel of right faith, he had in his home for wife *Dhanawati* He had a good cowherd *Dhanadatta* who did all that he was told to do, who, being virtuous, delighted her mind also, and whose body was adorned with gentle nature 15

2 He, one day, at night, released the buffaloes and went towards the south with them There, he saw a beautiful lake flowered with excellent lotuses like *Dharma* The lotus-lake shone forth very brightly as if the sky with the stars had descended on earth The white lotuses on the lotus-leaves looked like the royal parasols on the green earth Or, being fully blossomed, they shone 5
like rubies in a green receptacle In the midst of it stood one lotus which looked like the moon adorned by the clusters of stars Seeing it, a desire flashed forth in his mind and he entered the lake inorder to fetch it joyfully Entering into the water, he took the lotus as if he had, in a moment, plucked off the head of the lake Taking it, as he came out, with his body excited with joy, his pure 10
mind bloomed up by the possession of the full-blown flower

3 As he walked away with that lotus, *Nagakumara*, the *Sura* came there The good *Sura* told the cowherd "I have been protecting this lake with great care The flower which no body could take, not even a *Khecara*, a serpent or a *Sura*, has been taken away by you a man, oh fine fellow, I tell you with all respect Now you shall obey these words of mine Whoever be great, with 5
his feet worshipped in the three worlds, and at whose sight sin quickly flies off, at his feet you shall offer this flower If you do not obey my words, oh friend, I shall certainly kill you, oh innocent-minded !" *Dhanadatta* went away having accepted the words uttered by the lord of serpents He thought "My merchant is great as he is saluted by all good men I shall worship his feet with this 10
flower which has been guarded by the serpent-gods "

4 So thinking, he went near the merchant and stood up humbly before him The merchant then asked him "Why are you standing before me with folded hands ?" *Dhanadatta* said "Oh merchant, my father, I shall worship your feet with this lotus ' "Tell me the reason ?" Being so questioned he said "I

plucked this flower from a lake and a *Sura* has told me "Whoever is great in the three worlds, worship him If you do not worship, I shall kill you " Hearing this, I have come, thinking, oh father, that I shall worship your feet You are great and adorable by the people and so deserve to be worshipped with this flower " Hearing this, the merchant said "Oh son, the king is greater than my-self, oh good minded !" The merchant then took him to the king's palace and saw the king in the *Jina* temple Having repeated to him as before (he said) "You are great, as people bow to you Therefore, I shall worship your feet with this flower obtained by me in the lake " Hearing this, the king replied "Greater than myself is the sage, surely '

5 All of them went in front of the good sage *Yasodhara* inorder to offer that flower to him You are great, oh passionless, excellent sage ! I shall worship your feet with the lotus " "I am not great" said the sage, "People esteem the famous god of gods, *Jinavara* as the greatest of all, who has become purified having destroyed the enemies–*Karmas*, who is bright with knowledge, and has achieved perfection Worship Him, steeped in devotion " Hearing his words, *Dhanadatta*, without washing his hands and feet, worshipped the *Jina* with that excellent lotus, as *Indra* did on the *Meru* of yore People offered felicitations to him whose mind was bursting with the flood of devotion As a result of that single flower, he was born as the son of the king of *Campa* in you Who glorifies the *Jina* with purity, he takes the lady Salvation by the palm of his hand The excellent *Jina*, the forehead–mark of the world, was worshipped with hands and feet splashed in mud Therefore, this scab has come on to your hands and feet I have told you this pleasant story "

6 "Oh king, endowed with numerous virtues, friend, listen now to the story of your father Here, in the *Bharata* country, is the town of *Sravasti* where *Khecara* women mostly sport for long, there was a famous, sweet–tongued merchant by name *Nagadatta* His wife was named *Nagadatta* She was an *arani* stick for producing the fire of anxiety The great merchant would not leave her side and would not sleep any where else day or night The merchant adopted a son who was fondled by the tender hands of his wife This son of the merchant, oh king, grew up and became very gentle with his virtues One day, this Brahmana boy whose arms were long and stout like the elephant-trunk, was seen by the lotus-eyed *Nagadatta* who felt attracted to-wards him and the lovely-bodied one began to think in her mind

7 She looked again and again at the youth as if he was visible Cupid incarnate Like new gold in appearance, with eyes like those of a fawn, she soon became perverted in her mind Being shot with the sharp arrow of Cupid in all her body, nothing appeared pleasant to her heart She would shake her hands, bear horripilation, exhibit her line of hair to him, show her breasts and loosen the tie of skirt Say, what a person, blinded by love, may not do Being overpowered by the bunch of the arrows of the flower-armed, the way-ward one did not feel apprehensive of any body, not even of the elderly gentle-men whose minds were prepared for the welfare of the next world She did not

fear her son or relatives, nor fight shy of her dearest mother Was not that mine of all virtues, clever-minded and modest youth addressed by her in tender terms ?

8 Hearing those words, he shut his ears with his upraised, tender hands, and broadening his eyes and shaking his head, he, thinking her to be wicked, said "Alas, mother, oh mother ! what do you say this, as if you have been thoroughly intoxicated by wine ? I am your son and you are my mother What grace is there in your telling me this ? Do you not remember your high parentage which bears the excellence of the sky ? Respected as you are with honours and gifts, why have you resorted to this rashness, oh mother ? How is it that your intellect, which was the delight to the eyes and ears of people, has become so perverted ?" Interrupting his speech and grasping him by the hand, the love-stricken woman made him quiet A woman attracts the mind of even gods like *Hari, Hara, Brahma,* and *Indra,* what can a poor, stupid man, fallen in to her clutches, do ?

9 By nature, every one has the feeling of love and thinks of woman in his heart with one mind If he gets her consent, then, tell me, is the woman to be disregarded ? Whose mind does not shake in her company, he obtains the way to perfection, oh lord of men So, in the mean while, the sun set After many hours even the sun went to sleep, as it were The multicoloured evening pervaded the sky, she was, as it were, the bride of the sky, dressed red Thick darkness spread about where an adulteress can follow many men *Nagadatta,* infatuated with love, thought of the darkness in her heart and embraced that *Brahmana* who bit her lip But, in the meantime, the moon rose up in a moment, arousing sorrow in the mind of the unchaste woman Then the merchant observed her conduct and instantly retired to forest Having practised penance, he broke all ties and went to heaven, where, having enjoyed happiness, he died again, and, in course of days, came into the womb of *Vasumati* as the son of king *Vasupala* in the town of *Campa* That gracious *Dhadivahana,* beloved of the people and foremost in the world, having stout arms, meditated upon the Five Teachers on the mountain, occupied the topmost heaven, and became immortal

10 That *Brahmana,* as a result of adultery, wandered into the cycle of existence Having experienced misery in an inaccessible thicket of the forest, he was born an elephant in the country of *Kalinga* Under the arrangement of some *Karma,* it became the best elephant of the king of *Campa* Having cohabited with a stranger, *Nagadatta* experienced misery in the great ocean of transmigration Here, in the *Bharat* country, is the town *Tamralipti,* seeing which the lord of the gods does not feel satiated There was the good merchant *Vasumitra,* who came to have *Nagadatta* for his wife As they lived in enjoyment, one day, two daughters were born to them The first was named *Dhanavati* and the second *Dhanasri* In the town of *Nalanda,* there was the merchant *Dhanadatta* whose wife was *Dhanamitra* His son named *Dhanapala,* a patron of panegyrists, became first the husband of *Dhanavati*

11 In the town of *Kausambi* there was the merchant *Vasupala*

whose wife was *Vasumati* a source of pleasure He got a son named *Vasudatta*, the vanquisher of his foes and devoted to the lotus-feet of Jina *Dhanasri*, the basket of virtues, was given to him as *Candi* was given to *Isa* the lord of men She passed many days in the enjoyment of pleasures and 5 sports Then, one day, *Vasumitra* was snatched away by the cruel-handed messengers of Death Out of sorrow, *Nagadatta* left *Kausambi* and went to the house of her daughter Knowing her mother to be without any religious vows, the lotus-eyed *Dhanasri*, devoted to the lotus-feet of the sages, took her instantly to the Jina temple and gave her the vow of abstaining from 10 food at night, (saying) "Do not take your food at night, oh mother" Hearing that, the mother replied, "Wonderful is this system of religious vows and practices" Having bowed to the feet of the sage with bending head, the excessively good woman took the vow in her mind Knowing it to be a means of getting over the cycle of existence, destroyer of all ills and 15 giver of many excellences, the mother of *Dhanasri* took the vow of abstaining from food at night as it was revealed to her

12 Then, *Nagadatta*, one day, went to the house of *Dhanavati* As she lived there for many days, her elder daughter violated her vow of night As it was violated once, so it was successively violated thrice Then for the fourth time, *Nagadatta* went to the house of *Dhanasri* with pure mind Here *Nagadatta* was, in course of time, carried away by the hurrying messen- 5 gers of Death In *Kausambi* there was *Vasumati* the agreeable wife of king *Vasupala* *Nagadatta* was born her daughter exceedingly beautiful At her birth, the mother *Vasumati*, by the ripeness of *Karma*, was overtaken by a serious desease So, the king placed her in a box and threw it in the current of the Jumna Being made of precious stones, it shone forth brightly on the 10 dark waters of the Jumna, like the brilliant jewel on the crest of the female serpent It moved on from its place

13 There was another (box) made of wood in which the first one was concealed As it was beautifully made without any leak, it fell into the Ganges being carried by the current At places, it wavered by the waves, at places, it fell into a whirl-pool and at places it floated on very smoothly, thus exhibiting the beauty of a boat on the wide sea After some days, it reached 5 *Kusumapura* where lived the gardener's wife *Kusumadatta* She went to the Ganges for water and saw the box floating on Taking it out, she went home with it Both of them stood delighted with great expectations As they opened it and looked in, they saw a female child wrapped in a jewelled shawl In course of days, she attained youth and fell into the sight of your father 10 She, who had become known amongst people by the name of *Padmavati*, charming by the lustre of her body and very smooth, was married by your father, and, in time, you came into her womb On that occasion, she mounted on the great elephant and rode about the town The elephant, bearing the old infatuation, carried her off trembling with fear 15

14 She escaped from it some how and went to the dreadful garden A certain gardener took her home, but his wife soon quarrelled with her

Afflicted with grief, she went to the cemetery where you were born I have told you the facts Listen now to the account of *Madanavali*, mysterious is the destiny of creatures Having obtained birth in the species of dove, she became a female-pigeon pleasing to the eyes Feedings on curds and boiled rice in the cage, as she lived sporting with her mate, there came a snake gliding, as if the dreadful god of death had arrived Both of them were caught by the legs by it, but you kindly rushed and saved them By the *Navakara*, she has been born in her who has her affections fastened on you The pigeon and the snake bacame *Khecaras* on account of the Navakara obtained from a sage Out of jealousy did the snake *Khecara* carry away your wife to his own home

15 Whatever you asked me, oh king, I have told you to my ability " Hearing that, the king was wonderstruck and thought in mind of practising austerities In the mean while, *Padmavati* arrived where the sage was revealing the charming religion She adored the sage devoutly bending her head and called out her son in sweet tone Then she asked the sage who was the embodiment of knowledge "Tell me oh master, of some religious practice which may serve as a strong bolt to the house of misery and hell and by means of which my female sex may be changed " To her who was afraid of the great ocean of existence, who had abandoned all pleasures and numerous comforts, and who was feeling miserable, the great ascetic compassionately preached the religious practice that may lead to happiness and prosperity "Beginning with the first (of the month) whoever would observe fast always, oh daughter, would realise the happiness desired in his heart and enjoy sportively on the heavenly couch

16 By fasting on the first (of the month) the first heaven is attained, by fasting on the second the second class of gods is achieved By a fast on the third, residence in the third heaven is secured and by the fourth a happy abode in the fourth is obtained The fifth gives happiness in the fifth, and the fast on the sixth leads to the sixth heaven One goes to the seventh heaven by a fast on the seventh and to the eighth by one on the eighth Then, by a fast on the ninth the ninth, world of the gods is obtained and by one on the tenth, one gets enjoyment in the tenth By a fast on the eleventh one goes to the eleventh heaven and by one on the twelfth to the twelfth The thirteenth brings one into the thirteenth and the fourteenth secures the fourteenth The fifteenth shows the fifteenth and the sixteenth fast brings it to a conclusion He, who takes his food and drink after this, having performed the pleasant worship of the Jina, he, having climbled by these steps, certainly follows up the lady salvation

17 This ceremony should be completed devoutly with a pleased mind, dressed in a fine, red and bright garment Having worshipped the path to happiness, and placing a jar in front, covering it also with a new and beautiful cloth, it should be worshipped with all the materials of worship by offering them into it Then, placing a religious book there and observing sleeplessness by the trumpet, bestowing the four kinds of gifts on the deserving recipients, the book, should be worshipped and the Jina bathed You should honour this (ceremonial) Sixteen canopies and flags jingling with small bells, should

be presented to a Jina temple By the fast of this beautiful vow you shall obtain all your desired happiness " 10

18 Again, she asked the great sage who had brought the lord of gods to his lotus-feet "Oh excellent sage, has any one observed this any where and obtained the fruit of the vow ?" Hearing that, the lord of sages spoke so that the doubt of her mind might be removed "*Sumitra* the young daughter of the king of *Ujjaini* took this vow in her mind At the first fast she died and was 5 born in the home of a Brahmana in *Ujjaini* By observing the fast for two *Ghatikas* only, she changed her miserable female sex While the child was yet in womb, the father died The mother looked after all his happiness One day, the mother quarrelled and expelled her son from home, Feeling angry, he went out of the town and lodged in an old temple at night There came a 10 multitude of *Vidyadhara* women, seeing whom he felt excited

19 He caught the border of the garment of one of them All of them fled away by his fear But the garment fell into his hand The hero then returned home The mother welcomed him and took the cloth to a big merchant The merchant purchased it for money and presented the excellent cloth to the king The king asked him "Have you got another ? If you bring one more 5 I shall give you an elephant " He said "The son of the Brahmana might bring another such cloth, oh lord !" The king sent him out with money The Brahmana went back to the forest There he saw a *Rakshasa* woman sharpening a cutter with her hand Knowing her to be a *Rakshasa* woman, the Brahmana stretched his stick over her head The *Rakshasa* woman, then, folding her 10 hands, stood in front of the Brahmana, shaking with fear, and said—

20 "I have committed no crime, why have you got enraged with me ?" The Brahmana spoke unpleasant words to her "This stick devours hundreds of *Rakshasa* " With scared eyes and trembling with fear, she clung to his feet atonce, "Do not beat me, lord, hold back I shall do all that you say " He then made her assume a beautiful appearance and brought her 5 home Having secured the cloth from her, he presented it instantly to the king Seeing that, the king was pleased with him and bestowed a great favour upon him Observing that, the minister—Brahmana thought of destroying his life The minister went to the dear wife of the king and told her "Ask for tiger-milk " Then she instantly took her bed 10

21 Hearing about the condition of the queen, the king immediately went to her She told that to the king who commissioned the good Brahmana for it The Brahmana went home and instantly turned the *Rakshasa* woman into a tigress with a rope fastened to her neck He brought her to the palace and presented her to the king instantly At her sight, all people fled away 5 (The Brahmana said) "Your minister shall milk her well " The minister, being terrified, told the king "There is no purpose of the milk, let it go away " Then the minister, in secret consultation, told the queen soon again "You ask for speaking water to be brought Do it so, that, being gone, he may never return " Then she said "Listen, oh king, get soon speaking water " Hearing 10

that the king told the Brahmana "It is for you to devise means for the accomplishment of this mission"

22 He brought the *Rakshasa* woman turning her into water and made it to speak in front of the king It said "I would eat away both persons, the minister and the queen, oh king !" Hearing this, the king felt wonder-struck and asked the Brahmana about it all He told the doings of the minister, and the king turned out the wicked one The king then made the Brahmana his 5 minister and the people of the town were satisfied with it On a subsequent day, the good Brahmana retired for austerities and entered the portals of heaven He was reborn as *Arjuna* This is the fruit of the ceremonial, oh daughter !" She then accepted it immediately and observed it with devotion to lord Jina As an inviolable fruit of the vow, the lovely lady set aside her 10 female sex, and then renouncing the world, died and soon entered heaven

23 In the meanwhile, Karakanda, when he heard of this, felt highly grieved He clung to the feet of the Jina, became afraid of the afflictions and felt detached from the world "I have, for long, been devoured by the succession of sorrow, birth and death, the home of sin" Then he said to the worshipful, compassionate sage "My foot has touched the Jina image Prescribe 5 some expiation for the sin and nullify the crime quickly Release me, oh holy sir, so that I may practise penance and vanquish the great warriors, anger and others The sage kindly accepted (his prayer) Karakanda transferred the kingdom to *Vasupala*, and, being weary of the great miseries of the world, took to the practice of austerities He plucked off his curly hair as if they were the 10 gliding serpents the *Karmas* Counting all the inmates of the harem as straw, he removed the clothes from his body When he took the vow of austerities leaving aside the feudatories, ministers and the earth, the fact was reported into the town by some one who came in heavy with sorrow

24 Then *Madanavali* got up restraining herself and abandoning the necklace *Rativega* ran beating her breasts and regarding her camphorbox as straw *Kusumavali* threw away the flowers, and *Ratnavali* ceased to wear the pearls *Anangalekha* left aside her jewels and walked away, while *Candralekha* lost the lustre of her body in a moment All the queens ran up and stood 5 before the sage, being attached to the king But seeing the king, they became peaceful and stood there folding their hands They requested the sage "Recommend hard vows to us, oh master ! we shall practise austeries" The sage gave them the liberty and they who had suppressed Cupid, accepted the vow Having practised hard penance, they all went to heaven, while Karakanda, 10 thinking of the Jina in his heart, toured from country to country

25 Then, he, who was disgusted with the pleasures of the senses and was weary of the ocean of metem-psychosis (practised the vow) famous in the world by the name of *Panca-kalyana-vidhana* in the presence of which ignorance, vanishes, by practising which the mind becomes steady, by which people become mighty and religious like *Baladeva* and *Narayana*, by performing which 5 people become lords of gods, serpents and men and even passionless *Jina*,

through which all good fortunes are attained, by means of which one advances to the stage of supreme knowledge, by which people become heart-winning *Kamadevas* and cross over the entire ocean of virtues, by which unblemished faith is held and the damsel salvation is easily achieved, which is a sheath (i e remedy) against the abode of miserable hell, by obtaining which one can obtain supreme knowledge, and which has been declared by the great sages enjoying supreme knowledge as the foremost of all forms and ceremonies

26 He performed what the sole emperor had performed with bent head i e five baths to the Jina with hundreds of jars full of boiled butter, curds and milk, giving three baths during the day and two at night, along with the sound of trumpets and shouts of victory that filled the earth He performed the auspicious rite of 'Coming into the womb' with joy, on the first of the dark fortnight of the month of *Bhadrapada* He, of gentle conduct, observed a fast on that day for the sake of perfection During night, the form called 'Devotion to the perfected' was observed as well as the 'Devotion to right conduct' After that, he performed the 'Devotion to the Scriptures' destructive of future worldly existence Then the good form of the 'Renunciation of the body' was observed by the repetition of the sacred formula two hundred times Then, on the fifth day, he observed the potent vow of the 'Holy Birth' The aforesaid, pleasant and virtuous ceremony was rehearsed Having observed a fast on the misery-removing eighth day, the bright ceremony of 'Renunciation' was performed accompanied by the 'Devotion to Self-concentration' Again, on the tenth day, he performed the ceremony of 'Supreme knowledge' as said above, together with the 'Devotion to Scriptures' which is the abode of all happiness Having devoutly observed a fast on the fourteenth, the ocean of virtues performed the ceremony of the fifth auspicious rite which is resplendent with the eight foremost qualities and which holds numerous merits The last muttering of the prayers was done two hundred and eight times This foremost vow was observed by him bearing great delight in his heart Whichever other wise man does the same, causes his fame to go round the earth

27 Performing severe penance, the meritorious religious meditation was observed three times a day under different trees Breaking off dishonesty, pride and attachment, he cast, at a distance, greed Restraining the actions of the five senses, considering mind, speech and body as straw, observing self-restraint of the two kinds, setting his heart upon the highest status, consuming the tree of *Karma* in the fire of meditation so that misery may not become visible even in dream, valuing gold as a heap of grass and sandal as mud, he warded off his eyes that arouse passion by fixing them on his nose Uniting himself to supreme knowledge which is devoid of parts like the clear sky, he found his self in himself, and, breaking the ties of *Karmas*, he soon attained to the region of 'All desires fulfilled', by the fruit of the vow now recommeneded by Sage Kanakamara

28 By me born in an old Brahmana family, of the *gotra* of the sage *Candra*, pure, become skyclad through the growth of ascetic spirit, whose name

has become well-known as Kanakamara, the pupil of *Budhamangaladeva*, and who has caused satisfaction to the minds of people, has this life been published on earth for the training and pleasure of the faithful, out of devotion 5 to the lotus-feet of the *Jina*, having arrived in the town of *Asai* and living there Whatever has been said by me, ignorant of the sacred books, wise people might proclaim with more beauty I have expressed myself to those gentlemen whose mind is ever ready to help others I ask with folded hands Let all forgive me for my (boldness in) composing this work Whoever reads, listens 10 to, reflects upon in mind and popularises among people, this life, that man, the ornament of the world, shall obtain the glorification of his own virtues

29 Who, in course of days, attained fresh youth as if a god had dropped down from a celestial car, who was golden in appearance and had charming limbs, to whom king *Vijavala* was attached, who had nourished in himself the great tree of righteousness, who was, as if, the mouth-piece of *Vijavala*, who vanquished invincible foes easily, who used to divert his mind with 5 elephant-sport, who was the supporter of his relations, dear ones and friends, who was a charm to the mind of king *Bhuvala*, who removed the miseries of the poor and helpless, who amused the mind of king *Karna*, who perturbed the king's assembly by his speech, who charmed the king by his business-ability, who was extremely courageous in a great fight, who was well known to people 10 as in no way a coward and dullard, who was a shower of gold-bracelets, who fulfilled the desires of the panegyrists, who was a bee on the lotus-feet of *Jina*, who was beautiful to the eyes in his whole person, who was never forgotten by the minds of sportive women, who was addressed by people as a stream of good nature whose fame was never tired of wandering about, and in recounting 15 whose virtues the goddess of speech felt diffident, he had as his sons, Ahula, Ralho and Rahula who were eager for the feet of sage Kanakamara Out of regard for him I published this pleasant life amongst people May he, along with his kinsmen, children and wife, enjoy long, as long as the sun and the moon subsist 20

Here ends in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites the tenth chapter describing the achievement of *Sarvarthasiddhi* by Karakanda

SECTION X

through which all good fortunes are attained, by means of which one advances to the stage of supreme knowledge, by which people become heart-winning *Kamadevas* and cross over the entire ocean of virtues, by which unblemished faith is held and the damsel salvation is easily achieved, which is a sheath 10 (i e remedy) against the abode of miserable hell, by obtaining which one can obtain supreme knowledge, and which has been declared by the great sages enjoying supreme knowledge as the foremost of all forms and ceremonies

26 He performed what the sole emperor had performed with bent head i e five baths to the Jina with hundreds of jars full of boiled butter, curds and milk, giving three baths during the day and two at night, along with the sound of trumpets and shouts of victory that filled the earth He performed the auspicious rite of 'Coming into the womb' with joy, on the first of the 5 dark fortnight of the month of *Bhadrapada* He, of gentle conduct, observed a fast on that day for the sake of perfection During night, the form called 'Devotion to the perfected' was observed as well as the 'Devotion to right conduct' After that, he performed the 'Devotion to the Scriptures' destructive of future worldly existence Then the good form of the 'Renunciation of the 10 body' was observed by the repetition of the sacred formula two hundred times Then, on the fifth day, he observed the potent vow of the 'Holy Birth' The aforesaid, pleasant and virtuous ceremony was rehearsed Having observed a fast on the misery-removing eighth day, the bright ceremony of 'Renunciation' was performed accompanied by the 'Devotion to Self-concentration' Again, 15 on the tenth day, he performed the ceremony of 'Supreme knowledge' as said above, together with the 'Devotion to Scriptures' which is the abode of all happiness Having devoutly observed a fast on the fourteenth, the ocean of virtues performed the ceremony of the fifth auspicious rite which is resplendent with the eight foremost qualities and which holds numerous merits The last 20 muttering of the prayers was done two hundred and eight times This foremost vow was observed by him bearing great delight in his heart Whichever other wise man does the same, causes his fame to go round the earth

27 Performing severe penance, the meritorious religious meditation was observed three times a day under different trees Breaking off dishonesty, pride and attachment, he cast, at a distance, greed Restraining the actions of the five senses, considering mind, speech and body as straw, observing self-restraint of the two kinds, setting his heart upon the highest status, consuming 5 the tree of *Karma* in the fire of meditation so that misery may not become visible even in dream, valuing gold as a heap of grass and sandal as mud, he warded off his eyes that arouse passion by fixing them on his nose Uniting himself to supreme knowledge which is devoid of parts like the clear sky, he found his self in himself, and, breaking the ties of *Karmas*, he soon attained to 10 the region of 'All desires fulfilled', by the fruit of the vow now recommeneded by Sage Kanakamara

28 By me born in an old Brahmana family, of the *gotra* of the sage *Candra*, pure, become skyclad through the growth of ascetic spirit, whose name

has become well-known as Kanakamara, the pupil of *Budhamangaladeva*, and who has caused satisfaction to the minds of people, has this life been published on earth for the training and pleasure of the faithful, out of devotion to the lotus-feet of the *Jina*, having arrived in the town of *Asai* and living there Whatever has been said by me, ignorant of the sacred books, wise people might proclaim with more beauty I have expressed myself to those gentlemen whose mind is ever ready to help others I ask with folded hands Let all forgive me for my (boldness in) composing this work. Whoever reads, listens to, reflects upon in mind and popularises among people, this life, that man, the ornament of the world, shall obtain the glorification of his own virtues

29 Who, in course of days, attained fresh youth as if a god had dropped down from a celestial car, who was golden in appearance and had charming limbs, to whom king *Vijavala* was attached, who had nourished in himself the great tree of righteousness, who was, as if, the mouth-piece of *Vijavala*, who vanquished invincible foes easily, who used to divert his mind with elephant-sport, who was the supporter of his relations, dear ones and friends, who was a charm to the mind of king *Bhuvala*, who removed the miseries of the poor and helpless, who amused the mind of king *Karna*, who perturbed the king's assembly by his speech, who charmed the king by his business-ability, who was extremely courageous in a great fight, who was well known to people as in no way a coward and dullard, who was a shower of gold-bracelets, who fulfilled the desires of the panegyrists, who was a bee on the lotus-feet of *Jina*, who was beautiful to the eyes in his whole person, who was never forgotten by the minds of sportive women, who was addressed by people as a stream of good nature whose fame was never tired of wandering about, and in recounting whose virtues the goddess of speech felt diffident, he had as his sons, Ahula, Ralho and Rahula who were eager for the feet of sage Kanakamara Out of regard for him I published this pleasant life amongst people May he, along with his kinsmen, children and wife, enjoy long, as long as the sun and the moon subsist

Here ends, in the life of the great king *Karakanda*, composed by Sage *Kanakamara*, which is an ornament to the ears of the holy and which presents the richness of the fruit of the desire-giving tree of the five auspicious rites, the tenth chapter describing the achievement of *Sarvarthasiddhi* by Karakanda

SECTION X

APPENDIX A.

करण्डु राजा

[Extract from कुम्भकार–जातक in Jataka Vol III]

अतीते बाराणसिय ब्रह्मदत्ते रज्ज कारेन्ते बोधिसत्तो बाराणसिनगरस्स द्वारगामे कुम्भकारकुले[1] निब्बत्तित्वा वयप्पत्तो कुटुम्ब सण्ठपेत्वा एक पुत्तञ्च धीतरञ्च लभित्वा कुम्भकारकम्म निस्साय पुत्तदार[2] पोसेसि[3]। तदा कालिङ्गरट्ठे दन्तपुरनगरे[4] करण्डु[5] नाम राजा महन्तेन परिवारेन उय्यान गच्छन्तो उय्यानद्वारे फलभारभरित मधुरफल अम्बरुक्ख दिस्वा हत्थिक्खन्धगतो[6] येव हत्थ पसारेत्वा एक अम्बपिण्ड गहेत्वा उय्यान पविसित्वा मङ्गलसिलाय निसिन्नो दातब्बयुत्तकान दत्वा अम्ब परिभुञ्जि। रञ्ञा गहितकालतो पट्ठाय सेसेहि नाम गहेतब्बमेवा ति अमच्चापि ब्राह्मणगहपतिकादयो पि अम्बानि पातेत्वा खादिंसु। पच्छा पच्छा[7] आगता रुक्ख आरुय्ह मुग्गरेहि पोथेत्वा ओभग्गविभग्गसाख कत्वा आमकफल[8] पि असेसेत्वा खादिंसु। राजा दिवस उय्याने[9] कीळित्वा सायण्हसमये अलङ्कतहत्थिक्खन्धे[10] निसीदित्वा गच्छन्तो त रुक्ख दिस्वा हत्थितो ओतरित्वा रुक्खमूल गन्त्वा रुक्ख ओलोकेत्वा "अय पातो व पस्सन्तान अतित्तिकरो फलभारभरितो सोभमानो अट्ठासि, इदानि गहितफलो ओभग्गविभग्गो असोहमानो ठितो" ति चिन्तेत्वा पुन अञ्ञतो ओलोकेन्तो अपर निप्फल अम्बरुक्ख दिस्वा "एस रुक्खो अत्तनो निप्फलभावेन मुण्डमणिपब्बतो विय सोभमानो ठितो, अय पन फलित[11] भावेन इम ब्यसन पत्तो, इद अगारमज्झम् पि फलितरुक्खसदिस पब्बज्जा निप्फलरुक्खसदिसा सधनस्सेव भय अत्थि[12] निधनस्स भय नत्थि, मयापि निप्फलरुक्खेन विय भवितब्ब" ति फलरुक्ख आरम्मणं कत्वा रुक्खमूले ठितको व तीणि लक्खणानि सल्लक्खेत्वा विपस्सन वड्ढेत्वा पच्चेकबोधिञाणं निब्बत्तेत्वा "विद्धसिता[13] दानि मे मातुकुच्छिकुटिका छिन्ना तीसु भवेसु पटिसन्धि, सोधिता ससारुक्कारभूमि, सोसितो[14] अस्सुसमुद्दो, भिन्नो[15] अट्ठिपाकारो[16], नत्थि मे पुन पटिसन्धी" ति आवज्जन्तो[17] सब्बालङ्कारपतिमण्डितो[18] व अट्ठासि। अथ न अमच्चा आहसु "अतिबहुठित अत्थ महाराज" ति। "न मय राजानो[19] पच्चेकबुद्धा नाम मय" ति। "पच्चेकबुद्धा[20] न तुम्हादिसा होन्ति देवा" ति। "अथ कीदिसा होन्ती" ति। ओरोपितकेसमस्सुकासाववत्थपटिच्छन्ना कुले वा गणे वा अलग्गा वातच्छिन्नवलाहकराहुमुत्तचन्दमण्डलपटिभागा[21] हिमवति नन्दमूलपब्भारे वसन्ति, एवरूपा देव पच्चेकबुद्धा" ति। तस्मिं खणे राजा हत्थ उक्खिपित्वा सीस परामसि तावदेवस्स गिहिलिङ्ग अन्तरधायि समणलिङ्ग पातुरहोसि—

> तिचीवरञ्च पत्तो च वासि सूचि च बन्धन।
> परिस्सावनेन अट्ठेते युत्तयोगस्स भिक्खुनो ति॥

---

१ °रकुल २ °दान ३ पे° ४ नन्द° ५ करण्डको ६ °क्खन्धवरगतो ७ only one पच्छा. ८ आमफल ९ °न १० °ब्बवरे ११ सफलभा° १२ omit अत्थि १३ विध° १४ सोधिता. १५ छिन्दो १६ अत्ता° १७ °ज्जेन्तो. १८ पटि° १९ महारा° २० नाम. २१ °लाहका°, लाहतराहुमुखामु°

एववुत्ते[1] समणपरिक्खारा कायेपटिबद्धा[2] व अहेसु । सो आकासे ठत्वा महाजनस्स ओवाद दत्वा अनिलपथेन उत्तरहिमवन्ते नन्दमूलपब्भारमेव अगमासि ।

× × ×

करण्डु[1] नाम कलिंगानं गन्धारानं च नग्गइ ।
निमिराजा विदेहानं पचालानं च दुम्मुखो ।
एते रट्ठानि हित्वान पब्बजिंसु अकिंचना ॥
सब्बेविमे[2] देवसमा समागता[3] । अग्गी[4] यथा पज्जलितो तथेविमे[5] ॥
अहं पि एको[6] चरिस्सामि भग्गवि[7] । हित्वान कामानि यथोधिकानी ति[8] ॥

[तास अत्थो । भद्दे एस सघत्थेरपच्चेकबुद्धो दन्तपुरे नाम नगरे करण्डु[9] नाम कलिंगानं जनपदस गजा ' ।]

TRANSLATION

Once upon a time when Brahmadatta was reigning in Benares, the Bodhisatta was born in a potter's family in a suburb of Benares when he grew up he became a householder, had a son and daughter, and supported his wife and children by his potter's handicraft At that time in the Kalinga kingdom, in the city of Dantapura, the king named Karandu, going to his garden with a great retinue, saw at the garden-gate a mango tree laden with sweet fruit he stretched out his hand from his seat on the elephant and seized a bunch of mangoes then entering the garden he sat on the royal seat and ate a mango, giving some to those worthy of favours From the time when the king took one, ministers, brahmins and householders, thinking that others should also do so, took down and ate mangoes from that tree Coming again and again they climbed the tree, and beating it with clubs and breaking the branches down and off, they ate the fruit, not leaving even the unripe The king amused himself in the garden for the day, and at evening as he came by on the royal elephant he dismounted on seeing the tree, and going to its root he looked up and thought, " In the morning this tree stood beautiful with its burden of fruit and the grazers could not be satisfied now it stands not beautiful with its fruit broken down and off " Again looking from another place he saw another mango tree barren, and thought, " This mango tree stands beautiful in its barrenness like a bare mountain of

---

१ वुत्ता° २ काये

१ करकण्ड २ °वमे, °पिमे ३ omit समा ४ all four MSS °ग्गि ५ °पिमे ६ एको व, एको वि, एको चस्सा, ७ अग्गवि, अग्गिव ८ यतोठितानि, सतोचदितानीति, ९ करकण्डको

jewels, the other from its fruitfulness fell into that misfortune the householder's life is like a fruitful tree, the religious life like a barren tree I too would be like the barren tree" So taking the fruit-tree as his subject, he stood at the root, and considering the three (impermanence, suffering, unreality) properties and perfecting spiritual insight, he attained pacceka-buddha-hood, and reflecting "the envelope of womb is now fallen from me, rebirth in the three existences is ended, the filth of transmigration is cleansed, the ocean of tears dried up, the wall of bones broken down, there is no more rebirth for me," he stood as if adorned with every ornament Then his ministers said, " You stand too long, O Great King !" " I am not a King, I am a pacceka-buddha " " Pacceka-buddhas are not like you, O king " " Then what are they like ?" "Their hair and beards are shaved, they are dressed in yellow robes, they are not attached to family or tribe, they are like clouds torn by wind or the moon's orb freed from Rahu, and they dwell on Himalaya in the Nandamula cave such, O king, are the pacceka-buddhas " At that moment the king threw up his hand and touched his head, and instantly the marks of a householder disappeared, and the marks of a priest came into view —

Three robes, bowl, razor, needles, strainer, zone,
A pious brother those eight marks should own

The requisites, as they are called, of a priest became attached to his body Standing in the air he preached to the multitude, and then went through the sky to the mountain cave Nandamula in the upper Himalaya

× × ×

Kalinga's king Karandu, Gandhara's Naggai,
Pancala's ruler Durmukha, Videha's great Nimi,
Have left thrones and lived the life of Brothers sinlessly

Here the godlike forms they show
Each one like a blazing fire
Bhaggavi, I too will go
Leaving all that men desire

APPENDIX B.

करकण्डू राया

[The story occurs in Devendra's commentary on Uttaradhyayana Sutra It is reproduced here from Jacobi's Ausgewahlte Erzahlungen in Maharashtri The translation is reproduced from J J Meyer's Hindu Tales]

तत्थ करकण्डू । चम्पाए नयरीए दहिवाहणो राया । तस्स चेडग–धूया पउमावई देवी । अन्नया य तीसे दोहलो जाओ । किहाह[1] रायनेवच्छेनं नेवच्छिया महारायधरियछत्ता उज्जाणकाणणानि[3] हत्थिखन्धवरगया विहरेज्जा । सा उ लुग्गा जाया, राइणा पुच्छिया, कहिओ सब्भावो ताहे, राया सा य जयहत्थिमि आरूढाउ[4] राया छत्त धरेइ गया उज्जाण । पढमपाउसो य तया वट्टइ । सीयलएण[5] सुरहि-गन्ध-मट्टिया-गन्धेण हत्थी[6] अउभाहओ वण सभरेड । करी वि पयत्तो वणाभिमुहो पयाओ पहाओ जणो न तरइ पिट्ठओ[7] ओलग्गिउ । दो वि अडविं पवेसियाउ[8] राया वडरुक्ख पेच्छइ[9] देविं भणइ । एयस्स वडस्स हेट्ठेण[10] जाहिइ तओ तुम साह गेण्हेज्जासि । ताए पडिसुय । न तरइ गेण्हिउं । राया दक्खो तेण साहा गहिया । सो उत्तिण्णो निराणन्दो किंकायव्वयामूढो गओ चम्प ।

सा य पउमावई नीया निम्माणुसिं अडविं । जाव तिसाइओ ताव पेच्छइ तलाग महइ-महालय हत्थी । तओ तत्थ ओइण्णो अभिरमइ । इमा वि सणिय सणिय ओइण्णा करिणो उत्तिण्णा[11] तलागाओ । दिसाओ न जाणइ । भयभीया समन्तओ त वण पलोएइ । तओ अहो कम्माण परिणई जेण अतक्कियमेव एरिस वसणमह पत्ता । ता किं करेमि[12] का मे गइ त्ति सोयं[13] परव्वसा रोविउं पयत्ता । खणमेत्तेण काऊण धीरय चिन्तिय तीए । न नज्जइ, बहुदुट्ठसावयसकुले एयमि भीसणे वणे किं पि हवइ । ता अप्पमत्ता हवामि । तओ कय चउसरण गमण गरहियाइ दुच्चरियाइ खामिओ सयलजीवरासी, कय सागार भत्तपच्चक्खाण ।

> जइ मे होज्ज पमाओ इमस्स देहस्सिमाय वेलाए ।
> आहारमुवहिदेहं चरिमे समयंमि वोसिरियं[14] ॥

तओ पचनमोक्कारो मे सरण, जओ सो च्चेव इहलोग-परलोगेसु कल्लाणावहो । भणिय च—

> वाहि जल-जलण-तक्कर-हरि-करि-सगाम-विसहर-भयाइं ।
> नासन्ति तक्खणेणं नवकार-पहाण-मन्तेण ॥
> न य तस्स किंचि पहवइ डाइणि-वेयाल-रिक्ख-मारि-भयं ।
> नवकार-पहावेणं नासन्ति य सयल दुरियाइं ॥

---

१ किला° २ °त्थ° ३ °णे ४ °आ ५ सीया° ६ ओ ७ °आ ८ °आ ९ °क्ख° १० हेट्ठ°. ११ ओइण्णा १२ add कत्थ गच्छामि १३ mss साय १४ add सव्व तिविहेण वोसिरिय

तहा·—

हिययगुहाए नवकारकेसरी जाण संठिओ निच्चं।
कम्मट्ठगण्ठि दोघट्टघट्टय ताण परिनट्ठं ॥

तओ नवकारमणुसरन्ती पविट्ठा एगदिसाए। जाव दूर गया ताव दिट्ठो एगो तावसो। तस्स मूल गया अभिवाइओ सो। पुच्छिया तेण कओ सि, अम्मो, इहागया। ताहे कहेइ अहं चेडगस्स धूया, जाव हत्थिणा आणीया। सो य तावसो चेडगस्स नियल्लओ। तेण आसाइया मा बिहेहि[1] त्ति। भणिया य मा सोय करेहि ईइसो[2] चेव सजोगविओगहेऊ जम्म-मरण रोग-सोग-पउरो असारो ससारो। वणफलेहिं अणिच्छन्ती वि काराविया पाणवित्तिं[3] नीया वसिम[4] भणिया य एत्तो परेण हलकिट्ठा भूमि त न अक्कमामो अम्हे। एसो दन्तपुरस्स विसओ दन्तवक्को य एत्थ राया। ता तुम निब्भया गच्छ एयम्मि नयरे। पुणो सुसत्थेण गच्छसुं चम्प ति। नियत्तो तावसो। इयरा पविट्ठा दन्तपुर, गया पुच्छन्ती साहुणीमूल। वन्दिया पवत्तिणी। पुच्छिया कओ[6] साविगा। कहिय तीए जहट्ठिय। परुण्णा मणाग सठविया पवत्तिणीए महाणुभावे, मा कुणसु चित्तखेय अलघणिओ हु विहिपरिणामो। जओ —

विहाडवइ घडिय पि हु विहडियमवि किंचि संघडावेइ।
अइनिउणो एस विही सत्ताण सुहासुहक्करणे ॥

किं च—

खणदिट्ठनट्ठविहवे खणपरियट्टन्तविविहसुहदुक्खे।
खणसंजोगविओगे संसारे नत्थि कि पि सुहं ॥
जेणं चिय संसारो बहुविहदुक्खाण एस भण्डारो।
तेण चिय इह धीरा अपवग्गपह पवज्जन्ति ॥

एवमाई अणुसासिया सवेगमुवगया ताण चेव मूले पव्वइया। पुच्छियाए वि दिक्खाए अदाणभएण गब्भो न अक्खाओ। पच्छा णाए मयहरियाए[9] सब्भाओ कहिओ। पच्छन्न घरियो[10] पसूया समाणी सह नाममुद्दाए कम्बलरयणेण य सुसाणे छड्डेइ। पच्छा मसाणपालेण गहिओ भज्जाए अप्पिओ। अवकिण्णओ[11] त्ति नाम कय। सा य अज्जा तीए पाणीए सम मेत्तिं करेइ त्ति। सा अज्जा ताहिं सजईहिं पुच्छिया कहिं गब्भो। भणइ मयगो जाओ, ता मे उज्झिओ। सो तत्थ सवड्ढइ। ताहे दारगरूवेहिं सम रमइ। सो ताणि[12] डिम्भरूवाणि भणइ अह तुब्भ राया, मम कर देह। लुक्खकच्छूए गहिओ। ताणि भणइ मम[13] कण्डूयह। ताहे से करकण्डु त्ति नाम कय। सो य ताए मजईए अणुरत्तो। सा य से मोयए देइ, ज वा भिक्ख लद्ध लहेइ[14]।

सवड्ढिओ सो सुसाण रक्खइ। तत्थ दो सजया केणइ कारणेण अइगया; जाव एगत्थ कुडगे दण्डग[15] पेच्छन्ति। तत्थ एगो दण्डलक्खण जाणइ, जहा —

---

१ °ह २ ईएसो, ३ mss °वित्ती ४ तापसाश्रम ५ गच्छेज्जासु ६ कुओ ७ °ह क° ८ पमाइ. ९ mss नाए, १erb महयरियाए १० पच्छण्णा ११ अवकण्णिओ १२ डिक्क, दिव्व १३ मम १४ °भ° १५ दण्ड.

एगपव्वं पसंसन्ति दुपव्वा कलहकारिया । तिपव्वा लाभसंपन्ना चउपव्वा मारणन्तिया ॥१॥
पंचपव्वा उ जा लट्ठी पन्थे कलहनिवारिणी । छपव्वा य आयंको सत्तपव्वा अरोगिया ॥२॥
चउरंगुलपइट्ठाणा अद्धंगुलसमूसिया । सत्तपव्वा उ जा लट्ठी मत्तगयनिवारिणी ॥३॥
अट्ठपव्वा,असंपत्ती नवपव्वा जसकारिया । दसपव्वा उ जा लट्ठी तहियं सव्वसंपया ॥४॥
वंका कीडक्खइया चित्तलया पोल्लया[1] य दड्ढाय । लट्ठी य उब्भसुका वज्जेयव्वा पयत्तेण ॥५॥
घणवट्टमाणपव्वा निद्धा वण्णेण एगवण्णा य । एमाइ लक्खणजुया पसत्थ लट्ठी मुणेयव्वा ॥६॥

तओ तेण भणिय जो[3] एय दण्डग[4] गेण्हिस्सइ सो राया होहिइ; किंतु पडिच्छियव्वो[5] जाव अन्नाणि चत्तारि अगुलाणि वड्ढेइ ताहे जोगो त्ति । त तेन मायगचेडगेण[6] सुय एक्केण य धिज्जाइएण । ताहे सो धिज्जाइओ अप्पसारिय तस्स चउरगुल खणिऊण छिन्देइ । तेण य चेडगेण दिट्ठो सो उद्दालिओ । सो तेण धिज्जाइएण करण नीओ । भणइ, देहि दण्डग । सो भणइ, मम मसाणे एस वड्ढिओ अओ न देमि । धिज्जाइओ भणइ, अन्न गेण्ह । सो नेच्छइ । सो दारगो न देइ । तेहि सो दारगो पुच्छिओ किं न देसि । भणइ य अह एयस्स दण्डगस्स पहावेण राया होहामि त्ति । ताहे कारणिया हसिऊण भणन्ति, जया तुम राया होज्जासि तया तुम एयस्स गाम देज्जासि । पडिवन्न तेण । धिज्जाइएण वि अन्ने धिज्जाइया भणिया, जहा एव मारेत्ता दण्डग हरामो । त तस्स पिउणा सुय । ताणि तिण्णि वि नट्ठाणि जाव कचणपुर गयाणि । तत्थ राया अपुत्तो मओ । आसो अहियासिओ तस्स बाहिं[7] सुयन्तस्स मूलमागओ पयाहिणी काऊण ठिओ । जाव आयरेण[8] नायरा पेच्छन्ति लक्खणजुत्त जयसद्दो कओ नन्दीतूरमाहय । इयो वि जम्भन्तो उट्ठिओ । वीसत्थो आसे विलग्गो पवेसिज्जइ । मायगो त्ति धिज्जाइया न देन्ति पवेस । ताहे तेण दण्डरयण गहिय । त जलिउमाढत्त । ते भीया ठिया । ताहे तेण वाडहाणगा हरिएसा धिज्जाइया कया । उक्तं च—

दधिवाहनपुत्रेण राज्ञा च करकण्डुना ।
वाटधानकवास्तव्याश्चाण्डाला ब्राह्मणीकृता ॥

तस्स य घरनाम अवकिण्णगो[9] त्ति अवहीरिऊण तेहिं चेव चेडगकय पइट्ठिय करकण्डु त्ति । ताहे सो धिज्जाइओ आगओ देहि मम गाम । भणइ जो ते रुच्चइ ते गेण्हह । सो भणइ . मम चम्पाए घरं ता तीए विसए देहि । ताहे दहिवाहणस्स लेह देइ · एयस्स बम्भणस्स दिज्जे एग गाम[10] । अह तुज्झ, ज रुच्चइ, गाम वा नगर वा देमि । सो रुट्ठो दुट्ठमायगो अप्पाण न याणइ त्ति । दूएण पडियागएण कहिय । करकण्डू कुविओ । चम्पा रोहिया जुद्ध वट्टइ । ताहे[11] सजाईए सुय । मा जनक्खओ होहि त्ति मयंहरिय[12] आपुच्छिऊण गया त नयर । करकण्डु उस्सारित्ता[13] रहस्स भिन्दई[14] एस तव पिय त्ति । तेण ताणि अम्मापियरो पुच्छियाणि । तेहिं सब्भावो कहिओ माणेण न ओसरइ । ताहे सा चम्प अइगया रन्नो घर अईइ, नाया पायवडियाओ दासीओ परुण्णाओ[15] । राइणो[16] विसुय । सो वि आगओ । वन्दित्ता आसण दाऊण त गब्भ पुच्छइ । सा भणइ एसो जेण रोहिय नगर । तुट्ठो निग्गओ मिलिओ । दो वि रज्जाणि तस्स दाऊण दहिवाहणो पव्वइओ ।

---

१ पोल्लरा, २ उज्झ ३ ओमेय ४ दण्ड ५ परिच्छियव्वओ ६ दारगेण, add भण्णमाण ७ वाहिं ८ णो. ९ कण्णिगो कन्नगो १० देहि मम एग गाम ११ ताए १२ हरि १३ ऊसारित्ता १४ देइ १५ रु° १६ mss रायणा

करकण्डु य महासासणो जाओ। सो[1] किल गोउलप्पिओ अणेगाणि तस्स गोउलाणि जायाणि। जाव सरयकाले एग गोवच्छ थोरगत्त सेय पेच्छइ। भणइ एयस्स मायर मा दुहेज्जह। जहा[2] वड्ढिओ होज्जा। तया अन्नाण गावीण दुद्ध पाएज्जाह। त गावा पडिसुणन्ति। सो उव्वत्त[3]-विसाणो खन्धवसभो[4] जाओ राइणा दिट्ठो। सो जुद्धिक्कओ जाओ। पुणो कालेण राया आगओ पेच्छइ महाकाय जुण्णवसभ पड्डएहिं परिघट्टिज्जन्त। गोवे पुच्छइ कहि सो वसभो त्ति। तेहिं सो दाइओ तयवत्थो। भणिय च —

गोट्ठंगणस्स मज्झे ढिक्कियसद्देण[5] जस्स भज्जन्ति।
दित्ता वि दरिय वसभा सुतिक्खसिंगा समत्था वि॥१॥
पोराणयगयदप्पो गलन्तनयणो चलन्तविसमोट्ठो।
सो चेव इमो वसभो पड्डयपरिघट्टण सहइ॥२॥

त तारिस पेच्छिय राओ विसाय। चिन्तेइ अणिच्चय अहो तारिसो होऊण सपइ एयारिसो जाओ एस वसभो। ता सव्वे अथिरा ससारे पयत्था। तहा हि जो ताव भोगनिबन्धन महामोहहेऊ य अत्थो सो अधुवो। भणिय च—

चवलं सुरचावं व विज्जुलेह व्व[6] चञ्चलं। पाआ वलग्गं पंसु व्व[7] धणं अथिरधम्मयं॥१॥
अत्थ चोरा विलुम्पन्ति उद्दालन्ति नरेसरा। वन्तरा य निगूहन्ति गेण्हन्ति अह दाइया॥२॥
हुयासणो डहे सव्वं जर्लुप्पीलो विनासए। सव्वस्स हरणं चावि करेइ कुविओ जमो॥३॥

तहा परमाणन्दहेऊ इट्ठजनसगमो वि अणिच्चो, कह —

जहा संझाए रुक्खंमि मिलन्ति विहगा बहू। पन्थिया पहियावासे जहा देसंतरागया॥१॥
पहाए जन्ति सव्वे वि अन्नमन्न दिसन्तरं। एवं कुडुम्बवासे वि सगया[2] बहवो जिया॥२॥
नरामरतिरिक्खाइ-जोणीसु कम्मसंजुया[10]। मच्चुप्पहाय कालंमि सव्वे जन्ति दिसो दिसि॥३॥
जणु मत्तपमत्तउ[11] हिण्डइ पुरपहेहि[12]। मोडाउ[13] डि करन्तउ वेढिउ बहुनरेहि॥४॥
तं जोयणु अइरेण[14] जणक्खयभंगुर। जररोगेहि सोसिज्जइ[15] रक्ख तह खरउ[16]॥५॥

तहा—

गब्भे जम्मे बालत्तणम्मि तरुणत्तणंमि थेरत्ते।
मट्टियभण्डं व जीया[17] सव्वावट्ठासु विहडन्ति॥६॥

एमाइ चिन्तन्तो पडिबुद्धो, पत्तेयबुद्धो[18] जाओ। काऊण पञ्चमुट्ठिय लोय देवया विइण्णलिंगो विहरइ। भणिय च—

सेय सुजायं सुविभत्तसिंगं जो पासिया वसभं[19] गोट्ठमज्झे।
रिद्धि अरिद्धि समुपेहियाणं कलिंगराया वि समिक्ख धम्मं॥

---

१ abb वि २ जया ३ अच्चत, उच्चित ४ °हो ५ ढक्किय, ढकिय (बलवत) ६ लेह च ७ पाउलग्ग घसु, पोआव° ८ जजु° (जलप्रवाह) ९ °डु° १० सगया ११ नुमत्तउ १२ add पत्तण १३ मोडातोडि १४ अयरेण वि १५ सिज्झइ १६ खर १७ जिजया १८ °द्धो १९ °हे

TRANSLATION.

Here Karakandu In the city of Campa there reigned a king Dahivahana His queen was Paumavai, the daughter of Cedaga One day this longing of a pregnant woman came upon her "How can I divert myself riding through the parks and groves on the most excellent back of an elephant attired in the costume of the king, having the royal parasol held over me by the great king ? She became sick and was questioned by the king She told him matters as they were Then the king and she mounted his elephant of victory, the king held the royal parasol, she went to the park It was then the beginning of the rainy season When the elephant was touched by the odour of the fragrant-smelling earth he remembered the woods And the elephant started towards the woods and went out of the path The people could not keep up with him The two entered the woods The king saw a fig tree He said to the queen " He will pass under that fig tree then you are to take hold of a bough " She promised but could not take hold The king was prompt he seized the bough Joyless he descended, and perplexed as to what to do he went to Campa

And this Paumavai was carried into a desolate wood When the elephant was thirsty he saw a lake which had a very great basin Then he descended to it and amused himself But she softly dismounted from the elephant and ascended from the pond She did not know the directions, affrighted with fear she looked at the wood on all sides Then overpowered with distress, she began to weep " Alas for the issue of one's acts (in a former existence), since all unexpected I have fallen into such a disaster ? Now what shall I do ? What refuge is there for me ?" In a moment she gathered strength of mind and reflected "One does'nt know something might happen in this dreadful wood swarming with many, many, vicious, wild beasts Therefore I shall be careful " Thereupon she made the fourfold refuge her protection, repented of her sins, asked the forgiveness of the whole host of living beings, and engaged in abstinence from delicate food

"If any carelessness be mine with regard to this body and this time, I have now renounced food, the clinging to the world, and the body Then the fivefold formula of worship is my refuge, for that brings welfare in this world and the next And it is said

"Dangers from desease, water, fire, robbers lions, elephants, fights, and poisonous snakes vanish instantly by the supreme charm which consists of the formula of worship And no danger from female imp, vampire, goblin, or Lamia prevails against it And by the power of the formula of worship all calamities vanish Thus it is said "The assault of the elephant, the eight fetters of *karma* on those in whose innermost hearts continually abides the lion 'formula of worship', is frustrated "

Then remembering the formula of worship she pushed ahead in one direction When she had gone far, she saw an ascetic To hisf eet she went She saluted him He asked her ' Whence have you come here, good lady ?" Then she related " I am the daughter of Cedaga and have just now been brought here by an elephant " And that ascetic was one of Cedaga s own subjects He comforted her "Do not

grieve Just such is this unsubstantial *samsara* the cause of union and separation, full of birth, death, desease, and sorrow " With the fruits of the forest he made her sustain life against her own will, took her to his hermitage, and said to her "From here on, the ground is tilled with the plough, we do not set foot on it This is the territory of Dantapur, and Dantavakkha is king here Therefore go you fearless into this town, from here again set forth most cheerfully to Campa ' The ascetic returned The other entered Dantapura She went enquiring for a Jaina convent of nuns She saluted the lady superior She was questioned " Whence comes the lady disciple ? ' She told how matters stood Crying bitterly, she was comforted a little by the superioress 'Illustrious lady, do not give way to distress of mind The development of one's fate can not be averted For

" As we know, it tears apart even what is united, and some things it unites although they are separated Extremely dexterous is this fate in working weal and woe for beings And, there is no happiness in the *samsara*, where greatness is seen one moment and disappears the next, where various pleasures and sorrows change in a moment, where union and separation are only matters of a moment Because this *samsara* is a storehouse of manifold sorrows, just for that reason wise men here betake themselves to the path of final beatitude "

Being comforted in such and similar manner she was stirred to the depths of her soul and renounced the world on the spot in their convent And although she was asked at her consecration, she did not tell of her pregnancy, for fear they might not grant (her ordination) Later, when the matter was found out she told the truth to the abbess Being kept in concealment she gave birth to a child and exposed it in the cemetery, together with a ring bearing a name and a jewel of a blanket And afterwards the child was taken by the guardian of the cemetery and handed over to his wife They named the boy Avakinnaya (Castaway) And this noble lady became a friend of this Candala woman And this noble lady was questioned by the nuns "Where is your child ?" She said " It was stillborn and therefore left (in the cemetery) by me " The boy grew up there He played with the boys He said to the children there "I am your king pay me taxes " He was seized with the dry scab He said to them "Scratch me " They gave him the name of Karakandu And he was very fond of this nun And she gave him sweetmeats or whatever delicate alms she obtained

When he had grown up he guarded the cemetery For some reason two ascetics passed by there At once they saw at one place a stick in a coppice One of them knew the signs of sticks as follows A stick with one joint they praise, those with two joints cause quarrel, those with three joints are fraught with profit, those with four joints entail death A staff that is five-jointed wards off quarrel on the way a six-jointed one is desease, a seven-jointed health A stick that has a base of four finger's breadth and rises half a finger's breadth and has seven joints wards off mad elephants A staff of eight joints is failure, one of nine productive of fame, but one of ten joints truly is all prosperity A stick that is crooked, worm-eaten and spotted and bunchy and burned and dried up at the top is to be carefully avoided Having massive joints, shining with colour, and of one colour, a staff provided with such marks is to be considered an excellent staff "

Thereupon he said "He who will take this staff will be king But one must wait for it till it grows four inches more then it is serviceable " This was heard by that Candala lad and by a Brahman Then that Brahman dug out the four inches of the staff that had not yet shot up (out of the ground) and cut the staff And that lad saw him and snatched it away from him He was taken before the Court by that Brahman He said " Give me my stick ' He answered " It has grown on my cemetery, therefore I will not give it " The Brahman said " Take another " He did not want to The boy did not give it The boy was asked by them "Why do you not give it ?" And he said "By the power of this stick I shall be king " Then the people of the Court laughed and said "When you do come to be king, then you shall give this Brahman a village ' He agreed The Brahman spoke to other Brahmans as follows " Let us kill him and take the stick ' That was heard by his father The three fled and staightway went to Kancanapura There the king had died sonless The deputed horse came to Karakandu s feet while he slept outside (of the city), circumambulated him with its right side turned towards him, and stood still In the meanwhile the people of the city saw with great respect that he was endowed with the marks (of a king), the cry of " Victory " was raised and the drum of rejoicing beaten But he got up yawning With perfect composure he sat on the horse and was taken into the city ' He is a Candala ," said the Brahmans and would not grant him entrance Then he seized the jewel of a staff It began to blaze They were terrified Then he made the Candalas of Vadahana Brahmans And the saying arose By king Karakandu, the son of Dahivahana, the Candalas who lived in Vatadhana were made Brahmans And they too disregarded the name given him at home, Avakinnaga, and established the name given him by the Candala boys, Karakandu

Then that Brahman came " Give me the village " " Take the one that pleases you " He said "My home is in Campa, therefore give it to me in her territory " Then he gave him a letter to Dahivahana ' Give this Brahman a village I shall give you any village or city that pleases you " He was enraged "The wicked Candala does not know his own self " The messenger returned and reported this Karakandu was incensed He besieged Campa, fighting was going on Then the nun heard of it Saying "Let there be no destruction of people ", she took leave of the abbess and went to the city She took Karakandu aside and disclosed the secret to him "He is your father " He questioned his mother and his father They told him the real state of affairs From pride he did not march away Then she repaired to Campa, went into the king's house, she was recognized, the female servants fell down at her feet and wept The king too heard of it, he too came, greeted her respectfully, gave her a seat, and enquired about her child She said ' It is he by whom the city is besieged " Delighted, he went out and had a meeting with him Giving him both the kingdoms Dahivahana renounced the world And Karakandu became a mighty monarch

Now he was very fond of herds of cattle In the meanwhile, at the time of autumn, he saw a bull calf, strong-limbed and white He said "Do not milk the mother of this one When he has grown, then let him drink the milk of other cows " The cowherds promised When his horns had come out and he had become a powerful bull, the king saw him He became solely intent on fighting Again in the course of time the king came and saw a big-bodied, old, bull [illegible] on all

sides by the young bulls He asked the cowherds "Where is that bull ?" They pointed him out in such a condition And they said "This very same bull here, by the sound of whose lowing in the middle of the yard of the cowpen even all the proud, overbearing bulls with very sharp horns were subdued, now suffers being harassed on all sides by the young bulls as his pride has departed on account of old age, his eyes drip and his distorted lip quivers "

When the king saw him in such a plight he fell into despondency He pondered on transitoriness " Alas, this bull who was such a splendid fellow has now come to this ? So all subjects in the *Samsara* are short-lived For thus it is "Wealth, which is indeed the basis of enjoyment and the cause of great delusion, is impermanent" And it has been said " Perishable by its very nature is wealth evanescent as the rainbow, unstable as the streak of lightning, like unto dust that clings to the feet Riches the thieves rob, the princes snatch away, the Vyantara demons hide, the kinsmen seize Fire burns every thing, a deluge of water destroys it and angry Yama (the god of Death) is engaged in carrying off all Likewise union with beloved people, the cause of supreme joy, is transitory How so ? As many birds meet in the evening on a tree, as travellers who come from other countries (meet) in a traveller's lodging house and in the morning all go away, every one in a different direction, so also the many beings that have come together in one family home, at the time of the blow of death, all go in different directions, accompanied by their *karma*, to births as men, gods, animals and other beings A man strolls along the streets of the city, wanton and heedless, engaged in crushing and pushing, surrounded by many men That same resplendent man, who perishes in a moment, is soon, dried up by old age and desease, that thus make him a goblin Likewise, in the womb, during birth, in childhood, in youth, in old age, in all states, living beings go to pieces like earthernware vessels "

Reflecting in such and similar manner he experienced the spiritual awakening, he became a *pratyekabuddha* Having torn out his hair in five handfuls, and having been presented by a deity with the distinguishing tokens of a monk, he wandered about And the saying arose Having seen the white, noble bull with wellformed horns, in the middle of the cowpen, the king of Kalinga saw prosperity and ruin and perceived the true religion

T

After a complete translation and glossary together with indices of personal and geographical names with notes, as well as the material reserved for the Introduction, what remains to be given under this head is elucidation of technical terms of Jaina religion and a discussion of the few difficult and obscure expressions The necessity of lengthy explanations of technical terms has been avoided by giving full references to standard works

I

I, 2, 8 For सिद्धसेन and others mentioned here see Introduction.

I, 2, 5. त रे व्व इ—तरितुम् See also 1,5,5 देवए–दातुम्, and वहेव्वइ–वधितुम् (हन्तुम्)

I, 3, 7 जहिं हालिणि etc cf Nayak 1, 13, 7–8, Jasa. 1, 21, 7

I, 4, 10. धाडीवाहन literally means 'leader of an assault' धाटी + वाहन The name is given as दहिवाहन in Prakrit and दन्तिवाहन in Sanskrit versions of the story (see Appendices) At one place Subhacandra also gives धात्रीवाह (दन्तिवाहन इत्याख्यो धात्रीवाहापराभिध II, 38).

I, 7. In this and similar other stanzas (III, 15, 17, IV, 16, VII, 9, 10, VIII, 1,3,4, IX, 3,) we find a predominance of the Maharastri Prakrit

I, 13 The escape of the king as described here strikes one as very unchivalrous The account in Devendra's story is superior (see Appendix B)

I, 14, 2 म य र हि य उ etc मृगरहितमत एव नीरस वन यथा मदरहित अत एव नीरसः मोक्ष ।

I, 17, 4 I have interpreted the line as तुण्डखण्डेषु अधिष्ठिता. धारा येषा ते तथा भूता शूलेन भिन्ना. चोरजारा (दृष्टा) । Compare this stanza with a similar one in Jasaharacariu 1, 13

II

II, 1, 11 Compare एकस्य दु खस्य न यावदन्त गच्छाम्यह पारमिवार्णवस्य ।
तावद् द्वितीय समुपस्थित मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥

II, 2, 3 तार means (1) Vishnu (2) Siva (3) The mysterious symbol ॐ But the tippana on the word is असुरदेवता This suits our context quite alright

II 2, 4 जणहिं = याने has been shortened for the sake of metre

II, 2, 8 Both Subhacandra and Nemidatta in their version of the story take Baladeva to be the name of the Vidyadhara, and I have followed the same in my translation But गुणनिकेत occurs again in II, 5, 6, which leads one to suspect that perhaps this was meant by our author to be the name of the Vidyadhara

II, 3, 3 अयमाणु–अ + या + शानच् (शतृ) = अगच्छत् unmoving

II, 3, 6 The line has to be construed as—

(यस्य) प्रवृद्धा कीर्ति जनाना प्रशमिनी (प्रशम्या) । (येन) निवेशिते लोचने नासाप्रदेशे ।

II, 6, 7-8 The corresponding description in Subhacandra's work is—

अथ पद्मावती खिन्ना गान्धारी क्षान्तिका क्षमाम् । क्षणात्सा खेदतो दक्षा विश्राय सुखसिद्धये ॥ ५३ ॥
तथा पद्मा जगामाशु सुपद्माभा जिनाश्रयम् । निम्मह्नीति पद प्रोच्य ननाम च जिनाङ्घ्री ॥ ५४ ॥
समाधिगुप्तनामान मुनि गुप्तित्रयात्मक । त्रिरत्नरञ्जित रम्य सा ववन्दे विदाम्बर ॥ ५५ ॥ canto II

Subhacandra goes on to say that Padmavati requested the sage to give her *Diksha*, the latter refused saying that she had broken a vow three times in her past life as a result of which she had experienced separation from her father, husband and son in this life, and *that she would be fit for Diksha* when the sin is completely pacified when her son would be crowned king, (For her breaking a vow in her past life, see X, 12, 3).

II, 7, 7 ज ल्ल म ल्ले ण वि लि त्त ग त्त—Neglecting the body altogether and allowing dirt to settle on it was a form of penance, and those ascetics who practised it were *given the title of* मलधारिन् (see Jaina Silalekha Samgraha, Index.) जल्ल meant perspiration and the dirt settled on it, while मल meant the excretions of the nose, eyes, ears etc See प्रतिष्ठापाठ of जयसेन p 223—

स्वेदावलम्बितरजोनिचयो हि येषामुत्क्षिप्य वायुविसरेण यदगमेति ।
तस्याशु नाशमुपयाति रुजा समूहो जल्लौषधीशमुनयस्त इमे पुनन्तु ॥ ६९० ॥
नासाक्षिकर्णरदनादिभव मल यन्नैरोग्यकारि वमनज्वरकासभाजाम् ।
तेषा मलौषधसुकीर्तिजुषा मुनीना पादार्चनेन भवरोगहति नितान्तम् ॥ ६९१ ॥

II, 7, 9 The corresponding portion in Subhacandra's work is—

तत्र कश्चिद्ददर्शाशु नृकपालमुखे पुन ।
नेत्रयोश्च समुत्पन्न वेणुत्रय त्रिलोकवत् ॥ III, 68

II, 9 Compare similar passages in Jasa I, 24, Naya III, 1, Bhavis. II, 2

II, 15, 2 As the line stands it should be construed as अस्य राज्ञ वहिणीमासेन निश्चयेन जीवामि (तत्) मह्य दीयताम् ।

II, 18, 3 For the translation of this line substitute 'Two crimes more I shall still forgive' Subhacandra's translation is एकोऽयमपराधस्तु क्षान्तो द्वावपराधकौ । सोढव्यौ मयका (? मया) प्रीत्या मन्त्रिणोऽस्य सुखेषिण ॥ IV, 57

II, 20, 7 चच्चरवतु has been translated and explained *in the* glossary as an adjective of गज. It is, however, also possible to take it as an adjective of पट्टन being equivalent to चत्वरवत् full of squares Subhacandra has-

भ्रान्त्वाथ पत्तने पद्मौ पथ्यापणसुपद्धतौ ।
गेहे गेहे महाभ्यासश्चत्वरे चत्वरे पुन IV, 101

III.

III, 2 Compare this passage with Nayak V, 8, 10-15

III, 4, 1 For the history of the bamboos see II, 7-8

III, 7, 7 See Hindi translation and correct English translation as follows —I came to your town with the portrait accompanied by warriors capable of vanquishing irresistible foes

III, 19, 2 व इ सा ह था णु वैशाखस्थान is a posture in shooting in which the archer stands with the feet a span apart Apte Sans Eng Dictionary

IV

IV, 1, 4 The three old Dravidian kingdoms of the South are conceived here as still very powerful and forming a confederacy with the Colas at the head

IV, 12, 4 For the mechanical skill af a सूत्रधार see Mudrā-rākshasa II p 130 Telang's edition

IV, 13, 9 The tippana on सणराल is 'मोरा पाहाण घालावणु' Now मोरा or मोरी in Hindi, Marathi and Gujrati means a little channel to carry off water. This suggested to me the Sanskrit equivalent सनालीक (see glossary) In sanskrit नरा means the earth From this we might interpret सणरालहिं पत्थरहिं as 'with stones masoned with earth' नार also means water in Sanskrit It is also possible that the original reading may be अणरालहिं meaning with shapely straight stones

IV, 17, 1-4 Compare this boast of the Sura, with that of Bhairavānanda in Rajasekhara's Karpūra-manjiri I, 25—

दसेमि त पि ससिण वसुहावतिण्ण
थम्भेमि तस्स वि रविस्स रह णहद्धे ।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणगणाओ
त णत्थि भूमिवलए मह ज ण सज्झ ॥

Also see Jasaharacariu 1, 6

V.

V, 8, 5 प र मु इ ए हिं has been taken by me as equivalent to परमोत्सुकै ।

V, 10, 3 प री प ह is thus defined—

शारीरमानसोत्कृष्टबाधहेतून् क्षुदादिकान् ।
प्राहुरन्तर्बहिर्द्रव्यपरिणामान् परीषहान् ॥

For exposition of the twenty two Parisahas see, अनगार धर्मामृत of Ashādhara VI, 84, onwards

V 12, 1-2 For the five अणुव्रत, three गुणव्रत and four शिक्षाव्रत, see सावयधम्म दोहा 59-72 The five उदुम्बर are वट, पिप्पल, पर्कर, उदुम्बर and काकोदुम्बर ।

V, 12, 4. The *Pratimas* or stages of a house-holder's religious advancement are eleven, namely, दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तत्याग, रात्रिभोजनत्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग and उद्दिष्टत्याग For exposition, see सागारधर्मामृत, अध्याय ३ onwards

VI

VI, 6, 8, स ल्ले ह ण-सल्लेखना is thus defined in the रत्नकरण्डश्रावकाचार of समन्तभद्र—

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च नि प्रतिकारे। धर्माय तनुविमोचनमाहु सल्लेखनामार्या ॥ १२२ ॥
अन्तक्रियाधिकरण तप फल सकलदर्शिन स्तुवते। तस्माद्यावद्विभव समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥ १२३ ॥
स्नेह वैर सङ्ग परिग्रह चापहाय शुद्धमना । स्वजन परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियवचनै ॥ १२४ ॥
आलोच्य सर्वमेन कृतकारितमनुमत च निर्व्याजम् । आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निश्शेषम ॥ १२५ ॥
शोक भयमवसाद क्लेद कालुष्यमरतिमपि हित्वा । सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मन प्रसाद्य श्रुतैरमृतै ॥ १२६ ॥
आहार परिहाप्य क्रमश स्निग्ध विवर्द्धयेत्पानम । स्निग्ध च हापयित्वा खरपान पूरयेत्क्रमश ॥ १२७ ॥
खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या । पञ्चनमस्कारमनास्तनु त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥ १२८ ॥

नि दा न or looking forward to the reward of the penitential act is one of the transgressions (अतिचार) of सल्लेखना as—

जीवितमरणाशसे भयमित्रस्मृतिनिदाननामान । सल्लेखनातिचारा पञ्च जिनेन्द्रै समादिष्टा ॥ १२९ ॥

VI, 7, 8 For प्रयाग as the place where people went to end their life prematurely, see Index of Geographical Names, under प्रयाग Also see अग्नि पुराण, अध्याय १११,

न वेदवचनाद्विप्र न लोकवचनादपि ।
मतिरुत्क्रमणीया न्ते प्रयागे मरण प्रति ॥ ८ ॥
वटमूले सगमादौ मृतो विष्णुपुरी व्रजेत् ॥ १३ ॥

VII

VII, 1, 2 For the sight of an ascetic regarded as an auspicious omen, see श्रीशाकुनसारोद्धार by माणिक्यसूरि, प्रकरण २—

दर्शन श्वेतभिक्षूणा मर्वोत्तमफलप्रदम् । किं पुन सूरिसयुक्त राजयोगोऽयमुत्तमम् ॥ १० ॥
न केवल मयैवोक्त श्रीव्यासेनापि भाषितम् । शकुनार्णवेऽपि निर्णीत शुभ निर्ग्रंथदर्शनम् ॥ ११ ॥
श्रमणस्तुरगो राजा मयूर कुजरो वृष । प्रस्थाने वा प्रवेशे वा सर्वसिद्धिकर स्मृत ॥ १२ ॥

VII, 5, 4 णि व स मा णु = निवसमा orn = नृपममान like हयसमाणु in VIII, 12, 2 Karakanda was accompanied by other princes as is clear from VII, 6, 4

VII, 5, 13 Commenting on उत्तराध्ययनसूत्र V, 8, Devendra tells a short story of a certain shepherd who, during his midday-rest, pierced all the leaves of a *nyagrodha* tree with his arrows (Charpentier's edition p 298) Also see Jacobi's Maharastri Tales, the story of Bamhadatta, and its translation by J J Meyer in his Hindu Tales p 61, where we read "He wandered about in the wood and saw a goatherd who was making holes in the leaves [illegible] fig tree with peastones (by throwing them at the leaves)" From t[illegible] was once a favourite pastime

VII, 9, 4–5 The measurements of the sea-monster are thus given by शुभचन्द्र in his version—

पष्ठियोजनसूत्तुग तदर्धायतिमगतम् ॥
सप्तपष्टिमहास्फीतयोजनैर्दीर्घता गतम् ।
निरुध्याब्धि स्थित मध्ये मेरुवल्लघनातिगम् ॥ ११, ९५–९६

VII, 13 The description of the goddess in this *Kadavaka* is thus reproduced by Subhacandra —

कोमलागी सुलावण्या लीलया सहितामला । ललामलक्षिता कम्रकुण्डलाभ्या विराजिता ॥ १४२ ॥
सपुस्तककरस्फारभृ गारपरिभूषिता । सुमृणालकरारम्यरक्ताभरणभासुरा ॥ १४३ ॥
किंकिणीकलरावाद्यमेखलामडितोत्कटा । सनूपुरपदा दिव्या प्रसन्ना गुणमालिका ॥ १४४ ॥
फणाभि पचभि ··· · ··फणिन परम् । दधती मूर्ध्नि सन्मान्या श्रवणामृतवाग्वरा ॥ १४५ ॥
व्यजयन्ती दिशा चक्र धाम्ना धामालिलिङ्गिता । वीक्ष्य वक्ष स्थलस्थूलमुक्ताफलसुदामिका ॥ १४६ ॥
तदा पद्मावती देवी धराया दधती धृतिम् । तद्ध्यानाद्वदनाब्जेनाऽवातरद्भासिनी द्रुतम् ॥१४७॥ सर्ग ११

VII, 15. With regard to the practice of capturing husbands which is exemplified in this *Kadavaka,* I quote the following from 'Tribes and Castes of the Central Provinces' by Russel and Hiralal, Part II, p 521—

Kolams, a Dravidian tribe residing principally in the Wun *taluka* of the Yeotmal district of Berar "had the practice of capturing husbands for women who would otherwise have gone unwedded, this being, apparently, a survival of the matriarchate It does not appear that the husbands so captured were ever unphilosophical enough to rebel under the old regime"

VIII

VIII, 5, 5 The word अक्का has been discussed by Mr A. N Upadhye in his article 'Kanarese words in Desi lexicons' published in Bhandarkar ORIJ (1931) The word occurs in various languages, Aryan, Dravidian and Scythian, and, according to Dr Caldwell, "the ultimate base of all these words is probably 'AK' old"

VIII, 5, 13 वले according to Vararuci VIII, 12, is a term of address 'अइवले सभाषणे'

VIII, 7, 8 Subhacandra's version is as follows —

शतपचप्रमा कीरा वय तस्थिम चोन्नते । अनोकहे सदैकस्मिंल्लभमाना फलावलिम् ॥ ३४ ॥
तद्वुघ्ने वर्द्धिता वल्ली क्षिता ख्याता मया शुकान् । कृतितु नैव केनापि छिन्ना सा पक्षिणा पुन ॥३५॥
कालेन वर्द्धिता वल्ली किराता वीक्ष्य चागता । (सर्ग १२)

We get the substance of these lines in the original

VIII, 16, 1 टक्कु—an inhabitant of the टक्कदेश which embraced the whole of the plains of the Punjab from the Indus to the Bias, and from the foot of the mountains to the junction of the five rivers below Multan (Cun Geo p 171)

VIII, 17, 6–8 रत्नावली, मुक्तावली, कुसुमाञ्जलि or पुष्पाञ्जलि, पल्योपम, चतुर्दशाम्रविधि and वसुधारगविधि, are various kinds of fasts and rituals observed on special days during a particular period of time

IX

IX, 6 The twelve *kadavakas*, beginning with the sixth, deal with the twelve *Bhavanas* or pious thoughts namely अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, धर्म and बोध, For an exposition of these, also see बारस अणुवेक्खा of Kundakundācārya.

IX, 16, 3 The five *vratas* are अहिंसा, अचौर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य and अपरिग्रह (see IX, 22, 3–8)

IX, 16, 6 The ten characteristics of Dharma are क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप , त्याग, आकिञ्चन and ब्रह्मचय

IX, 16, 7 The fourteen मार्गणा or soul quests are गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व सम्यक्त्व, संज्ञित्व, and आहार For exposition, see गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा १४० onwards

IX, 16, 8 The fourteen गुणस्थान or spiritual stages are मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवली and अयोगकेवली For exposition see गोम्मटसार, जीवकाण्ड गाथा ८–६९

IX, 20, 3 The two divisions of Dharma are that of the householder and that of the homeless ascetic (सागार and अनगार) see IX, 22

IX, 20, 9 The four kinds of charity are औषध, शास्त्र, अभय and आहार, (see IX, 23, 4–7), and the three worthy recipients are the sage, the Jaina householder observing vows and one who is faithful but not observing the vows See सावयधम्मदोहा—

उत्तमपत्तु मुणिंदु जगि मज्झिमु सावउ सिट्ठु । अविरयसमाइट्ठि जणु पभणिउ पत्तु कणिट्ठु ॥ ७९ ॥

IX, 20, 20 The six occupations of life are असि, मषि, कृषि, शिल्प, विद्या and वाणिज्य असिर्मषि कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च । कर्माणीमानि षोढा स्युः प्रजाजीवनहेतवः ॥ (आदिपुराण १६, १७९) The six compulsory daily duties (षड् आवश्यक) of a faithful Jaina householder are देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप and दान

IX, 20, 21 लेश्या or thought-paint is thus defined

लिंपइ अप्पीकीरइ एदीए णिय-अपुण्ण-पुण्णं च । जीवो त्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा ॥४८९॥

जीवकाण्ड

They are six कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म and शुक्ल of which the first three are regarded अशुभ For exposition see गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा ४८९-५५६ ।

IX, 21, 3 The *tattvas* are seven जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा and मोक्ष

For exposition in English, see 'Practical Path' by Champat Rai For the eight qualities of Right Faith, निःशङ्कित etc , see रत्नकरण्डश्रावकाचार of समन्तभद्र ११-१८

IX, 21, 9 The seven व्यसन are enumerated in the following verse —
द्यूतं मांसं सुरा वेश्याखेटं चौर्यं पराङ्गना । महापापानि सप्तानि व्यसनानि त्यजेद् बुधः ॥

IX, 23, 2. ध्यान is of four kinds आर्त, रौद्र, धर्म and शुक्ल Of these the first two produce evil and the last two good—

> आर्तरौद्रविकल्पेन दुर्ध्यानं देहिनां द्विधा । द्विधा प्रशस्तमप्युक्तं धर्मशुक्लविकल्पतः ॥ २० ॥
> स्यातां तत्रार्तरौद्रे द्वे दुर्ध्यानेऽत्यन्तदुःखदे । धर्मशुक्ले ततोऽन्ये द्वे कर्मनिर्मूलनक्षमे ॥ २१ ॥ etc
> ज्ञानार्णव, प्रकरण २५

IX, 24, 2 The five vows of the ascetics are the same as those of the householders, differing from the latter in their rigour and thoroughness of observance

IX, 24, 6 Celibacy observed by मन , वचः, काय, and कृत, कारित, अनुमोदन constitutes the nine kinds of ब्रह्मचर्य

IX, 24, 7 The two kinds of परिग्रह are अन्तरङ्ग and बहिरङ्ग i e the inner passions and material belongings.

IX, 24, 8 The मूलगुण of ascetics are twenty-eight, five Mahāvratas, five Samitis, five sense-controls, six obligatory duties and seven other observances For an exposition of these, see मूलाचार, अध्याय १

IX, 24, 9 The number of उत्तरगुण is given as eightyfour lakhs, for a classification of which, see मूलाचार, गाथा १०२३ and onwards

X

X, 9, 4. There is double-meaning in the second part of the line बहुप्रहरे ननु सूर्योऽपि सुप्त and बहुप्रहारे ननु शूरोऽपि सुप्त ।

X, 9, 6 On पुण्णाय (पुन्नागा ?) the tippana in S is पुंश्चली स्त्री and in N दुश्चारिणी

X, 19, 8 Subhachandra's version is—
यावदास्ते वने रात्रौ भवने देवनिर्मिते । तावत्तत्र स आयासीद्राक्षस्युत्क्षिप्तमत्करा (मत्सरा) ॥

X, 26 In this kadavaka is described the method of celebrating the five kalyāṇakas गर्भ, जन्म, तप , ज्ञान and निर्वाण of a Tirthamkara Subhachandra's version of it is as follows —

> मासे भाद्रपदे कृष्णे प्रोषधः प्रतिपत्तिथौ । गर्भकल्याणकाख्यं स कार्यं सत्कार्यकोविदैः ॥ १११ ॥
> सिद्धचारित्रसच्छान्तिभक्तिभिः क्रियमक्रिया (?) । तद्दिने मुनिभिर्मुक्त्यै महद्भिर्निर्मलाशयैः ॥११२॥
> गृहस्थैर्दधिदुग्धाद्यैः स्नपनं श्रीजिनेशिनः । विधीयते तनुत्यागो रात्रौ जागरणं तथा ॥ ११३ ॥
> पञ्चम्यां प्रोषधस्तस्मिञ्जन्मकल्याणमञ्जितः । पूर्वोक्तास्ताः क्रियाः कार्या दिने तस्मिञ्शुभाप्तये ॥११४॥
> अष्टम्यां क्षपणस्तस्मिन्मासि ख्यातो महर्षिभिः । सन्निष्क्रमणसन्नामा सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ११५ ॥

सिद्धचारित्रसद्योगशातिभक्त्याऽभिवद्यते । जिनो विजितकर्माऽथ मन्मयोन्मादमथक ॥ ११६ ॥
केवलज्ञानकल्याणो दशम्या प्रोपधो मत । सिद्धश्रुतसुचारित्रयोगशातिक्रिया भजेत् ॥ ११७ ॥
निर्वाणाख्य चतुर्दश्या क्षपणाय पर्ण क्रिया (?) । कार्या सिद्धश्रुतोद्वृत्तयोगनिर्वाणशान्तिभि ॥११८॥
व्रताना तिलक तेन पचकल्याणसज्ञकम् । पचवत्सरपर्यन्त तेने चतुरचेतसा ॥ ११९ ॥

X, 26, 18 विउसग्गहि अट्ठहि-व्युत्सर्ग means कायोत्सर्ग, but it is not clear what eight refers to in that respect "The tippana is "कायोत्सर्ग करवु आठ गणीए णुकार" which means renunciation of the body having repeated the Navakāra mantra eight times The translation should be corrected accordingly

शब्दकोशः

The figures indicate *Sandhi*, *Kadavaka* and *line* respectively The glossary is not fully exhaustive, and as a rule, only one reference to a place of occurrence has been given Words which seemed to me to be Desi (i e for which, strictly speaking, a Sanskrit equivalent does not exist) have been marked with an asterisk Sanskrit equivalents are given throught out, and, wherever necessary and possible, Apabhramsa grammars and lexicographies have been referred to, and, Hindi, Marathi and Gujrati equivalents are also given The following abbreviations have been used —

D–Desinamamala of Hemacandra, ex–example, G–Gujrati, H–Hindi, Hem–Hemacandra's Prakrit Vyākarana, K–Kanarese, M–Marathi, Mal–Malayalam, Mar–Marwadi, Pai–Paiyalacchi–nāma–mālā of Dhanapāla, S–Sanskrit, T–Tamil, Var–Vararuci's Prakrit–Prakasa, दे—देश, न—नगर, प—पर्वत, पु—पुरुष, टि—टिप्पण

[अ]

अइ–अति I, 3, 10
अइ–अहो (सम्बोधनार्थे) II, 18, 5
अइउच्चिय–अति + उच्चित VII, 7, 11
अइउज्जु–अति + ऋजु X, 13, 4
अइकुडिली–अतिकुटिला I, 16, 12
अइजुज्झइ–अति + युध्यति III, 11, 10
अइझीण–अति + क्षीण II, 7, 6
अइडरिअ–अति + दृत VII, 11, 2
(H डरना to fear)
अइणिम्मल–अतिनिर्मल IV, 7, 5
अइणियड–अतिनिकट IV, 4, 2
अइणिरुत्त–अति + निश्चित V, 14, 5
(D IV, 30)
अइतुरिअ–अति + त्वरित V, 10, 2
अइतोस–अति + तोष V, 13, 9
अइदिहि–अति + धृति IV, 7, 2
अइदुम्मण–अति + दुर्मनस् V, 2, 6
अइपवर–अति + प्रवर II, 9, 1
अइपिय–अति + प्रिय IV, 12, 6
अइपयड–अति + प्रचण्ड II, 8, 2
अइबहल–अति + बहल IV, 8, 8
अइभत्ती–अति + भक्ति V, 7, 4
अइभिड–अति + युध् ँडति VIII, 18, 9
(HMG भिडना to fight)
अइभिण्ण–अति + भिन्न IX, 10, 5
अइमणहर–अति + मनोहर III, 3, 3
अइमहुर–अति + मधुर V, 11, 8
अइरमण–अति + रमण V 5, 4
अइरावअ–ऐरावत III, 16, 4
*अइवमाल–अति + तुमुल I, 11, 4
(D VI, 90, Pai 47)
अइविहाइ–अति + विभाति III, 12, 7
अइसअ–अतिशय VI, 1, 5.
अइसणिद्ध–अति + स्निग्ध X, 13, 10
अइसुहुम–अति + सूक्ष्म X, 10, 7
अइसंसअ–अति + संशय V, 18, 5
अउव्व–अपूर्व I, 14, 5
अकलंकदेव–पु I, 2, 8
*अक्क–भगिनी, अम्बा VIII, 5, 5 (D I, 6 S

अक्का–Mother, M अक्का–Sister, K आके She)

अक्ख–आ + ख्या °मि V, 19, 8, °हि IV, 12, 5, °क्खु III, 5, 4, °क्खेवि III, 20 6

अक्खय–अक्षत IX, 2, 6

अक्खर–अक्षर I, 7, 7

अक्खिअ–आख्यात I, 8, 7

अग्ग–अग्र I, 14, 4

अच्चत–अत्यन्त VIII, 2, 7

अच्छ–आस् °इ I, 9, 1, °हि 1, 15, 7 (Hem IV, 215 probably from Sans आ + क्षि निवासगत्यो)

अच्छर–अप्सरस् VI, 3, 10

अच्छरिअ–आश्चय IV, 3, 11

अच्छिअ–उषित IV, 17, 5 (see अच्छ)

अजवम्म–अजवर्मन्, पु III, 5, 8

अजियगि–अजिताङ्गी, स्त्री III, 5, 8

अज्जव–आर्जव IX, 13, 4

अज्ज वि–अद्यापि II, 18, 3

अज्जिअ–अर्जित II, 5, 10

अज्जिय–आर्यिका (a Jaina nun) II, 6 8

अज्जिवि–अर्जयित्वा II, 10, 6

अज्जु–अद्य I, 14, 5

अज्जुण–अर्जुन, पु X, 22, 7

अट्टरउद्द–आर्त + रौद्र (ध्यान) IX, 23, 2

अट्ठम–अष्टम X, 16, 4

अट्ठुत्तर–अष्टोत्तर X, 26, 20

अडवि–अटवी VII, 3, 3

अणवरअ–अनवरत III, 10, 7

अणसण–अनशन V, 10, 5

अणाविअ–आनायित VIII, 14, 2

अणगलेह–अनङ्गलेखा स्त्री VII, 16, 2, X, 24,4

अणिंद–अनिन्द्य V, 6, 2

अणुग्गह–अनुग्रह VI, 12, 8

अणुदिण–अनुदिन IV, 10, 9

अणुमग्गयारि–अनुमार्गचारिन् VII, 3, 2

अणुराअ–अनुराग IV, 11, 10

अणुवम–अनुपम I, 1, 3

अणुवय–अनुव्रत V, 12, 1

अणुवेक्ख–अनुप्रेक्षा VI, 6, 9

अणुहव–अनु + भू °वेइ IX, 9, 6, °हि II, 5, 10

अणुसर–अनु + सृ °उ IX, 7, 4, °रेइ III, 2, 5, °रेवि VI, 10, 6

अणुसरिअ–अनुनून III, 14, 10

अणुहर–अनु + हृ, °इ V, 13, 7, °रति I, 16, 9

अणुहुज–अनु + भुज °हु III, 10, 10 °जिवि II, 15, 9

अणेय–अनेक II, 1, 1,

अण्णण्ण–अन्योन्य I, 14, 7

अण्णभवतर–अन्य + भवान्तर II, 5, 10

अण्णाण–अज्ञान II, 13, 5

अण्णोण्ण–अन्योन्य V, 4, 1

अत्थइरि–अस्तगिरि X, 9, 4

अत्थाण–आस्थान IX, 1, 2

अत्थि–अस्ति I, 10, 7

अद्द–अब्द IV, 17, 7

अद्दसण–अदर्शन V, 14, 8

अद्धवह–अर्धपथ II, 10, 6

अद्धिंदु–अर्धेन्दु I, 16, 13

अपमाण–अप्रमाण II, 3, 3

अप्पमाण–अप्रमाण II, 2, 1

अप्प–अर्पय् °हि III, 4, 7, °प्पिऊण I, 12, 3, °प्पिवि II, 6, 5

अप्पिअ–अर्पित II, 6, 2

अप्पुणु–आत्मन् IV 3, 4 (M आपण)

अप्फालिय–आस्फलित IV, 11, 5

अब्मतर–अभ्यन्तर V, 3, 2

अब्मत्थिय–अभ्यर्थित VII, 14, 6

*अब्भिडिय–समागत III, 16, 2 (Hem, IV, 164)

अमराउरि–अमरपुरी III, 22, 6

अमराहिय–अमराधिप IV, 8, 9

अमिअ, °य–अमृत II, 15, 6

अमियवेअ–अमितवेग, पु V, 4, 2

अमेअ–अमेय VII, 5, 9

अयाण–अ + जानत् VIII, 4, 7

अरिदमण–°न, पु VIII, 1, 5
अरिथाण–अरि + स्थान III, 15, 7
अरिमहण–अरि + मथन V, 13, 10.
अरिविंद–पु II, 16, 3
अरुव–अरूप V, 6, 5
अरोचअ–अरोचक III, 4, 11
अलग्ग–अलग्न II, 14, 5
अलहत्त–अलभमान II, 15, 6
अलिय–अलीक IX, 24, 4
अलोव–अलोक I, 11, 3, IX, 23, 5
अलेव–अलेप V, 6, 5
अलेहिअ–आलेखित VI, 14, 3
अवयरिय–अवतरित VII, 11, 10
अवर–अपर II, 2, 2
णवराह–अपराध VIII, 20, 12
*अवरुंडिय–आलिङ्गित X, 9, 8
(D I, II)
अवरुप्पर–अपरापर VI, 10, 5
अवलोइअ–अवलोकित IV, 11, 10
अवलोव–अव + लोकय् °इ V, 16, 7, °हु V, 15, 5, °इवि V, 18, 1
अवसाण–अवसान I, 17, 15
अवहर–अप + हृ °रतु IX, 16,6, °रेइ IX, 14, 4
अवहरिय–अपहृत V, 7, 10,
अवती– दे VIII, 1, 6
अवाय–अपाक IX, 14, 1
अवाह–अवाध II, 14, 5
अविरइ–अविरति IX, 12, 4
अविवाय–अविपाक IX, 14, 10
अस–अश् °इ VI, 3, 9, °मि VI, 6, 2
असईयण–असती + जन X, 9, 9
असज्झ–असाध्य III, 19, 7
असत्थ–अशक्त IV, 13, 3
असरण–अशरण IX, 7, 11
असहत–असहमान II, 12, 4
असिलय–असि + लता II, 3, 10
असुइ–अशुचि IX, II, 1
असुहत्त–अशुभत्व IX, 20, 21

असुहाई–असुभाविता IV, 11, 1
असुहावअ–असुभावित II, 10, 10
(H सुहावना good-looking)
असेस–अशेष II, 8, 3
अह–अथ VII, 11, 8
अहम्म–अधर्म X, 22, 1
अहर–अधर II, 11, 5,
अहरुल्ल–अधर + उल्ल (स्वार्थे) X, 9, 8
अहग–अभग I, 4, 3
अहिजलण–अभिज्वलन IV, 14, 2
अहिणव–अभिनव VII, 2, 8
अहिणंदिअ–अभिनन्दित VIII, 7, 3
अहिराम–अभिराम III, 5, 7
अहिलस–अभिलष् °हि V, 1, 12
अहिलास–अभिलाष VI, 14, 1
अहीर–आभीर–VIII, 6, 5
(H अहीर cowherd)
अहेडअ–आखेटक VII, 1, 9
अहोमुह–अधोमुख II, 3, 5
अंकुस–अंकुश II, 8, 2
अंगदेस–°देश I, 3, 5
अंच–अर्च् °मि X, 3, 10, °एवि X, 17, 3, °चिवि IV, 11, 9
अंत–अन्त्र III, 15, 8 (H आंत)
अंतेउर–अन्तःपुर X, 23, 10
अंध–आन्ध्र, दे II, 2, 11
अंधारअ–अंधकार X, 9, 7
अंसु–अश्रु V, 15, 7 (H आंसू),
अंसु–अंशु X, 19, 4

[आ]

आअ–आगत I, 15, 2, °इवि IV, 1, 9
आइ–आदि X, 15, 9
आइच्च–आदित्य III, 12, 8,
आइय–आगता III, 19, 7
आउल–आकुल I, 17, 10
आउलि–आकुलिन् III, 13, 1,
आएस–आदेश III, 4, 2
आण–आज्ञा I, 5, 6

उत्तत्त–उत्तप्त III, 2, 10
उद्दालिअ–उद् + दारित II, 8, 8, V, 2, 4 (आछिन्न Hem IV, 124, H उड़ाना to take away)
उद्दुमण–उद् + दुर्मनस् II, 21, 2
उद्ध–ऊर्ध्व I, 8, 6
उद्धर–उद् + धृ °रेइ IX, 13, 1
उद्धरिय–उद्धृत VII, 12, 3
उद्धाणण–ऊर्ध्व + आनन VI, 1, 12
उद्धाविअ–उद् + धावित V, 14, 3
उपभोय–उपभोग IX, 22, 10
उप्पज्ज–उत् + पद् °इ II, 14, 2
उप्पण्ण–उत्पन्न, I, 11, 2.
उप्परिं–उपरि II, 9, 1
उप्पलखेडि–उत्पलखेटी, न VI, 11, 2
उप्पाइय–उत्पादित VI, 16, 6
उप्पाडिय–उत्पाटित X, 23, 9
उप्पाय–उत् + पादय् °इ IX, 14, 2
उब्भव–उद्भव X, 6, 4
उब्भा–उद्भूत V, 15, 6 (M उभा)
उब्भिय–उद्भूत VII, 9 9
उर–उरस् V, 19, 1
उवएस–उपदेश VII, 12, 8
उवगय–उपगत V, 7, 2
उवयार–उपकार II, 10,1
उवर–उदर IX, 5, 1
उवरि–उपरि II, 19, 10
उवलक्खिअ–उपलक्षित II, 17, 9
उवलद्धिय–उपलब्ध V, 9, 2
उववण–उपवन I, 14, 2
उववास–उपवास IV, 8, 4.
उवविट्ठ–उपविष्ट IX, 19, 8
उवसग्ग–उपसर्ग II, 4, 1
उवसम–उपशम II, 4, 8
उवसाहिअ–उप + साधित V, 2, 7
उवहसिय–उप हसित VI, 1, 1
उवाअ–उपाय VIII, 7, 12
उव्वम–उद् + वम् °मेइ IV, 14, 4.
उव्वस–उद्वास II, 11, 3, VIII, 11, 8
उव्वह–उद् + वह् °हेइ IX, 14, 5
उव्वाहुल–उत्सुक VII, 11, 5, X, 29, 13 (D. I, 136 prob from उद्वाह anxiety
उव्वेविर–उद् + वेप् + इर (नाचठोल्ये) V, 15, 2
उसह–औषध IX, 10, 2
उम्बर–उदुम्बर IX, 21, 5

[ऊ]

ऊवडीय–उत्पतित V, 1, 7
ऊसस–उद् + श्वस् °सेइ II, 11, 3
ऊसह–औषध IX, 23, 5
ऊहण–ऊहन VIII, 16, 2

[ए]

एअ–एतत् I, 11, 5
एक्क–एक I, 1, 6
एक्कल्ल–एकाकिन् VII, 1, 10 (H अकेला alone)
एक्कंत–एकान्त VII, 1, 4
एक्कतर–एकान्तर V, 10, 2
एत्तिअ–एतावत् IV, 17, 7
एत्थत्थि–अत्र + अस्ति I, 3, 5
एयमण–एकमनस् V, 2, 13
एयारस–एकादश X, 16, 6
एवहि–एवम् I, 10, 10
एवविह–एवंविध II, 12, 7
एह–एषा I, 15, 5
एह–एतत् I, 11, 3

[ओ]

ओहिणाण–अवधि + ज्ञान V, 11, 4

[क]

कअ–कृत VII, 7, 10
कइलास–कैलाश,प IV, 4, 10
कउत्तल–कुत (ल) III, 13, 6 (भाला, टि)
कउसंबि–कौशाम्बी, न I, 7, 9, VI, 1, 3 X, 11, 1, X, 12, 6
कउसीस–कपिशीर्ष I, 4, 2

उत्तत्त–उत्तप्त III, 2, 10
उद्दालिअ–उद् + दारित II, 8, 8, V, 2, 4 (आछिन्न Hem IV, 124, H उठाना to take away)
उद्दुमण–उद् + दुर्मनस् II, 21, 2
उद्ध–ऊर्ध्व I, 8, 6
उद्धर–उद् + धृ °रेइ IX, 13, 1
उद्धरिय–उद्धृत VII, 12, 3
उद्धाणण–ऊर्ध्व + आनन VI, 1, 12
उद्धाविअ–उद् + धावित V, 14, 3
उपभोय–उपभोग IX, 22, 10
उप्पज्ज–उत् + पद् °इ II, 14, 2
उप्पण्ण–उत्पन्न, I, 11, 2.
उप्परिं–उपरि II, 9, 1
उप्पलखेडि–उत्पलखेटी, न VI, 11, 2
उप्पाइय–उत्पादित VI, 16, 6
उप्पाडिय–उत्पाटित X, 23, 9
उप्पाय–उत् + पादय् °इ IX, 14, 2
उब्भव–उद्भव X, 6, 4
उब्भा–उद्भूत V, 15, 6 (M उभा)
उब्भिमय–उद्भूत VII, 9 9
उर–उरस् V, 19, 1
उवएस–उपदेश VII, 12, 8
उवगय–उपगत V, 7, 2
उवयार–उपकार II, 10,1
उवर–उदर IX, 5, 1
उवरिं–उपरि II, 19, 10
उवलक्खिअ–उपलक्षित II, 17, 9
उवलद्धिय–उपलब्ध V, 9, 2
उववण–उपवन I, 14, 2
उववास–उपवास IV, 8, 4.
उवविट्ठ–उपविष्ट IX, 19, 8.
उवसग्ग–उपसर्ग II, 4, 1
उवसम–उपशम II, 4, 8
उवसाहिअ–उप + साधित V, 2, 7
उवहसिय–उप हसित VI, 4, 1
उवाअ–उपाय VIII, 7, 12
उव्वम–उद् + वम् °मेइ IV, 14, 4.
उव्वस–उद्वास II, 11, 5, VIII, 11, 8
उव्वह–उद् + वह् °हेइ IX, 14, 5
उव्वाहुल–उत्सुक VII, 11, 8, X, 29, 15 (D I, 136 prob from उद्वाह anxiety
उव्वेविर–उद् + वेप् + इर (नाच्छील्ये) V, 15, 2
उसह–औषध IX, 10, 2
उवर–उदुम्बर IX, 21, 5

[ऊ]

ऊवडीय–उत्पतित V, 1, 7
ऊसस–उद् + श्वस् °सेइ II, 11, 3
ऊसह–औषध IX, 23, 5
ऊहण–ऊहन VIII, 16, 2

[ए]

एअ–एतत् I, 11, 5
एक–एक I, 1, 6
एकल्ल–एकाकिन् VII, 1, 10 (H अकेला alone)
एकत–एकान्त VII, 1, 4
एकतर–एकान्तर V, 10, 2
एत्तिअ–एतावत् IV, 17, 7
एत्थत्थि–अत्र + अस्ति I, 3, 5
एयमण–एकमनम् V, 2, 13
एयारस–एकादश X, 16, 6
एवहिं–एवम् I, 10, 10
एवविह–एवविध II, 12, 7
एह–एषा I, 15, 5
एह–एतत् I, 11, 3

[ओ]

ओहिणाण–अवधि + ज्ञान V, 11, 4

[क]

कअ–कृत VII, 7, 10
कइलास–कैलाश,प IV, 4, 10
कउत्तल–कुत (ल) III, 13, 6 (भाला, टि)
कउसवि–कौशाम्बी, न I, 7, 9, VI, 1, 3 X, 11, 1, X, 12, 6
कउसीस–कपिशीर्ष I, 4, 2

कज्ज–कार्य I 13, 4
कट्ट–कृत् °ट्टिवि VIII 12, 6
कट्ठ–काष्ट VII, 12, 6
*कडप्प–कटप्र (निकर) IV, 9, 2, (D II, 13)
कडयड–onomatop III, 18, 6
कडि–कटि III, 2, 5
कडियल–कटि + तल III, 2, 6
कड्ढ–कृष् °ड्ढिऊण VII,10, 3, °ड्डेवि X,13,7
कड्ढिअ–कृष्ट II, 3, 3
कढिण–कठिन I, 16, 4
कण–कण् °णेइ IV, 15, 6
कणउज्ज–कान्यकुब्ज, न II 10, 4
कणय–कनक III, 2, 10
कणयउर–कनकपुर, न VI, 13, 8
कणयप्पह–कनकप्रभा, स्त्री VI, 14, 10
कणयमई–कनकवती, स्त्री VI, 14, 9
कणयामर–कनकामर the author
I, 17, 16 etc X, 28, 2
कण्ण–कन्या II 12, 2
कण्ण–कर्ण II, 10, 10
कण्णजाअ–कर्ण + जाप VIII, 20, 8
कण्णरअ–कर्ण + रव IV, 6, 5
कण्णसअ–कन्या + शत VIII, 9, 10
कत्ती–कर्तरी X, 19, 8
कत्थइ–क्वचित् IV, 5, 2 (Hem II, 174)
कद्दम–कर्दम X, 5, 11
कप्पड–कर्पट X, 20, 6 (H कपडा)
कप्परुक्ख–कल्प + वृक्ष II, 1, 3
कप्पवच्छ– कल्पवृक्ष VII, 5, 10
कप्पत–कल्पमान III, 14, 6
कप्पूर–कर्पूर X, 24, 2
कम–क्रम (पाद) II, 14, 9
कमलायर–कमलाकर X, 2, 3
कम्म–कर्म I, 1, 5
कम्मट्ठगंठि–कर्म + अष्ट + ग्रन्थि III, 22, 9
कम्मासव–कर्म + आश्रव IV, 10, 6
कय–कृत I, 1, 7
कयत्थ–कृतार्थ I, 8, 3
कयलि–कदली I 16, 2
कयंत–कृतान्त I, 1, 5
कयायर–कृत + आदर VII, 4, 9
कयार–कतवार IX, 18, 7 दे, २, ११ कूडा-कचरा
कया वि–कदापि I, 10, 7
कर–कृ 'इ II, 9 10, °मि II, 6, 3 °हि II, 10, 2 °हिं IX, 1, 5, °हु II, 11, 6 °रति III 3, 8 °रि II, 15, 1, °रेविणु I, 10, 8 °रिवि II, 3, 10 °रेजहि X, 3, 5 °रेवइ IX, 6, 7 °रव्वइ II 13, 2 °रसइ II, 19, 7 °रेसहि II, 8, 10 °रेहि II, 17, 6
करकंड–the hero I, 2, 3, etc
करतण–कर्तृत्व X, 12, 8
करयल–कर + तल I, 15, 6
करंत–कुर्वत I, 2, 10
कराव–कृ + णिच् °हु V, 7, 3
कराविअ–कारापित IV, 5, 7
करि–करिन् V, 11, 6
करिराअ–करिराज, I, 16, 3
करिसणु–करिष्णु X, 29, 9
करिंद–करीन्द्र IX, 6, 1
करण–करुणा VI, 3, 1
करुणभाअ–करुण + भाव X, 23, 4
करुणवंत–करुणा + वत् VI, 6, 3
करुणसर–करुण + स्वर VII, 10, 14
कलउ–कला II, 15, 9
कलत्त–कलत्र V, 15, 3
कलयल–कलकल III, 16, 37
कलयंठि–कलकंठी III, 1, 7
कलस–कलश III, 3, 10
कलसर–कल + स्वर II, 8, 12
कलायर–कलाकर (चन्द्र) II, 16, 9.
कलिअ–कलित I, 2, 2
कलिंग–दे X, 10 2
कलिंजर–न I, 12 9
कल्लाण–कल्याण X, 25, 5
कल्लाणय–कल्याणक I, 2, 2
कवड–कपट VIII, 7, 6

कवण–को नु II, 12, 1 (H कौन)
कवलिअ–कवलित X, 23, 3
कवाल–कपाल II, 7, 9
कविलकेस–कपिलकेश II, 12, 3
कवोल–कपोल VII, 13, 5
कव्व–काव्य II, 9, 3
कसण–कृष्ण I, 16, 11
कसण–कृश VI, 6, 6
कसताडण–कशा + ताडन VIII, 9, 5.
कह–कथम् or कदा II, 4, 10 (M. केव्हा)
कह–कथा V, 2, 8
कह–कथ् °इ I, 15, 2, °मि I, 2, 3, °हि II, 4, 10 °हत IV, 7, 4, °हिवि V, 12, 6, °हेइ V, 1, 4
कहव–कथमपि I, 2, 6
कहव–कदापि II, 14, 1
कहाणी–कथानक, II, 14, 3
कहिअ–कथित II, 11, 1
कहिं–क्व I, 11, 5 (H कहां)
कहिं मि–क्वापि I, 17, 9
कंचनमई–काचनवती, स्त्री VI, 16, 3
कंटइय–कण्टकित IV, 9, 9
कंत–कान्त V, 5, 2
कंपिर–कम्प् + इर (ताच्छील्ये) X, 19, 10
काअ–काय IX, 12, 8
काइ–किम् IV, 12, 6 (Mar काइ G का)
काउल–कौल IX, 13, 8 (कुत्सित-कुल, टि)
काउसग्ग–कायोत्सर्ग X, 26, 10
कागली–काकली (soft sweet tone) (वीणा, टि) III, 6, 3
*काणि–लज्जा I, 2, 6, VI, 11, 8, VIII, 5, 6
काणीण–कानीन (कन्याया अनूढाया अपत्यम्) I, 5, 1
कामुक्कोयण–काम + उत्कोपन X, 27, 7
कामुय–कामुक I, 4, 9
कायर–कातर X, 29, 8
कार्वीअ–कारापित V, 3, 2
कारुण्ण–कारुण्य VII, 14, 5
कारोहण–वन X, 19, 7 (पर्वतरुहणाचल, टि कारु a hillock, Apte Dic)
कालिंजर–प VI, 2, 4
काहल–तत्सम् (वाद्यविशेष) II, 20, 2
किअ–कृत II, 4, 1
किज्ज–कृ passive or potential °इ II, 14, 1, VI, 3, 5
किणिअ–क्रीत VIII, 16, 4
किण्णरि–किन्नरी I, 15, 10
कित्ति–कीर्ति II, 3, 6
कित्तिय–कियत् VIII, 18, 3
किय–कृत II, 14, 2
कियत्थ–कृतार्थ IX, 17, 1
किर–किल II, 8, 7, III, 12, 1
*किर–सम्बन्धार्थे III, 6, 3
किराय–किरात VIII, 16, 2
किरिया–क्रिया X, 26, 8
किलाविय–किल् (to cast out) p p causal VI, 5, 3
किलेस–क्लेश IX, 14, 9
किवाण–कृपाण II, 3, 3
किसोयरि–कृशोदरी VII, 13, 10
किसोर–किशोर VIII, 2, 3
किह–कथम् III, 1, 11
कीय–कृत I, 2, 7
कीर–कृ °इ I, 10, 1, V, 16, 3, X, 26, 22 (करोति)
कील–क्रीडा I, 10, 1
कील–क्रीड् °एइ VII, 9, 3 °लेइ VI, 12, 8
कीलणत्थ–क्रीडनार्थ V, 4, 6
कीला–क्रीडा VI, 10, 6
कीलाघर–क्रीडागृह IV, 4, 9
कीलिर–क्रीड् + इर (ताच्छील्ये) I, 8, 4, VI, 10, 6
*कीस–किम् (प्रश्नसूचक) X, 1, 3 (Pai 826, H कैसा, prob from कीदृश).
कुच्छि–कुक्षि VII, 2, 4
कुडिल–कुटिल II, 14, 11

कुडिलवत–कौटिल्य + वत् III, 12 6, X, 23,9
कुणत–कुर्वत् I, 9, 8, VIII, 14, 5
कुद्ध–क्रुद्ध III, 12, 4
कुमर–कुमार II, 19, 7
कुमरत्तण–कुमारत्व VI, 5, 6
कुम्म–कूर्म III, 18, 6
कुलिस–कुलिश IV, 15, 3
कुविय–कुपित III, 17, 9
कुव्वत–कुर्वत् V, II, 13
कुसुमउर–°पुर, न I, 6, 1, X, 13, 5
कुसुमत्त–°दत्ता, स्त्री I, 15, 9, X, 13, 5
कुसुमदत्त–पु I, 6, 7
कुसुमाउह–°मायुध (काम) VI, 9, 3
कुसुमावलि–स्त्री VII, 16, 4, X, 24, 3
कूअ–कूप VII, 3, 4
कूर–तत्सम VIII, 13, 10, X, 14, 6 (भक्त D II, 43, K Mal T कूल or कूर boiled rice)
केउमइ–केतुमती, स्त्री VI, 12, 1
*कणअ–पूजाद्रव्य X, 17, 5 (केवडि पुजवु, टि, M केणे an article of merchandise)
केत्तहो–कुत्रचित् VI, 8, 10 (old H कितहू)
केत्तिअ–कियत् I, 11, 3
केत्थु–कुत II, 1, 10
केयइ–केतकी I, 16, 11
*केर–सेवा III, 10, 9, IV, 1, 5, VII, 15, 8, VIII, 10, 10
केलि–कदली III, 6, 6 (H केली)
केव–मिम् or कथम् IV, 13, 7
केवल–ज्ञानविशेष IV, 10, 6
केस–केश I, 17, 8
केसरि–केसरिन् IV, 15, 4
कोऊहल–कौतूहल IV, 13, 6
*कोकाविअ–को इति शब्देन आहूत IV, 12, 4
*कोक–आह्वे इत्यर्थे धातु °हु VI, 11, 11
कोड–क्रोड VI, 15, 1
कोमलिय–कोमल VIII, 16 9
*कोर–अनुपभुक्त (वस्त्र) X, 17, 4 (H कोरा)
कोसेय–कौशेय I, 1, 4 (H कोसा silk),
कोह–क्रोध I, 1, 8
कोहाइ–क्रोध + आदि IX, 10, 8
कोहाणल–क्रोधानल II, 1, 7
कोंकण–देश VIII, 12, 9
कोंत–कुन्त III, 13, 7

[ख]

खगणाह–खगनाथ III, 15, 9
खगवइ–खगपति VI, 16, 9
खग्गधेणु–खड्गधेनु VII, 10, 3
खग्गुग्गामिय–खड्ग + उद्गामिन् III, 15, 11
खज्ज–खाद् (कर्मणि) °इ IX, 21, 10
*खड–तृण VIII, 12, 6 (D II, 62 M खड But here it probably means wood)
खण–खन् °हि IV, 9, 1
खणद्ध–क्षणार्ध I, 10, 6
खणिय–खनित IV, 8, 7
खद्द–खादित II, 15, 5
खप्पर–खर्पर I, 17, 14
खम–क्षमा IX, 13, 9
खम–क्षमा °हि III, 22, 2, °हु VIII, 19, 5, °मतु X, 28, 5, °मीसु II, 18, 3
खय–क्षय X, 23, 5
खयर–खचर II, 21, 8
खल–स्खल् °लति VII, 5, 6, °लत II, 3, 1
खलखल–onomatop IV, 14, 6
खलभल–onomatop III, 18, 7
खलिय–स्खलित III, 12, 4
खव–क्षप् °हि I, 11, 3, °वेइ IX, 14, 3
खविय–क्षपित VI, 6, 8
खचिय–खचित or कृष्ट III, 8, 6, V, 10, 9, VII, 9, 8 (H खीचना to pull up)
खजय–खज I, 5, 6
खडाविय–खण्डापित II, 8, 6
खडिअ–खण्डित IX, 15, 1
खत–स्कन्ध (a flock) or खादन (eating)

or खन्न (ashamed as in Marathi) I, 3, 8

खध–स्कन्ध I, 12, 4

खम–स्तम्भ IX, 13, 3

खमायच–न VIII, 12, 10, VIII, 14, 9, VIII, 15, 1

खा–खाद् °इवि VI, 5, 6, °इ VII, 3, 7

खाण–खादन VIII, 2, 2, IX, 23, 6 (H खाना food)

खाणाविय–खनायित IV, 8, 5

खिणि–फलविशेष (H खिन्नी or खिरनी) IX, 21, 5

खीण–क्षीण VII, 1, 6

खुडिअ–खण्डित X, 2, 8 (H खोटना to pluck)

खुद्दुय–क्षुद्र + क V, 13, 6

खुहिय–क्षुब्ध III, 2, 1

खेअ–खेद VIII, 12, 5

खेत्त–क्षेत्र I, 3, 8

खेयर–खेचर II, 5, 2

खेव–खेद II, 14, 2

खोह–क्षोभ् °इ X, 29, 7

खोह–क्षोभ III, 18, 4

[ग]

गअ–गत I, 12, 10

गअ–गज II, 5, 3

गइ–गति IX, 6, 7

गइय–गता IV, 12, 1

गइद–गजेन्द्र I, 10, 8

गउरि–गौरी II, 2, 7

गग्गिर–गद्गद VII, 11, 8

गज्ज–गर्ज् °ज्जति III, 15, 4

गज्जमाण–गर्जत् V, 1, 7

गणिअ–गणित I, 11, 3

गत्त–गात्र II, 7, 7

गब्भ–गर्भ II, 14, 12

गब्भावयार–गर्भावतार X, 26, 5

गब्भिणी–गर्भिणी VIII, 2, 1

गभत्थि–गभस्ति VIII, 1, 7

गयखध–गज + स्कन्ध III, 3, 2

गयगयण–गत + गगन V, 4, 8

गयण–गगन IV, 9, 6.

गयणयल–गगनतल, न V, 3, 9, X, 8, 5

गयणगण–गगनाङ्गन VIII, 9, 8

गयपवर–गज + प्रवर III, 18, 10

गयमोल्ल–गत + मूल्य II, 17, 3

गयराय–गत + राग V, 6, 6

गयास–गत + आश V, 6, 6

गरु–गुरु II, 10, 1

गरुआर–गुरुतर X, 5, 3

गरुय, °व–गुरु + क II, 20, 10, VI, 16, 2

*गलत्थिय–कदर्थित IV, 15, 8; (क्षिप्त acc Hem IV, 14, 3, D II, 87

गलत–गलत् VI, 4, 11

गलिय–गलित VI, 4, 12

गलियछम्म–गलित + छद्म VII, 16, 6

गलियगव्व–गलित + गर्व V, 15, 3

गलियद्देस–गलित + द्वेष II, 12, 3

गलियसर–गलित + शर III, 21, 8

गव्व–गर्व II, 11, 8

गह–ग्रह I, 1, 5

गहण–ग्रहण VIII, 5, 14 (In the sense of ornament H गहना)

गहण–ग्रहण (In the sense of challenge) VIII, 15, 6

गहिअ–ग्रहीत II, 5, 9

गहिरिमा–गभीरिमा (गाम्भीर्य) I, 16, 6, II, 16, 10

गहीर–गभीर V, 17, 7

गग–गगा, नदी I, 3, 3

गठि–ग्रन्थि IV, 12, 1

गाइज्जमाण–गीयमान III, 1, 6

गाइय–गीत III, 8, 5

गामतर–ग्रामान्तर V, 10, 4

गाय–गै °इ I, 14, 8

गायत–गायत् IV, 7, 7

गाह–गाथा II, 11, 5
गाह–ग्रह IV, 1, 5
गिण्ह–ग्रह् °हि III, 22, 2
गिद्धअ–गृद्ध + क I, 17, 5
गिरा–गी VII, 12, 2
गिरिणयर- गिरिनगर III, 5, 7
गिरिंद–गिरीन्द्र IV, 16, 1
गिलत–गिलत् III, 17, 10
*गिल्ल–आर्द्र III, 1, 3 (H गीला wet)
गिम्हयाल–ग्रीष्म + काल I, 11, 4
गीय–गीत I, 3, 8
गीवा–ग्रीवा III, 15, 9
गुज्झ–गुह्य VIII, 20, 10
गुड–(तत्सम molasses) II, 7, 1
गुणठाण–गुणस्थान IX, 16, 8
गुणणिकेअ–°निकेत II, 2, 8
गुणणियर–°निकर V, 18, 1
गुणणिलअ–गुणनिलय III, 19, 9
गुणभरिय–गुणभृत I, 15, 11
गुणवमाल–°वर्मल I, 15, 4
गुणवय–°व्रत V, 12, 1
गुणविणीय–°विनीत V, 19, 7
गुणाल–गुण + आल (मत्वर्थे) V, 12, 2
गुप्पविय–गोपित X, 13, 1
गुप्प–गुप् °प्पति III 15, 8
गुलिया–गुलिका VII, 5, 11 (a stone-ball, कन्दुक D II, 103, H गुल्लिया)
गुलुगुलत–onomatop III, 13, 4, V, 14, 4
गुणायर–गुणाकर III, 3, 11
गुणाल–गुण + आल (मत्वर्थे) VII, 13, 4, X, 27, 1
गेण्ह–ग्रह् °ण्हेवि IX, 20, 15
गेण्हत–गृण्हत् III, 14, 3
गेहिणि–गृहिणी X, 11, 1
गोउर–गोपुर I, 10, 9
गोयर–गोचर I, 17, 8
गोवद्धण–गोवर्धन, प IV, 11, 2.
गोहणणाह–गोधन + नाथ VIII, 3, 5

[घ]

घग्घर–घर्घर IV, 15, 6 (घग्घर–जघनस्थवस्त्रभेद D II, 107, does not suit here)
घट्ट–घट् °इ I, 10, 10
घड–घट X, 26, 2
घड–घट् °डति X, 25, 5 °इनु IX, 16, 8,
घडिअ–घटित II, 7, 10
घडीय–घटित (lengthened for metre) IV, 9, 1, VII, 12, 6
घण–घन III, 3, 1
घय–घृत III, 8, 8
घर–गृह I, 1, 11
घरट्ट–(तत्सम) a grinding stone III, 22, 7
घरिणि–गृहिणी I, 2, 9
घरवय–गृह + व्रत IX, 22, 2
*घल्ल–क्षिप् °इ VI, 11, 11, IX, 1, 4 (Hem IV, 334, 422, ex M घालणे)
*घल्लिअ–क्षिप्त V, 2, 4, VII, 4, 5
घाअ–घात VIII, 9, 4
घाइऊण–घातयित्वा VII, 10, 7
घार–पक्षिविशेष I, 17, 4 (M घार)
*घित्त°–क्षिप्त I, 4, 5, (See Notes on Nayakumara–cariu III, 6, 11)
घिय–घृत X, 26, 2
घुम्म–घूर्ण् °ऌति I, 16, 14, IX, 3, 9, (M घोलणें)
घुलत–घूर्णत् I, 9, 4
घुसिण–घुसृण IV, 11, 4
घोडअ–घोटक VII, 2, 6 (H घोडा)
घोलिर–घूर्ण + इर (ताच्छील्ये) I, 17, 8
घोसिअ–घोषित II, 20, 10

[च]

चउक्क–चतुष्क IX, 10, 8
चउगइ–चतुर्गति I, 1, 6
चउथिय–चतुर्थ X, 12, 4
चउदह–चतुर्दश IX, 15, 1
चउदिस–चतुर्दिश III, 12, 13

चउभेय–चतुर्भेद VI, 3, 7
चउरग–चतुरङ्ग IV, 1, 14
चउरिय–चमरी VII, 7, 10
चउविह–चतुर्विध II, 7, 6
चउवीस–चतुर्विंशति V, 4, 8
चउसत्थिय–चतु शास्त्रीय VIII, 17, 8
चक्क–चक्र II, 9, 5
चक्कत्त–चक्रत्व V, 1, 9
चक्कवाल–चक्रवाल V, 2, 1
चक्कहर–चक्रधर IX, 7, 9
चक्केसर–चक्रेश्वर X, 26, 1
चकोरअच्छि–चकोराक्षी VII, 4, 8
चक्खु–चक्षुष् VII, 1, 4
चच्चरवत–चर्चरी + वत् II, 20, 7 sportive, or चत्वरवत् square i e massive, Hem II, 12, चच्चर-जर्जर Hem IV, 325)
चच्चिअ– चर्चित, IV, 11, 4
चट्ट–(तत्सम, शिष्य) VII, 2, 5
*चड–आरुह् °इ IV, 5, 5, °डावहु X, 5, 1, °डेवि I, 10, 9, °डेविणु VIII, 7, 10, °डेसहि II, 8, 3 (Hem IV, 206, H चढ़ना)
*चडफडत–परिस्फुरत् VIII, 20, 5, (H तड़फड़ाना)
*चडाविय–आरोहित I, 12, 4, IV, 6, 6
*चडिअ–आरूढ III, 1, 3, VIII, 9, 3
*चडिण्णअ–आरूढ III, 3, 2, VII, 8, 8
*चडीणा–आरूढ III, 6, 2
*चडीय–आरूढ X, 13, 9
चत्त–त्यक्त III, 20, 6
चप्प–चाप III, 18, 3
*चप्पिय–आक्रान्त VIII, 20, 8, (Hem IV, 395, M चापणें, चोपणें)
चमक्क–चमत् + कृ °इ VIII, 6, 3 (H चमकना, चौंकना)
चमक्किय–चमत्कृत VII, 11, 4, VIII, 17, 11
चम्मय–चर्म + क VII, 10, 8
चयारि–चत्वारि IX, 23, 3

चलण–चरण II, 1, 5
चलाविय–चालित II, 20, 4
चल्लिअ–चलित IV, 1, 13
चवल–चपल IX, 18, 3
चव–वच् (by वर्णविपर्यय) °इ X, 8 3 (Hem IV, 2)
चग–(handsome M चांगला) I, 16, 3.
चदलेह–चन्द्रलेखा, III, 6, 5
चदलेह–चन्द्रलेखा, स्त्री VII, 16, 3, X, 21, 4
चदाणण–चन्द्रानन VIII, 16, 10
चदायण–चान्द्रायण IX, 14, 8
चदारिसि–चन्द्र + ऋषि X, 28, 1 (The gotra of the poet)
चदोवा–चन्द्रोपक X, 17, 9 (H चंदोवा, चंदेवा)
चप–चम्पा, न II, 5, 2
चपय–चम्पक I, 14, 6
चपा–चम्पा, न I, 3, 12
चपाहिअ–चम्पाधिप III, 14, 9
चाउरग–चतुरङ्ग IV, 2, 5
चामीयर–चामीकर III, 3, 6
चारिय–चारित (fed) VIII, 2, 2 (H चराना)
चाव–चाप IV, 6, 6
चिक्कार–चीत्कार onomatop III, 14, 2
चिच्चिजाल–अर्चि + जाल I, 17, 7 (D III, 10)
चिण–चि °णेवि IV, 13, 5
चिणिअ–चित V, 13, 2
चिण्हधअ–चिन्ह + ध्वज III, 16, 6
चित्तधया–चित्र + ध्वजा VIII, 3, 8
चित्तलिय–चित्रालय I, 4, 6
चित्तलिय–चित्रलिप्त VI, 4, 8
चिराणअ–चिरातन VII, 3, 4, VIII, 14, 2
चिरु–चिरम् IV, 13, 3
*चिंधिय–वस्त्रखण्ड (पटच्चर) I, 17, 8
चुअ–च्युत IV, 6, 5 (H, M, चिंधी)

*चुक्क–भ्रश् °इ II, 8, 5 (Hem IV, 177, H चूकना, M चुकणे)
चुणत–चिन्वत् VIII, 14, 1 (Hem IV 238)
चुवअ–चुवक IX, 12, 2
चूय–चूत I, 14, 6
चेट्ठ–चेष्ट् °इ VIII, 3, 6
चेडिअ–चेटिका II, 15, 7
चेर–दे IV, 1, 5, VIII, 18, 5
*चोज्ज–आश्चर्यं II, 7, 8 (D III, 14, Pai 451, H चौज)
*चोज्ज–चिन्ता VI, 6, 2
चोड–दे II, 10, 5, VIII, 19, 3
चोर–चौर I, 17, 4
चोरिअ–चौर्य IX, 22, 6

[छ]

छखंड–षट् + खण्ड I, 3, 4
*छज्ज–राज्, शोभ् °इ I, 9, 3 (Hem IV, loo, prob from सज्ज्)
*छज्जमाण–सज्जमान, शोभमान VII, 9, 6
छडय–छटा I, 4, 7
छणवासर–क्षण° (पूर्णिमा) V, 19, 5
छण्णव–क्षुद्र + नौ (?) VII, 8, 10
छत्त–छत्र II, 8, 2
छत्ताइमाण–छत्रायमान IV, 9, 2
छम्म–छद्म VII, 16, 6
छव्वासय–षड् + आवश्यक IX, 20, 20
*छड–मुच् °इ III, 5 3, °उ II, 4, 6, °हि III, 21, 5, °डावइ II, 11, 2, °डिऊण VII, 10, 1, °डाविय V, 18, 2, °डिवि III 2, 6 (Hem IV, 91, H छोडना)
छाइय–छादित III, 16, 3
छाय–छाया I, 7, 9
छिण्ण–छिद् °इ VIII, 7, 8
छिण्णिअ–छिन्न III, 16 6
°छिव–स्पृश् °इ I, 4, 2 (Hem IV, 182, H छीना to tcuch)
छिंदण–छेदन IV, 10, 3,
*छुट्ट–मुच् (कर्मणि) °इ IX, 5, 10, (H छूटना to be released)
*छुट्टिय–मुक्त III, 20, 10, X, 14, 1 H छूटी)
*छुड्ड–क्षिप्रम् III, 19, 1
*छुद्ध–क्षिप्त I, 7, 3, X, 13, 1 (Hem IV, 143)
छुरिअ–क्षुरिका III, 13, 7
*छुह–क्षिप् °उ IX, 7, 5, °हिवि X, 12, 9, (Hem IV, 143)
छुह–सुधा V, 4, 8
छुहतण्ह–क्षुधा + तृषा V, 10, 4
छेत्त–क्षेत्र 1, 3, 3
छेयण–छेदन IX, 8, 5
छेयतर–छेदान्तर II, 9, 7
*छोड–मोचय् °इ X, 7, 5 (H छोडना to untie)
छोहारदीव–द्वीपविशेष VIII, 10, 3

[ज]

जइ–यदि I, 2, 4
जइयहु–यदा II, 8, 10 (H. ज्योंही)
जइवर–यतिवर VI, 2, 8
जइवि–यद्यपि I, 2, 5
जई–यति V, 9, 1
जईसर–यतीश्वर IX, 22, 2
जउ–यावत् II, 21, 3 (H जब)
जउणा–यमुना (नदी) X, 12, 9
जउलगि–यावत् + लग्नम् VIII, 2, 9 (H जबलग or जौलो)
जक्ख–यक्ष I, 3, 7
जगतिलअ–जगत् + तिलक IV, 15, 10
जगत्तअ–जगत् + त्रय V, 6, 3
जडीअ–जटित IV, 9, 4
जण–यान II, 2, 4
जणवअ–जनपद I, 2, 4, X, 29, 14
जणवइ–जनपति VI, 16, 8
जणवर–जन्तुवर VIII, 7, 6 (H जानवर)
जणाविअ–ज्ञापित II, 9, 9,

जोव्वण–यौवन X, 13, ९
जोह–योध III, 17, 7
जोहिय–योधित III, 17, 7

[झ]

झत्ति–झटिति XIII, 4, 3
झरत–क्षरत् III, 1, 3
झलझलिअ–onomatop III, 18, 8
झलाझल–onomatop IV, 6, 5
झा–ध्यै °एवि VII, 12, 10, °यइ VII, 13, 1, °यहि VI, 10, 1
झाण–ध्यान II, 7, 7.
झाणजोइ–ध्यान + योगिन् IX, 13, 8
झाणट्ठिय–ध्यान + स्थित III, 2, 1
झाणाणल–ध्यान + अनल X, 27, 5
झाय–ध्यात V, 5, 8
झिज्ज–खिद् °इ IX, 8, 7
झीण–क्षीण II, 6, ९, III, 6, 5
झुणि–ध्वनि X, 6, 3

[ट]

टक्क–जातिविशेष VIII, 16, 1
टलटलिअ–onomatop III, 18, 7
*टिंट–द्यूतस्थान VIII, 15, 2 (टेंटा D IV, 3)
*टेवंत–तीव्रीकुर्वत् (?) X, 1९, 8 (H टेना to sharpen)

[ठ]

ठा–स्था Imperative IX 20, 15
ठाअ–स्थान III, 11, 2, V, 3, 3 (H ठाव)
ठाण–स्थान II, 15, 3
ठिअ–स्थित III, 4, 3

[ड]

डकार–डुत्कार onomatop (H डकार)
डज्झमाण–दह्यमान I, 17, 10
डर–दर (भय) VII, 5, 4
डरिय–दीर्ण (दृ + क्त) I, 1, 6, VIII, 18, 11, oa पतित as in H डरा fallen
डसिअ–दष्ट VII, 4, 6
डसियाहर–दष्ट + अधर III, 13, 10
डम–दम्भ IX, 12, 5
डिंडिम–वाद्यविशेष II, 11, 6
डोल–दोलाय् °इ IV, 15, 5
*डोहत–गम्भीर + अन्त I, 13, 10 (H M deap water)

[ढ]

ढग्ग–शुष्कप्राय I, 14, 2 (M ढाक an old and decaying tree ढक-ध्वाक्ष c f D IV, 13 and Pai 67 does not suit well).
*ढाल–निर् + वम्° लेमहि II 1९, 10 (H ढालना to pour down).
ढुक्क–ढौकित IV, 5, 1, VII, 10, 6

[ण]

णइ–नदी I, 3, 3
णअ–नव IV, 13, ९
णअ–नत II, 2, ९, VIII, 4, 2
णउ–न I, 11, 12
णउल–नकुल IX, ९, 7
*णग्गुड–नग्न VIII, 15, 5 (H नगोडा penniless)
णच्च–नृत् °इ III, 3, 5 (Hem IV, 225)
णच्चण–नर्तन VIII, 10, 1
णच्चिर–नृत् + इर (ताच्छील्ये) I, 17, 6 (रमणशील D IV, 18)
णट्ठ–नष्ट II, 13, 7
*णडिय–वञ्चित, VI, 10, ९ (D IV, 18)
णण्ह–स्निग्ध VIII, 2, 6
णत्थि–नास्ति I, 2, 11
णद्द–नाद IX, 2, 2
णभग्ग–नभ + ग VIII, 3, 2
णमिय–नमित III, 20, 8
णय–नत III, 19, 6
णयणुल्ल–नयन + उल्ल (स्वार्थे) I, 3, 6.
णयर–नगर II, 6, 7
णरयाल–नरकालय IX, 8, 2
णरवइ–नरपति I, 10, 6
णरवाहणदत्त–पु V, 1९, ९
णरायण–नारायण X, 25, 3

णराहिव–नराधिप II, 16, 3
णरिंद–नरेन्द्र I, 2, 3
णरेसर–नरेश्वर I, 10, 7
णव–नम् °इ III, 11, 9, °हु IV, 1, 7, °हु IV, 1, 9, °वेवि III, 9, 5
णवकार–नमस्कार मंत्र V, 18, 8
णवणिअ–नवनीत (घृत) IX, 21, 4
णवल्ल–नव + अल्ल (स्वार्थे) II, 17, 10
णह–नभ III, 12, 4
णहयल–नभस्तल II, 21, 8
णहरूव–नख + रूप I, 16, 1
णहगण–नभ + अगन IV, 8, 8
णा–ननु I, 3, 5
णाइणि–नागिनी X, 12, 11
*णाइ–इव I, 9, 6, I, 16, 1, II, 20, 3, (H नाईं like)
णाडय–नाटक II, 9, 2
णाण–ज्ञान I 1, 4
णायकुमार–नाग° X, 3, 1
णायदत्त–नाग° पु X, 6, 7
णायदत्त–नागदत्ता, स्त्री, X, 10, 6
णायर–नागर III, 1, 8
णारय–नारक IX, 8, 2
णारि–नारी I, 15, 10
णालद–नालन्दा न X, 10, 9
णास–नश् °इ VIII, 14, 5
णास–नाश II, 19, 5
णास–नासा II, 3, 6
णासिय–नाशित II, 21, 3
णाह–नाथ III, 9, 4
णाहि–नाभि I, 16, 6
णिअ–नृप II, 12, 5
*णिअ–दृश् °एइ I, 15, 1 (Hem IV, 181),
णिउणिया–निपुणिका II, 6, 2
णिउण–निपुण X, 26, 22
णिकाअ–निकाय VIII, 13, 7
णिकिट्ठ–निकृष्ट IX, 6, 8
णिकेअ–निकेत III, 3, 3
णिक्खण–नि + खन् °णेवि V, 8, 8
णिक्खय–निक्षत IV, 17, 7
णिक्खवण–निक्षपण X, 26, 11
णिग्गअ–निर्गत III, 11, 9
णिग्गम–निर्गम् °मेइ IV, 11, 4
णिग्गह–निग्रह IX, 21, 3
णिग्गत–निर्गच्छत् IV, 14, 5
णिग्गथ–निर्ग्रन्थ III, 2, 5
णिग्घिण–निर्घृण, IX, 1, 10
णिचिट्ठ–निश्चेष्ट VIII, 8, 2
णिच्च–नीच II, 11, 2
णिच्च–नित्य IV, 10, 8
णिच्चल–निश्चल V, 2, 10
णिच्छअ–निश्चय, I, 10, 10
णिच्छेदिय–निश्छिद्रा X, 13, 2
णिज्जर–निर्जरा IX, 14, 1
णिज्जिय–निर्जित IV, 10, 4
णिज्जुज–नि + युज् °जिवि X, 27, 8
णिज्झर–निर्झर III, 1, 3
णिज्झाइय–नि + ध्याता VII, 12, 10
णिट्ठवण–निष्ठापन III, 22, 9
णिट्ठुर–निष्ठुर VI, 6, 7
णिद्दुरिय–निर + दुलित V, 14, 9, X, 20, 3
णिण्णासयर–निनशिकर V, 6, 9
णित्ति–नीति II, 18, 10
णित्तुलिय–निस्तुलित IX, 11, 11
णिद्ध–स्निग्ध IV, 10, 10
णिद्धण–निर्धन VI, 5, 3
*णिद्धाड–नि + सृ (णिच्) °डिवि V, 2, 4 (Hem IV, 79)
*णिद्धाडिअ–निस्सारित X, 1, 9
णिब्भच्छिअ–निर्भर्त्सित IV, 1, 8
णिब्भर–निर्भर V, 14, 5
णिबज्झ–नि + बध् (कर्मणि) °इ VI, 4, 2
णिमिस–निमेष IX, 15, 5
णिम्मल–निर्मल II, 11, 7
णिम्मविअ–निर्मापित V, 3, 2
णिम्मिअ–निर्मित VII, 2, 9
णिय–निज II, 1, 4

णिय–नीत, II, 11, 1
*णिय–दृश् °इ VIII, 12, 3
णियय–निज + क VI, 1, 9
णियर–निकर I, 2, 3
णियब–नितम्ब I, 16, 4.
णियाण–निदान VI, 4, 4
णिरत्थ–निरर्थ III, 19, 5
णिरहरिअ–निर्हृत II, 18, 2
*णिरारिउ–नितराम् X, 6, 2
*णिरु–नितराम् I, 2, 4
णिरुत्तउ–नितराम् (निरुक्तम्) VII, 1, 4
(M निरुते certainly).
णिरूव–निरूप II, 3, 8
णिलअ–निलय II, 1, 9
णिव–निज X, 19, 8
णिव–नृप II, 21, 5
णिवइ–नृपति III, 11, 9
णिवज्ज–नैवेद्य IX, 20, 17
णिवडिय–निपतित III, 6, 4
णिविट्ठ–निविष्ट VIII, 15, 3.
णिवित्त–निवृत्ति IV, 1, 11
णिवेज्ज–नैवेद्य VII, 12, 7
णिवेसिअ–निवेशित IV, 11, 9
णिव्विण्ण–निर्विण्ण X, 25, 1
णिसायर–निशाचर IX, 21, 10
णिसिभोयण–निशि + भोजन V, 12, 2
णिसियर–निशिचर II, 13, 9
णिसिवअ–निशि + व्रत X, 12, 2,
णिसुअ–निश्रुत IV, 12, 10
णिसुअ–नि + श्रु °हि V, 9, 1, °णि 1, 14, 5,
°णिवि IV, 12, 7
णिसुय–निश्रुत X, 29, 4
णिहण–निधन (मरण) II, 14, 8.
णिहण–निर्धन IX, 5, 10
णिहम्म–नि + हन् (कर्मणि) °इ IX, 8, 2
णिहत–निघ्नत् IX, 13, 4
णिहाअ–निघात IV, 15, 3
णिहाण–निधान I, 3, 4
णिहाल–निभाल् °हि V, 6, 10 (H निहारना
to see attentively)
णिहालण–निभालन (अवलोकन) IX, 8, 9
णिहिय–निहित II, 16, 8
णिहिल–निखिल X, 25, 6
णिहीण–निहीन V, 16, 6.
णिहोडण–निपातन V, 5, 10 (Hem.
IV, 22, prob. from निर्घट्टनम्).
णीअ–नीत IV, 8, 6
णीइ–नीति II, 11, 3
णीयाण–निदान VI, 4, 5
णील–नील, पु V, 2, 2
णीवि–नीवी X, 7, 5
णीसर–नि + सृ °इ IV, 13, 2, °हु IV, 13, 7,
°रिवि VI, 9, 8
णीससत–नि + श्वसत् III, 5, 3
णीसारिअ–नि + सारित X, 22, 4 .
णेउर–नूपुर III, 2, 6, Hem I, 123,
Var I, 26)
णेत्त–नेत्र VII, 3, 1
णेवावि–नी + णिच् + क्त्वा VIII, 13, 2,
णेवी–नी + भविष्यत् II, 5, 4
णेह–स्नेह I, 3, 7
णेहल–स्नेह + ल (मत्वर्थे) VI, 11, 6
णेहवत–स्नेह (तैल) + वत् VIII, 2 2
ण्हवण–स्नपन X, 26, 2
ण्हत–स्ना + अत् (pre. part) III, 12, 8
ण्हा–स्ना °इवि IV, 11, 7, °विऊण X, 17, 8
ण्हाण–स्नान V, 3, 4

[त]

तअ–तपस् V, 9, 10
तइय–तृतीय V, 12, 10
तइयहु–तदा VII, 11, 18
तउलगि–तावत् + लग्नम् VIII, 2 10
(H तौलो or तवलों)
तक्क–तर्क II, 9, 2
तक्खण–तत्क्षण I, 10, 2
तग्गय–तद्गत III, 1, 8

तच्च–तत्त्व IX, 21, 3
तट्ठीय–तत् + स्थिता III, 18, 1
तड–तट III, 20, 11
तडयड–Onomatop III, 18, 6
तणु–सवन्धवाचक, I, 2, 3
तणउ–तनु II, 6, 4
तणुवण–तृण + वन II, 4, 7.
तण्ह–तृष्णा II, 16, 5
तण्हाउर–तृष्णातुर IV, 7, 3.
तम–तमस् I, 16, 14
तरलिअ–तरलित I, 14, 11
तवचरण–तपश्चरण II, 13, 7
तवसि–तपस्विन् IX, 5, 9
तवसिरि–तप + श्री III, 22, 8
तवोहण–तपोधन VI, 6, 6
तस–त्रस IX, 24, 3
तह–तथा I, 2, 1
तडउ–ताण्डव IV, 11, 6
तत–तत्र II, 9, 4
तद्–तद्रा I, 9, 7
ता–तदा I, 11, 4
ताअ–तात III, 19, 8
ताउ–तावत् I, 6, 1
ताम–तावत् I, 14, 3
तामलित्ति–ताम्रलिप्ति, न, X, 10, 5
ताय–तात VII, 15, 2
तार–असुरदेवता, टि II, 2, 3
ताव–तावत् I, 13, 2
तावस–तापस VIII, 8, 3
ताविअ–तापित VI, 12, 5
तिक्ख–तीक्ष्ण II, 3, 3
तिणु–तृण VIII, 19, 8
तिण्णि–त्रीणि II, 8, 6
तित्ति–तृप्ति X, 10, 5
तित्थवर–तीर्थंवर V, 9, 6
तिय–स्त्री X, 9, 6 (H तिया)
तियाल–त्रिकाल X, 27, 1
तिरियलोय–तिर्यग् लोक IX, 15, 3
तिरीड–किरीट IV, 10, 2, IV, 16, 3.

तिलअ–तिलक X, 25, 10
तिलयदीव–तिलकद्वीप VII, 15, 1
तिलरिया–तैलत्व (स्नेह) VI, 10, 5
तिलोय–त्रिलोक V, 6, 4
तिहुवण–त्रिभुवन VI, 1, 9
तुट्ट–त्रुट् °ट्टति III, 15, 4, °ट्टेवि VIII, 1, 6
तुट्ठ–तुष्ट VII, 8, 5
तुट्ठि–तुष्टि IV, 11, 3
तुम्हारिस–त्वादृश VIII, 10, 6.
तुरअ–तुरग VII, 2, 7
तुरत–त्वरित II, 15, 3
तुरिअ–त्वरित II, 10, 7
तुल्ल–तुल्य VIII, 6, 10
तुसार–तुषार IX, 14, 4
तुहार–तव II, 18, 5, (H तुम्हारा)
तुहु–त्वम् I, 10, 3
तूर–तूर्य X, 17, 6
तूस–तुष् °सेवि II, 14, 9
तेअ–तेजस् II, 8, 9
तेत्तिय–तावती V, 6, 3.
तेत्थु–तत्र, I, 14, 10
तेम–तथा III, 8, 10.
तेय–तेजस् I, 9, 3
तेयणिहि–तेजोनिधि III, 1, 12
तेरउ–तव III, 21, 5 (H तेरा)
तेरहम–त्रयोदशम X, 16, 7
तेराणयर–तेरानगर V, 2, 6
तो–तत I, 2, 8, I, 10, 10
तोअ–तोय II, 14, 8
तोड–त्रोटय् °मि IV, 17, 2, °डति III, 15, 9, °डेविणु X, 27, 2.
तोडिय–त्रोटित VIII, 12, 8
तोयजाण–तोय + यान VII, 9, 8
तोलादड–तुला° II, 2, 2
तोस–तोष II, 3, 4

[थ]

था–स्थापय् °इ VI, 7, 5, °वति VII, 13, 7; °इवि V, 2, 7, °एवि X, 17, 3, °विऊण VII, 10, 7.

थक्क–स्था °इ X, 25, 2 (Hem IV, 16)
थक्क–स्थित II, 1, 8
*थट्ट–समह III, 8, 6 (M थट or थड, H थट्ट or ठट्ठ).
थण–स्तन I, 9, 4
थम्भ–स्तम्भ IV, 4, 3
थरहरन्त–कम्पमान onomatop III, 13, 5
थल–स्थल 1, 3, 9,
थविअ–स्थापित VI, 16, 10.
थाण–स्थान V, 8, 7
थाम–स्तम्भ 1, 17, 8
थाल–स्थाली IX, 2, 6
थावर–स्थावर IX, 24, 3
थिअ–स्थित III, 4, 12
*थिप्प–विगल् °प्पति III, 15, 8, (Hem IV, 175)
*थिप्पिर–तृप् + इर (ताच्छील्ये I, 17, 5 (Hem IV, 138)
थिय–स्थित IV, 17, 9
थिर–स्थिर III, 2, 10
थी–स्त्री X, 22, 9.
थीअ–स्थित X, 23, 2
थीवेअ–स्त्री + वेद X, 15, 5
थुइ–स्तुति III, 20, 9
थुण–स्तु °इ VII, 14, 3, °णति IX, 2, 4, °णेहि V, 6, 2
थूल–स्थूल VII, 10, 6
थोर–स्थूल II, 12, 10 (M G थोर much)
थोवअ–स्तोक, VIII, 2, 6
थोवतर–स्तोकान्तर IV, 8, 7

[द]

दइव–दैव VII, 11, 11
दक्ख–द्राक्षा I, 3, 9 (H दाख)
दक्खाल–दर्शय् °लि IV, 13, 6
दक्खालिअ–दर्शित VII, 7, 5
दक्खिण–दक्षिण V, 4, 5,
दक्खिणवह–दक्षिणापथ IV, 2, 4
दड्ढ–दग्ध IX, 4, 9
दद्दुर–दर्दुर IV, 13, 8
दप्पण–दर्पण VIII, 5, 11
दब्भकिअ–दर्भाङ्कित III, 12, 9
दय–दया V, 2, 10
दरमलीय–द्रुमर्दित VIII, 19, 4
दविण–द्रविण II, 17, 8
दव्व–द्रव्य VII, 12, 9
दसण–दशन III, 15, 5
दसरह–दशरथ पु III, 1, 12
दह–दश III, 12, 3
दहि–दधि VIII, 13, 6
दंतीपुर–न II, 5, 4
दंसण–दर्शन IV, 10, 10
दाइज्ज–दाय VII, 8, 2 (H दायजा or दहेज)
दाइय–दायाद VI, 4, 9
दाढा–दंष्ट्रा IV, 5, 4
दामोयर–दामोदर IX, 17, 10
दार–द्वार X, 22, 6
दारिय–दारित I, 17, 5
दाव–दर्शय् °इ X, 7, 5 (Hem IV, 22)
दाहिण–दक्षिण II, 2, 1
दिअ–द्विज X, 21, 3
दिएसर–द्विजेश्वर II, 20, 1
दिक्ख–दृश् °क्खवि II, 12, 8
दिक्ख–दीक्षा X, 24, 7
दिज्ज–दा (कर्मणि) °इ II, 15, 2
दिट्ठ–दृष्ट I, 14, 2
दिढ–दृढ II, 9, 5
दिणयर–दिनकर I, 1, 1
दिण्ण–दत्त I, 10, 5
दित्त–दीप्त I, 4, 5
दिप्पंत–दीप्यमान III, 14, 6
दिम्मुह–दिङ्मुख II, 3, 4
दियवर–द्विजवर III, 4, 3
दियह–दिवस II, 5, 10
दियंबर–दिगम्बर X, 28, 2
दिवह–दिवस III, 8, 3
दिवायर–दिवाकर II, 3, 1
दिविडदेस–द्रविडदेश IV, 1, 4
दिव्व–दिव्य I, 2, 1

दिसामुह–दिशामुख IV, 6, 7
दिहि–धृति VI, 2, 6 (Hem II, 131).
दिंत–ददत् VIII, 4, 4
दीवअ–दीपक III, 3, 9
दीव–द्वीप, दीप I, 3, 1
दीस–दृश् (कर्मणि) °इ I, 14, 5
दीह–दीर्घ III, 4, 11
दीहर–दीर्घ III, 16, 4 (Hem. II, 171)
दुइज–द्वितीय X, 10, 8 (H दूजो)
दुक्किय–दुष्कृत IX, 8, 3
दुक्खाउर–दु खातुर IX, 4 1
दुक्खिय–दु खित II, 6, 2
दुज्जण–दुर्जन I, 2, 4
दुट्ठ–दुष्ट I, 12, 9
दुण्णीइ–दुर्नीति II, 19, 4
दुत्थिअ–दु स्थित VI, 5, 1
दुप्पवेस–दुष्प्रवेश X, 10, 2
दुद्ध–दुग्ध X, 20, 10
दुद्धर–दुर्धर I, 13, 9
दुम–द्रुम I, 3, 1
दुम्मण–दुर्मनस् I, 15, 7
दुम्मिय–दून VI, 8, 9, VIII, 19, 3 (Hem IV, 23, Var VIII, 8)
दुम्मुह–दुर्मुख VII, 11, 11
दुरिय–दुरित I, 5, 6
दुरेह–द्विरेफ IV, 6, 7
दुवार–द्वार VIII, 6, 6
दुवारिअ–दौवारिक VIII, 6, 8
दुविह–द्विविध IX, 14, 10
दुसम–दु षम IV, 17, 5
दुह–दु ख I, 1, 6,
दुहमहिय–दु ख + मथिका I, 7, 10
दुहयर–दु खकर VI, 5, 5
दुहिय–दु खित VII, 8, 5
दुहिय–दुहितृ X, 12, 2
दुदुहि–दुंदुभि IV, 9, 3
दूअ–दूत III, 9, 10
दूसय–दूष्यक (tent) IV, 2, 6
दूसिय–दूषित IX, 11, 2
दे–दा °इ II, 1, 8, °उ III, 11, 7, °मि II, 14, 5, °वि I, 17, 1, °विणु II, 21, 7
देअ–देव I, 11, 8
देक्ख–दृश् °इ V, 12, 8, °हु III, 4, 7 °विखवि II, 6, 9
देक्खत–पश्यत् V, 5, 4
देवअ–देवता VII, 12, 10
देवाविअ–दापित II, 15, 6 (H दिवाया)
देस–द्वेष II, 12, 3
देस–देश I, 3, 5
देहि–देहिन् I, 17, 9
दोण्णि–द्वौ II, 18, 3
दोल्लहर–दोलगृह III, 6, 2
दोवालस–द्वादश X, 16, 6
दोस–दोष I, 17, 1
दोहल–दोहद I, 9, 11 (Hem I, 221)

[ध]

धणु–धनुष् I, 16, 12
धणुवेय–धनुर्वेद II, 9, 5
धणुहडिय–धनु + घटिका or घटिका (?) VII, 5, 13 (prob a catapult)
धणुहर–धनुर्धर III, 12, 12
धण्ण–धन्य I, 14, 12
धम्म–धर्म I, 13, 4
धय–ध्वज II, 8, 2
धर–धृ °मि IV, 13, 5, °हि II, 11, 8
धर–धरा III, 2, 8.
धरणिंद–धरणेन्द्र III, 18, 8
धरणिवइ–धरणीपति III, 19, 10
धरणिवाल–धरणीपाल VII, 8, 8
धरिअ–धृत II, 11, 5
धरित्ति–धरित्री II, 14, 5
धाइअ–धावित V, 14, 7
धाडीवाहण–पु I, 4, 10
धिट्ठ–अधिष्ठित (?) I, 17, 4
धिट्ठ–धृष्ट III, 17, 2
धीय–दुहितृ I, 16, 6

धुण–धू °इ IV, 15, 6, °णिवि II, 20, 10
धुत्त–दुहितृ VIII, 11, 2.
धुर–धुर्य VIII, 2, 5.
धूमकेउ–°तु, पु VI, 10, 4
धूय–दुहितृ VII, 7, 9
घणुआ–धेनुका (खड्ग) VII, 3, 7
धो–धाव् °इवि IV, 7, 9, °वेइ IX, 20, 16, °वत X, 5, 6

[प]

पअ–पद IX, 9, 3
पइ–पति VII, 11, 18
पइज–प्रतिज्ञा IV, 1, 12
पइट्ठ–प्रविष्ट III, 4, 10
पइट्ठाण–प्रतिष्ठान, न VI, 9, 2
पइडिअ–प्रकटित X, 29, 14
पइण्ण–प्रदत्त II, 12, 8
पइस–प्र + विश् °इ III, 3, 7, °हु VI, 5, 5
पइसर–प्रति + सृ °उ IX, 7,4, °रिवि X,23,12
पइसत–प्रविशत् III, 1, 11
पइसार–प्रतिसार (प्रवेश) IV, 3, 4
पइसारिअ–प्रतिसारित (प्रवेशित) III, 3, 10
पइ–त्वम् III, 10, 6, त्वाम् III, 20, 4, त्वया I, 10, 9, तुभ्यम् III, 11, 9
पउत्त–प्रोक्त III, 10, 1
पउत्ति–प्रोक्ति V, 16, 10
पउम–पद्म IV, 4, 6
पउमएउ–पद्मदेव, पु VI 11, 3
पउमावइ–पद्मावती, स्त्री I, 7, 9, II, 1, 12
पउर–प्रवर I, 1, 8
पएस–प्रदेश II, 3, 6
पओहर–पयोधर III, 2, 10
पक्ख–पक्ष III, 6, 5
पक्खल–प्र + स्खल् °लति VIII, 18, 10, °लतु VII, 9, 6, °लेइ IX, 13, 5
पक्खालिअ–प्रक्षालित IV, 7, 9
पक्खि–पक्षिन् I, 17, 7
पघोसिअ–प्रघोषित V, 10, 6
पच्चक्ख–प्रत्यक्ष X, 7, 1
पच्छइ–पश्चात् VI, 6, 10
पच्छण्ण–प्रच्छन्न IV, 7, 6
पच्छल–पक्ष्मल VIII, 2, 4
पच्छित्त–प्रायश्चित्त X, 23, 5
पच्छिम–पश्चिम IV, 1, 2
पज्जुण्ण–प्रद्युम्न, पु III, 21, 10
पज्जलियमाण–प्रज्वलत् III, 7, 2
पट्टण–पट्टन I, 13, 8
पड–पत् °डेइ IV, 6, 3
पडघर–पट + घर III, 5, 1
पडल–पटल IV, 8, 6
पडह–पटह II, 9, 8
पडत–पतन् IX, 9, 1
पडाय–पताका I, 4, 4
पडिअ–पतित II, 16, 5
पडिकूल–प्रतिकूल V, 15, 10
पडिकेसव–प्रति + केशव IX, 17, 11
पडिखल–प्रति + स्खल् °इ I, 10, 2
पडिखलण–प्रति + स्खलन IX, 18, 6
पडिगाह–प्रति + ग्रह् (णिच्) °हु VIII, 19, 5
पडिछद–प्रतिछन्द V, 7, 3
पडिपेल्लिय–प्रति + प्रेरित V, 2, 3
पडिम–प्रतिमा IV, 11, 10
पडिलव–प्रति + लप् °इ VIII, 10, 9
पडिव–प्रतिपद् X, 15, 9
पडिवज्ज–प्रति + वच् °इ VIII, 7, 6
पडिवण्ण–प्रतिपन्न III, 8, 1
पडिवयण–प्रतिवचन I, 10, 4
पडिसद्द–प्रतिशब्द VI, 9, 4
पडिहार–प्रतिहार III, 9, 8
पडिहास–प्रति + भास् °हिं VIII, 10, 8. (रोचन्ते इति टिप्पणम्)
पडीय–पतित IV, 9, 6 (lengthened for metre)
पड्डुत्तर–प्रत्युत्तर VIII, 5, 14
पढम–प्रथम IV, 14, 4
पढ–पठ् °हि II, 14, 5, °ढत II, 20, 1, °ढिवि III, 8, 8
पढिय–पठित II, 14, 6

पणकल्लाण–पञ्च + कल्याण X, 25, 9
पणच्च–प्र + नृत् °हि VII, 1, 11
पणट्ठ–प्रणष्ट II, 3, 4
पणयिणि–प्रणयिनी III, 3, 5
पणमिय–प्रणमित III, 9, 1
पणव–प्र + णम् °इ X, 4, 10, °वेसइ V, 19, 4, °वेप्पिणु VI, 9, 3
पणविअ–प्रणमित X, 3, 9
पणास–प्र + णश् °इ IX, 19, 10
पणासिय–प्रणाशित V, 17, 3
पण्ण–पर्ण VII, 6, 1
पण्णरस–पञ्च + दश X, 16, 8
पत्त–पत्र II, 9, 7
पत्त–प्राप्त I, 13 8
पत्त–पात्र IX, 23, 6
पत्थर–प्रस्तर IV, 13, 9
पत्थिव–पार्थिव I, 8, 7
पदिण्ण–प्रदत्त III, 9, 3
पधाइय–प्रधावित X, 24, 2
पपुच्छिय–प्र + पृष्ट X, 18, 1
पप्फुल्ल–प्रफुल्ल IV, 9, 9
पभण–प्र + भण् °इ I, 11, 4, °हि II, 7, 10
पभणिअ–प्रभणित II, 4, 9.
पमण्ण–प्र + मन् °ण्णिवि VII, 3, 6
पमाण–प्रमाण V, 6, 4
पमुक्क–प्रमुक्त III, 20, 11
पमूढ–प्रमूढ IX, 3, 5
पमेल्लिय–प्रमुक्त II, 1, 9 (Hem IV, 91)
पय–पद IV, 7, 9
पय–पयस् X, 26, 2
पयड–प्रकट I, 2, 3
पयडाइअ–प्रकटित IV, 13, 4
पयडिअ–प्रकटित IV, 14, 9
पयवय–प्रतिव्रता V, 15, 8
पयाण–प्रयाण III, 12 4
पयत्त–प्रयत्न III, 5, 4
पयड–प्रचण्ड II, 3,7
पयप–प्र + जल्प् °इ I, 10, 1
पयाग–प्रयाग, न VI, 6, 5
पयासिअ–प्रकाशित II, 3, 7
परज्जिय–पराजित II, 3, 1
परमुट्ठअ–परम + उत्मुक V, 8, 5
परम्मुह–पराङ्मुख VI, 4, 11
परयार–परदारा X, 10, 1
परलोय–परलोक III, 1, 9
पराइअ–परागत II, 11, 6
पराई–परकीया IX, 22, 7
परायअ–परागत II, 8, 7
परिअक्खिअ–परि + आख्यात II, 21, 4
परिओस–परितोष V, 2, 9
परिग्गह–परिग्रह IV, 1, 11
परिघुलिअ–परि + घूर्णित VII, 8, 9 (Hem IV, 117)
परिचत्त–परित्यक्त IX, 12, 3
*परिछडिय–परित्यक्ता VII, 11, 16, (Hem IV, 91)
परिजत–परि + या + शतृ V, 5, 4
परिझा–परि + ध्या °इवि X, 9, 14
परिझिज्ज–परि + क्षी °इ IX, 8, 6 (Hem II, 3)
परिझीण–°क्षीण V, 8, 9
परिट्ठिअ–°स्थित II 3, 9
परिण–परि + णी °हि VIII, 10, 5, °णेवी VIII, 10, 6
*परिणडिअ–°वञ्चित III, 21, 4 (D IV, 18)
परिणिम्मिय–°निर्मित I, 11, 7
परिणिय–परिणीत VI, 16, 2
परित्ति–परितृप्ति III, 7, 1
परिदक्खिण–प्रदक्षिणा IV, 6, 10
परिदिंत–°ददत् III, 12, 8
परिधरिय–°धृत V, 9, 3
परिपालिय–°पालित II, 6, 6
परिपाव–°प्राप् °उ VI, 3, 2
परिपुच्छिअ–°पृष्ट II, 10, 9
परिपुज्जिअ–°पूजित V, 5, 8
परिपुण्ण–°पूर्ण II, 19, 9
परिपेसिय–°प्रेषित II, 11, 10

पजलि–प्राञ्जलि VI, 5, 10
पजलियर–प्राञ्जलि + कर X, 1, 2.
पडिय–पण्डित I, 2, 1
पडिय–पाण्ड्य नरेश, VIII, 18 5
पत्ति–पवित्र-I, 3, 10
पंथ–पान्थ VI, 12, 2
पथि–पथिक II, 2, 4
पथिय–पथिक I, 3, 9
पाअ–पाद V, 18, 1
पाड–पातय् °मि IV, 17, 2
पाडल–पाटल (हस) VII, 5, 5 (D, VI, 76)
पाडिअ–पातित III, 16, 6.
पाढाविअ–पाठित II, 9, 1
पाण–प्राण III, 7, 2
पाणाहार–पान + आहार X, 16, 9
पाणिअ–पानीय VIII, 9, 8
पाणि–प्राणिन् I, 5, 5
पाय–पाद I, 2, 1
पायाग–प्रयाग, न VI, 7, 7
पायडिय–प्रकटित III, 7, 1
पारद्धि–पापर्द्धि II, 16, 4
पारम्भिअ–प्रारब्ध III, 3, 7
पारावइ–पारावत V, 17, 8.
पाराविय–पार + आपित I, 1, 4
पाव–पाप I, 1, 1
पाव–प्र + आप् °इ V, 10, 10, °उ I, 10, 2, °हि V, II, 16, °हिं V, 5, 10, °वति III, 15, 7, °वेवी II, 5, 4, °वेसइ II, 8, 3, °वेसहि V, 19, 5.
पाविअ–प्राप्त I, 12, 10
पाविट्ठ–पापिष्ठ II, 13, 7
पास–पार्श्व (तीर्थंकर) V, 2, 5
पास–पाश VIII, 7, 10
पास–पार्श्व II, 1, 6
पिअ–प्रिय I, 16, 15
पिउ–पितृ VI, 1, 8
पिड–पिण्ड X, 8, 10
पिय–पीत V, 10, 5
पिययम–प्रियतम VI, 5, 2
पियर–पितृ VI, 6, 2
पियसोअ–पितृ + शोक VI, 2, 3
पियारी–प्रिया I, 3, 12
*पिल्लु–लघुपक्षिन् VII, 5, 5 (पिल्लू D. VI, 46).
पिल्लि–पीलु (फलविशेष) IX, 21, 5
पिसाअ–पिशाच III, 21, 1
पिसुण–पिशुन III, 7, 9
पिहाण–पिधान X, 15, 6
पिहिय–पिहित X, 8, 1
पिहुल–पृथुल I, 5, 9
पिहुलत्तण–पृथुलत्व I, 16, 5
पिंडय–पिण्डक IX, 11, 6
पीडिय–पीडित I, 10, 1
पीणिअ–प्रीत I, 5, 2
पीलण–पीडन IV, 10, 5.
पुकार–आह्वान शब्द II, 1, 9 (H. पुकार)
पुच्छिअ–पृष्ट I, 10, 3
पुज्ज–पूजा VII, 12, 7
पुज्ज–पूजय् °इ IV, 4, 6, °ज्जि X, 4, 5, °ज्जिवि II, 19, 9
पुज्जिअ–पूजित IV, 7, 10
पुट्ठसर–पुष्ट + स्वर III, 9, 9
पुणु–पुन I, 2, 3
पुण्ण–पूर्ण I, 3, 11
पुण्ण–पुण्य I, 14, 12
पुण्णिम–पूर्णिमा X, 16, 8
पुत्त–पुत्र II, 16, 1
पुत्तय–पुत्रक II, 18, 8
पुत्ति–पुत्री I, 15, 7
पुत्तिया–पुत्रिका VIII, 4, 9
पुप्फयत्त–पुष्पदन्त, कविनाम I, 2,9
पुरउ–पुर II, 8, 9
पुरयण–पुरजन III, 13, 1
पुरंधि–पुरंध्रि IX, 3, 6
पुहइ–पृथ्वी III, 9, 4
पुलअ–पुलक III, 4, 3
पुव्व–पूर्व II, 2, 2

पुव्वुत्त–पूर्वोक्त X, 4, 10
पुडरीय–पुण्डरीक X, 2, 4
पूजिअ–पूजित IV, 6, 10
पूदी–पर्वतविशेप V, 5, 3
पूय–पूजय् °एइ IX, 13, 7
पूय–पूय (pus) IX 11, 5
पूरिय–पूरित I, 17, 9
पेइया–पेटिका I, 7, 2
पेक्ख–प्र + ईक्ष् °हि I, 11, 9, °हु IV, 3, 2, °विख III, 18, 3, °क्खिऊण VII, 10, 1
पेक्खिय–प्रेक्षित VIII, 2, 1
पेच्छ–प्र + ईक्ष् °इ V, 15, 1
पेच्छत–प्रेक्षमाण IV, 17, 6
पेयवण–प्रेतवन X, 11, 3
पेल्ल–प्रेरय् °ल्लिवि VII, 1, 5,
पेसण–प्रेषण III, 16, 10
पेसिय–प्रेषित III, 16, 8
*पोट–उदर VII, 10, 7 (पोट्ट D VI, 60)
पोट्ठिवत–पुष्टि + मत् I, 12, 1
पोथअ–पुस्तक X, 17, 6.
पोम–पद्म III, 14, 4 (Hem I, 61)
पोमराय–पद्मराग X, 2, 5
पोमावइ–पद्मावती, स्त्री II, 5, 3
पोमिणि–पद्मिनी VII, 13, 1

[फ]

फण–फणा IV, 9, 2
फणि–फणिन् IX, 5, 8
फणिदत्ता–नाग°, स्त्री, X, 6, 9
फणिंद–फणीन्द्र II, 4, 8
फणिवइ–°पति II, 1, 8
फरहरत–onomatop III, 13, 5 (H फर्राना)
फलिह–स्फटिक IV, 12, 2 (Hem I, 186)
फस–स्पर्श IX, 10, 5 (Hem IV, 182)
फाडण–स्फाटन IX, 8, 5 (पाटन acc Hem I, 198, 232)
फार–स्फार IV, 11, 5 (M फार)
*फारक्क–स्फारक (ध्वज). III, 13, 5 The tippana on the word is सेडा which in M. means any coarse cloth)
*फिट्ट–स्फिट्ट् (हिंसायाम्) °इ IX, 21, 2 (भ्रश acc Hem IV, 177)
फुक्कर–फूत् कृ °रिवि V, 17, 10
फुट्ट–स्फुट् °दृति III, 15, 6
फुड्ड–स्फुटम् II, 13, 9 (स्पष्टम् Hem IV, 258)
फुर–स्फुर् °इ IX, 7, 3, °रत IV, 10, 6
फुरिअ–स्फुरित X, 2, 7.
फुलिंग–स्फुलिंग IV, 14, 2
फेक्करत–फे (फिक्की हरिसम्मि D, VI, 83) इति शब्द कुर्वत् I, 17, 6
फेड–स्फिट्ट् (°हिंसायाम्) °हिं V, 5, 9, °डिवि X, 27, 9 °डिय V, 5, 7, °डेहु IV, 13, 7
फेफरि–फलविशेप IX, 21, 5
*फेर–चारण (taking on a round) VIII, 9, 3 (H फेरा)

[ब]

बउल–बकुल I, 14, 6
बम्ह–ब्रह्मन् X, 8, 9
बम्हण–ब्राह्मण X, 21, 1
बरहिणि–बर्हिणी II, 15, 2
बलएअ–बलदेव IX, 7, 9
बलहद्द–बलभद्र IX, 5, 5
बला–अबला VIII, 4, 6
बलिअ–बलिन् V, 11, 11
बहिणि–भगिनी II, 1, 13
बमचेर–ब्रह्मचर्य IX, 24, 6, (Hem I, 59, II, 74)
बमण–ब्राह्मण X, 6, 9
बारह–द्वादश V, 10, 1, (Hem I, 219, 262)
बाल–बाला I, 3, 8
बालएअ–°देव, पु II, 2, 8
बाहिरि–बहि IV, 14, 5
बाहुडि–बहि I, 12, 10

बुज्झ–बुध् °इ VI, 7, 6 °ज्झु II, 14, 3
बुज्झाविअ–बोधित VI, 7, 6
*बुल्लाविय–उक्ता I, 15, 6, (बोल्ल-कथ् Hem. IV, 2)
बुहमगलएव–बुध + मगलदेव, पु, X, 28, 3
बुहयण–बुधजन I, 1, 7
बूढउ–वृद्ध IX, 5, 4 (H बूढा)
*बोल–नुमुल II, 3, 1, (D VI, 90)
*बोल्ल–कथय °इ II, 5, 1, °ल्लिवि IV, 12, 6, °ल्लन X, 21, 8, (Hem IV, 2)
बोहि–बोधि IX, 16, 9
बोहिथ–वहित्र (प्रवहण) VIII, 12, 3 (D VI, 96)

[भ]

भअ–भूत III, 8, 10
भअ–भय III, 12, 12
भइय–भूता IV, 11, 3
भउहावलि–भ्रू° I, 16, 12
भग्ग–भग्न (Also used as a term of abuse) II, 1, 10
भज्ज–भार्या VI, 12, 8
भज्ज–भञ्ज् °ज्जत्ति III, 15, 4
भट्ठ–भ्रष्ट II, 13, 7
भड–भट III, 15, 11,
भडारअ–भट्टारक VI, 3, 3
भडारा–भट्टारक III, 22, 2
भडारिअ–भट्टारिका I, 11, 10.
भडावलेअ–भट + अवलेप (गर्व) III, 11, 7
भणिय–भणित II, 1, 12
भत्त–भक्त III, 14, 4
भत्ति–भक्ति IV, 10, 1
भद्द–भद्र IV, 17, 7
भद्दवअ–भाद्रपद (मास) X, 26, 6
भमण–भ्रमण X, 13, 3
भमर–भ्रमर I, 16, 11
भमाडइ–भ्रामयति X, 26, 22
भमाडिअ–भ्रामित X, 10, 1
भयवइ–भगवती VII, 14, 7.
भयवत–भगवत् V, 6, 5
भरह°–भरत I, 3, 5
भरहेसर–भरतेश्वर IV, 4, 10
भरिअ–भृत I, 2, 3
भल्लुअ–भल्लुक I, 17, 7
भवतर–भवान्तर VIII, 20, 2
भवित्ति–भवित्री X, 26, 9
भविय–भव्य I, 1, 4
भवियण–भव्यजन IV, 10, 7
भव्व–भव्य IV, 14, 7
भाअ–भाव VI, 7, 6
भाइय–भ्रातृ IV, 3, 10
भामरि–भ्रमि X 19, 2 (H भावर)
भाअ–भाव IX, 4, 6
भाय–भ्रातृ III, 5, 2
भायण–भाजन X, 2, 5
भायर–भ्रातृ V, 2, 2
भारह–भारत (क्षेत्र) V, 1, 5
भारिय–बृहत् IV, 17 5 (H भारी)
भालयल–°तल I, 16, 13
भाव–भा °इ I, 14, 9
भावड्ढ–भावाढ्य III, 8, 6
भाविअ–भावित VI, 15, 11
भाविज्ज–भावय् (कर्मणि) °इ VI, 3, 4.
भासिअ–भाषित VII, 6, 2
भिंग–भृङ्ग VII, 13, 4
*भिडिअ–आक्रान्त III, 15, 3 (H M G भिडना to enter into a close combat)
भिंतर–अभ्यन्तर IX, 11, 9
भिंद–भिद् °दिवि IV, 9, 5
भीय–भीत III, 19, 1
भीयकर–भीतिकर III, 14, 1
भीसाणण–भीषण + आनन X, 14, 7
भीसावण–भीषण X, 14, 1
भुअ–भुज III, 19, 4
भुअग–भुजग II, 20, 3
भुक्खअ–बुभुक्षित VII, 1 6, (H, भूखा)
भुक्खा–बुभुक्षा II, 16, 5 (H भूख)
भुत्त–भुक्त V, 10, 5

महायण–महाजन X, ९, 6
महारअ–मम III, 1९, 9 (H हमारा by वर्ण व्यत्यय)
महिअ–महित (पूजित) V, 10, 1
महियल–महीतल I, 3, 12
महिल–महिला I, 3, 5
महिसि–महिषी X, 2, 1
महिहर–महीधर II, 1, 4
महु–मधु IX 1, 8
महुयर–मधुकर X, 2९, 10
महुर–मधुर I, 2, 2
महुराउरि–मथुरापुरी VI, 4, 8
महेस–महेश II, 2, 7
महोवहि–महोदधि I, 1, 4
मगलएव–°देव, पु I, 2, 1
मजूस–मञ्जूषा V, 8, 8
मड–मण्ड् °एविणु III, 15, 11, (H माडकर)
मड–मर्द (हठ) II, 11, 1 (Pai 487 बलटि)
मडअ–मण्डप VII, 7, 10
मडिअ–मण्डित III, 22, 8
मत–मन्त्र I, 1, 5
मति–मन्त्रिन् II, 12, 7
मदराअ–मन्दराग IV, 11, 7
मस–मास I, 17, 6
माअ–मातृ III, 19, 7
माणिक–माणिक्य VIII, 8, 10
माणिणि–मानिनी I, 10, 1
माणिय–मानित VIII, 8, 4
माणवि–मानवी VI, 14, 1
माणुण्णइ–मान + उन्नति VI 5, 5
माणुस–मानुष I, 17, ९
माम–मातुल II, 10, 10 (H मामा)
माय–मातृ III, ९, 1
माय–माया IX, 21, 2
मायग–मातङ्ग II, 21, 5
मार–मार (मदन) II, 20, 8
माल–माला III, 2, 6
मालिअ–मालिन् II, 5, 4

माहप्प–माहात्म्य I, 1, ९
माहव–माधव, पु. VI, 4, ९
मि–अपि V, 7, 1
मिउ–मृदु V, 18, 1
मिच्छअ–मिथ्यात्व IX, 21, 2
मिच्छत्त–मिथ्यात्व IX, 12, 3.
मित्त–मित्र II, 8, 10
मिलाविय–मेलापित II, 20, 1
मिलिय–मिलित IV, 5, 5
मीण–मीन IX, 7, 4
मिसिय–मिश्रित I, 12, 6
मुअ–मुक्त III, 12, 12
मुअ–मू °इ IX, 3, 12
मुअ–मुच °इ IX, 5, 8, °हि IV, 16, 7, °अति I, 3, ९, °इवि VII, I, 6
मुअ–मृत III, 21, 3
मुइय–मृता X, 22, 10
मुक्क–मुक्त III, 17, 1
मुच्छ–मूर्च्छा III, 17, 7
मुज्झ–मुह् ° हि III, 21, 5
मुण–मुण् (प्रतिज्ञाने) °इ VII, 14, 3, °हिं II, 13, 8 °णवि III, 5, 2
मुणाल–मृणाल VII, 2, 8
मुणिअ–मुनित (मत) III, 5, 1
मुणिंद–मुनीन्द्र II, 4, 8
मुणीसर–मुनीश्वर II, 5, 1
मुत्ताहल–मुक्ताफल III, 3, 4
मुद्ध–मुग्ध III, 2, 3
मुय–मृत VI, 5, 6
मुरय–मुरज (वाद्यविशेष) II, 9, 8
*मुसुमूर–भञ्ज् °मि IV, 17, 3 (Hem IV, 106)
मुह–मुख I, 16, 14
मुहल–मुखर X, 17, ९
मुहवड–मुख + पट III, 8, 7
मेइणि–मेदिनी I, 3, 10
मेंठ–मेंठ (हस्तिपक) IV, 2, 7
°मेत्त–मात्र III, 11, 1
मेत्ति–मैत्री IX, 6, 8

रिण–ऋण II, 18, 2
रिद्धि–ऋद्धि VI, 4, 11
रिसि–ऋषि VI, 12, 5
रिसिंद–ऋषीन्द्र VI, 1, 9
रिंगिर–रग् + इर (ताच्छील्ये) I, 17, 9 (रिगइ प्रविशति गच्छति वा Hem, IV, 259, रिंगिय भ्रमण D VII, 203)
रुक्ख–वृक्ष I, 13, 7 (Hem II, 127)
रुच–रुच् °इ VI, 14, 10
रुट्ठ–रुष्ट II, 15, 8
रुव–रुद् °इ IX, 4, 4, °रत V, 15, 7
रुहिर–रुधिर III, 15, 8
रुजति–रुवन्ति IV, 5, 2 (Hem IV, 57)
रुंभिय–रुद्ध IV, 10, 6 (Hem IV, 245)
रूअ°व–रूप I, 10, 8
रूस–रुष् °मि IV, 17, 2, °हि III, 12, 10, °सेवि II, 4, 2
रेह–रेखा VII, 16, 2
*रेह–राज् °इ I, 3, 10 (Hem IV, 100)
रोमंच–रोमाञ्च III, 14, 7
रोय–रोग IV, 13, 3
*रोल–कलरव II, 3, 1, VII, 13, 5, (D VII, 15)
रोव–रुद् °इ V, 16, 1, °हि II, 1, 13, °वत V, 19, 2
रोस–रोप III, 18, 2
रोसिय–रुष्ट, I, 17, 1

[ल]

ल–ला (ग्रह्) °इ II, 6, 5, °एविणु II, 1, 9
लइ–Interjection I, 11, 10, I, 15, 7, III, 10, 2 (H ले)
लइय–लात (गृहीत) II, 6, 10
लउड–लकुट X, 19, 9
लक्ख–लक्ष I, 17, 7
लक्खण–लक्षण I, 17, 11
लक्खारस–लाक्षा° III, 2, 4
लक्खिअय°–लक्षित VIII, 2, 1
लग्ग–लग्न I, 16, 13
लग्गि–लग्ने (अर्थे) I, 13, 3 (H लिये)
लच्छि–लक्ष्मी VI, 2, 1
लज्ज–लज्जा V, 16, 8
लट्ठि–यष्टि I, 16, 12 (Hem I, 247)
*लडह–रम्य I, 1, 6, II, 11, 1, (also विदग्ध, D VII, 17)
लड्डु–(तत्सम) II, 7, 1
लद्ध–लब्ध V, 17, 2
लय–लता I, 11, 6
लयअ–लात (गृहीत) VI, 6, 7
लयण–लयन (गुहामंदिर) IV, 4, 3
ललति–(लल विलासे) VIII, 18, 10
ललिअ–ललित I, 2, 2
*लल्लि–सस्पृह न्यून च (D VII, 26) VIII, 7, 8
लव–लप् °इ III, 11, 10
लवणण्णव–लवणार्णव I, 3, 2
लविय–लपित VII, 11, 17.
लब्भ–लभ् (कर्मणि) °इ II, 13, 1
लह–लभ °इ II, 17, 8
लहरि–(तत्सम) VIII, 12, 8
लहु–लघु II, 8, 1
लंकसर–लंकेश्वर IV, 11, 1
लंछिअ–लाञ्छित I, 3, 1
लंपड–लम्पट VIII, 15, 5
लंभ–लाभ III, 3, 1
लायण्ण–लावण्य II, 12, 2
लित्त–लिप्त I, 5, 8
लिह–लिख् °हति IX, 1, 6
लिहाविय–लिखापित III, 7, 5
लिहिय–लिखित I, 16, 7
लिंत–गात् (गृण्हत्) IX, 5, 8
लीण–लीन IV, 10, 8
लील–लीला II, 12, 10
लीलावइ–°ती, स्त्री VI, 13, 3
लुद्ध–लुब्ध I, 14, 8
लुलाविय–लोलायित II, 20, 4

*लूरिय–लून VII, 10, 8 (छिन्न, Hem IV, 121)
लेस–लेश IX, 20, 21
लोअ–लोक II, 12, 6
लोट्टण–लोटन II, 9, 6
लोयचार–लोकचार III, 8, 11
लोयण–लोचन II, 1, 6
लोयाणुवेक्ख–लोक + अनुप्रेक्षा IX, 15, 9
लोलिर–लुल + इर (ताच्छील्ये) I, 17, 8
लोह–लोभ II, 9, 10
लोहिअ–लोहित (रक्त) I, 17, 5
*लिहक्क– नि + ली°विकवि II, 15, 1, V, 15, 9, (Hem, IV, 55, H, लुकना to hide)

[व]

वअ–व्रत II, 6, 10
वइयर–व्यतिकर (वृत्तान्त) II, 15, 7,
वइर–वैर VI, 4, 4
वइराय–वैराग्य X, 28, 2
वइरि–वैरिन् II, 19, 4
वइवस–वैवस्वत (यम) VII, 9
वइसर–वि + श्रि°इ IX, 7, 3
वइसारिय–प्रवेशित II, 21, 10
वइसाह–वैशाख III, 19, 2 (An attitude in shooting)
वग–वक V, 10, 9
वग्ग–वल्ग्°गति III, 15, 5
वग्ग–वर्ग X, 16, 1
वग्घि–व्याघ्री X, 20, 10
वच्च–व्रज°इ II, 21, 6, (Hem IV, 225)
वच्छराअ–वत्सराज, पु VI, 1, 1
वच्छल–वत्सल III, 6, 8
वच्छायण–वात्सायन (कामसूत्रकर्ता) II,9, 3
वच्छावयस–वत्स + अवतस VI, 1, 3
वज्ज–वाद्य III, 15, 2
वज्ज–वादय् (कर्मणि) °इ II, 10, 10
वज्ज–वज्र IX, 19, 4
वज्जण–वर्जन V, 12, 2
*वज्जर–कथय् °इ IX, 12, 4 (Hem IV, 2)
वट्ट–वृत °इ I, 10, 10
वड–वट IX, 21, 1
°वडण–पतन IX, 11, 2
वडुय–वटुक VII, 3, 9
वड्ड–महत् (वृद्ध) X, 3, 5 (D VII, 29 H बडा)
वड्ढ–वृध् °इ II, 7, 1
वड्ढ–वृद्ध X, 3, 5
वडढिअ–वर्धित III, 13, 10
वणणिह–व्रण + निभ IX, 11, 5
वणवाल–वनपाल I, 11, 5
वणसिरि–वनश्री I, 11, 8
वणि–वणिक् II, 10 5
वण्ण–वर्ण I, 1, 5
वण्ण–वर्णय् °मि I, 16, 8, °हु VII, 16, 1
वत्त–वृत्त I, 6, 6
वत्थ–वस्त्र III, 9, 6
वद्धावण–वर्धापन III, 22, 6 (congratulation)
*वमाल–तुमुल III, 3, 5 (D VI, 90)
वम्मय–वर्म + क VII, 10, 8
वम्मह–मन्मथ I, 14, 9 (Hem I, 242, II, 61)
वय–व्रत III, 20, 9
वयण–वदन I, 3, 6
वयण–वचन I, 15, 8
वयणुच्छव–वचनोत्सव VII, 4, 1
वयणुल्ल–वचन + उल्ल (स्वार्थे) VIII, 13, 9
वयर–वैर VI, 4, 3
वयवत–व्रत + वत् IX, 22, 1
वयहल–व्रत + फल X, 27, 10
वराइय–वराकी VII, 11, 15
वराय–वराक II, 11, 2
वरायअ–वृत VII, 11, 10
वरि–वरम् VI, 5, 6
वरिसण–वर्षण X, 29, 9

वरिसंत–वर्षत् I, 10, 8
वरिसाउल–वर्षाकुल IX, 14, 3
वलिअ–वलित (परावृत) V, 17, 9
वलित्तअ–वलि + त्रय I, 9, 6
वल्लह–वल्लभ V, 3, 10
ववहर–व्यवहृ °इ II, 18, 10
ववहार–व्यवहार X, 29, 7
वस–वसा IX, 11, 8
वसण–व्यसन IX, 21, 9
वसिअ–उषित X, 18, 9
वसियरण–वशीकरण II, 9, 4
वहु–वधु X, 14, 11
वकुड–वक्र I, 2, 4 (Var. IV, 15, Hem IV, 418 ex)

वकुडिय–वक्रित III, 13, 6
वचण–वञ्चना IX, 13, 4
वछिअ–वाञ्छित I, 2, 11
वदण–वन्दन V, 4, 4
वदणहत्ति–वन्दन + भक्ति V, 8, 1
वदणिज्ज–वन्दनीय IV, 8, 1
वंदीयण–वन्दीजन III, 13, 3
वस–वश III, 4, 1
वाअ–वाक् II, 6, 1
वाइअ–वादिक II, 11, 6
वाइऊण–वादयित्वा I, 12, 2
वाइय–वाचित I, 7, 7
वाइय–वादित III 8, 5
वाउ–वायु I, 12, 6
वाउल–व्याकुल IX, 3, 8 (H बावला)
वाउवेअ–वायुवेग, पु V, 1, 3
वाएसरि–वागीश्वरी I, 2, 9
वाडअ–वाटक VIII, 8, 3 (H वाडा)
वाणि–वाणी V, 6, 3
वामिअ–वल्मीक VI, 4, 5, (H वामी)
वाय–वाक् V, 6, 2
वाय–वात IV, 9, 7
वायअ–वात + क I, 17, 8
वायरण–व्याकरण I, 2, 5
वायवल–वात + वलय IX, 15, 6
वायाहय–वात + आहत III, 6, 6
वार–द्वार III, 2, 2
वारिय–वारित I, 1, 8
वावर–व्यापृ °रति III 17, 4 °रेइ IX, 13, 2
वावल–व्यापृत VII, 1, 12 (Hem I 206, D VII, 51 com H बावला)

वार्वास–द्वाविंशत V, 10, 3
*वासी–कर्दम इति टिप्पणम् S कुठार J X, 27, 6
वाह–वाष्प VI, 1, 12
वाहि–ऊढ्वा I, 13, 6
वाहि–व्याधि IX, 5, 4
वि–अपि I, 7, 5
वि–द्वि III, 8, 7
विइण्ण–वितीर्ण VIII, 13, 6
विउल–विपुल VI, 16, 7
विउसग्ग–व्युत्सर्ग X, 26, 18 (Hem II,174)
विओअ–वियोग VI, 1, 11
विगय–विगत V, 17, 3
विग्गह–विग्रह VII, 7, 1
विचित्त–विचित्र I, 14, 4
*विच्छोय–विक्षोभ (विरह) X, 1, 4 (विच्छोह D VII, 62)

विजयड्ढ °ड्ढ–विजयार्ध, प II, 2, 1
विजवाल–विजयपाल, पु X, 29, 2
विज्ज–विद्या II, 4, 2
विज्जाणाह–विद्यानाथ II, 6, 1
विज्जाणियर–विद्या + निकर II, 2, 6
विज्जावत–विद्यावत् II, 13, 1
विज्जाहर–विद्याधर V, 18, 6
विज्जाहिअ–विद्याधिप II, 11, 4,
विज्जिजमाण–वीज्यमान III, 1, 5
विज्जु–विद्युत् VIII, 17, 11
विज्जुप्पह–विद्युत्प्रभा, न II, 2, 5, °भ, पु II, 2, 6
विज्जुलवत–विद्युत् + मत् V, 7, 6
विट्ठि–वृष्टि IV, 9, 6
विट्ठु–विष्णु VII, 7, 3

सण्णय–सन्नत IV, 10, 1
सण्णाण–सद्ज्ञान VI, 10, 1
सण्णास–सन्न्यास V, 12, 9
सण्णाह–सन्नाह III, 14, 7
सण्णिह–सन्निभ IX, 10, 4
सण्ह–सूक्ष्म X, 17 2 (Hem I, 118)
सत्त–सप्त III, 8, 8
सत्तम–सप्तम X, 16, 1
सत्ति–शक्ति II, 9, 5
सत्थ–शास्त्र VIII, 8, 4
सद्द–शब्द III, 18, 5
सद्दह–श्रद्धा IX, 21, 3
सद्दत–शब्द कुर्वत् II, 11, 5
सद्दसण–सम्यक् + दर्शन X, 25, 7
सपोत्थय–स + पुस्तक VII, 13, 4
सप्प–सर्प IV, 9, 2
सब्भाव–सद्भाव X, 9, 1
समक्ख–समक्ष II, 12, 5
समग्ग–समग्र II, 20, 6
–समग्गल–समग्र + ल II, 7, 7, VII, 17, 10
समच्चिय–समर्चित VIII, 9, 11
समणियर–सन्निकट II, 6, -
समणिरया–शम + निरता II, 6, 8
समत्त–सम्यक्त्व IX, 13, 1
समत्थ–समर्थ IV, 17, 1
समप्पिअ–समर्पित II, 15, 8
समरीण–श्रान्त VIII, 9, 7
समलहीय–सवाहित (लेपित) VII, 12, 6
समागय–°गत VII, 13, 1
समाणिया–°निका VIII, 5, 12
समायअ–°गत IV, 6, 4
समायर–°चर् °इ V, 10, 9
समाव–सम् + आप् °इ IX, 14, 11
समासिय–°सित IX, 22, 2
समाहिगुत्त–समाविगुप्त, पु II, 6, 9
समिच्छिअ–समिष्ट I, 1, 12
समिद्ध–समृद्ध II, 2, 5
समीउ–समीपम् X, 4, 1
समुज्जल–समुज्ज्वल IV, 17, 9
समुट्ठिअ–समुत्थित II, 7, 9
समुण्णइ–समुन्नति II, 20, 6
समुद्द–समुद्र I, 2, 5
°समुब्भिडिय–सम् + आक्रान्त VIII, 15, 10
(see भिडिअ)
समुह–सम्मुख V 17, 10
समाडिअ–स + मोटित (मुट आक्षेपमर्दनयन्त्रनेषु) VIII, 7, 11
सम्मइ–सन्मति, पु II, 8, 4
सम्मत्त–सम्यक्त्व V, 4, 3
सम्माणिय–सम्मानित II, 10, 8
सम्मुह–सम्मुख II, 5, 1
सय–शत I, 1, 9
सय–स्व or शत VI 5, 8
सयण–स्वजन IX, 6, 8
सयमेव–स्वयमेव II, 13, 2
सयल–सकल I, 11, 6
सयभु–स्वयम्भू, पु I, 2, 9
सया–सदा X, 15, 9
सयाण–सज्ञान II, 5, 9 (H. सयाना, M शाहाणा)
सर–सरस् I, 14, 1
सर–शर III, 12, 12
सर–स्वर I, 14, 8
सर–स्मृ °हि II, 10, 2
सर–सृ °इ II, 21, 6, °उ VII, 11, 15.
सर–स्मर °मि I, 1, 2,
सरण–शरण IV, 5, 10
सरमजूस–स्मरमजूषा, स्त्री VI, 14, 5
सरय–शरद् II, 17, 4
सररुह–सरोरुह X, 3, 1
सरलिम–सरलिमन् I, 16, 7
सरवर–सरोवर I, 1, 7
सराय–सराग IV, 16, 2
सरासइ–सरस्वती I, 2, 1
सरिय–सृत I, 16, 1
सरिस–सदृश III, 22, 1
सरीर–शरीर I, 16, 2
सरूव–स्वरूप I, 11, 7.

सरोय–सरोज I, 3, 10
सरोस–स + रोष II, 3, 3
सलक्खण–सलक्षण III, 4, 10
*सलवल–onomatop °लत IX, 23, 10, X, 23, 10, °लंति I, 4, 4, °लिअ III, 18, 8, V, 10, 3, °लेइ IV, 15, 5
सलह–श्लाघा VI, 15, 1
सलहिज्जमान–श्लाघ्यमान III, 1, 9 (Hem IV 88)
सलेहण–सल्लेखन (Jain form of terminating life by abstention from food) VI, 6, 8, IX, 23, 8
सलोणअ–स + लावण्य X, 1, 3
सल्ल–शल्य IX, 12, 2
सल्लिय–शल्यित X, 7, 3
सवण–श्रवण (कर्ण) I, 2, 2, V, 15, 8
सवण–शकुनि VII, 5, 10
सवण–शकुन VII, 2, 3
सवहणाइ–शपथ + आदि III, 8, 9 (Var II, 15, 27)
सविवाय–सविपाक IX, 14, 1
सव्व–सर्व II, 6, 3
सव्वत्थ–सर्वार्थ X, 27, 10
सव्वग–सर्वांग II, 6, 3
सव्वायर–सर्वादर IX, 20, 9
ससहर–शशधर II, 7, 4
ससि–शशिन् I, 16, 1
ससुर–श्वशुर II, 10, 7
*सह–राज् °इ I, 16, 13 (Hem, IV, 100)
सहजाय–सह + जात VI, 2, 6
सहयर–सहचर II, 13, 10
सहल–सफल III, 9, 5
सहस–सहस्र I, 3, 2
सहसत्ति–सहसा III, 16, 5
सहाअ°–स्वभाव I, 15, 2
सहाअ–सहाय V, 18, 7
सहास–सहस्र IV, 4, 3
सहिअ–सहित VII, 7, 3
सहिय–सम्विन् III 6, 1
सहु–सह I, 10, 9
सहोयर–सहोदर V, 7, 8
सक–शक् °इ X, 7, 6, °हु II, 21, 6
सकर–शकर IX, 17, 10
संकाइय–शकादिक IX, 21, 3
सकिअ–शकित V, 15, 3
सखेव–सक्षेप III, 7, 3
सगहिय–सगृहीत V, 10, 1
संगाम–सग्राम III, 14, 8
सघट्ट–सघट् °ट्टेइ X, 16, 7
सघाअ–सघात IX, 12, 1
*सचडिअ–सम् + आरूढ VII, 14, 10 (Hem IV, 206, H चढना)
सचल्लिअ–सचलित III, 1, 5.
सछायअ–स + छादित I, 11, 8
सजणिय–सजनित II, 14, 12
सजम–सयम I, 1, 7
सजलिय–सज्वलित II, 14, 7
सजाय–सजात II, 1, 2
सजुअ–सयुक्त I, 16, 8
सजुत्त–सयुक्त III, 3, 11
सजोइअ–सयोजित VII 8, 7
सझा–सध्या X, 9, 5.
सठिय–सस्थित III, 2, 2.
सताअ–सताप VII, 7, 4
सताडिय–सताडित IV, 2, 6
सति–शान्ति II, 12, 7
सतुट्ठ–सतुष्ट II, 16, 7
सतोस–सतोष II, 16, 4
सथव–स + स्थापय् °हि I, 11,10, °वतु IX,18,3
सथुणण–सस्तवन IV, 5, 8 (Hem IV, 241)
सथुव्वमाण–सस्तूयमान III, 1, 7
सधिय–सहित VI, 14, 6
सपइ–सम्पत्ति II, 13,1
सपज–सम् + पद् °इ II, 16, 1, °हि IX, 17, 5, °हु IX, 16, 3
संपड–सम् + पत् °इ I, 10, 7, °उ IX, 16, 4 (M. सापडणें)

सपण्ण–सम्पन्न IX, 6, 9
सपत्त–सम्प्राप्त II, 1, 11
सपय–सम्पद् I, 1, 9
सपाड–सम् + पातय् °इ II, 7, 1
सपीडिय–सम्पीडित V, 8, 4
सपीणिय–सम्प्रीत II, 14, 10
सपुण्ण–सम्पूर्ण IV, 9, 8
सपेसिअ–सम्प्रेषित IV 1, 6
सबोह–सम् + बोधय् °हिवि VII, 11, 19
सभर–सम् + भृ °हि VII, 16, 10
सभरअ–सभृत VI, 15, 12 (सँभलना to steady)
सभरीअ–सभृत I, 12, 8
सभासिअ–सम्भावित VIII, 7, 2
सभूय–सम्भूत IV, 9, 6
समाणिअ–सम्मानित III, 10, 4
समुहिय–सम्मुखी III, 2, 9
सरक्खिय–सरक्षित VIII, 2, 2
सवर–सम् + वृ °हि III, 19, 8, °रेइ IX, 13, 1, °रेवि X, 24, 1
सवलिय–सवलित V, 19, 10
ससअ–सशय I, 13, 8
ससग्ग–ससर्ग II, 14, 1
ससाहिय–ससाधित VI, 16, 6
सस–शस्य IX, 6, 6
ससि–शसित VI, 1, 3
ससित्त–ससिक्त II, 14, 8
साअ–शाप II, 4, 2
साणुराय–सानुराग III, 22, 6
साम–साम (वेद) II, 20, 1
साम–शामय् °हि II, 4, 7
सामण्ण–सामान्य I, 15, 5
सामाइअ–सामायिक IX, 23, 2
सामि–स्वामिन् III, 11, 5
सामिणि–स्वामिनी V, 15, 5
सामिसाल–स्वामिन् + सार (श्रेष्ठ) I 7, 4.
सायर–सागर II, 2, 2
सारअ–सर्व I, 16, 2 (H सारा)

सारणि–(तत्सम) I, 3, 10
सारहि–सारथि III, 16, 6
सारिअ–सारित I, 16, 2
सारिजूअ–सारि + द्यूत VIII, 15, 8
सालि–शालि I, 3, 8
सालूर–(तत्सम–frog) VII, 4, 6
साव–शाप II, 21, 3
सावत्थि–श्रावस्ती, न X, 6, 2
सावय–श्रावक IX, 16, 2
सासय–शाश्वत I, 1, 9
साह–साधय् °हिवि IV, 1, 1
साहण–साधन I, 11, 10
साहामय–शाखामृग IV, 5, 3
साहुक्कार–साधुकार X, 5, 8
सिअ–शिव, पु IV, 3, 1
सिक्खावय–शिक्षाव्रत IV, 1, 8
सिग्घ–शीघ्र IV, 6, 1
सिट्ठी–श्रेष्ठिन् VIII, 4, 4
सिमिर–शिविर VII, 6, 5
सिय–सित I, 16, 11
सिय–शीत III, 12, 6.
सिर–सृत IV, 12, 9
सिर–शिरस् II, 20, 9
सिररुह–शिरोरुह I, 16, 14
सिरि–श्री I, 2, 9
सिरिसेणा–श्रीषेणा, स्त्री, V, 5, 2
सिल–शिला IV, 12, 2
सिलवइ–शिल्पिन् IV, 13, 10
सिव–शिव (मोक्ष) I, 1, 3
सिविण–स्वप्न X, 27, 5 (Hem I, 46)
सिसिर–शिशिर IX, 14, 4
सिसु–शिशु X, 7, 2
सिहर–शिखर VI, 3, 6
सिहि–शिखिन् II, 15, 6
सिंग–शृङ्ग III, 3, 3.
सिंचिअ–सिञ्चित (सिक्त) IV, 3, 7
सिंभ–श्लेष्मन् IX, 11, 3
सिंहवार–सिंह + द्वार III, 9, 10

सीयलत्त–शीतलत्व III, 10, 8
सीलगुत्त–शीलगुप्त, पु IX, 1, 10
सीस–शीर्ष I, 17, 8
सीस–शिष्य X, 28, 3
सीह–सिंह IV, 2, 5
सीहु–सीधु (सुरा) IX, 21, 6
सीहोवम–सिंहोपम III, 13, 8.
सुअ–श्रुत I, 2, 5
सुअ–सुत II, 5, 9
सुअण–सुजन VII, 15, 6
सुअ°–शुक VIII, 5, 14
सुअवेय–सुवेग (नाम), V, 11, 9
सुअध–सुगध I, 12, 6
सुइण–स्वप्न VIII, 5, 14
सुईण–स्वप्न VIII, 4, 8
सुउत्ति–सूक्ति V, 10, 7
सुक्क–शुक्र IX, 11, 10
सुक्क–शुष्क I, 10, 6
सुखेयरि–सु + खेचरी VI, 14, 4
सुछद–सुछन्दस् VIII, 4, 10
सुजत–सु + यन्त्र IV, 10, 5
सुझाण–सु + ध्यान V, 6, 8
सुट्ठु–सुष्ठु VII, 5, 12
सुण–श्रु °इ X, 28, 9, °णि II, 10, 4, °णिवि II, 5, 1 °णीऊण, VIII 4, 1
सुणदा–सुनन्दा, स्त्री, VI, 10, 4
सुणाण–सुज्ञान VI, 3, 7.
सुणिम्मल–सुनिर्मल V, 7, 6
सुतेअ–सु + तेजस् VII, 7, 1
सुत्त–सुप्त IX, 7, 2
सुत्तधारि–सूत्रधारिन् IV, 12, 4
सुत्तिय–सुप्ता I, 8, 5
सुत्थिय–सुस्थित IX, 7, 7
सुथुव्व–सु + स्तु (कर्मणि) °इ V, 6, 3
सुथूल–सु + स्थूल IX, 22, 3
सुदसण–सुदर्शन II 14, 4
सुदित्तिवत–सुदीप्तिवत् I, 12, 1
सुदुद्धर–सु + दुर्धर III, 22, 9
अ–सुदेव V, 6, 2
सुद्ध–शुद्ध II, 3, 8
सुपसण्ण–सु + प्रसन्न X, 26, 5
सुप्पयड–सु + प्रचण्ड I, 8, 6
सुमर–स्मृ °इ III, 10, 7, °हि IX, 1, 4, °रत I, 1, 12
सुमित्ता–सुमित्रा, स्त्री, X, 18, 4
सुमोत्तिय–सु + मौक्तिक IV, 6, 8
सुय–श्रुत V, 2, 8
सुय–सुत III, 21, 1
सुय–शुक VIII, 12, 7
सुय–स्वप् °यति I, 3, 9, °हि VIII, 11, 10
सुयण–सुजन I, 1, 6
सुयाण–सुज्ञान II, 3, 8
सुरइ–सुरति II, 9, 9
सुरणाह–सुरनाथ V, 13, 7.
सुरराअ–सुरराज III, 18, 9
सुरलोअ–सुरलोक III, 5, 6
सुरवइ–सुरपति III, 1, 4
सुरसरि–सुर + सरित् III, 9, 4
सुरहर–सुरगृह VI, 3, 10
सुराअ–सुराग IV, 7, 1
सुरिंद–सुरेन्द्र I, 12, 5
सुरूव–सुरूप IV, 16, 7
सुरेसर–सुरेश्वर IV, 1, 14
सुरोहराअ–सुर + ओघ + राग VI, 9, 1
सुलक्खण–सुलक्षण II, 14, 3
सुललिय–सुललित VII, 7, 5
सुलोयण–सुलोचन II, 20, 4
सुव–स्वप् °इ X, 6, 5
सुवण्ण–सुवर्ण VIII, 6, 2
सुवाअ–सुवात VII, 11, 5
सुविज्जलया–सुविद्युल्लता II, 2, 7
सुवेअ–सुवेग, पु IV, 8, 2
सुव्वअ–सुव्रत, पु II, 3, 5
सुसहाअ–सुसहाय IX, 9, 1
सुसुर–श्वशुर II, 10, 9
सुसोह–सु + शोभ II, 9 4
सुसोहण–सु + शोभन II, 20, 9
सुसोहिअ–सु + शोभित VII, 3, 10

सुह–सुख I, 1, 3
सुह–शुभ V, 5, 1
सुहड–सुभट III, 10, 2
सुहय–सुभग IX, 9, 8
सुहयर–सुखकर II, 9, 7
सुहावह–सुखावह I, 2, 2
सुहि–सुहृद् VIII, 11, 9
सुंड–शुण्डा II, 20, 4.
सूय–शुक VI, 12, 6
सूय–सूत (mercury) IX, 6, 6
सूरप्पह–सूरप्रभ, पु V, 5, 2
सूल–शूल I, 17, 4
सूव–श्रुत III, 6, 10
सूहअ–सुभग VI, 7, 2
सेज्जा–शय्या X, 15, 10 (Hem I, 57, II, 24 H. सेज)
सेठि–श्रेष्ठिन् VIII, 5, 2
सेढि–श्रेणि II, 2, 4
सेणि–श्रेणि V, 1, 11
सेण्ण–सैन्य IV, 1, 14
सेय–श्रेयस् X, 26, 14
सेय–स्वेद III, 19, 3
सेय–श्वेत I, 4, 4
सेव–सेवा II, 4, 6
सेल–शैल II, 2, 11
सेविअ–सेविन I, 16, 3
सेविज्जमान–सेव्यमान III, 1, 8
सेंवलि–शाल्मलि (तरु) VIII, 7, 7
सोअ–शोक III, 6, 6
सोक्ख–सौख्य V, 12, 1
सोक्खवीहि–सौख्य + वीथि X, 17, 3
सोणिय–शोणित IX, 11, 10
सोणिय–श्रोणी I, 16, 5
सोत्तिअ–श्रोत्रिय IX, 5, 9
सोमराअ–सोमराज VIII, 4, 10
सोय–शोक IV, 16, 1
सोरट्ठ–सौराष्ट्र, दे III, 5, 6
सोरह–सौरभ VIII, 2, 3
सोलह–षोडश X, 17, 9
सोव–स्वप °इ VIII, 13, 5, °हि VI, 9, 5
सोवण्ण–सौवर्ण III, 3, 10
सोवाण–सोपान X, 16 10
सोवीर–सौवीर (buttermilk) IX, 11, 8
सोह–शोभा II, 1, 8
सोह–शोभ् °इ I, 15, 1, °हति, I, 16, 11, °हेविणु X, 28, 6
सोहण–शोभन VI, 4, 2
सोहमाण–शोभमान IV. 4, 5
सोहल–शोभा + ल (मत्वर्थे) I, 9, 10
सोहा–शोभा I, 16, 8
सोहायमाण–शोभमान I, 3, 4

[ह]

हई–हता IV, 9, 6
हउ–अहम् II, 5, 8
हक्क–हक् इति शब्द III, 14, 3 (H हांक)
हट्ट–(तत्सम–market) III, 8, 4
*हड्ड–अस्थि III, 15, 9 (D VIII, 59)
हण–हन् °इ V, 14, 8, °णत V, 19, 1, °णेविणु X, 5, 4, °णिवि X, 8, 8
हणण–हनन II, 3, 10
हणिअ–हत II, 17, 10
हत्थ–हस्त III, 11, 1
हत्थि–हस्तिन् I, 13, 6
हम्म–हर्म्य I, 15, 8
हय–हत III 15, 1
हय–(तत्सम–अश्व) IV, 2, 1
हर–हृ °रत III, 13, 6, °रिवि II, 5, 3, °रेमि X, 23, 6
हरइ–हरन्ति (विहरन्ति) X, 29, 15
हराविय–हारापित VIII, 6, 1 (H हराना to defeat)
हरि–हरित् IV, 12, 2, X, 2, 5
हरिय–हरित I, 14, 6
हरिय–हृत III, 17, 10
हरिवीढ–हरिपीठ (सिंहासन) IV, 12, 1

INDEX OF PERSONAL NAMES

WITH NOTES.

अकलकदेव I, 2, 8 A Jain logician (see Intro)

अजवर्मा or अजय° (अजवम्म) III, 5, 6 King of Girinagara, who married his daughter मदनावली to करकड

अजितागी (°यगि) III, 5, 8 wife of अजवर्म of Girinagara, mother-in-law of करकड

अनगलेखा (°लेह) VII, 16, 2 X, 24, 4 A विद्याधरी of तिलकद्वीप married by करकड

अमितवेग (अमिय°) V, 4, 2, V, 9, 9, V, 11, 1 A विद्याधर, friend of नील, lived at गगनतल He and his brother सुवेग picked up the image of पार्श्वनाथ from पूदी hill, and deposited it on the hill near Terapur where it was discovered by करकड, buried in an ant-hill

अरिदमन VIII, 1, 5 King of Ujjain (for story see Intro.)

अरिविद्दु II, 16, 3 King of Benares

अर्जुन (अज्जुण) X, 22, 7 सुमित्रा reborn as

आहुल X, 29, 13 Son of the minister who urged कनकामर to compose the work

काञ्चनमती (कचनमई) VI, 16, 3 A विद्याधरी of कनकपुर married by नरवाहनदत्त

कनकप्रभ (कणयप्पह) VII, 14, 10, VII, 15, 7 A विद्याधर of तिलकद्वीप, who married his daughter कनकप्रभा to करकड

कनकप्रभा (कणयप्पह) VII, 15, 1 A विद्याधरी of तिलकद्वीप, married by करकड

कनकमती (कणयमई) VI, 14, 9, VI, 15, 1 A विद्याधरी of कनकपुर

कनकामर (कणया°) I, 17, 11, II, 21, 10, III, 22, 21, IV, 17, 9, V, 19, 9, VI, 16, 10, VII, 16, 10, VIII, 20, 11, IX, 24, 12, X, 28, 2, X, 29, 13 The author of करकडचरिउ (see Intro)

करकड 1, 2, 3, II, 7, 3, etc The hero of the poem

कुसुमदत्त I, 6, 7, X, 13, 5 The garland-maker of कुसुमपुर who had brought up पद्मावती

कुसुमदत्ता I, 6, 9 Wife of कुसुमदत्त of कुसुमपुर

कुसुमदत्ता I, 15, 9 Wife of the forest-guard of दन्तीपुर who had found पद्मावती in the forest

कुसुमावलि VII, 16, 4, X, 24, 3 A विद्याधरी of तिलकद्वीप married by करकड

केतुमती (केउमइ) VI, 12, 1 A विद्याधरी of जयन्ती

गुणनिकेत (°णिकेउ) II, 2, 8, II, 5, 6 A विद्याधर who became a मातग by the curse of a sage He brought up करकड till the latter was crowned king of दन्तीपुर

गौरी (गउरि) II, 2, 7 Consort of Siva

चन्द्रलेखा (चदलेह) VII, 16, 3, X, 24, 4 A विद्याधरी of तिलकद्वीप married by करकड

चन्द्रर्षि (चदारिसि) X, 28, 1 The gotra of कनकामर the author

जयदेव (°एव) I, 2, 9 A Jain author (see Intro)

तार II, 2, 3 He is said to have raised the Vijayardha mountain (असुरदेवता इति टिप्पणम्)

दशरथ (दसरह) III, 1, 12 King of Ayodhya, father of Rama

दामोदर (°यर) III, 21, 10, IX, 17, 10 epithet of Vishnu

धनदत्त (धणयत्त) X, 10, 9 A merchant of नालद

धनदत्त (धणयत्त) X, 1, 14 Cowherd of धनमित्र of तेरापट्टन who was born as करकड in the next birth

धनपाल (°धण) X, 10, 10 The son of धनदत्त merchant of नालद

धनमती (धणमई) X, 10, 8 Daughter of वसुमित्र and नागदत्ता of ताम्रलिप्ति, and married to धनपाल of नालद

धनमित्र (धनमित्त) X, 1, 11 A merchant of तेरापट्टन

धनमित्रा (धणमित्ता) X, 10, 9 Wife of धनदत्त merchant of नालद

धनवती (जणवइ) X, 1, 12 Wife of धनमित्र merchant of तेरापट्टन

धनश्री (धनसिरी) X, 10, 8 Second daughter of वसुमित्र and नागदत्ता of ताम्रलिप्ति, married to वसुमित्र of कौशाम्बी

धाडीवाहन (णु°) I, 4, 10, II, 5, 2, III, 11, 8 King of चम्पा, father of करकड (See Notes I, 4, 10)

धूमकेतु (°उ) VI, 10, 4 A विद्याधर ruling at जयती in विद्याधर-पर्वत

नरवाहनदत्त (°ण) V, 19, 9 etc Prince of कौशाम्बी (for story see Intro)

नागदत्त (णाय°) X, 6, 3 A merchant of श्रावस्ति

नागदत्ता (णाय°) X, 6, 7 Wife of नागदत्त of श्रावस्ति

नागदत्ता (णाय°) X, 10, 6, Wife of वसुमित्र of ताम्रलिप्ति, the faithless wife of नागदत्त in her former birth

नारायण (ण°) X, 25, 3 An epithet of Vishnu

नील (णी°) V, 2, 2, V, 3, 8, X, 1, 8 A विद्याधर who ruled at रथनूपुर but later on migrated to तेरापुर and built the first cave there

पद्मदेव (पउमएउ) VI, 11 3. A विद्याधर of उप्लखेडि

पद्मावती (पउमावइ, पोमा°) I, 7, 9, 11, 1, 12, II, 5, 3, II, 6, 7, III, 9, 1 The daughter of वसुपाल king of कौशाम्बी wife of धाडीवाहन king of चम्पा and mother of करकड the hero

पवनवेग (पवणवेउ) II, 12, 4 A राक्षस.

पवबेग (पवणवेउ) VI, 11, 4 A विद्याधर son of मनोवेग

पार्श्वजिनेन्द्र (पास जिणिंद) V, 2, 5 The 23rd Tirthankara

पुष्पदन्त (पुष्फयत) 1, 2, 9 A Jain Apabhramsa poet (see Intro)

प्रद्युम्न (पज्जुण्णु) III, 21, 10 Son of दामोदर (कृष्ण)

बलदेव (°एउ) IX, 7, 9, X 25, 3 The eldar brother of नारायण

बलभद्र (°हद्द) IX, 5, 5. same as बलदेव

बालदेव II, 2, 8 The Vidyadhara who took Karakanda away from his mother

वसुमती (°मइ) X, 9, 12 Wife of king वसुपाल of चपा, and mother of धाडीवाहन

वसुमती (°मइ) X, 11, 1 Wife of वसुपाल merchant of कौशाम्बी

वसुमती (°मइ) X, 12, 6 Wife of वसुपाल king of कौशाम्बी

वसुमित्र (°त्त) X, 10, 6 A merchant of ताम्रलिप्ति

वात्सायन (वच्छायण) II,, 9, 3 The author of कामसूत्र a work on erotics It is used here in the sense of the science of erotics

वायुवेग (वाउवेउ) V, 1, 3 A विद्याधर who narrated to करकड the account of the building of the cave at Terapur

विजयपाल (विजवाल) X, 29, 1 A king of आमाइय, contemporary of कनकामर

विद्युत्प्रभा (विज्जुप्पह) II, 2, 6 King of विद्युत्प्रभा, father of गुणनिकेत

विमलादेवी (°एवि) VI, 13, 10 Wife of हसरथ विद्याधर of कनकपुर

विमला VIII, 1, 9 Wife of अरिदमन of Ujjain

वीरभद्र (°द्द) II, 7, 5 A sage who arrived at the cemetery of दतीपुर

वेगमती (वेयमइ) VI, 16, 3 A विद्याधरी of कनकपुर married by नरवाहनदत्त

वेगवती (°वइ) VI, 14, 4 A विद्याधरी of कनकपुर

शिव (सिउ) IV, 3, 1, IV, 4, 8 King of Terapur who visited करकड and who probably gave the name of धाराशिव to the place

शीलगुप्त (सीलगुत्त) IX, 1, 10 The sage from whom करकड took दीक्षा

श्रीषेणा (सिरिसेणा) V, 5, 3 Wife of सूरप्रभ king of लका

समन्तभद्र (°द्द) I, 2, 8 A Jain logician (see Intro)

समाधिगुप्त (°हिगुत्त) II, 6, 9 A sage from whom पद्मावती, the mother of करकड took vows

सम्मति (°इ) II, 3, 4 A Brahman form whom करकड wrested the three lucky bamboos

सिद्धसेन (°ण) I, 2, 8 A Jain logician (see Intro)

सुदर्शन (°दसण) II, 14, 4 A merchant (see Intro , the story of low company)

सुनन्दा (°णदा) VI, 10, 4 Wife of धूमकेतु विद्याधर.

सुमित्रा (°त्ता) X, 18, 4 Daughter of the king of उज्जैन

सुवीणा VI, 1, 5 Wife of वत्सराज, mother of नरवाहनदत्त

सुवेग IV, 8, 2, V, 4, 2; V, 10, 8, V, 11, 9 Brother of अमितवेग विद्याधर, reborn as an elephant

सुव्रत (सुव्वउ) II, 3, 5. A sage on the Vindhya, by whose curse गुणनिकेत lost his Vidya and became a मातग

सूरप्रभ (°प्पह) V, 5, 2 King of लका, descendant of रावण He built the Jain temple on the पूदी mountain

स्वयभू (सयभु) I, 2, 9 A Jain Apabhransa poet (see Intro)

हरि IV, 11, 2, IX, 5, 5 An epithet of विष्णु

हसरथ (°रह) VI, 13, 9 A विद्याधर, king of कनकपुर He carried away the wife of नरवाहनदत्त

हेममाला (°ल) II, 2, 9, II, 6, 5 Wife of गुणनिकेत, the adopted mother of करकड

INDEX OF GEOGRAPHICAL NAMES

WITH NOTES

In writing the geographical notes the following abbreviations have been used :

Arch Re.—Archaeological Survey of India Report
Bh, Nat —Bharata's Nātya-sāstra
Cun Geo —Cunningham's Ancient Geography of India.
Cun S B —Cunningham's Stupa of Barhut
Dey. Geo —Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India by Nandlal Dey.
Ep Ind —Epigraphia Indica
J Stups —Jain stupa and other Antiquities of Mathura by V Smith,
Kss —Kathā-sarit-sāgara of Somadeva.
Mbh.—Mahābhārata
Padma P—Padma Purāna of Ravishenācārya
Ram —Rāmāyana
S I J —South Indian Jainsm by Ramasvami Iyangar
T S P —Trisasthi-salākā-purusa-carita of Hemacandra.
Vayu P —Vayu Purāna
Vikram —Vikramanka-deva-carita Buhler's edition
V P —Vishnu Purāna

अयोध्या III, 1, 12 The birthplace of Rama in Oudh Also the birthplace of the first Tirthamkara Adinatha

अगदेश I, 3, 5 With capital at चम्पा The country about Bhagalpur including Monghyr The kingdom of Romapada of the Ramayana and Karna of the Mahabharata For the significance of the name, see Ramayana Balakanda XXIII, 14

अमरपुरी (अमराउरी) III, 22, 5 The city of gods

अवति देश VIII, 1, 6 With capital at उज्जैनी, ruled by king अरिदमन It was the ancient name of Malwa in central India

आध्र (अध्र) II, 2, 11 Between it and कलिग stood the mountain विध्य The country between the Godavari and the Krishna Its capital was Dhankataka or Amaravati at the mouth of the Krishna The ancient kingdom of the Andhras also called Satavahanas or Satakarnis

आसाइय X, 28, 4 The town where Kanakamara wrote the Karakanda

caru (see Introduction)

उज्जैनी or उज्जयिनी (उज्जेणि) VIII, 1, 7, X, 18, 4. The capital of Avanti desa of ancient fame, situated on the river Sipra

उत्तरवेयर्ध (°वेयड्ढ) VI, 11, 4 The northern वेयर्घ which see.

उप्पलखेडि VI, 11, 2 A town in विजयार्ध or वेयर्घ, ruled by पद्मदेव (पउमदेउ) विद्याधर

कनकपुर (कणयउर) VI, 13, 8 A town on the bank of Sindhu in Vijayardha, ruled by Hamsaratha Vidyadhara.

कलिंग II, 2, 11, X, 10 2 According to *Uttaradhyayana Sutra XVIII,* 460, Karadanda ruled here It is identified with the Northern Circars, a country lying on the south of Orissa Its capital was Dantapur or Dantipur

कलिंजर I, 12, 9, °गिरि VI, 2, 4 Probably identical with Kalangala mentioned as the eastern boundary of the middle country in Vinaya II, 38 (Cunningham's Geography P 723) Our Kalinjar might be identified with Keunjar of the maps in Orissa on the Baitarni river and close to a mountain range, an offshoot of Mahendera It is near Puri with which Dantipur is identified. The name is at present borne by a celebrated fortress in Bundelkhanda, in the Badausa subdivision of the Banda district of U P

कान्यकुब्ज (कणउज्ज णयर) II, 10, 4. Modern Kanouj. It was the capital of the southern Pancala during the Buddhist period (Rhys David's Buddhist India p 27). Harshavardhana ruled there when he was visited dy Hiuen Tsang in 636 A D. It was the birth-place of Visvamitra (Ramayana, Balakanda)

कालिंदी III, 9, 4, etc Another name of the river Jamna (Yamuna)

कुसुमपुर (°उर) I, 6, 1, X, 13, 5 Another name for Patalipurtra which was the capital of Magadha under the Nandas and the Mauryas In the Samskrit drama Mudra-rakshasa, it is mentioned as the capital of Chandragupta Maurya, and as situated on the river Sona It is also described by Megasthenes It was built by Ajatasatru in 480 B C (Mahavagga VI 28)

कोंकण VIII, 12, 9 The country between the Western Ghats and the sea from about Bombay southward to Goa. Hiuen Tsang makes mention of one Kong-pien-na-pulo or Konkanpur, probably identical with Annagundi on the northern bank of the Tungabhadra river (Cun. Geo p 632, 745)

कैलाश (कइलास) visited by Bharata (son of the first Tirthamkara Adinath) who also built temples there IV, 4, 10, V, 5, 5. It was once lifted up by the king of Lanka (Ravana) IV, 11, 1 A celebrated mountain of Pauranic

fame. It is identfied with the Kangrin-poche of the Tibetans, about 25 miles to the north of Manasa lake, and to the east of the Niti pass (Dey Geo) It is also called Ashtapada. The first Tirthamkara Rshabha is said to have practised penance there and his son Bharata visited it during his journey of conquest (Jinasena's Adipurana).

कौशाम्बी (कउसंबि) I, 7, 9, X, 11, 1, X, 12, 6 The capital of the Vatsas ruled over by Naravahanadatta VI, 1, 3 Founded by Kusamba the son of Kusa (Ram. Balakanda XXXII, 6) Fa Hian locates it 13 yojanas N W of the Deer Park (modern Sarnath near Benares) It is identified with Kosam a village on the Jumna 30 miles S W of Allahabad, which is still called Kausambi by the Jains Ancient coins are frequently discovered here and an ancient Jain inscription of the Kushan period has been found (Arch Re 1913-14, Ep Ind II, 240)

खमायच्च पट्टण VIII, 12, 10 Modern Cambay, being at the head of a gulf of the same name, was an important trade port in ancient times, but has now last its importance owing to the silting up of the gulf

गगानदी (°गइ) I, 3, 3, III, 12, 5, III, 20, 7, IV, 14, 6, X, 13, 2 The river Ganges

गगनतल (गयणयल) V, 3, ९. A town in उत्तरवेढर्य, where lived the two Vidyadharas Amitavega and Suvega

गिरिनगर (°णयर) III, 5, 7 In Saurastra (सोरट्ठदेस) ruled by king Ajavarma It is represented by modern Junagadha in Gujrat, the old name being transferred to the hill about ten miles east The 22nd Tirthamkara Neminatha practised austerities here and the hill is even now held sacred to him and is a place of pilgrimage for Jains The inscriptions of Asoka, Rudradamana and Skandagupta are found engraved here on a single rock

गोवर्द्धन (गोवड्ढण) IV, 11, 2. A hill 18 miles form Brindavana in the district of Muttra Krishna is said to have taken it upon his little finger and held it as an umbrella over the heads of his cattle and townsmen to protect them from the deluge of rain poured upon them by Indra (Mbh Udyoga, chap 129)

चम्पा 1, 3, 12, II, 5, 2, X, 9, 12 Capital of Anga country, ruled by Dhadivahana son of Vasupala and father of Karakanda. It was the birth-place of the twelth Tirthamkara Vasupujya It is metioned in the Ramayana, Mahabharata and other Puranas, Hiuen Tsang mentions it as Chenop and locates if at a distance of 300 li or 50 miles east of Monghyr, on the strength of which Cunningham identifies it with Patharghata, 24 miles east of Bhagalpur But N. L Dey identifies it with Camp-

aingar four miles to the west of Bhagalpur (Cun Geo, Dev Geo)

चेर IV, 1, 5, VIII, 18, 5. In Dravida country whose kings did not at first submit to Karakanda but were subsequently overpowered Mentioned in Asoka inscriptions as Keralaputra, and by Periplus as *Cerobothra* The country, at one time, comprised the present kingdom of Mysore, Coimbatore, Salem South Malabar, Travancore and Cochin According to Ptolemy (2nd Cent A D) its Capital was Karour or Karour, also called Vangi The Pandya country lay to its south

चोड II, 10, 5, IV, 1, 5, VIII, 18, 5 In Dravida country Its king did not at first submit to Karakanda but was subsequently overpowered It is mentioned in the Varttika of Katyayana, inscriptions of Asoka and the epics Identical, probably, with Hiuen Tsang's Choliya (Chuli-ye or Jho-li-ye) which he describes as a small district 2100 li or 400 miles in circuit and 1000 li or 167 miles south-west from Dhanakataka It is the modern Coromandal Coast Its capital was Uraiyur on the Kaveri and later Kanchipur, Combakonum and Tanjore During the time of our author the Caudas seem to have been the leading power of the South

छोहारद्वीप VIII, 10, 3 King Aridamana of Ujjain, after crossing the sea reached there and married Ratnalekha Seems to have been some island off the western coast

जम्बूद्वीप I, 3, 1, V, 1, 3 etc The continent surrounded by the briny ocean (लवणार्णव) and one hundred thousand yojanas in extent, in which the Bharata kshetra is situated, so called because it is characterised by a Jambu tree

जयन्ती VI, 10, 3 A town in the southern part of the Vidyadhara mountain (Vedhardha), where Dhumaketu Vidyadhara ruled (see वैताग)

ताम्रलिप्ति (तामलित्ति) X, 10, 5. A town mentioned in the Mbh, the Puranas and the Buddhist works. It was celebrated as a maritime port (Kss XII, 11) It was from here that Vijaya is said to have sailed for Ceylon Fa Hian described it as being at the sea mouth, 50 yojanas east of Campa. It was the capital of the Sumha countary. Formerly, at the mouth of the Ganges, but is now situated on the western bank of the Rupanarain in the district of Midnapur in Bengal and is called Tamluk

तिलकद्वीप (°दीव) VII, 15, 1. While returning from Simhala by sea, Karakanda was carried away to this island by a Vidyadhara. It may be one of the few flat island off the Jaffna peninsula which forms the extreme north of Ceylon, and was the gate way by which the hard-

working Tamils of South India entered Ceylon It is also mentioned in the Bhavis-yatta-kaha of Dhanapala

दक्षिणापथ (दक्खिणवह) IV, 2, 4; Ancient name of Deccan i e the part of India to the south of the Narmada The name occurs in the Pali books of the Buddhists It is the Dakkhinabades of the Greeks It is defined in Bh Nat XIII, 26, as follows

महेन्द्रो मलय सह्यो मेलक पलविञ्जर
एतेषु संश्रिता देशा· स ज्ञेयो दक्षिणापथ ॥

दन्तीपुर 1, 14, 4, II, 5, 4, II, 19, 3, III, 1, 2, III, 11, 9 Here Padmavati was taken by the elephant running away from Campa Karakanda was born in its vicinity and later was crowned king of the city It is identical with Dantapur, the ancient capital of Kalinga, mentioned in Pali books in connection with the tooth-relic of Buddha (see Dattha vansa) It is probably the Dandagula, °guda or °pula of Pliny Cunningham identifies it with Rajamahandri while N L Dey identifies it with Puri Danti being a synonym for Hasti (elephant) later writers have mistaken it for Hastinapur

द्रविडदेश IV, 1, 4, VIII, 18, 4 The land of the three kingdoms, *Coda, Cera* and *Pandya Damirica*, of Periplus and *Damirike* of Ptolemy Acc to Mbh *Vanaparva*, 118, its northern boundary was the Godavari Later, the southern part of the Peninsula bounded on the north by the *Krishna* and the *Tungabhadra* was called as such It is otherwise known as the Tamil country It was also called Coda (Vikram Intro P 27 Note)

नालन्द (°णालद) X, 10, 9, The most famous seat of Buddhist learning Fa Hian places the hamlet of Nalo at one yojana or seven miles from the hill of the isolated Rock (Giryeka) and also the same distance from new Rajagriha It is now identified with Bargaon or Badgaon (Vatagrama or Viharagrama) which lies seven miles to the north west of Rajagriha in the district of Patna Excavations carried on at the place have revealed traces of the vast Buddhist monastery

पाण्ड्य (पण्डि or पण्डिय) IV, 1, 5, VIII, 18, 5. Mentioned in the epics, the Varttikas of Katyayana and the inscriptions of Asoka Megasthenes refers to Pandoe as the only Indian race ruled by women The country corresponded roughly to the Madura and Tinnevelly districts Travancore and part of Coimbatore and Cochin Its capital was Madura (Mathura or Dakshina Mathura) In the seventh Century A D the Pandyas conquered the Cola and Cera territories, but were subdued by the Colas in the middle of the ninth century.

पूदी (सिरि पूदी) V, 4, 6, V, 5, 3 A mountain in the Malaya (Malabar) country on which stood the temple

of the 24 Tirthamkaras reputed to have been built by the lord of Lanka, a descendant of Ravana, from where the Vidyadharas picked up the image of Parsvanatha on their way to Simhala. It is probably identical with the Podyil hill in the Western Ghats south of the Palaghat gap and west of Tinnevelly (see S I J)

प्रतिष्ठान (पइट्ठाण) VI, 9, 2 Going to the Ganges from Kausambi, Naravahanadatta came to this place So it can not be the Pratisthana on the Godavari It is probably identical with Jhusi opposite to Allahabad across the Ganges which is still called Pratisthanapur It is mentioned in the Mahabharata and the Kurma and Agni Puranas. It was the capital of king Pururavas of the Vikramorvasiyam Acc. to Ram. Uttarakanda 90, 22, it was founded by king Ila

प्रयाग (पयाग) VI, 6, 5, VI 7, 7 Two Brahmins Madhava and Madhusudana of Muttra go there one after another to terminate their life through sheer disgust Compare this with the description of the place given by Hiuen Tsang "In the city there is a Deva temple beautifully ornamented and celebrated for its numerous miracles Before the hall of the temple, there is a great tree with spreading boughs and branches and casting a deep shadow There was a body-eating demon here who depending on the custom (of committing suicide) made his abode here Accordingly, on the left and right one sees heaps of bones Hence, when a person comes to this temple, there is everything to persuade him to despise his life and give it up, he is encouraged there to, both by promptings of the heretics and also by the seduction of the evil spirit. From very early days till now this very false custom has been practised " Ravishena in his Padma P III, 281, mentions it as follows

प्रयाग इति देशोऽसौ प्रजाभ्योऽस्मिन्गतो यत ।
प्रकृष्टो वा कृतस्त्याग प्रयागस्तेन कीर्तित ॥

It is identical with Allahabad

भरतक्षेत्र (भरहक्खेत्त) I 3, 3, II, 2, 1, IV, 1, 3, V, 1, 5, X, 1, 7, X, 6, 2. same as Bharata-varsa, by which name India is mentioned in all ancient books

मलय (°विषय) V, 4, 5, V, 5, 4 The Malayalam or Malabar country including Cochin and Travancore, the Malayagiri and the southern part of the Western Ghats Famous for its sandal It included the *Pudi* mountain

मथुरापुरी (महुराउरी) VI, 4, 8, Modern Muttra in U. P The capital of the ancient Surasena, the habitat of the Saurasení Prakrit Hence also called Sauripura, It was the birth-place of Krishna Many Jain ruins have been excavated at Kankalitila (J Stupa) It had

in the compound of Kazi Mahal, but they have now been removed from there to another house ' (Letter dated 11-9-31)

सिन्धु I, 3, 3 The river Indus

सिंहलद्वीप VII, 5, 4 Modern Ceylon. Karakanda Visited it, married the daughter of the king of the island and returned by sea

सुरसरित् III, 9, 4, VI, 9 1, VIII, 7, 4 The river Ganges

सौराष्ट्रदेश (सोरट्ठ देस) III, 5, 6 The peninsula of Gujrat and Kathiawad, the Syrastrene of Ptolemy and Sula-cha of Hiuen Tsang who locates its capital at the foot of Mount Yeuchen-ta (Ujjinta SK Urjayat.) which is also mentioned in the inscription or Rudradaman and Skanda-gupta It is, thus, the old city of Junagadh which is the same as Girinagara mentioned by our author as the capital (see गिरिनगर)

हिमवन्त गिरि III, 12, 7 The mountain Himalaya where the Ganges has its source

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA

MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ

General Editors

Dr H L JAIN, Jabalpur . Dr A N UPADHYE, Kolhapur

The Bhāratīya Jñānapītha, is an Academy of Letters for the advancement of Indological Learning In pursuance of one of its objects to bring out the forgotten, rare unpublished works of knowledge, the following works are critically or authentically edited by learned scholars who have, in most of the cases, equipped them with learned Introductions etc and published by the Jñānapītha

Mahābandha or the Mahādhavalā :

This is the 6th Khanda of the great Siddhānta work *Ṣatkhaṇḍāgama* of Bhūtabali The subject matter of this work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina Philosophy who desire to probe into the minutest details of the Karma Siddhānta The entire work is published in 7 volumes The Prākrit Text which is based on a single Ms is edited along with the Hindī Translation Vol I is edited by Pt S C DIWAKAR and Vols 2 to 7 by Pt PHOOLACHANDRA Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha Nos 1, 4 to 9 Super Royal Vol I pp 20+80+350, Vol II pp 4+40+440, Vol III pp 10+496, Vol IV pp 16+428, Vol V pp 4+460, Vol VI pp 22+370; Vol VII pp 8+320 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1947 to 1958. Price Rs 11/- for each vol

Karalakkhana

This is a small Prākrit Grantha dealing with palmistry just in 61 gāthās The Text is edited along with a Sanskrit Chāyā and Hindī Translation by Prof P K MODI Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No 2 Third edition, Crown pp 48 Bhāratīya Jnānapītha Kashi, 1964 Price 75 nP.

Madanaparājaya :

An allegorical Sanskrit Campū by Nāgadeva (of the Samvat 14th century or so) depicting the subjugation of Cupid Edited critically by Pt RAJKUMAR JAIN with a Hindī Introduction, Translation etc, Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 1 Second edition Super Royal pp 14 + 58 + 144 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1964 Price Rs 8/-

Kannada Prāntīya Tādapatrīya Grantha-sūcī :

A descriptive catalogue of Palmleaf Mss in the Jaina Bhandāras of Moodbidri, Karkal, Aliyoor etc Edited with a Hindī Introduction etc by Pt K BHUJABALI SHASTRI Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 2 Super Royal pp 32 + 324 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1948 Price Rs 13/-

Tattvārtha-vrtti :

This is a critical edition of the exhaustive Sanskrit commentary of Śrutasāgara (c 16th century Vikrama Samvat) on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti which is a systematic exposition in Sūtras of the fundamentals of Jainism The Sanskrit commentary is based on earlier commentaries and is quite elaborate and thorough Edited by Pts MAHENDRAKUMAR and UDAYACHANDRA JAIN Prof MAHENDRAKUMAR has added a learned Hindi Introduction on the exposition of the important topics of Jainism The edition contains a Hindī Translation and important Appendices of referential value Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 4 Super Royal pp 108 + 548 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1949, Price Rs 16/-

Ratna-Mañjūsā with Bhāsya :

An anonymous treatise on Sanskrit prosody Edited with a critical Introduction and Notes by Prof H D VELANKAR Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 5 Super Royal pp 8 + 4 + 72 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1949 Price Rs 2/-

Nyāyaviniścaya-vivarana .

The Nyāyaviniścaya of Akalanka (about 8th century A D) with an elaborate Sanskrit commentary of Vādirāja (c 11th century A D) is a repository of traditional knowledge of Indian Nyāya in general and of Jaina Nyāya in particular Edited with Appendices etc by Pt MAHENDRAKUMAR JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 3 and 12 Super Royal Vol I pp 68 + 546, Vol II pp 66 + 468 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1949 and 1954, Price Rs 15/- each.

Kevalajñāna-praśna-cūdāmani :

A treatise on astrology etc Edited with Hindī Translation, Introduction, Appendices, Comparative Notes etc by Pt NEMICHANDRA JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 7 Super Royal pp 16+128 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1950 Price Rs 4/-

Nāmamālā :

This is an authentic edition of the Nāmamālā, a concise Sanskrit Lexicon of Dhanamjaya (c 8th century A D) with an unpublished Sanskrit commentary of Amarakīrti (c 15th century A D) The Editor has added almost a critical Sanskrit commentary in the form of his learned and intelligent foot-notes Edited by Pt SHAMBHUNATH TRIPATHI, with a Foreword by Dr P L VAIDYA and a Hindī Prastāvanā by Pt MAHENDRAKUMAR The Appendix gives Anekārtha nighantu and Ekākṣarī-kośa Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 6 Super Royal pp 16+140 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1950 Price Rs 3.50 nP

Samayasāra :

An authoritative work of Kundakunda on Jaina spiritualism Prākrit Text, Sanskrit Chāyā Edited with an Introduction, Translation and Commentary in English by Prof A CHAKRAVARTI The Introduction is a masterly dissertation and brings out the essential features of the Indian and Western thought on the all-important topic of the Self Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, English Grantha No 1 Super Royal pp 10+162+244 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1950 Price Rs 8/-

Jātakatthakathā :

This is the first Devanāgarī edition of the Pāli Jātaka Tales which are a store-house of information on the cultural and social aspects of ancient India Edited by Bhikshu DHARMARAKSHITA Jñānapītha Mūrtidevī Pāli Granthamālā No 1, Vol 1 Super Royal pp 16+384 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1951 Price Rs 9/-

Kural or Thirukkural :

An ancient Tamil Poem of Thevar It preaches the principles of Truth and Non-violence The Tamil Text and the commentary of Kavirājapandita Edited by Prof A CHAKRAVARTI with a learned Introduction in English Bhāratīya Jñānapītha Tamil Series No 1 Demy pp 8+36+440 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1951 Price Rs 5/-

Mahāpurāna :

It is an important Sanskrit work of Jinasena Gunabhadra, full of encyclopædic information about the 63 great personalities of Jainism and about Jain lore in general and composed in a literary style Jinasena (837 A D) is an outstanding scholar, poet and teacher, and he occupies a unique place in Sanskrit Literature This work was completed by his pupil Gunabhadra Critically edited with Hindī Translation, Introduction, Verse Index etc by Pt PANNALAL JAIN Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 8, 9 and 14 Super Royal Vol I Second edition, pp 8+68+746 Varanasi 1963, Vol II pp 8+556, Vol III pp 8+16+640, Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1951 to 1954 Price Rs 10/- each

Vasunandi Śrāvakācāra :

A Prākrit Text of Vasunandi (c Samvat first half of 12th century) in 546 gāthās dealing with the duties of a householder, critically edited along with a Hindī Translation by Pt HIRALAL JAIN The Introduction deals with a number of important topics about the author and the pattern and the sources of the contents of this Śrāvakācāra There is a table of contents There are some Appendices giving important explanations, extracts about Pratisthāvidhāna, Sallekhanā and Vratas There are 2 Indices giving the Prākrit roots and words with their Sanskrit equivalents and an Index of the gāthās as well Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No 3 Super Royal pp 230 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1952 Price Rs 5/-

Tattvārthavārttikam or Rājavārttikam :

This is an important commentary composed by the great logician Akalanka on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti The text of the commentary is critically edited giving variant readings from different Mss by Prof MAHENDRAKUMAR JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 10 and 20 Super Royal Vol I pp 16+430, Vol II pp 18+436 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1953 and 1957 Price Rs 12/- for each Vol

Jinasahasranāma :

It has the Svopajña commentary of Pandita Āśādhara (V S 13th century) In this edition brought out by Pt HIRALAL a number of texts of the type of Jinasahasranāma composed by Āśādhara, Jinasena, Sakalakīrti and Hemacandra are given Āśādhara's text is accompanied by Hindī Translation Śrutasāgara's commentary of the same is also given here There is a Hindī Introduction giving information about Āśādhara etc There are some useful Indices Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 11 Super Royal pp 288 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1954 Price Rs 4/-

Purānasāra-Samgraha :

This is a Purāna in Sanskrit by Dāmanandi giving in a nutshell the lives of Tīrthamkaras and other great persons The Sanskrit text is edited with a Hindī Translation and a short Introduction by G C JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 15 and 16 Crown Part I pp 20+198, Part II pp 16+206 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1954, 1955 Price Rs 2/- each

Sarvārtha-Siddhi :

The Sarvārtha-Siddhi of Pūjyapāda is a lucid commentary on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti called here by the name Grdhrapiccha It is edited here by Pt PHOOLACHANDRA with a Hindī Translation, Introduction, a table of contents and three Appendices giving the Sūtras, quotations in the commentary and a list of technical terms Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 13. Double Crown pp 116+506 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1955 Price Rs. 12/-

Jainendra Mahāvrtti :

This is an exhaustive commentary of Abhayanandi on the *Jainendra Vyākarana*, a Sanskrit Grammar of Devanandi alias Pūjyapāda of circa 5th-6th century A D Edited by Pts S N TRIPATHI and M CHATURVEDI There are a Bhūmikā by Dr V S AGRAWALA, *Devanandikā Jainendra Vyākarana* by PREMI and *Khilapātha* by MIMĀNSAKA and some useful Indices at the end. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 17 Super Royal pp. 56+506. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1956 Price Rs 15/-

Vratatithi Nirnaya :

The Sanskrit Text of Simhanandi edited with a Hindī Translation and detailed exposition and also an exhaustive Introduction dealing with various Vratas and rituals by Pt NEMICHANDRA SHASTRI Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 19 Crown pp 80+200 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1956 Price Rs 3/-

Pauma-cariu :

An Apabhramśa work of the great poet Svayambhū (677 A D) It deals with the story of Rāma The Apabhramśa text up to 56th Sandhi with Hindi Translation and Introduction of Dr DEVENDRAKUMAR JAIN, is published in 3 Volumes Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhramśa Grantha Nos 1, 2 & 3 Crown size, Vol I pp 28+333, Vol II pp 12+377, Vol III pp 6+253 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1957, 1958 Price Rs 3/- for each Vol

Jīvamdhara-Campū :

This is an elaborate prose Romance by Haricandra written in Kāvya style dealing with the story of Jīvamdhara and his romantic adventures It has both the features of a folk-tale and a religious romance and is intended to serve also as a medium of preaching the doctrines of Jainism The Sanskrit Text is edited by Pt PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindī Translation and Prastāvanā There is a Foreword by Prof K K HANDIQUI and a detailed English Introduction covering important aspects of Jīvamdhara tale by Drs A N UPADHYE and H L JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 18 Super Royal pp 4+24 +20+344 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1958 Price Rs 8/-

Padma-purāna

This is an elaborate Purāna composed by Ravisena (V S 734) in stylistic Sanskrit dealing with the Rāma tale It is edited by Pt PANNALAL JAIN with Hindī Translation, Table of contents, Index of verses and Introduction in Hindī dealing with the author and some aspects of this Purāna Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 21, 24, 26 Super Royal Vol I pp 44+548, Vol II pp 16+460, Vol III pp 16+472 Bhāratīya Jñānapītha Kashī, 1958-59 Price Rs 10/- each

Siddhi-viniścaya .

This work of Akalankadeva with Svopajñavrtti along with the commentary of Anantavīrya is edited by Dr MAHENDRAKUMAR JAIN This is a new find and has great importance in the history of Indian Nyāya literature It is a feat of editorial ingenuity and scholarship The edition is equipped with exhaustive, learned Introductions both in English and in Hindi, and they shed abundant light on doctrinal and chronological problems connected with this work and its author There are some 12 useful Indices Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 22, 23 Super Royal Vol I pp 16+174+370, Vol II. pp 8+808 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1959 Price Rs 18/- and Rs 12/-

Bhadrabāhu-Samhitā

A Sanskrit text by Bhadrabāhu dealing with astrology, omens, portents etc Edited with a Hindī Translation and occasional Vivecana by Pt NEMICHANDRA SHASTRI There is an exhaustive Introduction in Hindī dealing with Jain Jyotisa and the contents, authorship and age of the present work Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 25 Super Royal pp 72+416 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1959 Price Rs 8/-

Pañcasamgraha :

This is a collective name of 5 Treatises in Prākrit dealing with the Karma doctrine the topics of discussion being quite alike with those in the Gommatasāra etc The Text is edited with a Sanskrit commentary, Prākrit Vṛtti by Pt HIRALAL who has added a Hindī Translation as well A Sanskrit Text of the same name by one Śrīpāla is included in this volume There are a Hindī Introduction discussing some aspects of this work, a Table of contents and some useful Indices Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No 10 Super Royal pp 64+804 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1960 Price Rs 15/-

Mayana-parājaya-cariu .

This Apabhramśa Text of Harideva is critically edited along with a Hindī Translation by Prof Dr HIRALAL JAIN It is an allegorical poem dealing with the defeat of the god of love by Jina This edition is equipped with a learned Introduction both in English and Hindī The Appendices give important passages from Vedic, Pāli and Sanskrit Texts There are a few explanatory Notes, and there is an Index of difficult words Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhramśa Grantha No 5 Super Royal pp 88+90 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1962 Price Rs 8/-

Harivamsa Purāna :

This is an elaborate Purāna by Jinasena (Śaka 705) in stylistic Sanskrit dealing with the Harivamśa in which are included the cycle of legends about Krsna and Pāndavas The text is edited along with the Hindī Translation and Introduction giving information about the author and this work, a detailed Table of contents and Appendices giving the verse Index and an Index of significant words by Pt PANNALAL JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 27 Super Royal pp 12+16+812+160 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1962 Price Rs 16/-

Karmaprakrti :

A Prākrit text by Nemicandra dealing with Karma doctrine, its contents being allied with those of Gommatasāra Edited by Pt HIRALAL JAIN with the Sanskrit commentary of Sumatikīrti and Hindī Ṭīkā of Pandita Hemarāja, as well as translation into Hindī with Viśesārtha Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No 11 Super Royal pp 32+160 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1964 Price Rs 6/-

Upāsakādhyayana :

It is a portion of the Yaśastilaka-campū of Somadeva Sūri It deals with the duties of a householder Edited with Hindi Translation, Introduction and Appendices etc by Pt KAILASHCHANDRA SHASTRI Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 28 Super Royal pp 116+539, Bhāratīya Jñānapītha, Kashi, 1964 Price Rs 12/-

Bhojacaritra :

A Sanskrit work presenting the traditional biography of the Paramāra Bhoja by Rājavallabha (15th century A D) Critically edited by Dr B Ch CHHABRA, Jt Director General of Archæology in India and S SANKARANARAYANA with a Historical Introduction and Explanatory Notes in English and Indices of Proper names Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 29 Super Royal pp 24+192 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1964 Price Rs 8/-

Satyaśāsana-parīksā

A Sanskrit text on Jain logic by Ācārya Vidyānandi, critically edited for the first time by GOKULCHANDRA JAIN It is a critique of selected issues upheld by a number of philosophical schools of Indian Philosophy There is an English compendium of the text, by Dr NATHMAL TATIA Jñānapītha Mūrtidevī Jain Granthamālā, Sanskrit Grantha No 30 Super Royal pp 56+34+62 Bhāratīya Jñānapītha, Kashi, 1964 Price Rs 5/-

Karakanda-cariu

An Apabhramśa text dealing with the life story of king Karakanda, famous as 'Pràtyeka Buddha' in Jaina & Buddhist literature Critically edited with Hindi & English Translations, Introductions, Explanatory Notes and Appendices etc by Dr HIRALAL JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhramśa Grantha No 4 Super Royal pp 64+278 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1964 Price Rs 10/-

For Copies Please write to—

BHARATIYA JNANPITH,
3620/21 Netaji Subhas Marg, Dariyaganj,
Delhi (India)

or

BHARATIYA JNANPITH,
Durgakund road, Varanasi (India)